GL H 891.22
BHA

125617
LBSNAA

ष्ट्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी
Academy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE
पुस्तकालय
LIBRARY
— 125617
अवाप्ति संख्या
Accession No. 14661
वर्ग संख्या
Class No. Sans 891.22
पुस्तक संख्या
Book No. BHA भास

ॐ

श्री महाकवि-भासप्रणीतं

प्रतिमानाटकम्

(हिन्दी-इंग्लिश अनुवाद, विस्तृत व्याख्या, सर्वांगपूर्ण भूमिका तथा ६ आवश्यक परिशिष्टों से युक्त)

प्रणेता

डा० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी), एम० ओ० एल०,

डी० फिल्० (प्रयाग),

विद्याभास्कर, साहित्यरत्न, व्याकरणाचार्य,

अध्यक्ष संस्कृत विभाग,

सेंट एंडरूज कालेज, गोरखपुर

प्रणेता—अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन (उ० प्र० सरकार द्वारा संमानित और पुरस्कृत पुस्तक), रचनानुवाद-कौमुदी आदि

प्रकाशक

रामनारायण लाल

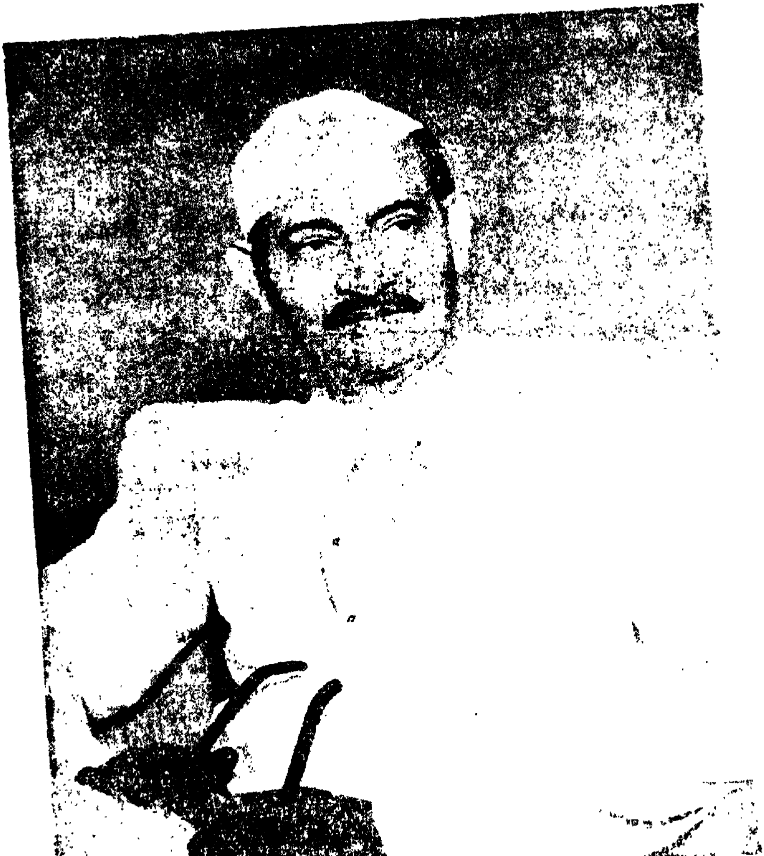
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद

द्वितीय संस्करण]   १९५८   [मूल्य 5.50

प्रकाशक
रामनारायण लाल
इलाहाबाद

मुद्रक
नरोत्तमदास अग्रवाल
नेशनल प्रेस
प्रयाग



माननीय श्री ठा० हरगोविन्द सिंह जी,
भूतपूर्व शिक्षामंत्री, उत्तर प्रदेश

समर्पण

संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के परम भक्त,

परम माननीय

श्री ठा० हरगोविन्दसिंह जी,

भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री, उत्तर प्रदेश

की सेवा में

सादर सविनय समर्पित

कपिलदेव द्विवेदी

प्राक्कथन

प्रतिमानाटक का यह प्रस्तुत संस्करण बी० ए०, एम० ए० तथा तत्समकक्ष विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति को लक्ष्य में रखकर लिखा गया है। अभी तक प्रतिमानाटक का ऐसा कोई संस्करण उपलब्ध नहीं था, जो हिन्दी के माध्यम से उनकी संपूर्ण आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके। इस संस्करण में संस्कृत का मूल अंश मोटे अक्षरों में छपा है, तत्पश्चात् उसका हिन्दी और इंग्लिश अनुवाद है। नोट्स में अत्युपयोगी सभी विवरण, व्याकरण, छन्द, आलोचना आदि दी गई है। प्रारम्भ में भूमिका में नाटक का महत्त्व, नाटकों की उत्पत्ति, भास के नाटक, उनका रचयिता भास है, भास का समय, भास की नाट्यकला, भास की शैली, प्रतिमानाटक की कथा, मुख्य पात्रों का चरित्रचित्रण आदि विस्तार-पूर्वक दिया गया है। पुस्तक के अन्त में विशेष उपयोगी ६ परिशिष्ट दिए गए हैं। प्रयत्न किया गया है कि छात्रों के लिए उपयुक्त सभी बातों का संग्रह हो तथा अनावश्यक सभी बातों का परित्याग हो।

इस पुस्तक के सम्पादन में मुझे स्व० श्री गणपति शास्त्री, श्री शिवराम महादेव परांजपे, श्री एम० आर० काले तथा श्री रामचन्द्र मिश्र के प्रतिमा-नाटक के संस्करणों से विशेष सहायता प्राप्त हुई है, तदर्थ उनका कृतज्ञ हूँ।

माननीय श्री डा० हरगोविन्दसिंह जी, शिक्षामंत्री, उत्तरप्रदेश ने पुस्तक की मूल प्रति को देखने तथा समर्पण करने की स्वीकृति दी है, तदर्थ उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। पुस्तक के प्रूफ संशोधन आदि कार्यों में इन व्यक्तियों से विशेष सहयोग मिला है तदर्थ उन्हें धन्यवाद है। श्री रूपनारायण शास्त्री (हिन्दी सा० संमेलन प्रयाग), दोनों छोटे भाई सत्यदेव एवं प्रेमनाथ। पुस्तक के प्रकाशक को उनके सहयोग के लिए विशेष धन्यवाद है।

अन्त में विद्वज्जन से निवेदन है कि वे पुस्तक के विषय में जो संशोधन, परिवर्तन या परिवर्धन का विचार भेजेंगे, वह बहुत कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया जाएगा।

सेंट एंड्रूज कालेज, गोरखपुर
होली, २००९ वि०

कपिलदेव द्विवेदी

भूमिका

(१) नाटक का महत्त्व

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥

नाट्यशास्त्र १—११३

संस्कृत के साहित्यशास्त्रियों ने काव्य को दो भागों में विभक्त किया है, एक दृश्य और दूसरा श्रव्य ।

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम् ।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम् ॥ साहित्यदर्पण ६.१

दृश्य काव्य में नाटकों या रूपकों तथा उपरूपकों का ग्रहण होता है, क्योंकि इनका अभिनय किया जाता है । ये जनता के द्वारा दृश्य होते हैं । नाटक के लिए संस्कृत में पारिभाषिक शब्द 'रूपक' है । अभिनेता अभिनय की अवस्था में अपने ऊपर नाटकीय पात्र का आरोप कर लेता है, अतः नाटक को रूपक कहा गया है । रूपक के ही १० भेदों में से एक भेद नाटक है । रूपक के १० भेद हैं तथा उपरूपक के १८ । दस रूपकों के नाम हैं :—

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः ।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ॥ सा० दर्पण ६.३

(१) नाटक, (२) प्रकरण, (३) भाण, (४) व्यायोग, (५) समवकार, (६) डिम, (७) ईहामृग, (८) अंक, (९) वीथी, (१०) प्रहसन । (इनके विस्तृत विवेचन तथा उपरूपकों के विवेचन के लिये देखिए साहित्यदर्पण परिच्छेद ६) । श्रव्य काव्यों में रघुवंश आदि का ग्रहण होता है, जो केवल पठन या श्रवण के विषय हैं, ये अभिनेय नहीं हैं । नाटकों में श्रव्य काव्य की अपेक्षा हृदयग्राहिता, मनोरञ्जकता, आकर्षकता तथा विविधता अधिक होती है, अतः श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य अधिक जनप्रिय होता है । अतएव कहा गया है कि—'काव्येषु नाटकं रम्यम्' काव्य की अपेक्षा नाटक अधिक

रमणीय होता है। भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र में नाटकों की विशेषता का उल्लेख करते हुए अतएव कहा है कि—नाटक में ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, नवीन योजना, क्रिया-कुशलता आदि सभी का समन्वय रहता है, अतएव नाटकों का महत्त्व श्रव्य काव्य की अपेक्षा बहुत अधिक है।

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं......(नाट्यशास्त्र १.११३)

(२) नाटकों की उत्पत्ति

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपने भावों और विचारों को दूसरों तक पहुँचावे। इसके लिए मनुष्य शब्दों का प्रयोग करता है, कभी इंगित से तथा कभी नृत्य-गीत आदि के द्वारा वह अपने भाव प्रकट करता है। मनोरञ्जनार्थ दूसरे का अनुकरण करने की प्रवृत्ति भी मनुष्य में स्वाभाविक है। इसको जब कथोपकथन या वार्तालाप, संगीत, नृत्य, वेशभूषा एवं भाव-भंगी आदि से समन्वित कर देते हैं तथा उसे नाट्य का रूप दे देते हैं, तभी नाटक का प्रारम्भ हो जाता है।

भारतीय नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति की विवेचना करते हुए महामुनि भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया है कि सम्पूर्ण देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि हमें ऐसी मनोरञ्जन की वस्तु दीजिये जो दृश्य और श्रव्य दोनों हो, जिसको चारों वर्ण के व्यक्ति समान रूप से अपना सकें। उनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा ने चारों वेदों से सारभाग लेकर पाँचवें वेद नाट्यवेद की सृष्टि की। ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य (संवाद, कथोपकथन आदि), सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस के तत्त्वों को लिया।

एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्॥
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥

नाट्यशास्त्र १.१६—१७

भरत मुनि के कथन को यदि स्थूल रूप में भी लिया जाय तो यह स्पष्ट है कि नाटक के लिए चार तत्त्वों की विशेष आवश्यकता है, अर्थात् संवाद, संगीत, अभिनय और रस। ये चारों तत्त्व चारों वेदों में प्राप्य हैं, अतः चारों वेदों से

नाटकों की उत्पत्ति सर्वथा बुद्धिगम्य है। ऋग्वेद के यम-यमी सूक्त (ऋग्वेद १०, १०. १—१४), पुरुरवा-उर्वशी-संवाद सूक्त (ऋग्वेद १०. ९५. १-१८) तथा सरमा-पणि-संवाद सूक्त (ऋग् १०. १०८ १—११) में नाटकोपयोगी संवाद का तत्त्व बहुत सुन्दर रूप में प्राप्य है। इन्द्र, अग्नि, उषस्, मरुत् आदि देवताओं के महत्त्वबोधक सूक्तों में नाटकोपयोगी पाठ्य बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। सामवेद संगीतमय वेद है ही। यजुर्वेद के यज्ञिय क्रियाकलाप में अभिनय का अंश विद्यमान है तथा अथर्ववेद में विभिन्न रसों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार चारों वेदों के तत्त्वों को संग्रह करके नाटकों का प्रारम्भ हुआ। यही नाटक शनैः शनैः परिष्कृत होते हुए उच्च कोटि के नाटकों के रूप में प्राप्त होते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने नाटक की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत प्रस्तुत किए हैं, जो कि केवल एकांगी भावना से प्रेरित होकर प्रस्तुत किए गए हैं, अतः सर्वांगीणरूप में ग्राह्य नहीं हैं। उदाहरणार्थ कुछ विचार निम्नलिखित हैं :— (१) प्रो० रिजवे (Ridgeway)—नाटकों का उद्भव मृतात्माओं को प्रसन्न करने तथा उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए हुआ। (२) पर्व-वाद— विभिन्न पर्व पर खेले जाने वाले छोटे नाटकों से नाटकों का जन्म हुआ। (३) रासलीला आदि से नाटकों का उद्भव। (४) प्रो० हिलब्रैंड (Hillebrandt) और स्टेन कोनो (Sten Konow)—नाटकों का जन्म लोकप्रिय स्वाँगों से हुआ। (५) प्रो० पिशेल (Pischel) का मत है कि नाटकों का जन्म कठपुतलियों के नाच से हुआ है। (६) प्रो० ल्यूडर्स (Luders) —नाटकों का जन्म छायानाटकों अर्थात् छाया द्वारा दिखाए जाने वाले नाटकों से हुआ है। (७) प्रो० मैक्समूलर (Max Muller), प्रो० सिलवन लेवी (Sylvan Levi), वॉन श्रॉडर (Von Schroeder) और डा० हर्टल (Hertel) भारतीय नाटकों की उत्पत्ति ऋग्वेद के संवादसूक्तों से मानते हैं। (८) प्रो० वेबर (Weber) ने भारतीय नाटकों के उद्गम में यूनानी नाट्यकला के प्रभाव को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। परन्तु प्रो० सिलवन लेवी आदि विद्वानों ने इस मत का समूल खण्डन किया है।

पाश्चात्य विद्वान् भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि नाटकों का प्रारम्भ

सर्वप्रथम भारतवर्ष में ही हुआ है। मैक्समूलर, पिशेल, लेवी, मैकडानल और कीथ आदि ने इसी मन्तव्य को स्थिर किया है। रामायण और महाभारत में स्पष्ट रूप से नाटकों का उल्लेख प्राप्त होता है। रामायण के निम्नलिखित श्लोकों में नाटक, नट, नर्तक आदि का स्पष्ट उल्लेख है। नाटकों में रस-परिपाक होता है, इसका भी निर्देश किया गया है।

रसैः शृंगारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः।
वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम् ॥ रामायण १.४.६
नाराजके जनपदे प्रकृष्टनटनर्तकाः। रामा० २.६७. १५
वादयन्ति तथा शान्तिं लासयन्त्यपि चापरे।
नाटकान्यपरे प्राहुर्हास्यानि विविधानि च ॥ रामा० २.६६.४
शैलूषाश्च तथा स्त्रीभिर्यान्ति। रामा० २.८३.१५

इसी प्रकार महाभारत में भी सूत्रधार, नट, नर्तक आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।

इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा। महा० १.५१.१५
नाटका विविधाः काव्याः कथाख्यायिककारकाः। महा० २.१२.३६
आनर्ताश्च तथा सर्वे नटनर्तकगायकाः। महा० ३.१५.१३

महाभारत के विराट पर्व में रंगशाला का भी उल्लेख मिलता है। हरिवंश पुराण में उल्लेख मिलता है कि वज्रनाभ के नगर में कौबेररम्भाभिसार नाटक खेला गया था।

महर्षि पाणिनि का समय ईसा से कम से कम ७०० वर्ष पूर्व माना जाता है। पाणिनि ने अपने सूत्रों में दो नटसूत्रों अर्थात् नाट्यशास्त्रों का उल्लेख किया है। एक के रचयिता शिलालिन् थे और दूसरे के कृशाश्व।

पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः। पा० ४.३.११०
कर्मन्दकृशाश्वादिनिः। पा० ४.३.१११

इससे ज्ञात होता है कि महर्षि पाणिनि से बहुत समय पूर्व नाट्यशास्त्र अपनी पूर्ण उन्नतावस्था को प्राप्त हो चुका था। पाणिनि ने केवल अष्टाध्यायी की ही

रचना नहीं की, अपितु 'जाम्बवतीजय' नामक नाटक[१] भी लिखा था, जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है—

स्वस्ति पाणिनये तस्मै येन रुद्रप्रसादतः ।
आदौ व्याकरणं प्रोक्तं ततो जाम्बवतीजयम् ॥

महर्षि पतञ्जलि (३०० ई० पू०) ने अपने महाभाष्य (३.२.१११) में 'कंसवध' और 'बालिबन्ध' नामक नाटकों के खेले जाने का उल्लेख किया है। भारतीय नाट्य शास्त्र के प्रधान आचार्य भरत मुनि माने जाते हैं। उनका नाट्यसम्बन्धी 'नाट्यशास्त्र' नामक श्लोकबद्ध ग्रन्थ उपलब्ध हो चुका है। इसमें ३६ अध्याय हैं। लगभग ४०० पृष्ठ के इस विशाल ग्रन्थ में नाट्य सम्बन्धी सभी विषयों का बहुत विस्तृत और प्रामाणिक विवेचन है। इसका भी समय ३०० ई० पू० के लगभग माना जाता है। इससे ज्ञात होता है कि ई० पू० तृतीय या चतुर्थ शताब्दी में भारतीय नाट्यकला अपनी उन्नत अवस्था में थी।

भारतीय नाटककारों में सबसे प्राचीन रचनाएँ महाकवि भास की ही प्राप्त होती हैं। तत्पश्चात् महाकवि शूद्रक, कालिदास, अश्वघोष, हर्ष, भवभूति आदि के नाटक हैं, जिनके द्वारा भारतीय नाटकों का सम्मान सर्वत्र हो सका है।

(३) भास के नाटक

भास के सम्प्रति १३ नाटक उपलब्ध होते हैं। इनको प्राप्त करने का श्रेय स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री गणपति शास्त्री (त्रिवेन्द्रम्) को है। उन्हें सन्

---

१ 'जाम्बवतीजय' नाटक के कुछ प्रसिद्ध श्लोक ये हैं :—

गतेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्दं गर्जन्ति यत् प्रावृषि कालमेघाः ।
अपश्यती वत्समिवेन्दुबिम्बं तच्छर्वरी गौरिव हुंकरोति ॥१॥
उपोढरागेण विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिना निशामुखम् ।
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तथा पुरोऽपि रागात् गलितं न लक्षितम् ॥२॥
विलोक्य संगमे रागं पश्चिमाया विवस्वतः ।
कृतं कृष्णं मुखं प्राच्या न हि नार्यो विनेर्ष्यया ॥३॥

१६०६ में ये नाटक ट्रावनकोर राज्य में प्राप्त हुए थे। इन १३ नाटकों को चार भागों में बाँटा जा सकता है—(क) **उदयन की कथा से संबद्ध**—(१) प्रतिज्ञायौगन्धरायण, (२) स्वप्नवासवदत्तम् । (ख) **महाभारत पर आश्रित**—(३) ऊरुभंग (४) दूतवाक्य, (५) पंचरात्र, (६) बालचरित, (७) दूतघटोत्कच, (८) कर्णभार, (९) मध्यमव्यायोग । (ग) **रामायण पर आश्रित**—(१०) प्रतिमानाटक, (११) अभिषेक नाटक । (घ) **कल्पना-मूलक**—(१२) अविमारक, (१३) चारुदत्त । इन नाटकों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है :—

(१) **प्रतिज्ञायौगन्धरायण**—इस नाटक में चार अंक हैं। उदयन का वासवदत्ता से प्रेम और विवाह का वर्णन है। मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा उदयन को प्रद्योत के यहाँ से छुड़ाने तथा उसकी नीतिमत्ता का वर्णन है।

(२) **स्वप्नवासवदत्तम्**—इस नाटक में ६ अंक हैं। मन्त्री यौगन्धरायण का 'वासवदत्ता अग्नि में जल कर मर गई' इस प्रवाद को फैलाकर उदयन का पद्मावती से विवाह कराने तथा उदयन के अपहृत राज्य को पुनः प्राप्त कराने का वर्णन है।

(३) **ऊरुभंग**—यह एकांकी नाटक है। द्रौपदी के अपमान के प्रतिकार-स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन की जंघा को भंग करके उसको मारने का वर्णन है। संस्कृत साहित्य में यही एक दुःखान्त नाटक है।

(४) **दूतवाक्य**—यह भी एकांकी नाटक है। महाभारत के युद्ध से पूर्व श्रीकृष्ण का पांडवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर दुर्योधन के पास जाने और विफल-मनोरथ लौटने का वर्णन है।

(५) **पंचरात्र**—इस नाटक में ३ अंक हैं। यज्ञ की समाप्ति पर द्रोण ने दुर्योधन से दक्षिणा माँगी कि पांडवों को आधा राज्य दे दो। दुर्योधन ने कहा कि पाँच रात्रि के अन्दर यदि पांडव मिल जाएँगे तो ऐसा कर दूँगा। द्रोण के प्रयत्न से पांडवों का मिलना और आधा राज्य प्राप्त करना।

(६) **बालचरित**—इस नाटक में पाँच अंक हैं। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंस-वध तक की कथा वर्णित है।

(७) दूतघटोत्कच—यह एकांकी नाटक है। अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् श्रीकृष्ण का घटोत्कच को दूतरूप में धृतराष्ट्र के पास भेजना। दुर्योधन द्वारा उसका अपमान। दुर्योधन का कथन कि—'मैं अपने बाणों द्वारा इसका उत्तर दूँगा'

(८) कर्णभार—यह एकांकी नाटक है। इसमें कर्ण का ब्राह्मण-वेशधारी इन्द्र को कवच और कुंडल दान में देने का वर्णन है।

(९) मध्यमव्यायोग—यह भी एकांकी नाटक (व्यायोग) है। मध्यम पाडव भीम के द्वारा घटोत्कच के हाथ से एक ब्राह्मण के पुत्र को बचाना। भीम को पुत्र के दर्शन से आनन्द और हिडिम्बा से पुनः मिलना।

(१०) प्रतिमानाटक—इस नाटक में सात अंक हैं। रामायण की कथा का संक्षिप्त वर्णन है। इसकी विस्तृत कथा आगे दी गई है।

(११) अभिषेक नाटक—इस नाटक में ६ अंक हैं। इसमें रामायण के किष्किन्धा कांड से युद्धकांड तक की सारी कथा संक्षेप में दी है। अन्त में रावण-वध के पश्चात् राम के राज्याभिषेक का वर्णन है।

(१२) अविमारक—इस नाटक में ६ अंक हैं। इसमें राजकुमार अवि-मारक का राजा कुन्तिभोज की पुत्री राजकुमारी कुरंगी के साथ प्रणय-विवाह वर्णित है।

(१३) चारुदत्त—इस नाटक में चार अंक हैं। इसमें निर्धन किन्तु उदार-चित्त ब्राह्मण चारुदत्त और वसन्तसेना नाम की वेश्या के प्रणय-संबन्ध का वर्णन है। संभवतः भास की मृत्यु के कारण यह नाटक पूरा नहीं हो सका था। इसी नाटक के आधार पर शूद्रक ने अपना 'मृच्छकटिक' नाटक लिखा है और भास की कथा को पूर्ण किया है।

(४) इन नाटकों का रचयिता एक ही व्यक्ति है

इन १३ नाटकों में कहीं भी लेखक का नामोल्लेख नहीं है, अतः इन नाटकों के विषय में कई विवाद उत्पन्न हो गए हैं। साधारणतया सभी विद्वान् इन नाटकों को एक ही व्यक्ति की कृति मानते हैं। इसके लिए विशेषतया निम्न-लिखित युक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं :—

(१) इन सभी नाटकों में एक मुख्य विशेषता यह दृष्टिगोचर होती है कि ये नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं। सभी में रंगमंच संबन्धी प्रथम संकेत मिलता है कि—'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः'। अन्य संस्कृत-नाटक नान्दी से प्रारम्भ होते हैं। नान्दी रंगमंच पर आकर मंगलाचरण करता है, तत्पश्चात् सूत्रधार आता है।

(२) इन नाटकों में नाटक की भूमिका के लिए 'स्थापना' शब्द आया है। अन्य नाटकों में इसके लिए 'प्रस्तावना' शब्द आता है।

(३) इन नाटकों में 'प्ररोचना' का अभाव है अर्थात् प्रस्तावना में न लेखक का नाम है, न उनका परिचय और न नाटक का ही नामोल्लेख है। अन्य नाटकों में ग्रन्थ-नाम, कवि-नाम, उसका परिचय आदि प्रस्तावना में मिलता है।

(४) इन नाटकों में से पाँच में अर्थात् स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण, प्रतिमानाटक, पंचरात्र, और ऊरुभंग में प्रथम श्लोक में मुद्रालंकार प्राप्त होता है अर्थात् प्रथम श्लोक में नाटक के मुख्य पात्रों के नाम आ गए हैं।

(५) इन नाटकों में से अधिक में कुछ साधारण परिवर्तन के साथ 'भरत-वाक्य' (अन्तिम-श्लोक) प्रायः एक ही है—इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः'।

(६) इन सब नाटकों में भूमिका बहुत छोटी है। प्रारम्भिक संवाद के वाक्य भी प्रायः समान हैं। जैसे—'एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि,... .... इत्यादि।

(७) विभिन्न नाटकों में कई पात्रों को दुहराया गया है। जैसे प्रतिज्ञा० और दूतवाक्य में कंचुकी का नाम 'बादरायण'। चार नाटकों में प्रतिहारी का नाम 'विजया' है।

(८) कतिपय अप्रचलित छन्दों का प्रयोग मिलता है, जैसे सुवदना, दण्डक आदि। अनुष्टुप् छन्द बहुत अधिक मात्रा में है।

(९) बहुत से नाटकों में नाटकीय विशेषता 'पताकास्थान' (अर्थात् नाटकीय व्यङ्ग्य) का प्रयोग मिलता है।

(१०) इन सभी नाटकों में एक मुख्य समानता यह है कि इनकी भाषा और शैली समान है। कितने ही शब्दों, वाक्यों, श्लोकों और पदों को विभिन्न नाटकों में दुहराया गया है। वेही उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ विभिन्न नाटकों में मिलती हैं। डा० सूक्थंकर (Dr. sukthankar) ने अपनी पुस्तक "Studies in भास" में ऐसे समान वाक्यों आदि की पूरी सूची दी है और इनकी संख्या १२७ है। (नोट्स में ऐसे समान-वाक्यों का यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है।)

(११) इन नाटकों में अपाणिनीय एवं आर्ष प्रयोगों की संख्या बहुत है, जो पाणिनीय व्याकरण के अनुसार ठीक नहीं हैं। जैसे आप्रच्छ् का प्रयोग परस्मैपद में।

(१२) कुछ नाटक अन्योन्यसंबद्ध हैं। जैसे—स्वप्नवासवदत्त प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण का ही उत्तर-भाग समझना चाहिए। इसी प्रकार प्रतिमानाटक और अभिषेक नाटक हैं।

(१३) माता के नाम से युक्त पुत्र का नाम-निर्देश। जैसे राम के लिए कौसल्यामातः; लक्ष्मण के लिए सुमित्रामातः आदि।

उपर्युक्त कारणों से इन नाटकों का लेखक एक ही व्यक्ति माना जाता है।

(५) क्या इनका रचयिता भास है ?

इन नाटकों में कहीं भी लेखक का नाम-निर्देश नहीं है। अतः विद्वानों में इस विषय पर पर्याप्त विवाद है कि ये नाटक भास के ही हैं या अन्य किसी के। ये नाटक भास के ही हैं, इस पक्ष की समर्थक युक्तियाँ अधिक संगत हैं, अतः अधिक विद्वान् इसी पक्ष को ठीक मानते हैं। जो इन नाटकों को भास-कृत नहीं मानते, उनमें भी दो पक्ष हैं। कुछ इनको किसी अज्ञात कवि की रचना मानते हैं और कुछ इनको केरल-प्रदेश के चाक्यार नामक नटों द्वारा नाटक प्रदर्शनार्थ संकलनमात्र मानते हैं।

श्री गणपति शास्त्री ने सर्वप्रथम इन नाटकों को भास-कृत होने का उल्लेख किया था। इस पक्ष के विशेष समर्थक श्री शिवराम महादेव परांजपे, एम. आर. काले, कीथ, याकोबी, स्टेन कोनो, लैकाटे, थामस और श्री हिवारगाँवकर हैं।

इस पक्ष के विरोधियों में श्री पी. वी. काणे, रंगाचार्य रड्डी, डा० बार्नेट, पिशरोडी तथा भट्टनाथ शास्त्री हैं। डा० सुक्थंकर और प्रो० विन्टरनीत्स इन दोनों पक्षों के मध्यमार्ग के मानने वाले हैं। उनके मतानुसार ये नाटक भास-कृत हैं, परन्तु अभी तक प्राप्त युक्तियाँ पूर्णतया निर्णयात्मक नहीं हैं।

ये नाटक भास-कृत हैं, इस पक्ष की समर्थक युक्तियाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) महाकवि बाण (७ वीं शताब्दी) ने हर्षचरित के प्रारम्भ में (श्लोक १५) भास की प्रशंसा में निम्नलिखित श्लोक लिखा है और भास की मुख्य विशेषता बताई है कि उसके नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

भास के सभी नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं, नान्दी से नहीं। इसका पहले उल्लेख किया जा चुका है।

(२) दण्डिन् (छठी शताब्दी) ने अपने काव्यादर्श (२.२२६) में यह पंक्ति उद्धृत की है :—लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः'। यह श्लोक भास के बालचरित (१.१५) और चारुदत्त (१.१६) में मिलता है।

(३) वाक्पति (८०० ई०) ने अपनी पुस्तक 'गउडवह' में भास को 'जलणमित्त' (ज्वलन-मित्र) अर्थात् अग्नि का मित्र कहा है। भास के लिए यह विशेषता सार्थक है, क्योंकि उसके बहुत से नाटकों में अग्निदाह का दृश्य मिलता है।

भासम्मि जलणमित्ते कुंतीदेवे अ जस्स रघुआरे ।
सौबन्धवे अ बन्धम्मि हारीयन्द्रे अ आणन्दो ॥
(भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौबन्धवे च बन्धे हारीचन्द्रे च आनन्दः ॥)

(४) भामह (८०० ई०) ने अपने काव्यालंकार (अध्याय ४) में न्याय-विरोध उदाहरण में 'हतोऽनेन मम भ्राता मम पुत्रः पिता मम' यह पद उद्धृत किया है। यह पद प्राकृत रूप में प्रतिज्ञायौगन्धरायण के प्रथम अंक में मिलता है।

'अणेण मम भादा हदो, अणेण मम पिदा, अणेण मम सुदो।'

(५) वामन (८०० ई०) ने अपने 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' में भास के नाटकों से तीन उद्धरण दिए हैं। (क) अध्याय ३ अधिकरण ५ में व्याजोक्ति का उदाहरण—

शरच्छशांकगौरेण वाताविद्धेन भामिनि।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम॥

यह श्लोक स्वप्नवासवदत्त के अंक ४ में प्राप्त होता है।

(ख) 'यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्' वामन का यह उद्धरण भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण (अंक ४ श्लोक २) का उद्धरण है। (ग) वामन ने अध्याय १ अधिकरण ५ में निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है :—

यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां,
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः।
तास्वेव पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु
बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः॥

यह श्लोक भास के चारुदत्त नाटक (अंक १ श्लोक २) में मिलता है।

(६) राजशेखर (९ वीं शताब्दी) ने निम्नलिखित श्लोक में भास के नाटकों में से स्वप्नवासवदत्तम् को सर्वश्रेष्ठ माना है।

भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

(समालोचकों ने भास के सम्पूर्ण नाटकों की घोर परीक्षा की, परन्तु उनकी कठोर समालोचनारूपी अग्नि स्वप्नवासवदत्तनाटक को न जला सकी, अर्थात् स्वप्नवासवदत्त सर्वथा निर्दोष सिद्ध हुआ।)

राजशेखर के उपर्युक्त कथन से सिद्ध है कि स्वप्नवासवदत्त नाटक का रचयिता भास ही है। तेरहों नाटकों की भाषा, शैली आदि सर्वथा मिलती है। अतः इन तेरह नाटकों को भासकृत माना जाता है।

(७) अभिनवगुप्त (१०म शताब्दी) ने भरतनाट्यविवृति में स्वप्नवासवदत्त का उल्लेख किया है—

क्वचित् क्रीडा यथा स्वप्नवासवदत्तायाम् ।

स्वप्न० अंक २ में पद्मावती की क्रीडा (गेंद खेलने) का वर्णन है ।

(८) भोजदेव (११वीं शताब्दी) ने अपनी पुस्तक शृंगारप्रकाश में स्वप्नवासवदत्ता का निम्नलिखित रूप से निर्देश किया है :—

"स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः । पद्मावतीरहितं च तदवलोक्य तस्य एव शयनीये सुष्वाप । वासवदत्ता च स्वप्नवदस्वप्ने ददर्श । स्वप्नायमानश्च वासवदत्तामाबभाषे ।"

यह स्वप्न० के पंचम अंक में वर्णित घटना का यथार्थतः संक्षेप है ।

(९) रामचन्द्र और गुणचन्द्र (१२वीं शताब्दी) ने अपनी पुस्तक 'नाट्यदर्पण' में स्वप्नवासवदत्त को भासकृत बताते हुए उसका एक श्लोक भी उद्धृत किया है । इस श्लोक का ठीक स्थान चतुर्थ अंक में श्लोक ३ के बाद है ।

यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः ।

पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम् ।
नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥

उपर्युक्त कथनों में से बाण, राजशेखर, रामचन्द्र और गुणचन्द्र के कथन से स्पष्ट है कि स्वप्नवासवदत्ता नाटक भास की कृति है । ये नाटक अन्योन्य-सम्बद्ध हैं, इनकी भाषा-शैली आदि एक सी है । अतएव ये नाटक भास-रचित ही हैं ।

संस्कृत की सुभाषितावलियों में कुछ श्लोक भास के नाम से दिए गए हैं । उनमें से कुछ श्लोक इन नाटकों में उपलब्ध नहीं होते हैं । इसके आधार पर विरोधी विद्वान् भास को इन नाटकों का कर्ता नहीं मानते । उनकी युक्ति है कि यदि ये नाटक भास की कृति हैं तो इनमें ये श्लोक भी होने चाहिए । परन्तु उनकी यह युक्ति युक्तिसंगत नहीं है । भास के ये १३ ही नाटक हैं, ऐसा कोई नहीं कहता । अब तक केवल १३ नाटक प्राप्त हुए हैं । सम्भव है, उसके अन्य नाटक भी भविष्य में प्राप्त हों । जो श्लोक इन नाटकों में अप्राप्त हैं, वे श्लोक संभवतः

भास के अन्य नाटकों से लिए गए हैं। अतः भास-विरोधी पक्ष के समर्थक विद्वानों का आधार अगण्य सा ही है।

श्री ए० के० पिशरोडी और के० आर० पिशरोडी का यह कथन है कि केरल प्रदेश के उन्नत रंगमंच के लिए नवीन नाटकों की आवश्यकता होती थी। केरल में वंशपरम्परागत अभिनय का कार्य करने वाले चाक्यार नामक नट हैं। ये प्रसिद्ध नाटकों से कुछ दृश्यों का संकलन करके उनका अभिनय करते थे। इन नाटकों में से भी कुछ नाटकों का अभिनय इन्होंने किया है। इसी आधार पर पिशरोडी इन नाटकों को चाक्यारों की कृति मानते हैं। परन्तु उनका यह कथन निःसार है, क्योंकि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि चाक्यार लोगों ने इन नाटकों का संकलन किया है। पिशरोडी के कथन से केवल इतना ही पुष्ट होता है कि चाक्यार लोगों ने इन नाटकों के कुछ दृश्यों का अभिनय किया था। किसी दृश्य का अभिनय करना और उस नाटक का रचयिता होना यह दो विभिन्न बातें हैं। किसी भी नाट्यकार के नाटक का कोई भी अभिनय कर सकता है, परन्तु वह इतने से नाटककार नहीं हो जाएगा।

अतः उपर्युक्त युक्तियों के आधार पर इन १३ नाटकों को भास की ही कृति मानना उचित है।

(६) भास का समय

भास के समय के विषय में निश्चयपूर्वक अभी तक कुछ नहीं कहा जा सकता है। जो सामग्री अब तक उपलब्ध है, उसके आधार पर कुछ सामान्य निर्णय किया जा सकता है। यह निर्विवाद सिद्ध है कि भास महाकवि कालिदास से प्राचीन है। कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में भास का नाम बहुत आदरपूर्वक लिखा है—

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं परिषदो बहुमानः।

अतः भास का समय कालिदास के बाद नहीं माना जा सकता है। कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ई० पू० प्रायः निश्चित हो चुका है। कालिदास ने भास

आदि के लिए 'प्रथितयशसाम्' (सुविख्यात) शब्द का प्रयोग किया है, अतः सुविख्यात होने के लिए कम से कम एक शताब्दी का समय कालिदास से पूर्व मानना चाहिए। इस प्रकार भास का समय ई० पू० द्वितीय शताब्दी के बाद नहीं माना जा सकता है।

भास के नाटकों का परिचय प्राप्त होने से पूर्व शूद्रक का मृच्छकटिक नाटक ही संस्कृत साहित्य का सर्वप्रथम नाटक माना जाता था, परन्तु भास के नाटकों के प्राप्त होने पर तुलनात्मक आलोचना करने पर यह ज्ञात होता है कि शूद्रक का मृच्छकटिक भास के चारुदत्त नाटक का परिवर्धित और परिपूर्ण रूप है। भास का चारुदत्त नाटक अपूर्ण है। सम्भवतः भास की मृत्यु के कारण वह नाटक पूर्ण न हो सका था। शूद्रक ने उसी को परिवर्धित और पूर्ण किया है। अतः भास का समय शूद्रक से भी पूर्ववर्ती मानना उचित है। विन्सेन्ट ए० स्मिथ के मतानुसार शूद्रक २२० ई० पू० में गद्दी पर बैठा और १९७ ई० पू० में उसका स्वर्गवास हुआ। इस प्रकार मृच्छकटिक का रचना-काल तृतीय शताब्दी ई० पू० सिद्ध होता है। अतः भास का समय ई० पू० तृतीय शताब्दी के पूर्वार्ध के बाद नहीं रक्खा जा सकता है।

कौटिल्य (चाणक्य) ने अपने अर्थशास्त्र में भास के निम्नलिखित श्लोक को आप्तवाक्य के रूप में उद्धृत किया है—

नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं, सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद्यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥
कौटिल्य अर्थशास्त्र १०.३

इस श्लोक के पहले 'अपीह श्लोकौ भवतः' इस कथन से स्पष्ट है कि यह श्लोक किसी अन्य कवि का उद्धृत किया गया है। यह श्लोक भास के प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण नाटक के चतुर्थ अंक का द्वितीय श्लोक है। चाणक्य चन्द्रगुप्त का महामन्त्री था। चन्द्रगुप्त ३२१ ई० पू० में राजगद्दी पर बैठा था। भास का समय उससे कम से कम ५० वर्ष पूर्व मानना उचित है। इस प्रकार ३७० ई० पू० से बाद भास का समय नहीं माना जा सकता है।

भास ने प्रतिमानाटक के अंक ५ में कुछ ग्रन्थों का उल्लेख किया है। रावण

का कथन है कि मैंने ये ग्रन्थ पढ़े हैं। इसमें बृहस्पति के अर्थशास्त्र का उल्लेख है, किन्तु कौटिल्य के अर्थशास्त्र का नहीं।

रावण:—भोः! काश्यपगोत्रोऽस्मि। सांगोपांगं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च।

इस आधार पर भी विद्वानों का विचार है कि भास कौटिल्य से पहले हुआ था। यदि वह कौटिल्य के बाद में हुआ होता तो कौटिल्य के अर्थशास्त्र का भी वह नाम-निर्देश करता। यह युक्ति बहुत उपयुक्त नहीं है, क्योंकि ऐसा करने में काल-दोष आ जाता। ये वचन रावण के हैं, अतः रावण के मुँह से रावण से पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों का ही उल्लेख किया जा सकता था, अन्य का नहीं।

महाभारत शान्तिपर्व (पृ० ५६) से ज्ञात होता है कि बृहस्पति अर्थशास्त्र के रचयिता थे। कौटिल्य ने भी बृहस्पति को अर्थशास्त्र का प्राचीन आचार्य माना है और अर्थशास्त्र के प्रारम्भ में उन्हें नमस्कार किया है।

ओं नमश्शुक्रबृहस्पतिभ्याम्।

कुछ विद्वानों ने रावण के कथन में 'मेधातिथेर्न्यायशास्त्रम्' (मेधातिथि का न्यायशास्त्र) कथन से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भास ने यहाँ पर मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि (दशम शताब्दी) का उल्लेख किया है। अतः भास का समय १० वीं शताब्दी के बाद का है। उनका यह कथन अनर्गल प्रलाप ही समझना चाहिए, क्योंकि यहाँ पर न्यायशास्त्र का रचयिता मेधातिथि कहा गया है, न कि मनुस्मृति का टीकाकार। रावण के मुँह से १० वीं शताब्दी के व्यक्ति का उल्लेख सर्वथा हास्यास्पद होता।

भास के नाटकों में से दो नाटक स्वप्नवासवदत्त और प्रतिज्ञायौगन्धरायण ऐतिहासिक घटना पर निर्भर हैं, अतः भास की उपरि-सीमा भी इनके द्वारा निर्धारित की जा सकती है। भास ने इन नाटकों में तीन राजाओं का उल्लेख किया है:—(१) कौशाम्बी के राजा उदयन, (२) उज्जयिनी के राजा प्रद्योत, (३) मगध के राजा दर्शक। इन तीन राजाओं का उल्लेख पुराणों, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में भी मिलता है। विष्णुपुराण और वायु-पुराण की वंशावली के अनु-

सार उदयन और प्रद्योत समकालीन थे। बौद्ध और जैन ग्रन्थों के अनुसार प्रद्योत और अजातशत्रु ये दोनों बुद्ध और महावीर के समकालीन थे। (Rhys david's Buddhist India पृ० ३)। वायु-पुराण आदि से ज्ञात होता है कि दर्शक अजातशत्रु का उत्तराधिकारी था।

भास ने प्रद्योत, दर्शक और उदयन को समकालीन चित्रित किया है। विन्सेन्ट ए. स्मिथ के मतानुसार दर्शक और उसके उत्तराधिकारी का राज्यकाल ४७५ ई० पू० से ४५० ई० पू० है। (Early History of india पृ० ३८-३६)। अतः यह ज्ञात होता है कि प्रद्योत, दर्शक और उदयन ये तीनों ४७५ ई० पू० से ४५० ई० पू० के मध्य में समकालीन रहे हैं अतः भास का समय ४५० ई० पू० से पहले भी नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार भास का समय ४५० ई० पू० के पश्चात् और ३७० ई० पू० से पूर्व सिद्ध होता है।

यहाँ पर यह भी विचारणीय है कि भास ने अपने बहुत से नाटकों में भरत-वाक्य प्रायः एक ही दिया है, और सबमें 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' (हमारा श्रेष्ठ राजा पृथ्वी पर शासन करे) यह अंश दिया है, यह 'राजसिंह' शब्द किसके लिए है ? ऐसा ज्ञात होता है कि भास उपर्युक्त तीनों राजाओं में से किसी का राजकवि था, अतः उसने उनका उल्लेख विशेष रूप से किया है। इन तीनों राजाओं में से भी भास उदयन का आश्रित राज-कवि प्रतीत होता है, क्योंकि उसने अपने आश्रयदाता को अमर बनाने के लिये स्वप्नवासवदत्ता और प्रतिज्ञायौगन्धरायण इन दोनों नाटकों की रचना की है और स्वप्नवासवदत्ता में अपनी विद्वत्ता तथा योग्यता का पूर्ण परिचय दिया है। ये दोनों नाटक समकालीन प्रत्यक्षदर्शी की तरह लिखे गए हैं। यौगन्धरायण के प्रयत्न से उदयन को पुनः राज्य प्राप्त होने की ओर भरत-वाक्यों में विशेष संकेत मिलता है। ऊरुभंग के भरत-वाक्य में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि 'गां पातु नो नरपतिः शमितारिपक्षः।' इसमें 'शमितारिपक्षः' विशेष अभिप्राय से है। यही भाव अन्य भरत-वाक्यों से भी प्रकट होता है। "भवन्त्वरजसो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु। इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः।" इस प्रकार भास को उदयन का समकालीन समझना उचित है। अतः भास का समय ४५० ई० पू० के लगभग ज्ञात होता है।

(७) भास की नाट्यकला

अब तक जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसकी दृष्टि से भास ही संस्कृत का सर्वप्रथम नाटककार कहाने योग्य है। भास की नाटकीय कुशलता का परिचय उसके नाटकों की संख्या और विषय की विभिन्नता से प्राप्त होता है। भास के नाटकों में जो विशेषताएँ सर्वप्रथम लक्षित होती हैं, वे हैं—भाषा की सरलता, अकृत्रिम शैली, वर्णनों में यथार्थता, नाटकीय पात्रों के चरित्र-चित्रण में व्यक्ति-वैचित्र्य और नाटकीय गुण प्रवाह, सजीवता और शक्तिमत्ता की सत्ता। भास के नाटकों में यद्यपि नाट्य-शास्त्र के नियमों का पूर्णतः पालन नहीं हुआ है, तथापि उसके नाटक अत्यन्त रोचक और रंगमंच की दृष्टि से विशेष सफल हुए हैं। भास के नाटकों में उसकी मौलिकता और कल्पना-वैचित्र्य विशेष रूप से प्राप्त होता है। रामायण के आधार पर प्रतिमानाटक और अभिषेक नाटक की रचना हुई है। इनमें से प्रतिमानाटक में भास ने अपनी मौलिकता और कल्पनाशक्ति का अच्छा परिचय दिया है, सामान्य आख्यानक में भी विशेष रोचकता ला दी है। महाभारत के आधार पर लिखे गए नाटकों में भास की कल्पना-शक्ति और रमणीयता अधिक स्पष्ट है। इन नाटकों में वीर रस का संचार अधिक है। वीर रस को व्यक्त करने में भास अन्य कवियों से बहुत आगे है। वीर रस के अतिरिक्त प्रेम, कारुण्य एवं विस्मय के दृश्य बड़ी सफलतापूर्वक प्रस्तुत किए गए हैं। संस्कृत के अधिकांश नाटकों में यह त्रुटि है कि वे अभिनय के लिए पूर्णतया उपयुक्त नहीं हैं, परन्तु भास के सभी नाटक अभिनय की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त हैं। बाद के नाटकों में प्राप्त होने वाली कृत्रिमता इन नाटकों में नहीं है। इनमें लम्बे-लम्बे समास, अलंकारों की अधिकता नहीं है। संस्कृत में सर्वप्रथम एकांकी नाटक लिखने का श्रेय भास को ही है। भास के नाटकों में ५ एकांकी नाटक हैं :—ऊरुभंग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार और मध्यमव्यायोग।

नाटकों की सफलता के लिए उनमें ६ गुणों की सत्ता आवश्यक होती है—(१) घटना की एकता, (२) घटना की सार्थकता, (३) घटनाओं का घात-प्रतिघात तथा गति, (४) चरित्र-चित्रण में व्यक्ति-वैचित्र्य, (५ स्वाभाविकता, (६) कवित्व। ये सभी गुण भास के नाटकों में उपलब्ध होते हैं। प्रत्येक नाटक की कथावस्तु को इस प्रकार प्रभावोत्पादक घटनाओं से विकसित

किया गया है कि उनमें स्वाभाविकता और गतिशीलता के साथ ही साथ रस-परिपाक भी समुचित रूप से होता गया है।

भास ने अपने नाटकों में 'पताकास्थान' (घटना-साहचर्य या नाटकीय व्यंग्य) का बहुत सुन्दर समन्वय किया है और इसके द्वारा वे आश्चर्यभावना को उत्तेजित कर देते हैं। जैसे प्रतिज्ञायौगन्धरायण (अंक २) में वासवदत्ता के माता और पिता विचार कर रहे हैं कि 'कौन सा व्यक्ति इनमें वासवदत्ता का पति होने योग्य है?' इतने में सहसा कंचुकी प्रविष्ट होकर कहता है 'वत्सराज' अर्थात् उदयन। वह समाचार कहना चाहता था कि वत्सराज बन्दी बनाकर लाया गया है। इसी प्रकार अभिषेक नाटक (अंक ४) में रावण सीता से कहता है 'कौन अब तुम्हारी रक्षा कर सकता है?' इतने में एक राक्षस आकर कहता है 'राम'। इस प्रकार पताकास्थान के द्वारा नाटकों में विशेष रोचकता आ गई है।

भास ने अपने कई नाटकों में प्रथम श्लोक में मुद्रा अलंकार का प्रयोग किया है अर्थात् नाटक के प्रमुख पात्रों का नाम भी मंगलाचरण के श्लोक में दे दिया है। भास की एक विशेषता यह भी है कि वह कहीं-कहीं नाटकीय पात्रों का संवाद श्लोक में ही कराता है। एक ही श्लोक के एक पाद या उपपाद को एक पात्र बोलता है और दूसरे को दूसरा। इस प्रकार एक श्लोक में ही संवाद पूरा हो जाता है। (उदाहरणार्थ देखो प्रतिमानाटक अंक ३ श्लोक १; पंचरात्र अंक १ श्लोक ५५; ऊरुभंग श्लोक २१)। भास के नाटकों में उत्तर-प्रत्युत्तर एवं संवाद बहुत संक्षिप्त और प्रभावोत्पादक हैं। वह अनावश्यक विवरण और विस्तार का सर्वथा परित्याग करता है। उसके नाटकों में शिष्ट और परिष्कृत हास्य एवं व्यंग्य भी प्रचुर मात्रा में मिलता है।

भास चरित्र-चित्रण में भी बहुत कुशल है। उसके प्रत्येक पात्र में अपना व्यक्तित्व है। प्रत्येक पात्र में कुछ पृथक् विशेषताएँ हैं और उनका विकास भी बहुत व्यवस्थित रूप में हुआ है। नाटकों में पुरुषपात्रों की अधिकता है और वीर रस का अधिक समावेश है, अतः यह ज्ञात होता है कि वे वीर-काल से संबद्ध हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वह एक कुशल और सफल नाटककार है। उसके नाटक रंगमंच की आवश्यकताओं और मर्यादाओं को लक्ष्य में रखकर लिखे गए हैं, अतः रंगमंच के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं।

(८) भास की शैली

भास की शैली में शैली के तीनों मुख्य गुण ओज, प्रसाद और माधुर्य हैं। उसमें बाद के नाटकों में प्राप्त होने वाली क्लिष्ट कल्पना, समासों की अधिकता, क्लिष्टता, अस्वाभाविकता आदि दोष नहीं हैं। भाषा में सरसता है, सरलता है, सुबोधता है, स्वाभाविकता है और प्रवाह है। भास की शैली पर रामायण का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा है अतएव उसमें सरलता और सरसता है। अलंकारों के प्रयोग में भी भास ने पर्याप्त संयम का उपयोग किया है। विशेष रूप से प्रचलित अलंकार उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि का ही प्रयोग किया है। अनुप्रास और यमक अलंकार का यथास्थान प्रयोग भास को रुचिकर है, जैसे—(१) हा वत्स राम जगतां नयनाभिराम ! (प्रतिमा० २.४)। (२) हा क्वासौ सर्वजनहृदयनयनाभिरामो रामः (प्रतिमा० अंक २) (३) त्रैलोक्यविद्रावणं रावणं ।गुणगणविभूषणविभीषण......शरद्विमलगगनचन्द्राभिरामो रामः। (प्रतिमा० अंक ७)।

यदि कालिदास प्रकृति के कवि और रमणीयता के प्रमाण हैं तो भास मानवीय मनोवृत्तियों के वर्णन में आदर्श हैं। भास का मनोवैज्ञानिक विवेचन बहुत उच्चकोटि का है। जैसे—

(१) दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः, स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं, प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम्॥
(स्वप्नवासवदत्त ४.६)

(२) प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते। (स्वप्न १.७)

(३) शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा। (प्रतिमा० १. १२)

(४) अद्य खल्ववगच्छामि पित्रा मे दुष्करं कृतम्।
कीदृशस्तनयस्नेहो भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः॥ (प्रतिमा० ४.१२)

भास भारतीय भावों के कवि हैं। भास के नाटकों में भारतीय भावों का सुन्दर समन्वय मिलता है। जैसे पितृभक्ति, पातिव्रत्य, भ्रातृप्रेम, क्षमाशीलता, त्याग आदि का आदर्श उपस्थित करना।

(१) अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा...भर्तृनाथा हि नार्यः ।
(प्रतिमा० १ श्लोक २५)

(२) स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो विस्मयः । (प्रतिमा १.५)

(३) कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् । (प्रतिमा० ६.६)

(४) अयुक्तं परपुरुषसंकीर्तनं श्रोतुम् । (स्वप्न० अंक ३)

(५) नहि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि । (स्वप्न० १. ११)

भास की सरलता और रम्यता ने उसके नाटकों को बहुत लोकप्रिय बनाया है। स्वप्नवासवदत्ता इस प्रकार के उदाहरणों से परिपूर्ण है। प्रतिमा में भी यही विशेषता दृष्टिगोचर होती है। जैसे,

(१) गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः ।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः ।। (प्रतिमा० ३.२४)

(२) अहो बलमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो जवः ।
राम इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत् (प्रतिमा० ५.१४)

(३) रामं वा शरणमुपेहि लक्ष्मणं वा, स्वर्गस्थं दशरथमेव वा नरेन्द्रम् ।
किं वा स्यात् कुपुरुषसंश्रितैर्वचोभिर्न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ।।
(प्रतिमा० ५.१८)

(४) गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ।। (स्वप्न० ४.६)

रस और अवसर के अनुकूल ही भास की शैली में परिवर्तन प्राप्त होता है। जटायु पर क्रुद्ध रावण का कथन है कि—

(१) मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिंशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः ।
रुधिरैरार्द्रगात्रं त्वां नयामि यमसादनम् ।। (प्रतिमा० ५. २२)

रावण के क्रोध के साथ उसकी भाषा में क्रोध और क्लिष्टता लक्षित होती है।

(२) रावण और जटायु के युद्ध का वर्णन—
पक्षाभ्यां परिभूय वीर्यविषयं द्वन्द्वं प्रतिव्यूहते...(प्रतिमा० ६.३)

विस्तृत विवरण के स्थान पर संक्षेप भास को बहुत रुचिकर है। अतएव प्रतिमानाटक में राम-लक्ष्मण आदि का पिता के लिए क्या सन्देश है, यह पूछने पर भास का कथन है कि वे दुःखावेग के कारण कुछ न कह सके।

कमप्यर्थं चिरं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः।
बाष्पस्तम्भितकण्ठत्वादनुक्त्वैव वनं गताः॥ (प्रतिमा० २.१७)

भास भावजगत् का मूर्तवत् चित्रण करने में बहुत पटु है। दशरथ सीता की सुरक्षा के लिए चिन्तित हैं और वात्सल्य भाव से वे नामोच्चारण में भी सीता का नाम राम और लक्ष्मण के बीच में चाहते हैं, जिससे वह सुरक्षित रहे।

अथ कः क्रमः ? राजा—रामो वैदेही लक्ष्मण इत्यभिदीयताम्।
रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठत्वत्रापि मैथिली।
बहुदोषाण्यरण्यानि सनाथैषा भविष्यति॥ (प्रतिमा० २.१५)

भास का व्यंग्यप्रयोग असाधारण और बहुत मार्मिक होता है। कैकेयी के ऊपर कितना कठोर व्यंग्य किया है—

अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः।
वने व्याघ्री च कैकेयी त्वया किं न कृतं त्रयम्॥ (प्रतिमा० २.८)

भास अपने वर्णनों में वस्तुस्थिति को आँखों के सामने साक्षात् चित्रित कर देता है, जिससे पाठक एवं दर्शक मुग्ध और तल्लीन हो जाता है।

(१) राज्याभिषेक का वर्णन—
छत्रं सव्यजनं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितं...(प्रतिमा० १.३)

(२) क्रुद्ध लक्ष्मण का कथन—
यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया...(प्रतिमा० १.१८)

(३) भरत का कैकेयी को धिक्कारना और उसके कुकृत्यों का वर्णन—
वयमयशसा चीरेणार्यो नृपो गृहमृत्युना...(प्रतिमा० ३.१८)

भास ने स्वभावोक्ति अलंकार का भी सुन्दर प्रयोग किया है।

(१) भ्रमति सलिलं वृक्षावर्ते सफेनमवस्थितं...(प्रतिमा० ५.२)
(२) द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया...(प्रतिमा० ३.२)

(३) खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः...(स्वप्न० १.१६)

(४) ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च...(स्वप्न० ४.२)

भास ने उपमा अलंकार का प्रयोग बड़ी चतुरता से किया है। कई स्थानों पर उपमाओं के लिए उपमान प्रकृति से लिए हैं। जैसे,

(१) सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः ।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥ (प्रतिमा० २.७)

(२) निशाचरेन्द्रेण निशार्धचारिणा, मृगीव सीता परिभूय नीयते।
(प्रतिमा० ६.१)

(३) विचेष्टमानेव भुजंगमांगना, विधूयमानेव च पुष्पितालता ।
प्रसह्य पापेन दशाननेन सा, तपोवनात् सिद्धिरिवापनीयते ॥
(प्रतिमा० ६.२)

(४) वज्राग्रैरिव दार्यमाणविषमाच्छैलाच्छिला पाठ्यते। (प्रतिमा० ६.३)

(५) नागेन्द्रभग्नवावृक्ष इवावसन्नः। (प्रतिमा० ६.४)

प्रकृति के साथ तादात्म्य अनुभव करने की जो भारतीय विशेषता वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि के काव्य में प्राप्त होती है, वही विशेषता भास के नाटकों में भी प्राप्त होती है। राम सीता से कहते हैं—

आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च,
विन्ध्यं वनं तव सखीर्दयिता लताश्च। (प्रतिमा० ५.११)

भास ने यथास्थान अपनी शास्त्रीय विद्वत्ता का भी सुन्दर परिचय दिया है। महर्षि पतंजलि द्वारा महाभाष्य में उद्धृत 'मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह' के आशय को लेकर भास ने रावण के मुख से कहलाया है—

(१) स्वरपरिपदहीनां हव्यधारामिवाहं,
जनकनृपसुतां तां हर्तुकामः प्रयामि ॥ (प्रतिमा० ५.७)

(२) हरामि रुदतीं बालाममन्त्रोक्तामिवाहुतिम्। (प्रतिमा० ५.१५)

व्याकरण-विषयक विशेष ज्ञान का परिचय कुछ श्लोकों में विशेष रूप से दिया है। जैसे,—घनः स्पष्टो धीरः समदवृषभस्निग्धमधुरः,
कलः कण्ठे वक्षस्यमुपहतसंचाररभसः। इत्यादि। (प्रतिमा० ४.७)

कोमल भावों की अभिव्यक्ति में भाषा में भी असाधारण कोमलता दृष्टिगोचर होती है। राम कहते हैं :—

(१) योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि, स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः।
कष्टं। वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं, समं लताभिः कठिनीकरोति ॥
(प्रतिमा० ५.३)

(२) फलानि दृष्ट्वा दर्भेषु स्वहस्तरचितानि नः।
स्मारितो वनवासं च तातस्तत्रापि रोदिति ॥ (प्रतिमा० ५.६)

(३) कष्टं भो नृपतेर्धुरं सुमहतीमेकः समुत्कर्षति। (प्रतिमा० ५.१)

(४) वक्षः प्रसारय कवाटपुटप्रमाणं०। (प्रतिमा० ७.७)

अपने भावों को अतिसंक्षेप में, किन्तु प्रभावोत्पादक रूप में रखने में भास असाधारण कुशल हैं। भरत ने राम के प्रति अपने सारे भाव इस छोटे से श्लोक में व्यक्त कर दिए हैं।

निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः।
भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति ॥ (प्रतिमा० ४.५)

संक्षेप के साथ ही भास ने नाटकीय घटनाचक्र को भी यथास्थान नाटकीय कुशलता के साथ परिवर्तित किया है। इस विषय में सुमन्त्र की यह उक्ति बहुत सारगर्भित है—

सुग्रीवो भ्रंशितो राज्याद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन वालिना।
हृतदारो वसन् शैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः ॥ (प्रतिमा० ६.१०)

भास विभिन्न रसों के वर्णन में भी सिद्धहस्त है। प्रत्येक रस को उसने बहुत शिष्ट और परिष्कृत रूप में रक्खा है। स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारक, चारुदत्त आदि में शृंगार रस का विशेष परिपाक हुआ है। ऊरुभंग, दूतघटोत्कच, दूतवाक्य में वीर रस का विशेष उत्कर्ष दीखता है। प्रतिमानाटक, मध्यमव्यायोग में करुण रस का विशेष प्रवाह है। विभिन्न नाटकों में विदूषक की उक्तियाँ परिष्कृत हास्य का सुन्दर समन्वय करती हैं। इस प्रकार भास का दृष्टिकोण एकांगी नहीं है। पाँच एकांकी नाटकों की रचना के द्वारा वह विश्व का सर्वप्रथम एकांकी-नाटककार है और एकांकी नाटकों का जन्म-

दाता है। 'चारुदत्त' जैसा नाटक आधुनिक प्रगतिशील नाट्यकारों के लिये भी आदर्श है।

यद्यपि भास से पूर्व भी कतिपय नाटक लिखे जा चुके थे, परन्तु नाटकों की वास्तविक स्थापना का श्रेय भास को ही है। अतएव वह संस्कृत साहित्य का सर्वप्रथम नाटककार कहलाने के योग्य है। नाटक के प्रत्येक अङ्ग पर उसकी दृष्टि गई है। संस्कृत साहित्य में सबसे अधिक नाटक उसी के प्राप्त होते हैं। भास असाधारण कवि था, इसका परिचय उसके प्रत्येक नाटक से प्राप्त होता है। भास ने इन १३ नाटकों में १०९२ श्लोकों का प्रयोग किया है और विभिन्न २४ छन्दों का प्रयोग किया गया है। अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, उपजाति और मालिनी उसके विशेष प्रिय छन्द हैं। उसने इन छन्दों में क्रमशः ४३७, १७६, ९२, ९१, ७२ श्लोक लिखे हैं। उसने कतिपय कम प्रचलित छन्दों का भी प्रयोग किया है, जैसे वैश्वदेवी, सुवदना, दंडक, वैतालीय आदि।

इतना ही नहीं, भास ने वृत्त-कल्पना में अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता का भी परिचय दिया है। उसने सर्वथा नवीन छन्दों का भी प्रयोग किया है। प्रतिमानाटक अंक ३ के श्लोक ३ और ४ में उसने प्रभा और स्रग्विणी छन्दों के मिश्रण से सर्वथा नवीन प्रकार का उपजाति छन्द प्रस्तुत किया है।

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः

स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापितः। इत्यादि। (प्रतिमा० ३.३-४)

भास की लोकोक्तियाँ भी बहुत मार्मिक और मनोहर हैं। जैसे—'अनतिक्रमणीयो हि विधिः', 'आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति', कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः', 'न हि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि', 'सर्वजनमनोभिरामं खलु सौभाग्यं नाम', 'स्त्रीस्वभावस्तु कातरः' आदि (स्वप्नवासवदत्ता से)। (प्रतिमानाटक में प्राप्त सूक्तियों के लिए देखो परिशिष्ट ४)।

भास अत्यन्त प्राचीन नाटककार है, अतः उसकी रचनाओं में कुछ न्यूनताएँ भी रह गई हैं। कालिदास के नाटकों में जो प्रौढ़ता प्राप्त होती है, वह भास के नाटकों में उतनी उत्कृष्टता के साथ नहीं है। भास की संक्षेप-

पूर्ण शैली के कारण कतिपय स्थलों पर उसका भाव अस्पष्ट हो गया है। जैसे, प्रतिमानाटक (अंक ३ वक्तव्य १०८)—'कैकेयी—जात शुल्कलुब्धा ननु प्रष्टव्या' का वास्तविक अभिप्राय स्पष्ट नहीं है। भास ने कतिपय अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे—अभिसरी, शिरःस्थानानि, निर्योगात्, प्राणिधर्मम्, अनुयात्रम्, क्रियामाधुर्यम्, न्यंगभूतः, महाकच्छः प्रतिव्यूहते आदि। भास ने कितने ही ऐसे प्रयोग किये हैं, जो पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से सिद्ध नहीं हो सकते या अशुद्ध हैं। कितने ही स्थलों पर परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद है और आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद। कुछ स्थलों पर शब्दों और धातुओं के दिए गए रूप पाणिनीय नहीं हैं। कुछ स्थानों पर सन्धियाँ भी पाणिनि व्याकरण के अनुकूल नहीं हैं। प्रतिमानाटक में इस प्रकार के उपलब्ध प्रयोगों की पूरी सूची परिशिष्ट ५ में दी है तथा व्याकरण-संबन्धी विचार के लिए उन स्थलों की टिप्पणी देखिए।

इस विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि भास के नाटकों में प्रयुक्त अप्रचलित शब्द उसके समय में प्रचलित होंगे। भास के समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी, अतः उसने जनसाधारण में प्रयुक्त कुछ शब्दों को भी इन नाटकों में ले लिया है। व्याकरण-संबन्धी त्रुटियों के लिए संभव है कि भास के समय तक पाणिनि का व्याकरण पूर्णतया प्रतिष्ठित और मान्य नहीं था तथा उस समय अपाणिनीय प्रयोग भी चालू थे। छन्द-भंग के निवारणार्थ तथा मानवसुलभ-स्खलन के कारण भी इतने नाटकों में कुछ व्याकरण-संबन्धी त्रुटियाँ रह जाना सर्वथा संभव है। कुछ व्याकरण-संबन्धी त्रुटियाँ या न्यूनताएँ प्रायः सभी कवियों और नाटककारों में प्राप्य हैं। भास की उपर्युक्त न्यूनताएँ उसके विस्तृत साहित्य के देखते हुए नगण्य हैं।

भास की विशेषताओं को देखते हुए यह स्पष्ट है कि यदि कालिदास जैसे महाकवि ने उसको विशेष संमान के साथ स्मरण किया है तो वह सर्वथा उचित ही है। कालिदास भी बहुत अंशों में भास का ऋणी है। अभिषेक नाटक में अशोकवन के वर्णन में तथा शाकुन्तल के अंक ४ में लताओं को कण्व के कथन में बहुत साम्य है। कालिदास ने भास के द्वारा प्राप्त नाट्यकला में और परिष्कार किया है। इस प्रकार भास परवर्ती नाटककारों के लिए आदर्श रहा है।

(९) प्रतिमानाटक की संक्षिप्त कथा

अंक १

महाराज दशरथ बहुत वृद्ध हो गए हैं, अतः वे ज्येष्ठ पुत्र राम का राज्याभिषेक करना चाहते हैं। राज्याभिषेक की सब सामग्री एकत्र हो चुकी है। राज्याभिषेक का कार्य प्रारम्भ हो गया है। इतने में कैकेयी ने आकर महाराज के कान में कुछ कहा और राज्याभिषेक का कार्य स्थगित हो गया। राम इससे बहुत प्रसन्न हैं कि पिता ही राजा हैं और मैं राजकार्य की चिन्ताओं से मुक्त हुआ। सीता भी इससे प्रसन्न हैं कि महाराज दशरथ ही राजा हैं। कैकेयी ने विवाह के समय दहेज के रूप में प्रतिज्ञात राज्य भरत के लिए माँगा और राम को १४ वर्ष के लिए वनवास की माँग की। एक अवदातिका नाम की दासी के द्वारा लाए हुए वल्कल को सीता हँसी में पहन चुकी थीं और अपने आभूषण भी उतार चुकी थीं। राम ने भी वल्कल पहने। पिता के आदेशानुसार राम वन में सहर्ष जाने को उद्यत हुए। सीता और लक्ष्मण ने साथ वन जाने का घोर अनुरोध किया। फलस्वरूप राम सीता और लक्ष्मण के साथ वन के लिए चल देते हैं।

अंक २

राम के वियोग में महाराज दशरथ बहुत व्याकुल हैं। अत्यधिक दुःख के कारण वे अचेत हो गए हैं और राम-सीता-लक्ष्मण का स्मरण करते हुए प्राण-त्याग करते हैं।

अंक ३

भरत मामा के घर से १२ वर्ष बाद अयोध्या को लौट रहे हैं। उनके हृदय में पिता आदि से मिलने की बड़ी उत्सुकता है। 'कुछ क्षण के बाद नगर में प्रवेश करना', ऐसा गुरुओं का आदेश पाकर वे विश्राम करने के लिए समीप में विद्यमान 'प्रतिमागृह' में पहुँचते हैं। वहाँ प्रतिमाओं को प्रणाम करते हैं। इतने में पुजारी ने आकर बताया कि वे देवमूर्तियाँ नहीं हैं, अपितु इक्ष्वाकु-वंशी राजाओं की मूर्तियाँ हैं। वहाँ भरत ने राजा दशरथ की भी मूर्ति

देखी। भरत ने पुजारी से पूछा कि 'यहाँ पर जीवितों की भी मूर्तियाँ हैं?' पुजारी ने कहा 'नहीं, यहाँ पर दिवंगत राजाओं की ही मूर्तियाँ हैं।' इस प्रकार भरत पुजारी से पिता के स्वर्गवास का तथा राम आदि के वन जाने का समाचार जानकर मूर्छित हो जाते हैं। इसी समय कौसल्या सुमित्रा कैकेयी और सुमन्त्र प्रतिमागृह को देखने के लिए पहुँचते हैं। पुजारी के द्वारा भरत का परिचय प्राप्तकर माताएँ भरत को होश में लाती हैं। भरत कौसल्या और सुमित्रा को प्रणाम करते हैं, परन्तु कैकेयी को नहीं। कैकेयी को घृणित कार्य के लिए बहुत फटकारते हैं। राज्याभिषेक के प्रस्ताव को ठुकरा कर बाहर ही बाहर राम से मिलने के लिए वन को चल देते हैं।

अंक ४

वन में भरत का राम से बहुत ही करुणापूर्ण मेल होता है। भरत आग्रह करते हैं कि उन्हें साथ में रहने की स्वीकृति मिले, परन्तु राम के बहुत समझाने और बाध्य करने पर वे इस शर्त पर अयोध्या लौटने को उद्यत होते हैं कि राम अपनी पादुकाएँ दें, जिनको वह राजा के स्थान पर प्रतिष्ठित करें तथा १४ वर्ष के वनवास के बाद वे पुनः अपना राज्य स्वीकार करें। दोनों बातों के लिए राम की स्वीकृति लेकर वे अयोध्या को लौटते हैं।

अंक ५

वनवास के १३ वर्ष व्यतीत हो गये हैं। दशरथ के वार्षिक श्राद्ध का दिन कल है। राम सीता के साथ उसी विषय पर विचार-विनिमय कर रहे हैं कि किस प्रकार पिता का श्राद्ध विशेष आयोजनपूर्वक हो सके। इतने में ही ब्राह्मण-वेशधारी रावण का प्रवेश होता है। वह अपना परिचय देता है तथा अपनी योग्यता का भी विस्तृत विवरण देता है। रावण के मुँह से यह सुन कर कि वह प्रचेतस् के श्राद्धकल्प का भी विद्वान् है, राम ने उससे पूछा कि किस प्रकार श्राद्ध किया जाए, जिससे पिता पूर्णतया प्रसन्न हो सकें। राम के विशेष आग्रह पर रावण ने बताया कि हिमालय की सबसे ऊँची चोटी पर 'काञ्चनपार्श्व' (सुनहरी बगल वाले) मृग रहते हैं, उनसे श्राद्ध करने पर विशेष लाभ होगा। राम हिमालय पर जाने का विचार करते हैं। इतने में रावण ने अपनी माया से

कांचनपार्श्व मृग वहाँ प्रकट कर दिया। राम उसका पीछा करते हुए दूर निकल जाते हैं। लक्ष्मण कुलपति की अगवानी के लिए दूर गए हुए हैं। इसी बीच में रावण बलात् सीता को हरण करके ले जाता है। सीता की रक्षा के लिए जटायु रावण से युद्ध करता है।

अंक ६

रावण से युद्ध करते हुए जटायु का स्वर्गवास। भरत ने सुमन्त्र को राम आदि का समाचार लाने के लिए भेजा था। सुमन्त्र ने लौटकर भरत को सूचना दी कि सीता का अपहरण रावण ने किया है और राम ऋष्यमूक पर्वत पर चले गए हैं। सीता-हरण से शोकातुर भरत कैकेयी को सर्वथा दोषी बताते हैं और उसे फटकारते हैं। कैकेयी ने भरत को बताया कि दशरथ को शाप प्राप्त था और राम के वनवास के अतिरिक्त उससे उद्धार का और कोई प्रकार नहीं था। १४ दिन के स्थान पर व्याकुलता के कारण १४ वर्ष मुँह से निकल गया था। भरत कैकेयी के समाधान से सन्तुष्ट होते हैं और राम की सहायता के लिए सेना की तैयारी करते हैं।

अंक ७

उधर राम वानरों की सहायता से रावण का वध करके विभीषण को राज्य देकर, लौटते हुए जनस्थान के पुराने आश्रम में पहुँचते हैं। इधर भरत सेना के सहित तथा माताओं के साथ जनस्थान में पहुँचते हैं। वहीं पर सबका मेल होता है। वनवास के १४ वर्ष पूर्ण हो गए हैं। भरत राम को अब राज्यग्रहण की स्मृति दिलाते हैं। वहीं पर राम का राज्याभिषेक होता है और तत्पश्चात् पुष्पक विमान पर बैठ कर सब अयोध्या पहुँचते हैं।

(१०) प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

राम

राम के चरित्र-चित्रण में भास ने विशेष कौशल प्रकट नहीं किया है। वाल्मीकि-रामायण आदि में राम का जैसा चरित्र प्राप्त होता है, प्रायः वही विशेषताएँ यहाँ पर भी लक्षित होती हैं। राम में असाधारण त्याग, राज्य के

प्रति सर्वथा मोह का अभाव, पितृ-भक्ति, मातृ-भक्ति, भ्रातृ-प्रेम, उदार-हृदयता, निरभिमानता, धैर्य, सहनशीलता, विनय और क्षमाशीलता आदि सभी गुण हैं। राज्य न मिलने से राम को किंचिन्मात्र भी दुःख नहीं है। वे प्रसन्न हैं कि पिता ही महाराज हैं और वह बालक के तुल्य ही हैं। 'दिष्ट्या स एवास्मि रामः, महाराज एव महाराजः' (प्रतिमा० १ वक्तव्य ५७)। पिता की आज्ञा का पालन करना अपना जन्मसिद्ध कर्तव्य समझते हैं। 'स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो विस्मयः' (प्रतिमा० १.५)। राज्याभिषेक रुक जाने पर भी वे माता कैकेयी की निन्दा सुनने के लिए उद्यत नहीं हैं। वे कैकेयी को निर्दोष समझते हैं। दहेज के रूप में माँगा हुआ राज्य माँगना पाप नहीं समझते। 'अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि' (प्र० १ वक्तव्य १०८)। क्रुद्ध लक्ष्मण को शान्त करते हुए भरत के प्रति असाधारण भ्रातृ-प्रेम प्रकट करते हैं और लक्ष्मण से कहते हैं कि भरत की सुरक्षा करो।

भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत् समम्।
यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा स राजा परिपाल्यताम्॥ (प्रतिमा० १.२०)

वन में भरत से मिलकर उनके हर्ष की सीमा नहीं रहती। भरत को आदेश देते हैं कि कुल की सत्यवादिता की रक्षा करना। 'कुलं च नः सत्यधनं ब्रवीमि ते' (प्रतिमा० ४.२०)। सीता के द्वारा भरत को रोकने का आग्रह करने पर भी वे अपनी कर्तव्यनिष्ठा तथा नीतिज्ञता का विशेष परिचय देते हुए भरत को कहते हैं कि 'राज्य की क्षणभर भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए' अतः तुरन्त अयोध्या लौट जाओ। 'राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम्' (प्रतिमा० ४ वक्तव्य ६५)। ब्राह्मणवेशधारी रावण को वास्तविक अतिथि समझकर उस पर अविश्वास नहीं करते हैं।

भास ने राम को मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में ही प्रस्तुत किया है, अवतार के रूप में नहीं। राम के चरित्रचित्रण में कुछ त्रुटियाँ भी रह गई हैं। (१) सीता को वल्कल पहने देखकर राम का भी तुरन्त वल्कल पहन लेना, (२) वन जाते समय पिता से न मिलना और उनकी उपेक्षा करना। 'गतेष्वस्मासु राजा नः शिरःस्थानानि पश्यतु' (प्रतिमा० १. ३१) (३) रावण के मायामृग को देखकर तुरन्त उसे मारने के लिए चल पड़ना।

सीता

सीता के चरित्र-चित्रण में भास विशेष सफल हुए हैं। उन्होंने सीता को एक आदर्श नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। सीता में सरलता, सौम्यता, विनय, पातिव्रत्य, सहृदयता, उदारचित्तता, कष्टसहिष्णुता, गुरुभक्ति आदि गुण हैं। राम के अभिषेक के रुकने पर सीता खिन्न नहीं होती हैं, क्योंकि महाराज दशरथ ही महाराज हैं। श्वशुर का चिरजीवी होना उनको अधिक अभीष्ट है। 'प्रियं मे महाराज एव महाराजः, आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः' (प्रतिमा० १. वक्तव्य ७६)। राम के बहुत निषेध करने पर भी वन में साथ ही जाती हैं। 'भर्तृनाथा हि नार्यः' (प्रतिमा १.२५)। राज्य न मिलने पर लक्ष्मण के क्रोध को अनुचित समझती हैं और अपनी कोमल-हृदयता का परिचय देती हैं। 'आर्यपुत्र, रोदितव्ये काले सौमित्रिणा धनुर्गृहीतम्' (प्रतिमा० १ वक्तव्य ११४)। रावण के द्वारा अपहरण के समय वह अपनी रक्षा के लिए सभी प्रयत्न करती हैं, रावण को शाप भी देती हैं तथा अपने चरित्र की रक्षा करती हैं। सीता की हार्दिक कोमलता, सरलता, सुशीलता आदि सर्वत्र ही दृष्टिगोचर होती है। वे अपने पति की अनन्य सेविका हैं। श्वशुर आदि के प्रति उनकी अपार श्रद्धा है। कठोर से कठोर विपत्ति में वह सती साध्वी स्त्री के तुल्य पति की सहधर्मिणी हैं।

भरत

भास ने भरत के चरित्र-चित्रण में विशेष नाटकीय कुशलता प्रकट की है। भरत भ्रातृप्रेम, त्याग, उदारता, सहिष्णुता आदि गुणों के आदर्श हैं। तृतीय अंक में सर्वप्रथम भरत का दर्शन होता है और वहीं से वे सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। पितृदर्शन की उत्कण्ठा उनको कष्ट दे रही है। प्रतिमागृह में पिता की मृत्यु का समाचार ज्ञात होते ही वे अचेत हो जाते हैं। राम आदि के वनवास का दोषी अपने आपको समझकर अत्यन्त खिन्न और उद्विग्न हैं। कैकेयी को उसके कुकृत्यों के लिए दोषी बताते हैं और उनको प्रणाम करने से निषेध करते हैं। साथ ही विश्व के लिए एक नवीन मर्यादा की स्थापना करते हैं कि 'अपने पति से विश्वासघात करने वाली माता माता नहीं रहेगी'। (लोकेऽपूर्वं स्थापयाम्येष धर्मं भर्तृद्रोहादस्तु माताऽप्यमाता, (प्रतिमा० ३.१६)। वे अभिषेक को ठुकरा कर सीधे राम के

पास वन में पहुँचते हैं। अपने ऊपर आए हुए कलंक को दूर करते हैं। वे राम की सेवा में वन में रहना चाहते हैं। राम उनको सर्वथा निष्पाप बताते हैं। 'निष्कल्मषात्मा भवान्' (प्रतिमा० ४.२३)। राम के विशेष अनुरोध पर वे दो शर्तों पर अयोध्या लौटना स्वीकार करते हैं। (१) चौदह वर्ष बाद अपने राज्य को स्वीकार करें, (२) अपनी दोनों पादुकाएँ दें, उन्हें राज्य पर प्रतिष्ठित करके राज्य का कार्यभार स्थानापन्न व्यक्ति के तुल्य सँभालूँगा। सीता के अपहरण का समाचार जानकर उनके दुःख की सीमा नहीं रही। वे कैकेयी को दोष देते हैं। कैकेयी अन्धमुनि का शाप बताकर राम का वनवास और दशरथ की मृत्यु बताती हैं। अपने को निर्दोष कहती हैं। भास ने भरत के त्याग और भ्रातृप्रेम का बहुत ही कुशलता से वर्णन किया है।

लक्ष्मण

भास ने लक्ष्मण का भी चरित्र-चित्रण अच्छा किया है। लक्ष्मण सजीवता की मूर्ति हैं। उसमें जीवन है, उत्साह है, कष्टसहिष्णुता है, भ्रातृप्रेम है, वीरता है, धीरता है और विश्व को कम्पित कर देने वाला क्रोध है। वह यह सहन नहीं कर सकता कि अन्यायपूर्वक राम के अधिकार का अपहरण किया जाए और दशरथ कैकेयी के वश में होकर राम का राज्य भरत को दे दें। कैकेयी के अपराध के लिए वे स्त्रीमात्र का अस्तित्व समाप्त करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। 'अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो, युवति-रहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम्' (प्रतिमा० १.१८)। वे राम को संमति देते हैं कि अपने बल का प्रयोग करके राज्य प्राप्त किया जाए 'धनुः स्पृश मा दया' (प्रतिमा० १-१८)। 'क्रमप्राप्ते हृते राज्ये०' (प्रतिमा० १.१९)। एक ओर उग्र क्रोध है तो दूसरी ओर अनुपम भ्रातृभक्ति है। राम के वन-गमन का निश्चय जानकर वे भी वन जाने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। अपने आपको सुख-दुःख में सर्वत्र राम का साथी बताकर राम से स्वीकृति प्राप्त करते हैं। 'निर्योगाद् ..चीरे खल्वसि मत्सरी' (प्रतिमा० १.२६)। उत्कृष्ट भ्रातृप्रेम को व्यक्त करते हुए सीता से कहते हैं कि मुझे भी राम के चरणों की सेवा का अवसर दिया जाए। 'गुरोर्मे पादशुश्रूषां०' (प्रतिमा० १.२७)। राम और सीता की स्वीकृति पाकर उनके साथ वन में जाते हैं।

सीता के अपहरण के समय लक्ष्मण का आश्रम में न होना बताकर भास ने उनके चरित्र को और सुन्दर बना दिया है।

कैकेयी

भास ने कैकेयी के चरित्र-चित्रण में कतिपय नवीनताओं का समावेश किया है। कैकेयी के चरित्र पर सबसे बड़ा लांछन था कि उसने राज्य के लोभ से राम को वनवास दिलाया। भास ने इस लांछन को दूर करने का प्रयत्न किया है। प्रारम्भ में भरत उसे दोषी सिद्ध करते हैं, परन्तु अन्त में उसने अन्धमुनि के शाप का उल्लेख करके स्पष्ट किया है कि अन्धमुनि का शाप दशरथ को था कि तुम भी पुत्र के वियोग में मरोगे। यह दो प्रकार से ही सम्भव था, (१) राम की मृत्यु से या (२) राम के वनवास से। कैकेयी ने इसमें से बाद वाले को सह्य समझा, अतः शाप की पूर्णता के लिए राम को वनवास दिया। भास ने यह भी प्रकट किया है कि राम के वनवास के लिए कैकेयी वसिष्ठ, वामदेव आदि ऋषियों की भी अनुमति ले चुकी थी। कैकेयी का यह कथन सन्तोषजनक नहीं है कि घबड़ाहट के कारण उसके मुह से १४ दिन के स्थान पर १४ वर्ष निकल गए थे। यदि वह १४ वर्ष भूल से कह भी गई थी तो उसका संशोधन उसी समय कर देना चाहिए था। भास ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कैकेयी ने राज्य के लोभ से राम को वन नहीं भेजा था। भरत कैकेयी के समाधान से सन्तुष्ट होते हैं और उसे दोषी कहने के लिए क्षमा माँगते हैं। सप्तम अंक में कैकेयी स्वयं राम के अभिषेक के लिए कहती है और राम के अभिषेक से उसे हार्दिक प्रसन्नता है।

नाटकीय पात्र

क्रम संख्या	नाम	जिस अंक में आते हैं	परिचय
	पुरुषपात्र		
१	सूत्रधार	१	नाटक का प्रारम्भकर्ता। रंगमंच का अध्यक्ष।
२	राजा	२	अयोध्या के राजा, महाराज दशरथ।
३	राम	१,४,५,७	नाटक के नायक। दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र।
४	लक्ष्मण	१,४,७	सुमित्रा के पुत्र। राम के अनुज।
५	भरत	३,४,६,७	कैकेयी के पुत्र। राम के अनुज।
६	शत्रुघ्न	७	सुमित्रा के पुत्र। राम के अनुज।
७	सुमन्त्र	२,३,४,६	दशरथ के मन्त्री।
८	रावण	५	लंका के राजा। राम के शत्रु।
९	कांचुकीय	१,२,६,७	बालाकि नामक कंचुकी। अंतःपुर में जाने वाला वृद्ध भृत्य।
१०	सूत	३,४	भरत का सारथि।
११	देवकुलिक	३	प्रतिमागृह का पुजारी।
१२	भट	३	एक राजकीय अधिकारी।
१३	सुधाकार	३	चूने की पुताई करने वाला।
१४	वृद्धतापसौ	६	रावण-जटायु-युद्ध के दर्शक २ वृद्ध तपस्वी।
१५	तापस	७	एक तपस्वी।
१६	नन्दिलक	७	तपस्वियों का एक सेवक।

नाटकीय पात्र

क्रम संख्या	नाम	जिस अंक में आते हैं	परिचय
	स्त्रीपात्र		
१७	नटी	१	सूत्रधार की पत्नी।
१८	सीता	१,४,५,७	जनक की पुत्री, राम की पत्नी। नाटक की नायिका।
१९	कौसल्या	२,३,७	राम की माता।
२०	सुमित्रा	२,३,७	लक्ष्मण की माता।
२१	कैकेयी	३,६,७	भरत की माता।
२२	अवदातिका	१	सीता की सखी।
२३	चेटी	१	सीता की दासी।
२४	प्रतिहारी	१,२	द्वारपालिका।
२५	विजया	४,६	कैकेयी की दासी।
२६	नन्दिनिका	४	कैकेयी की दासी।
२७	तापसी	२,७	एक तपस्विनी।

॥ ओम् ॥

महाकविश्रीभासप्रणीतं

प्रतिमानाटकम्

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

(नान्दी-पाठ के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश)

(Then enters the Sūtradhāra after the recitation of the Nandi)

Notes

(१) प्रतिमा-नाटकम्—प्रतिमाप्रधानं प्रतिमालक्षणं वा नाटकं प्रतिमा-नाटकम्। प्रतिमा (दशरथ की मूर्ति) जिस नाटक में मुख्य रूप से है या प्रतिमा के आधार पर जिस नाटक का नाम रक्खा गया है। भास ने नाटक का नाम प्रतिमानाटक तृतीय अंक में वर्णित घटना के आधार पर रक्खा है। भरत मामा के घर से लौटने पर सर्वप्रथम महाराज दशरथ के देहान्त का समाचार प्रतिमागृह में रक्खी हुई दशरथ की प्रतिमा से जानते हैं। अतएव शोकातुर हो कर वे अपनी माता कैकेयी पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और अयोध्या नगरी में प्रवेश न करके सीधे राम के पास वन में चले गये।

(२) नान्द्यन्ते—नान्द्या अन्ते इति। षष्ठी तत्पुरुष समास। नान्दी-पाठ के अनन्तर।

(३) नान्दी—(क) नन्द् + घञ् + ङीप्। 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' (पा० ६, ३, १०९) से धातु के अ को वृद्धि। नन्दन्ति देवा अत्र इति नान्दी। नन्द् (टुनदि) समृद्धौ (१, परस्मैपदी), (प्रसन्न होना, सन्तुष्ट होना) जहाँ पर देवता आनन्दित होते हैं, वह नान्दी है। (ख) नन्दयतीति नन्दः, पचाद्यच्। नन्द् + अच्। नन्द एव नान्दः, 'प्रज्ञादिभ्यश्च' (पा० ५, ४, ३८) से अण्

नन्द + अण् = नान्द । 'टिड्ढाणञ्०' (पा० ४, १, १५) से ङीप् । नान्द + ङीप = नान्दी ।

(४) नान्दी का लक्षण—(क) नान्दी शब्द का अर्थ नगाड़ा (ढोल) होता है । जैसा कि वैजयन्ती कोषकार का कथन है कि—"दुन्दुभिस्त्वानको भेरी भम्भा नासूश्च नान्द्यपि" इति वैजयन्ती । यहाँ पर नान्दी शब्द अन्य वाद्यों का भी संकेत करता है । नाटकीय कथा के प्रारम्भ में नगाड़ा आदि वाद्यों के बजने के पश्चात् सूत्रधार का प्रवेश होता है । (ख) साहित्यदर्पणकार श्री विश्वनाथ ने षष्ठ परिच्छेद में नान्दी की आवश्यकता और नान्दी का लक्षण करते हुए कहा है कि—

यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये ।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥
प्रत्याहारादिकान्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि ।
तथाप्यवश्यं कर्त्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये ॥

(सा० दर्पण ६, २२—२३)

नाटकीय कथा के प्रारम्भ से पहले रङ्गभूमि के विघ्नों की शान्ति के लिए नट लोग जो कुछ करते हैं, उसका पारिभाषिक नाम 'पूर्वरङ्ग' है । (भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के पंचम अध्याय में पूर्वरङ्ग के) प्रत्याहार आदि बहुत से (२२) अंग बताये गये हैं । फिर भी विघ्नों की शान्ति के लिए नान्दी पाठ अवश्य करना चाहिए ।

(ग) आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता । (सा० दर्पण ६, २४)

देवगण, ब्राह्मणों और राजादिकों की आशीर्वाद-युक्त स्तुति इसके द्वारा की जाती है, अतएव इसे 'नान्दी' कहते हैं ।

(घ) देवद्विजनृपादीनामाशीर्वचनपूर्विका ।
नन्दन्ति देवता यस्यां तस्मान्नान्दीति कीर्तिता ।

देवगण, द्विजों और नृप आदि की आशीर्वाद-युक्त स्तुति इसके द्वारा की जाती है तथा देवता इससे प्रसन्न होते हैं, अतः इसे 'नान्दी' कहते हैं ।

(ङ) नाट्यप्रदीपकार ने 'नान्दी' का लक्षण किया है—

नन्दन्ति काव्यानि कवीन्द्रवर्गाः, कुशीलवाः पारिषदाश्च सन्तः ।
यस्मादलं सज्जनसिन्धुहंसी, तस्मादियं सा कथितेह नान्दी ॥

इसके द्वारा काव्य शोभायुक्त होते हैं। कवीन्द्रवर्ग, नट, सभासद् वर्ग तथा सज्जन इससे आनन्दित होते हैं। यह सज्जन रूपी सागर की हंसी है। अतः इसे नान्दी कहते हैं। (५) नान्दी पाठ के विस्तार और उसमें समन्वित होने वाले तथ्यों का निर्देश निम्नलिखित रूप से किया गया है—

अष्टभिर्दशभिर्वापि नान्दी द्वादशभिः पदैः ।
आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् ॥

नान्दी-पाठ में आठ, दस या बारह पद होने चाहिये। इसमें आशीर्वाद, नमस्कार या कथा-वस्तु का निर्देश सम्मिलित होना चाहिये। इस श्लोक के पद शब्द का अर्थ विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से किया है। (क) सुबन्त या तिङन्त पद (ख) श्लोक का एक पाद या चरण (ग) एक अवान्तर वाक्य। प्राचीन नाटककारों ने एक या दो श्लोक ही नान्दीपाठ के रूप में रक्खे हैं। बाद के नाटककारों ने तीन या चार श्लोक भी नान्दी के रूप में लिखे हैं। साधारणतया एक से चार श्लोक तक नान्दी पाठ में रक्खे जा सकते हैं (६) संस्कृत के नाटकों में सूत्रधार के रंगमंच पर आने से पूर्व नान्दी पाठ किसी अन्य अभिनेता या अभिनेत्री द्वारा किया जाता है। रंगमंच पर नान्दी पाठ के बाद सूत्रधार प्रविष्ट होकर नाटक का प्रारम्भ करता है। परन्तु सभी संस्कृत नाट्यकारों से भास के नाटकों की विलक्षणता यह है कि भास के नाटकों में नान्दी रंगमंच पर न होकर नेपथ्य में (पर्दे के पीछे) होता है। नाटकों का प्रारम्भ सूत्रधार से होता है, नान्दी से नहीं। अतएव महाकवि बाण ने हर्षचरित के प्रारम्भ में भास कवि की विशेषता बताते हुए कहा है कि—

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

अर्थात् भास के नाटकों का प्रारम्भ सूत्रधार से होता है। परन्तु यहाँ पर यह स्मरणीय है कि भास के नाटकों में नान्दी (मंगलाचरण आदि) का अभाव है, यह न समझना चाहिये। भास के नाटकों के प्रायः सभी प्रथम श्लोक नान्दी (मंगलाचरण आदि) के रूप में हैं।

१—सूत्रधारः—

सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः, सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च।
यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या, विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम् ॥१॥

१—अन्वय—यः सीताभवः सुमन्त्रतुष्टः सहलक्ष्मणः च देव्या रावणार्यप्रतिमः विभीषणात्मा भरतः च (सः) सुग्रीवरामः अनुसर्गं पातु।

सूत्रधार—सीता के सुखकारी, अच्छी मन्त्रणाओं से सन्तुष्ट होने वाले (अथवा पिता के सारथि सुमन्त्र से सन्तुष्ट), लक्ष्मण के सहचर (अथवा दुःखादि के सहन करने वाले लक्ष्मण जिसके भ्राता हैं), देवी (सीता) के (अपहरण के) कारण रावण के शत्रु तथा अनुपम, (शत्रुओं के लिए) भयंकर-स्वरूप-युक्त, (संसार के) भरण करने वाले (अथवा अभिन्नहृदय विभीषण के अनुरक्त), सुन्दर ग्रीवा वाले राम प्रत्येक सृष्टि में (आप लोगों की) रक्षा करें। (१)

Sūtradhāra – May Rama, the supporter (of the universe), protect (you) in every life : Rama, who was the source of Sita's welfare, who was satisfied with good counsels (or his father's charioteer called Sumantra), who was accompanied by Lakshmana, who became the enemy of Ravana on account of his wife (being carried off by him), and who was peerless, who displayed a fierce nature (or who identified his interest with that of Bibhisana). (1)

Notes

१—(१) (क) सूत्रधारः—सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयतीति, सूत्र + धृ + णिच् + अण्। कर्मण्यण् से अण् प्रत्यय।

(ख) 'सूत्रधार' उसको कहते हैं जो 'सूत्र' अर्थात् रंगमंच पर घटित होने वाली घटना को नियमित रूप से चलाता है। वह रंगमंच का अधिष्ठाता होता है। वह प्रस्तावना या स्थापना में मुख्य रूप से उपस्थित होकर नाटक का प्रारम्भ करता है और नाटकीय पात्रों को आवश्यक निर्देश देता है।

(ग) सूत्रधार का लक्षण—

नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम् ।
रंगदैवतपूजाकृत् सूत्रधार इति स्मृतः ॥

नाट्य की उत्पत्ति के साथ उसके अनुष्ठान को 'सूत्र' कहते हैं। (उसको धारण करने वाले, तथा) रंगमंच के देवता की पूजा करने वाले को 'सूत्रधार' कहते हैं।

'संगीतसर्वस्व'-कार ने सूत्रधार का लक्षण किया है :—

वर्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते ।
रंगभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते ॥

नाटक में होने वाली घटना को सर्वप्रथम रंगमंच पर आकर जो सूचित करता है उसे 'सूत्रधार' कहते हैं।

आसूचयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुनः ।
रंगप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इहोदितः ॥

नाटक, कवि और कथावस्तु के गुणों को (नान्दी द्वारा) सूचित करने वाला 'सूत्रधार' कहा जाता है। उसे रंगमंच को सजाने की कला में प्रवीण होना चाहिये।

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥

नाटक के उपकरणों आदि को सूत्र कहते हैं, उसको धारण करने वाला 'सूत्रधार' होता है।

(२) सीताभवः—(क) सीतायाः भवः क्षेमः, लक्षणया तद्धेतुः (षष्ठी तत्पुरुष समास) सीता के कल्याणकारी। (ख) सीतायाः भवः भद्राप्तिः यस्मात् सः, (बहुव्रीहि) सीता का कल्याण (रावण से रक्षा द्वारा) जिससे हुआ। (ग) भवः—भवति अस्मात्, भू + अप्। ऋदोरप् से अप् प्रत्यय। भवः क्षेमे च संसारे सत्तायां प्राप्तिजन्मनोः इति मेदिनी। भवो भद्राप्तिसत्तयोः इत्यजयः।

(३) सुमन्त्रतुष्टः—(क) सुमन्त्रेण तुष्टः प्रीतः (तृतीया तत्पुरुष), सुमन्त्र नामक दशरथ के सारथि से सन्तुष्ट। (ख) सु शोभनेन मन्त्रेण

तुष्टः (तृ० त०); अच्छी मन्त्रणाओं से सन्तुष्ट होने वाले अथवा सुन्दर वेद-मन्त्रों के पाठ से सन्तुष्ट होने वाले। (ग) सुमन्त्रेण तुष्टः। सुमन्त्र नामक मन्त्री से सन्तुष्ट। दशरथ के ८ मन्त्री थे। उनमें एक सुमन्त्र भी थे जैसा कि वाल्मीकीय रामायण के निम्न श्लोकों से ज्ञात होता है :—

अष्टौ बभूवुर्वीरस्य तस्यामात्या यशस्विनः।
धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः॥
अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित्॥
[रामायण बालकांड ८, २-३]

(घ) तुष्टः—तुष् + क्त कर्तरि। (४) सुग्रीवरामः—(क) सु शोभना ग्रीवा यस्य सः (बहुव्रीहि)। सुग्रीव अर्थात् जिसकी ग्रीवा सुन्दर है। सुग्रीव-श्चासौ रामः (कर्मधारय समास); सुन्दर ग्रीवा वाले राम। (ख) रामः—रम् + घञ् (कर्तरि), रमन्ते (योगिनः) अस्मिन्निति। जिसमें (योगिजन) रमण करते हैं। (५) सहलक्ष्मणः—(क) लक्ष्मणेन सहितः, लक्ष्मण के साथ। (ख) सहः रामार्थं दुःखानां सहनकर्त्ता लक्ष्मणः भ्राता यस्य सः (बहुव्रीहि), सहनशील लक्ष्मण जिसके भाई हैं। (६) रावणार्यप्रतिमः—(क) रावणस्य अरिः शत्रुः (षष्ठी तत्पुरुष) सीता के अपहरण के कारण रावण के शत्रु। अप्रतिमः—न विद्यते प्रतिमा सादृश्यं यस्य सः अप्रतिमः, अनुपमः (बहुव्रीहि)। संसार में जिसकी कोई तुलना नहीं है, अर्थात् अद्वितीय। रावणारिश्चासौ अप्रतिमश्च (कर्मधारय) रावण के नाशक तथा अद्वितीय। (ख) रावणारि शब्द के द्वारा निर्देश किया गया है कि राम ने सीतापहरण रूपी अपराध के कारण असाधारण बली रावण का नाश किया है। 'अप्रतिम' शब्द में प्रतिमा शब्द का ह्रस्वान्त रूप 'प्रतिमा' अर्थात् दशरथ की प्रतिमा (जिसका तृतीय अंक में वर्णन है) की ओर संकेत करता है और 'प्रतिमानाटक' का भी संक्षेप में निर्देश है। (७) देव्या—(क) देव्या सीतया सहित इति शेषः। देवी सीता के सहित राम। (ख) देव्या हेतुभूतया, तस्या हरणात् रावणारिः। ('हेतौ' सूत्र से हेतु अर्थ में तृतीया) सीता के हरण के कारण रावण के शत्रु। यहाँ पर द्वितीय अर्थ अधिक उपयुक्त है।

(८) भरतः—(क) भरणं भरः, भृ+अप् ('ऋदोरप्' से अप् प्रत्यय) या भृ+घ ('पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण से घ प्रत्यय)। रक्षा करना। भरं तनोति, भरतः, भर+तन्—ड=संसार के रक्षक। (ख) श्री गणपति शास्त्री ने 'विभीषणात्माभरतः' को एक पद मानकर इसका अर्थ किया है कि—'विभीषणे तन्नाम्नि रावणभ्रातरि आत्मामे, आत्मसमसुखदुःखे आत्ममित्रे रतः अनुरक्तः। भवतीति शेषः। 'विभीषणे आत्माभे रतः' (तत्पुरुष) आत्माभ अर्थात् अभिन्नहृदय विभीषण में अनुरक्त। (ग) 'विभीषणात्मा भरतः' को पृथक् दो पद मानना अधिक उपयुक्त है, क्योंकि एकपद मानने पर अर्थ में क्लिष्ट कल्पना करनी पड़ती है। 'देव्या' में हेतु अर्थ में तृतीया मानने पर 'विभीषणात्मा' का अर्थ और स्पष्ट हो जाता है राम स्वभावतः भयंकर नहीं हैं, परन्तु पापी, अपराधी, एवं सीता के अपहरणकर्त्ता रावण के लिए वे वस्तुतः भयंकर थे, अतएव उन्होंने उसका निर्दयतापूर्वक नाश किया है। (घ) 'देव्या' में यदि सहित अर्थ में तृतीया मानते हैं तो 'देव्या अविभीषणात्मा' छेद करके इसका यह अर्थ किया जा सकता है कि सीता के साथ अभयंकर स्वभाव वाले राम। (९) अनुसर्गम्—सर्गे सर्गे अर्थात् जन्मनि जन्मनि। वीप्सा अर्थ में अव्ययीभाव समास। सृज्+घञ्=सर्ग। प्रत्येक सृष्टि में।

'सर्गः स्वभावनिर्मोक्षनिश्चयाध्यायसृष्टिषु' इत्यमरः।

(१०) भास का यह श्लोक नान्दी-पाठ का कार्य पूर्ण करता है, क्योंकि नान्दी के विषय में कहा गया है कि 'आशीर्नमस्क्रियावस्तु-निर्देशो वापि तन्मुखम्' अर्थात् नान्दी में आशीर्वाद, इष्टदेवता को नमस्कार एवं कथा-वस्तु का निर्देश होना चाहिये। यहाँ पर 'पातु' (तुम्हारी रक्षा करे) के द्वारा आशीर्वाद का भाव व्यक्त किया गया है। पूरा श्लोक इष्टदेव राम की स्तुति के रूप में है। साथ ही श्लेष अलंकार का आश्रय लेकर इस श्लोक में नाटकीय कथा का तथा उसके मुख्य पात्रों का उल्लेख या निर्देश किया गया है। यथा—रावण द्वारा सीता का अपहरण, राम के द्वारा रावण का वध, रावण जैसे अपराधी पर राम का भयंकर क्रोध, सीता की सुरक्षा, सुमन्त्र की सेवा, लक्ष्मण की सहनशीलता और भ्रातृप्रेम,

विभीषण की राम के प्रति अनुपम निष्ठा एवं प्रतिमागृह में दशरथ की प्रतिमा के देखने से भरत को दशरथ के देहावसान का ज्ञान ।

इस श्लोक में नाटक के आठ मुख्य पात्रों का नाम भी दृष्टिगोचर होता है—सीता, सुमन्त्र, सुग्रीव, राम, लक्ष्मण, रावण, विभीषण और भरत। श्लोक में इस प्रकार श्लेष अलंकार का आश्रय लेकर नाटकीय पात्रों के उल्लेख को 'मुद्रालंकार' कहते हैं। उसका लक्षण है :—

सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः । कुवलयानन्द श्लोक १३९ ।

अर्थात् जहाँ पर पद अपने मुख्य अर्थ का बोध कराते हुए, श्लेष के द्वारा व्यक्तियों के नाम आदि के द्वारा नाटकीय सूचनीय अर्थ की सूचना देते हैं, वहाँ पर 'मुद्रालंकार' होता है । अतः यहाँ पर 'मुद्रालंकार' है ।

यहाँ पर यह जान लेना उचित है कि उपर्युक्त आठ पात्रों में से केवल ६ पात्र ही वस्तुतः रंगमंच पर उपस्थित होते हैं, सुग्रीव और विभीषण का अंक ६ एवं ७ में उल्लेख मात्र आता है ।

भास ने प्रतिमानाटक के अतिरिक्त अपने अन्य तीन नाटकों में इस पद्धति का आश्रय लिया है और मुद्रालंकार के द्वारा नाटक के प्रथम श्लोक में नाटकीय पात्रों का उल्लेख एवं कथावस्तु का निर्देश किया है। वे तीन नाटक हैं :—स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण और पंचरात्र ।

(११) इस श्लोक में 'उपजाति' छन्द है। यह छन्द इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा छन्दों के सम्मिश्रण से बनता है। उसका लक्षण है :—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥

(*नेपथ्याभिमुखमवलोक्य*)

आर्ये ! इतस्तावत्

(*प्रविश्य*)

२—नटी—आर्य ! इयमस्मि । (*अय्य इअम्हि*)

३—सूत्रधारः—आर्ये ! इममेवेदानीं शरत्कालमधिकृत्य गीयतां तावत् ।

४—नटी—आर्य ! तथा । (*अय्य तह*) । (*गायति*) ।

(*नेपथ्य की ओर देखकर*)

आर्ये, इधर तो आना ।

(*Looking towards the curtain*)

O my wife, please come here at once.

(*प्रविष्ट होकर*)

२—नटी—आर्य ! मैं यह हूँ ।

(*Having entered*)

Nati – O my husband, here am I.

३—सूत्रधार—आर्ये, इसी शरद् ऋतु के विषय में इस समय कुछ गाओ ।

Sūtrādhara – O my wife, please sing some song with reference to this autumnal season.

४—नटी—आर्य, अच्छी बात है । (*गाती है*)

Nati – Yes, my lord.

(*Sings*)

Notes

२—(क) नेपथ्य का लक्षण—

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ।

अभिनेता जन जहाँ पर नाटकोचित रूप धारण करते हैं, उसे नेपथ्य कहते हैं । उसी को आजकल 'ग्रीन-हाउस' कहा जाता है ।

(ख) नेपथ्य शब्द पर्दा और पर्दे के पीछे रूप-धारण-स्थल दोनों को कहते हैं :—

नेपथ्यं स्याजवनिका रंगभूमिः प्रसाधनम् । इत्यजयः ।

आकल्पवेषौ नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम् । इत्यमरः ।

(ग) आर्या—यह पत्नी के लिये संबोधन है। भरत मुनि का कथन है कि नाटक में पत्नी को आर्या नाम से संबोधन करना चाहिये।

पत्नी चार्येति संभाष्या। [नाट्यशास्त्र १६-२६।]

(१) आर्य—(क) ऋ+ण्यत् (ऋहलोर्ण्यत् से ण्यत् प्रत्यय)। अर्यते सेव्यत्वेन गम्यते। सेवा के योग्य, उपासनीय। (ख) आरात् दूरं यातः गतः ग्राम्यत्वादिदोषेभ्य इति आर्यः। ग्राम्यता, मूर्खता आदि दोषों से हीन।

(२) आर्य का लक्षण—

(क) कर्तव्यमाचरन् कार्यमकर्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः॥ इति वशिष्ठः।

कर्तव्य एवं श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करने वाला, त्याज्य कर्मों का न करने वाला, मर्यादा में स्थिर रहने वाला आर्य होता है।

(ख) कुलं शीलं दया दानं धर्मः सत्यं कृतज्ञता।
अद्रोह इति येष्वेतत् तानार्यान् संप्रचक्षते॥ इति भरतः॥

कुलीनता, शील, दया, दान, धर्म, सत्य, कृतज्ञता और द्रोह-हीनता ये गुण जिसमें होते हैं, उसे आर्य कहते हैं।

(ग) "वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया"। महाभारत। सदाचार से व्यक्ति आर्य होता है, धन और विद्या से ही नहीं।

(३) सूत्रधार नटी को आर्या कहे और नटी सूत्रधार को आर्य नाम से पुकारे।

वाच्यौ नटीसूत्रधारावार्यनाम्ना परस्परम्। [साहित्यदर्पण ६.१४७]

३—शरत्कालमधिकृत्य—(क) शरदः कालः शरत्कालः तम् (षष्ठी तत्पुरुष)। अधिकृत्य—अधि+कृ+क्त्वा (ल्यप्)। 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (पा० ६-१-७१) से तुक् (त्), शरद् ऋतु के विषय में।

(ख) सूत्रधार नाटक के प्रारंभ में साधारणतया नटी या पारिपार्श्वक को किसी ऋतु के वर्णन का आदेश देता है। जैसे 'शाकुन्तल' में सूत्रधार नटी से

ग्रीष्म समय का वर्णन करने को कहता है। 'वेणीसंहार' में सूत्रधार पारिपार्श्वक को शरद् ऋतु के वर्णन को कहता है। उक्त दोनों स्थलों पर नाटक की कथावस्तु स्वसमयानुसार ही है, तदनुसार ही आगे के वर्णन हैं। परन्तु यहाँ पर शरद्-ऋतु का वर्णन नाटकीय कथावस्तु के समय के साथ उचित रूप से समन्वित नहीं है, क्योंकि राम के राज्याभिषेक का समय और वनवास का समय शरद्-ऋतु न होकर चैत्र मास, शुक्ल पक्ष, दशमी का दिन था, जैसा कि वाल्मीकीय रामायण से ज्ञात होता है। अतः यहाँ पर इस वर्णन का यही भाव समझना चाहिये कि शरद् ऋतु में आकाश स्वच्छ होता है, प्रकृति अपने सुन्दर रूप में होती है, अतः इस काल का वर्णन किया गया है। नाटकीय कथावस्तु के समय के साथ इसका साक्षात् कोई सम्बन्ध नहीं है। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार राम के अभिषेक का समय है :—

चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः।
यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्पताम् ॥ [रामायण अयोध्या० ३,४]

रामायण के 'तिलकव्याख्या' कर्ता ने युद्धकांड सर्ग १०८ के अन्त में उल्लेख किया है कि—चैत्रे पुष्यनक्षत्रेऽयोध्यातो वनं प्रति रामस्य प्रस्थानमिति स्पष्टम्...तत्र नवमी रिक्तत्वादभिषेकायोग्या, दशम्येव तु पूर्णत्वाद् योग्या।

४— इति गायति—यहाँ पर गाने का भाव यही समझना चाहिए कि वह गाने के लिये उद्यत होती है, परन्तु सूत्रधार संक्षेप के लिये उसको रोक कर अग्रिम श्लोक पढ़ता है और स्थापना को संक्षेप में समाप्त करता है।

५—सूत्रधारः—अस्मिन् हि काले

चरति पुलिनेषु हंसी काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा।

(नेपथ्ये)

६—आर्य आर्य। (अय्य अय्य)

(आकर्ण्य)

७–सूत्रधारः–भवतु, विज्ञातम् ।

मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव ॥२॥

(*निष्क्रान्तौ*)

स्थापना

५—अन्वय—काशांशुकवासिनी हंसी सुसंहृष्टा पुलिनेषु चरति ।

सूत्रधार—इस (शरत्) समय में—

काश के फूलों की प्रभा के तुल्य (श्वेत) वर्ण को धारण करने वाली हंसी प्रसन्न मन हो कर नदीतट के सैकत (रेतीले) प्रदेश में विचरण कर रही है ।

Sūtradhāra—In this season, a female swan, as white as the lustre of the kasa flower, and being very much delighted is roaming about on sandy banks —

(*नेपथ्य में*)

६—आर्य ! आर्य !

(*Behind the curtain*)

Sir ! Sir !

७—(*सुनकर*)

सूत्रधार—अच्छा, समझ गया ।

जिस प्रकार (काश के फूल के सदृश श्वेत वस्त्र धारण किये हुए) प्रसन्नचित्त द्वारपालिका शीघ्रतापूर्वक महाराज (दशरथ) के भवन में (भ्रमण करती है) । २ ।

अन्वय—मुदिता प्रतिहाररक्षी त्वरिता नरेन्द्रभवने इव ।

(*दोनों का प्रस्थान*)

स्थापना

(*Listening*)

Sūtradhāra—Very well, I understand it, just as the delighted female door-keeper, in great haste, (is stepping here and there) in the palace of the king. (2)

(*Both go away*)

End of the Prelude

Notes

५—(१) पुलिनेषु—सैकतप्रदेशेषु। नदीतट के रेतीले भाग पर। पुलिन—रेतीला भाग। तोयोत्थितं तत्पुलिनं सैकतं सिकतामयम्। इत्यमरः। (२) काशांशुकवासिनी—इस पद का विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न अर्थ किया है। (क) श्री गणपतिशास्त्री—'काशांशुः काशपुष्पप्रभा कवासिनी जलवासिनी च'। उन्होंने इसको पृथक् दो पद मानकर कर्मधारयसमास के आधार पर अर्थ किया है कि (हंसी) काशांशु अर्थात् काश (सरकंडा) के पुष्प के तुल्य कान्ति वाली है और "कवासिनी" अर्थात् जल में निवास करने वाली है। (ख) श्री एम० आर० काले ने श्री शास्त्री द्वारा किये हुए अर्थ को क्लिष्ट कल्पना बताते हुए इसका अर्थ किया है—'काशानि काशकुसुमानि अंशुकमिव यस्य तत् काशांशुकं नदीतीरं तत्र वसतीति काशांशुकवासिनी।' 'यद्वा अंशुकं लक्षणाया पक्षौ। काशमिव शुभ्रं दीप्तिमच्चांशुकं वस्ते इति।' अर्थात् 'काश जिसके अंशुक (वस्त्र) के तुल्य हैं, वह काशांशुक अर्थात् नदी का तट, उसपर निवास करने वाली (हंसी)। अथवा—अंशुक शब्द का अर्थ लक्षणा से पंख समझना चाहिए। काश के तुल्य शुभ्र पंखों को धारण करने वाली। (ग) श्री एस० एम० परांजपे—यहाँ पर 'अंशुक' शब्द लक्षणा द्वारा शुभ्रता अर्थ को बताता है, अतः लक्षणा के आधार पर इसका अर्थ होगा—'काश के फूल की तरह शुभ्र दीखने वाली (हंसी)।' (घ) मेरे विचार से 'काशांशुकवासिनी' का सरल और स्पष्ट अर्थ 'अंशुक' शब्द में श्लेष मानने से निकल आता है। अंशुक शब्द (१) वस्त्र अर्थ का वाचक है। अतः प्रतिहारी के साथ इसका अर्थ होगा—'काशवत् काशपुष्पवत् शुभ्रम् अंशुकं वस्त्रं वस्ते आच्छादयति धारयति वा इति।' काश के फूल के तुल्य स्वच्छ वस्त्र को धारण करने वाली (प्रतिहारी)। (२) अंशु शब्द

किरण, प्रभा, कान्ति आदि अर्थों का वाचक है। यहाँ पर प्रभा या कान्ति अर्थ लेने पर समास होने पर स्वार्थ में 'क' प्रत्यय होने पर इसका अर्थ होगा—"काशांशुः एव काशांशुकः काशपुष्पप्रभा काशपुष्पश्वेतता, तं वस्ते धारयति इति।" काश के फूल की प्रभा अर्थात् शुभ्रता को धारण करने वाली हंसी। प्रकरण को देखने से ज्ञात होता है कि कवि हंसी को शुभ्रता का ही वर्णन करना चाहता है। अंशुक शब्द पर श्लेष के द्वारा वह हंसी और प्रतिहारी दोनों की शुभ्रता की ओर निर्देश करता है। शरत्काल के वर्णन में काशपुष्पों की शुभ्रता का वर्णन प्रायः सभी महाकवियों ने किया है। कालिदास ने ऋतुसंहार (२, १ तथा २६) में शरद् के लिए कहा है—

'काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा'

'विकसितनवकाशश्वेतवासो वसाना' ।

भास ने स्वयं स्वप्नवासवदत्तम् में (अंक ४ श्लोक ७) कहा है 'शरच्छशांकगौरेण० काशपुष्पलवेनेदं ।'

उक्त रूप से अर्थ मानने पर किसी प्रकार की क्लिष्ट कल्पना नहीं करनी पड़ती है।

(ङ) काशांशुकवासिनी—काशांशुकं वस्ते इति शीलं यस्याः सा। काशांशुक + वस् + णिनि (इन्) + ङीप् (ई)। 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' (पा० ३, २, ७८) से णिनि प्रत्यय और 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' (पा० ४, १, ५) से ङीप् प्रत्यय। वस् आच्छादने (२-आत्मनेपदी)।

(३) सुसंहृष्टा—सुष्ठु प्रहर्षं प्राप्ता सती। सु + सम् + हृष् + क्त + टाप् (आ) हृष् तुष्टौ ४. परस्मैपदी)।

६— (१) नेपथ्य में कुछ ध्वनि होती है। उसे सुनने के लिए सूत्रधार आधा श्लोक बोलने के बाद रुक जाता है और उस बात को सुनकर तथा उसका भावार्थ समझ कर फिर श्लोक को पूर्ण करता है।

७—(१) मुदिता—प्रसन्ना अर्थात् प्रसन्न। मुद् + क्त + टाप् (आ) मुद् हर्षे (१. आत्मनेपदी)।

(२) त्वरिता—संजातत्वरा, शीघ्रतायुक्त । त्वर्+क्त+टाप्। ञित्वरा संभ्रमे (१. आत्मनेपदी) ।

(३) प्रतिहाररक्षी—प्रतिहारं द्वारं रक्षतीति अर्थात् द्वार की रक्षा करने वाली, द्वारपालिका। प्रति + हृ+घञ्=प्रतिहार+रक्ष्+अण् (अ,+ ङीप् (ई) । 'कर्मण्यण्' (पा० ३. २. १.) से अण् प्रत्यय और 'टिड्ढाणञ्०' से ङीप्। प्रतीहार शब्द इकारयुक्त भी द्वार का वाचक है। आर्याछन्द की दृष्टि से श्लोक में 'प्रतीहाररक्षीव' पाठ उपयुक्त है, क्योंकि चतुर्थ चरण में १५ मात्राएँ होनी चाहिएँ ।

(४) इस श्लोक में उपमा अलंकार है। आर्या छन्द है। आर्या छन्द का लक्षण है :—

यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पंचदश सार्या ॥

(५) स्थापना—(क) स्थाप्यते प्रस्तूयते कथावस्तु अस्यां सा, जिसमें कथावस्तु की स्थापना की जाती है, उसे स्थापना कहते हैं। बाद में नाटककारों ने इसी को 'प्रस्तावना' या 'आमुख' कहा है ।

(ख) स्थापना का लक्षण—

प्रसाद्य रंगं विधिवत् कवेर्नाम च कीर्तयेत् ।
प्रस्तावनां ततः कुर्यात् काव्यप्रख्यापनाश्रयाम् ॥

(नाट्यशास्त्र)

रंगमंच को ठीक सजाकर कवि का नाम-निर्देश करे और उसके बाद नाटकीय वस्तु का वर्णन करते हुए प्रस्तावना करे। (भास के समय में कवि के नाम का निर्देश प्रचलित नहीं था, अतएव उसने अपने नाम का उल्लेख स्थापना में नहीं किया है।)

प्रविश्य स्थापकस्तद्वत् काव्यमास्थापयेत् ततः ।

(साहित्यदर्पण ६.२९)

स्थापक प्रविष्ट होकर काव्य की (नाटकीय वस्तु की) स्थापना करे। उसे 'स्थापना' कहते हैं ।

सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम् ।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ॥

जहाँ सूत्रधार विचित्र प्रकार से नटी मारिष या विदूषक से ऐसी बातें कहे, जिससे प्रस्तुत नाटक की कथा की सूचना हो जाय, उसे 'आमुख' कहते हैं । इसी का दूसरा नाम 'प्रस्तावना' या 'स्थापना' है ।

(ग) भास ने अपने १३ नाटकों में से ११ नाटकों में इस 'स्थापना' शब्द का पारिभाषिक रूप में प्रयोग किया है । 'बालचरित' और कर्णभार में 'स्थापना' शब्द का प्रयोग सर्वथा नहीं हुआ है ।

(प्रविश्य)

८—प्रतिहारी—आर्य ! क इह काञ्चुकीयानां सन्निहितः ।
(अय्य ! को इह कञ्चुईआणं सण्णिहिदो ।)

(प्रविश्य)

९—काञ्चुकीयः—भवति ! अयमस्मि । किं क्रियताम् ।

(प्रविष्ट होकर)

८—प्रतिहारी—आर्य, कौन कंचुकी यहाँ पर उपस्थित है ?

(*Having entered*)

Female Door-keeper—Sir, which of the Chamberlain is present here ?

(प्रविष्ट होकर)

९—कंचुकी—आर्ये, मैं हूँ । क्या कार्य करना है ?

(*Having entered*)

Chamberlain—Lady; here I am. what is to be done ?

Notes

८—(१) काञ्चुकीय—भास ने 'कंचुकी' शब्द के स्थान पर 'काञ्चुकीय' शब्द का प्रयोग किया है । कंचुक शब्द का अर्थ है 'चोगा, लम्बा कुर्ता' । कंचुकिन् या कांचुकीय अर्थात् कंचुक पहनने वाला । कञ्चुकः अस्यास्तीति, कञ्चुक+इनि (इन्)=कञ्चुकिन्+छण् (ईय)=काञ्चुकीय । यहाँ

पर 'वेणुकादिभ्यश्छण् वाच्यः' (वार्तिक पा० ४२. १३८) से छण् प्रत्यय।

(२) कांचुकीय का लक्षण—

(क) मातृगुप्ताचार्य ने कांचुकीय का लक्षण किया है—

ये नित्यं सत्त्वसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः कांचुकीयास्तु ते स्मृताः॥

जो सर्वदा सात्त्विक गुणों से सम्पन्न, काम आदि दोषों से रहित अर्थात् पूर्ण आचारवान्, और ज्ञान-विज्ञान में कुशल होते हैं वे काञ्चुकीय कहे जाते हैं।

(ख) अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कंचुकीत्यभिधीयते॥

(राजा के) अन्तःपुर (रनवास) में विचरण करने वाला, वृद्ध, गुणगणों से युक्त ब्राह्मण, जो सब कार्यों के करने में निपुण होता है उसे कंचुकी कहते हैं। (कंचुकी सदाचारी वृद्ध-ब्राह्मण होता था। वह रनवास में रानियों की सेवा-शुश्रूषा के लिए रहता था।)

(ग) संनिहितः—सन्निधौ स्थितः, समीप में वर्तमान। सम्+नि+धा+क्त। 'धा' धातु को क्त प्रत्यय होने पर 'हि' आदेश हो जाता है। 'दधातेर्हिः' (पा० ७.४. ४२)।

९—(१) भवति—'भवती' शब्द का संबोधन है। 'आप' अर्थ है।

१०—प्रतिहारी—आर्य ! महाराजो देवासुरसंग्रामेष्वप्रतिहत-महारथो दशरथ आज्ञापयति—शीघ्रं भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यप्रभावसंयोगकारका अभिषेकसंभारा आनीयन्तामिति। (अय्य ! महाराओ देवासुरसङ्गामेसु अप्पडिहदमहारहो दसरहो आणवेदि—सिग्घं भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जप्पहावसञ्जोअकारआ अहिसेअसम्भारा आणीअन्तु त्ति।)

१०—प्रतिहारी—आर्य, देवासुर-संग्रामों में विजयी, महारथी (या देवासुर-संग्रामों में जिसका महान् रथ अप्रतिहत गति से चलता है, उस) महाराज दशरथ का आदेश है कि शीघ्रातिशीघ्र राजकुमार राम के राजोचित प्रभुत्व के परिचायक राज्याभिषेक की सम्पूर्ण सामग्री लाकर प्रस्तुत की जाय ।

Pratihārī—Sir, the great king Daśaratha, a Mahāratha (or whose great chariot is) never repulsed in the battles of gods and demons, orders:—Let all the materials (required) for the coronation of Rāma, which is to invest him with sovereign power; be brought in at once.

Notes

१०—(१) महाराजः—महान् चासौ राजा । महत्+राजन्+टच् (अ) । 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' (पा० ५-४-९१) से टच् प्रत्यय । समास होने पर राजन् शब्द जब अन्त में होता है तो उससे टच् प्रत्यय होता है, 'अन्' का लोप हो जाने से अकारान्त शब्द हो जाता है । कर्मधारय समास । (२) देवासुरसंग्रामेषु—देवाश्च असुराश्च देवासुराः (द्वन्द्व समास), तेषां संग्रामा युद्धाः देवासुरसंग्रामाः, तेषु (षष्ठी तत्पुरुष) । (३) अप्रतिहतमहारथः—इसके दो अर्थ हो सकते हैं:—(क) अप्रतिहतः अबाधप्रसरः महारथः महान् रथः रथश्रेष्ठो यस्य सः (बहुव्रीहि) । देवासुर-संग्राम में जिसका महान् रथ अबाध गति वाला था । (ख) अप्रतिहतः चासौ महारथो योधाविशेषः च । (कर्मधारय समास) । देवासुर-संग्राम में अबाध-संचार वाला और महारथ अर्थात् महारथी । (ग) ४ प्रकार के रथी (रथ पर चढ़कर युद्ध करने वाले) माने गये हैं :—अर्धरथ, रथ, महारथ और अतिरथ । दशरथ 'महारथ' थे । जैसा कि रघुवंश ९—१—में वर्णन है— दशरथः प्रशशास महारथः ॥

महारथ का लक्षण—

एको दश सहस्राणि योधयेद् यस्तु धन्विनाम् ।
शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च स महारथ उच्यते ॥

जो अकेला दश सहस्र धनुर्धारियों से युद्ध कर सकता है, शस्त्रविद्या में अतिनिपुण और शास्त्रों का भी वेत्ता होता है, वह 'महारथ' कहा जाता है।

(४) भर्तृदारकस्य—राजकुमारस्य। भर्तुः राज्ञः दारकः पुत्रः भर्तृदारकः, तस्य (षष्ठी तत्पुरुष)। इसी प्रकार 'भर्तृदारिका' शब्द राजकुमारी के लिये आता है। भर्तृ—भृ+तृच् (तृ)। दारक—दृ+ण्वुल् (अक)।

(५) राज्यप्रभावसंयोगकारकाः—राज्ञः भावः कर्म वा राज्यं, प्रभावः कोशदण्डजं तेजः, ताभ्यां संयोगः सम्बन्धः, तस्य कारकाः निर्वर्तकाः सम्पादकाः। अथवा राज्यस्य प्रभावः राज्यप्राप्त्युत्पन्नं प्रभुत्वं, तेन संयोगः, तस्य कारकाः। (क) पहले समास में पहले द्वन्द्व समास और बाद में तत्पुरुष समास किया गया है। राज्य और प्रभाव को पृथक् मानने पर इसका अर्थ होगा—राज्य और राजकीय प्रभाव (तेज) के संयोग को करने वाले। (ख) दूसरे समास में तत्पुरुष समास ही है। तदनुसार अर्थ होगा—राज्यप्रभाव अर्थात् राज्यप्राप्ति के द्वारा उत्पन्न प्रभाव के संयोग को करने वाले। राज्य—राजन्+यत्, अन् का लोप। प्रभाव—प्र+भू+घञ्। संयोग—सम्+युज्+घञ् (अ)। 'चजोः कुः घिण्यतोः' (पा० ७. ३. ५२) से ज को ग। कारक—कृ+ण्वुल् (अक)।

(६) अभिषेकसंभाराः—अभिषेकस्य राज्याभिषेकस्य संभाराः उपकरणानि। (षष्ठी तत्पुरुष) राज्याभिषेक की सामग्री। अभिषेक—अभि+सिच्+घञ् (अ)। 'चजोः कुः' (पा० ७. ३. ५२) से च को क। संभार—सम्+भृ+घञ्।

(७) वाल्मीकि रामायण अयोध्याकांड सर्ग ३ श्लोक ८-१२ में अभिषेक के लिये आवश्यक सामग्री का उल्लेख किया है कि—

सुवर्णादीनि रत्नानि बलीन् (पूजाद्रव्याणि) सर्वौषधीरपि ॥८॥
शुक्लमाल्यानि लाजांश्च पृथक् च मधुसर्पिषी।
आहतानि च वासांसि रथं सर्वायुधान्यपि ॥९॥

चतुरंगबलं चैव गजं च शुभलक्षणम् ।
चामरव्यजने चोभे ध्वजं छत्रं च पाण्डुरम् ॥१०॥
शतं च शातकुम्भानां कुम्भानामग्निवर्चसाम् ।
हिरण्यशृङ्गमृषभं समग्रं व्याघ्रचर्म च ॥११॥
यच्चान्यत् किञ्चिदेष्टव्यं तत्सर्वमुपकल्प्यताम् ।

(८) आनीयन्ताम्—लाकर उपस्थित करो। यहाँ पर इसका भाव यह समझना चाहिये कि राज्याभिषेक की सामग्री जहाँ पर राज्याभिषेक होता है, वहाँ पर लाकर रक्खो। कंचुकी के 'तत् सर्वं संकल्पितम्' (सब सामान उपस्थित कर दिया है) से ज्ञात होता है कि पहले से सब सामान राजगृह में लाकर रक्खा हुआ था। अगले श्लोक में उनका वर्णन है।

(९) इस नाटक का लक्ष्य राम की राज्य-प्राप्ति है, राम की राज्य-प्राप्ति के साथ ही नाटक की समाप्ति होती है, उसका यहाँ पर 'बीज' रूप में वर्णन किया है। 'बीज' का शास्त्रीय लक्षण है—

अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद् विसर्पति ।
फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते ॥

(साहित्यदर्पण ६, ६५)

जो प्रारम्भ में संक्षेप में कहा जाय और आगे जाकर बहुत अधिक विस्तृत हो जाय, उसे 'बीज' कहते है। यह फलसिद्धि का प्रथम कारण माना जाता है।

११—काञ्चुकीयः—भवति ! यदाज्ञप्तं महाराजेन, तत् सर्वं सङ्कल्पितम् । पश्य—

छत्रं सव्यजनं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितं
न्यस्ता हेममयाः सदर्भकुसुमास्तीर्थाम्बुपूर्णा घटाः ।
युक्तः पुष्यरथश्च मन्त्रिसहिताः पौराः समभ्यागताः
सर्वस्यास्य हि मङ्गलं स भगवान् वेद्यां वसिष्ठः स्थितः ॥३॥

११—अन्वयः—छत्रं सव्यजनं सनन्दिपटहं भद्रासनं कल्पितम्। हेममयाः सदर्भकुसुमाः तीर्थाम्बुपूर्णाः घटाः न्यस्ताः । पुष्यरथः च युक्तः । मन्त्रिसहिताः

पौराः समभ्यागताः । हि सर्वस्य अस्य मङ्गलं स भगवान् वसिष्टः वेद्यां स्थितः ।

कंचुकी—आर्ये, जो महाराज ने आज्ञा दी है, वह सब कुछ उपस्थित कर दिया गया है। देखो—छत्र, चामर (चँवर), मांगलिक पटह (नगाड़ा, बाजे) और सिंहासन सब उपस्थित हैं। कुश, पुष्प और तीर्थों के जल से पूर्ण सुवर्ण-कलश रक्खे हुए हैं। पुष्यरथ (क्रीडारथ. जो विहार आदि के लिए होता है) जुता हुआ है। राज-मन्त्रियों के साथ ही साथ (सम्पूर्ण) पुरवासी (भी) आ गये हैं। क्योंकि इस सम्पूर्ण (राज्याभिषेकरूपी) मङ्गल के कारण-रूप (इस मङ्गल कार्य के सम्पादक) पूजनीय भगवान् (ब्रह्मर्षि) वसिष्ठ वेदी पर विराजमान हैं। ३ ।

Chamberlain—Lady, all that the great king has ordered, has been held in readiness. Behold-

The royal umbrella together with the Chauries, and the royal throne with the drum announcing the joyous occasion have been well kept ready. Golden jars filled with holy waters and sanctified with the kusa grass and flowers have been placed (in their proper places). The pleasure chariot is kept ready—harnessed. The citizens, accompanied by the ministers have all arrived in time, because that revered sage Vasistha, the very cause of auspiciousness of all these, has taken his seat on the holy ground (erected for the coronation) (3)

Notes

११—(१)—छत्रम्—राजधारणीयं श्वेतातपत्रम्, राजा द्वारा धारणीय धवल छत्र।

(२) सव्यजनम्—व्यजनेन वीजनसाधनेन सहितं युक्तं सव्यजनम्, सचामरम् इत्यर्थः। चँवर के सहित। वि + अज् + ल्युट् (अन) = व्यजन।

(३) सनन्दिपटहम्—नन्द आनन्दः अस्यास्तीति नन्दी उत्सवकालः, तदर्थं पटहः आनकः, तेन नन्दिपटहेन सह सहितम्। 'तेन सहेति०' पा० २, २, २८) से समास (बहुव्रीहि), 'वोपसर्जनस्य' (पा० ६, ३, ८२) से 'सह' के स्थान पर 'स' आदेश। 'नन्दी' या 'नन्दिन्' का अर्थ

है आनन्ददायक उत्सवकाल आदि या आनन्द। यहाँ पर आनन्द-प्रद उत्सव-काल के योग्य पटह (नगाड़ा)। वह नगाड़ा जो आनन्द के अवसरों पर बजाया जाता है। वह युद्ध के नगाड़े से भिन्न होता है। 'नन्दि' शब्द के समास से बनने वाले कुछ अन्य शब्द भी हैं:—यथा, नन्दितूर्य, नन्दि-घोष, नन्दिवर्धन, नन्दिग्राम, नन्दावर्त, नन्दिवृक्ष इत्यादि। नन्दिपटह और नन्दितूर्य का एक ही अर्थ है। 'सनन्दिपटहम्' 'भद्रासनम्' का विशेषण है। यहाँ पर नन्दिपटह के साथ भद्रासन का भाव यह नहीं समझना चाहिए कि दोनों एकत्र रक्खे हैं, अपितु यहाँ पर 'सह' (साथ) समास का अर्थ है 'और'। नन्दि-पटह और सिंहासन उपस्थित है। (४) भद्रासनम्—सिंहासनम्, सिंहासन। भद्रं च तत् आसनम् (कर्मधारय समास), रत्नों आदि से जड़ा हुआ राजा का सिंहासन। वाल्मीकि रामायण (अयोध्या० १५, ४) तथा रघुवंश (१७, १०) आदि में इसके लिए 'भद्रपीठ' शब्द का भी प्रयोग आया है—

अभिषेकाय रामस्य द्विजेन्द्रैरुपकल्पितम्।
काञ्चना जलकुम्भाश्च भद्रपीठं स्वलंकृतम्॥ (रामायण)

(५) कल्पितम्—उपस्थापितम्। क्लृप् + क्त = कल्पित। 'क्लृप् सामर्थ्ये' (१ आत्मनेपदी)।

(६) न्यस्ताः—समुपस्थापिताः, उपस्थित कर दिये हैं। नि + अस् + क्त। 'असु क्षेपणे' (फेंकना) (४ परस्मैपदी)।

(७) हेममयाः—सौवर्णाः, सुवर्णनिर्मित। हेम्नः विकारः हेममयः, ते। विकार अर्थ में 'नित्यं वृद्धशरादिभ्यः' (पा० ४, ३, १४४) से मयट् (मय) प्रत्यय।

(८) सदर्भकुसुमाः—दर्भाः कुशाः कुसुमानि पुष्पाणि च दर्भकुसुमानि, तैः सहिताः। 'सह' अर्थ में बहुव्रीहिसमास। कुश और फूलों से युक्त।

(९) तीर्थाम्बुपूर्णाः—तीर्थानां गंगादीनाम् अम्बु जलं तेन पूर्णाः। (षष्ठी तथा तृतीया तत्पुरुष)। तीर्थों के जल से पूर्ण। यहाँ पर 'तीर्थ' शब्द से न केवल पवित्र नदियों का ही ग्रहण है अपितु पवित्र तालाबों और पवित्र समुद्रों आदि का भी ग्रहण है। अतएव आगे सप्तम अंक श्लोक ९ में कहा है—

'तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वयमाहृतेन,
नानानदीनदगतेन तव प्रसादात् ।'

(१०) घटाः—कलशाः । शतमिति शेषः । यहाँ पर कलश शब्द से सौ कलश अर्थ समझना चाहिए, क्योंकि जैसा पहले बताया जा चुका है कि राज्याभिषेक में (शतं च शातकुम्भानां कुम्भानाम्० (रामायण) सौ कलश रक्खे जाते हैं । घट—घट् + अच् (अ) ।

(११) युक्तः—युक्ताश्वः विहितः । (रथ) जुता हुआ है । युज् + क्त (त), युजिर् (युज्) योगे (७, उभयपदी) ।

(१२) पुष्यरथः—क्रीडार्थो रथविशेषः न सांयुगीनः । यात्रा उत्सव आदि आनन्द के विशेष अवसरों पर उपयोग में आने वाला रथ । यह रथ युद्धोपयोगी रथ से भिन्न होता है । अतएव अमरकोषकार ने स्यन्दन, रथ आदि से पुष्यरथ में अन्तर बताया है कि—

याने चक्रिणि युद्धार्थे शताङ्गः स्यन्दनो रथः ।
असौ पुष्यरथश्चक्रयानं न समराय यत् ॥ २, ५१ ॥

(यच्चक्रयुतं यानं समराय न भवति असौ पुष्यरथः ।) 'पुष्यनक्षत्र' सुखकारी नक्षत्र है । उसी के तुल्य सुखकारी रथ भी 'पुष्यरथ' कहा जाता है । पुष्यः इव रथः—पुष्यरथः । कहीं-कहीं पर 'पुष्परथ' ऐसा भी पाठ मिलता है । वहाँ पर इसका अर्थ होगा, पुष्प अर्थात् फूल के आकार का रथ । पुष्पम् इव रथः । (१३) मन्त्रिसहिताः—मन्त्रिभिः सचिवैः सहिताः युक्ताः । 'सह' अर्थ में बहुव्रीहि । मन्त्रियों के साथ । (१४) पौराः—नगरनिवासिनः । पुरे भवाः पौराः । नगर में रहने वाले । पुर + अण् (अ) । 'तत्र भवः' (पा० ४, ३, ५३) से अण् प्रत्यय । (१५) समभ्यागताः—सम्प्राप्ताः । सम् + अभि + आ + गम् + क्त (त) = समभ्यागत । (१६) हि—यतो हि, क्योंकि । श्री काले का कथन है कि यहाँ पर कोई कारण नहीं बताया गया है अतः 'हि' को पाद-पूरक अर्थात् छन्द के पाद की पूर्ति के लिए रक्खा गया है । श्री परांजपे का भी ऐसा ही विचार है, अतएव उन्होंने कहा है कि यहाँ पर 'हि' के स्थान पर 'च' (और) पाठ अधिक अच्छा है । मेरे विचार से यहाँ पर 'हि' का प्रयोग उचित है और

यह कारण का ही निर्देश करता है। महर्षि वसिष्ठ, जो कि महाराज दशरथ के पुरोहित भी हैं, वेदी पर अधिष्ठित हो चुके हैं। उनका वेदी पर अधिष्ठित होना इस बात का सूचक है कि अभिषेक का निर्धारित समय प्रायः हो चुका है, अतएव मन्त्रिवर्ग को वहाँ पहुँच जाना चाहिए। अभिषेक की सब आवश्यक सामग्री वेदी पर रक्खी जानी चाहिए। सभी दर्शक भी इसीलिए उपस्थित हो चुके हैं कि अभिषेक का समय हो गया है। (१७) मंगलम्—मंगलहेतुः। मंगल के कारणरूप अर्थात् इस राज्याभिषेकरूपी मंगल कार्य के सम्पादन करने वाले। (१८) वेद्याम्—अनुष्ठानभूमौ, अनुष्ठान के स्थान पर। वेदी शब्द चौकोर ऊँचे चबूतरे के लिए या यज्ञ आदि के लिए निर्मित आच्छादित वेदी के लिए आता है। 'वेदिः परिष्कृता भूमिः' इत्यमरः। (१९) स्थितः—उपविष्टः। स्था+क्त (त)। (२०) इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित नामक छन्द है। उसका लक्षण है—

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।

१२—प्रतिहारी—यद्येवं, शोभनं कृतम्। (जइ एव्वं, सोहणं किदं)।

१३—काञ्चुकीयः—हन्त भोः!

इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्याः कृताः प्रजाः।
रामाभिधानं मेदिन्यां शशाङ्कमभिषिञ्चता ॥४॥

१४—प्रतिहारी—त्वरतां त्वरतामिदानीमार्यः। (तुवरदु तुवरदु दाणिं अय्यो।)

१५—काञ्चुकीयः—भवति! इदं त्वर्यते। (*निष्क्रान्तः*)

१२—प्रतिहारी—यदि ऐसी बात है तो बहुत अच्छा किया।

Pratihāri—If so, it is all well done.

१३—अन्वय—इदानीं रामाभिधानं शशाङ्कं मेदिन्याम् अभिषिञ्चता भूमिपालेन प्रजाः कृतकृत्याः कृताः।

कंचुकी—अहो ! बड़ी प्रसन्नता की बात है—अब राम नाम वाले चन्द्रमा (संसार के आह्लादक) को पृथ्वी के महाराज रूप में अभिषिक्त करते हुए महाराज (दशरथ) ने सारी प्रजा को सर्वथा कृतकृत्य कर दिया है ।४।

Chamberlain—O ! The great joy !

Now the subjects have been rendered gratified by the king, installing the moon, bearing the name of Rama, as sovereign of the earth ! (4)

(निष्क्रान्ता)

१४—प्रतिहारी—आर्य, शीघ्रता कीजिए, शीघ्रता कीजिए ।

Pratihārī—Let the noble one hasten, hasten (to his duties).

१५—कंचुकी—आर्ये, मैं यह शीघ्रता कर रहा हूँ । (प्रस्थान)

Chamberlain—Lady, here I am making haste.

(Exit)

Notes

१३—(१) हन्त—हर्षे । प्रसन्नता की बात है । हन्त शब्द (अव्यय) हर्ष, दया, वाक्य का आरम्भ और खेद अर्थों में आता है—हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः । इत्यमरः । (२) भूमिपालेन—राज्ञा, राजा ने । भूमिं पालयतीति, भूमि+पाल्+अण् (अ) । 'कर्मण्यण्' से अण् । (३) कृतकृत्याः—धन्याः, कृतार्थाः । कृतं कृत्यं यैः ते । (बहुव्रीहि समास) । जिन्होंने अपने कर्तव्य को पूर्ण कर लिया है । (४) प्रजाः—प्रकृतयः, जनाः । प्रजावर्ग । प्रजा—प्र+जन्+ड (आ)+टाप् (अ) । 'उपसर्गे च संज्ञायाम्' (पा०, ३,२,६६) से ड प्रत्यय, अन् का लोप । 'प्रजा स्यात् संततौ जने' इत्यमरः । (५) रामाभिधानम्—रामनामकम् । रामः अभिधानम् नाम यस्य तम् । (बहुव्रीहि०) । राम नामक । अभिधान—अभि+धा+ल्युट् (अन) । (६) शशाङ्कम्—चन्द्रम् । शशः मृगः अंके यस्य सः । (बहुव्रीहि०) । राम को चन्द्रमा इसलिए कहा गया है; क्योंकि वे चन्द्रमा के तुल्य संसार के आह्लादक हैं । (७) अभिषिञ्चता—राज्याभिषेकं कुर्वता, राज्याभिषेक करते हुए । अभि+सिच्+शतृ (अत्)+टा (तृतीया एकवचन) 'षिच (सिच्) क्षरणे' (सींचना) (६ उभयपदी) (८) यहाँ पर उत्सुकता प्रदर्शित की गई

है, अतः यह 'आरम्भ' है, यहाँ से नाटकीय मुखसन्धि प्रारम्भ होती है। आरम्भ का लक्षण है—

भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफलसिद्धये ॥ (सा० दर्पण ६, ७१)

मुख्य फल की सिद्धि के लिये जो उत्सुकता प्रदर्शित की जाती है, उसे 'आरम्भ' कहते हैं।

१६—प्रतिहारी—(*परिक्रम्यावलोक्य*) आर्य ! संभवक ! संभवक ! गच्छ। त्वमपि महाराजवचनेनार्यपुरोहितं यथोपचारेण त्वरय। (अन्यतो गत्वा) सारसिके ! सारसिके ! सङ्गीतशालां गत्वा नाटकीयानां विज्ञापय—कालसंवादिना नाटकेन सज्जा भवतेति। यावदहमपि सर्वं कृतमिति महाराजाय निवेदयामि। (अय्य ! संभवअ ! संभवअ ! गच्छ, तुवं पि महाराअ वअणेण अय्यपुरोहिदं जहोपआरेण तुवारेहि। सारसिए ! सारसिए ! सङ्गीदसालं गच्छिअ णाडईआणं विण्णवेहि—कालसंवादिणा णाडएण सज्जा हो इत्ति। जाव अहं वि सव्वं किदं त्ति महाराअस्य णिवेदेमि।)

(*निष्क्रान्ता*)

१६—प्रतिहारी—(*घूमकर और देखकर*) आर्य संभवक, संभवक, जाओ। तुम भी महाराज के आदेशानुसार माननीय पुरोहित जी को समुचित सत्कारपूर्वक शीघ्र बुला लाओ। (दूसरी ओर जाकर) सारसिके, ओ सारसिके, संगीतशाला में जाकर अभिनय करने वालों से कह दो कि वे आज एक (राज्याभिषेक—) समयोचित नाटक का अभिनय करने के लिए उद्यत हो जाएँ। तब तक मैं भी 'सब कुछ तैयार हो गया है', ऐसी सूचना महाराज को देती हूँ।

(*प्रस्थान*)

Pratihārī— (Turning round and lookiug on). Sambhavaka ! noble Sambhavaka, please go, you also hasten the revered

priest, with all the respect due to him, by the order of the great king. (Going in another direction) Sārasikā, O Sārasikā, go to the concert-hall and tell the actors there to be ready with a play, which will suit the present occasion. In the meantime I will inform the great king that all has been done (according to his directions)

(Exit)

Notes

१६—(१) संभवक—संभवक दूसरे कंचुकी का नाम है, क्योंकि उसको 'आर्य' संबोधन किया गया है।

(२) महाराजवचनेन—महाराजनिर्देशात्। महाराजस्य वचनेन (षष्ठी तत्पुरुष समास)।

(३) आर्यपुरोहितम् आर्यश्च असौ पुरोहितः तम् (कर्मधारय समास)। श्रेष्ठ पुरोहित महोदय को। यहाँ पर पुरोहित शब्द से किसका निर्देश है, यह विचारणीय है। दशरथ के पुरोहित वसिष्ठ थे, यह वाल्मीकि रामायण के निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है—

संदिश्य रामं नृपतिः श्वोभाविन्यभिषेचने।
पुरोहितं समाहूय वसिष्ठमिदमब्रवीत्॥ (अयोध्याकाण्ड ५,१)

इससे पूर्व वर्णन आ चुका है कि वसिष्ठ वेदी पर विराजमान हैं, अतः किसको बुलाने के लिए संभवक को भेजा गया है? प्रतिमा-नाटक के ही तृतीय और सप्तम अंक को देखने से ज्ञात होता है कि वसिष्ठ के साथ ही वामदेव ऋषि का भी पुरोहित-रूप में निर्देश है; अतः यहाँ पर उनको ही बुलाने संभवक को भेजा गया है।

"एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेकं पुरस्कृत्य०"

(अंक ३, २३:७,६)

वाल्मीकिरामायण बालकाण्ड ७,४ में वामदेव भी पुरोहित बताये गये हैं। (४) यथोपचारेण—यथा यथार्हम् उपचारः सत्कारः तेन। यथोचित सत्कारपूर्वक। (५) संगीतशाला—नाट्यशाला। महाराजाओं के महल के साथ मिली हुई संगीतशाला या नाट्यशाला होती थी, उसमें प्रमुख अव-

सरों पर नाटकों आदि का अभिनय होता था। इसका दूसरा नाम 'प्रेक्षागृह' भी है। यहाँ पर संगीत की शिक्षा दी जाती थी और नृत्यादि होता था। वाल्मीकि रामायण के देखने से ज्ञात होता है कि राज्याभिषेक के अवसर पर संगीत और नाटकों का आयोजन होता था। (अयोध्याकांड ३, १८ और ६, १४)

नटनर्तकसंघानां गायकानां च गायताम्।
मनःकर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः॥

(अयो० ६,१४)

अतएव भास ने यहाँ नाटक के लिए उद्यत होने का वर्णन किया है। प्रस्तुत नाटक की दृष्टि से यह अंश विशेष महत्त्व का है, क्योंकि उसी नाटक के सामान (वल्कल) को लेकर आगे अवदातिका रंग-मंच पर आती है, उसी को सीता परिहास में पहनती है, जो कि वनगमन की एक प्रकार से प्रस्तावना है। बिना नाटक की चर्चा किये हुए अवदा-तिका का वल्कल लेकर रंगमंच पर इस स्वाभाविक रूप में आना असंभव होता।

(६) नाटकीयानाम्—नटानाम्। नाटकम् अर्हन्तीति नाटकीयाः तेषाम्। 'वृद्धाच्छः' (पा० ४,२, ११४) से छ प्रत्यय, 'आयनेयी०' (पा० ७,१,२) से छ को 'ईय' आदेश। यहाँ पर 'षष्ठी शेषे' (पा० २,३,५०) से शेष में षष्ठी समझनी चाहिये, अन्यथा द्वितीया होनी चाहिये। जैसे—आर्यमिश्रान् विज्ञापयति।

(७) कालसंवादिना—राज्याभिषेककालानुकूलेन। समयोचित, अर्थात् राज्याभिषेक समयोचित।

(८) सज्जाः—सन्नद्धाः, प्रयोगोद्यताः। तैयार।

(९) यावत् निवेदयामि—'निवेदयिष्यामि' लृट् के स्थान पर यहाँ 'यावत्' के प्रयोग के कारण 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' (पा० ३,३, ४) से लट् हुआ है।

(ततः प्रविशत्यवदातिका वल्कलं गृहीत्वा ।)

१७—अवदातिका अहो अत्याहितम् । परिहासेनापीमं वल्कलमुपनयन्त्या ममैतावद् भयमासीत्, किं पुनर्लोभेन परधनं हरतः। हसितुमिवेच्छामि । न खल्वेकाकिन्या हसितव्यम् । (अहो अच्चाहिदं । परिहासेण वि इमं वक्कलं उवणअन्तीए मम एत्तिअं भअं आसी किं पुण लोभेण परधणं हरन्तस्स । हसिदुं विअ इच्छामि । ण खु एआइणीए हसिदव्वं ।)

(ततः प्रविशति सीता सपरिवारा ।)

१८—सीता—हञ्जे ! अवदातिका परिशङ्कितवर्णेव दृश्यते । किन्तु खल्विवैतत् । (हञ्जे ! ओदादिआ परिसङ्किदवण्णा विअ दिस्सइ । किंणु हु विअ एदं ।)

(तदनन्तर वल्कल लिये हुए अवदातिका का प्रवेश)

१७—अवदातिका—ओह ! बड़ा अनर्थ हुआ । विनोद में भी इन वल्कलों को उठा लाने से जब मैं इतनी अधिक भयभीत हो गई हूँ, तो लोभवश दूसरे के धन को अपहरण करने वाले को कैसा (भय होता होगा)। हँसने की इच्छा सी हो रही है, किन्तु अकेले हँसना नहीं हो सकता ।

(*Then enters Avadātikā with a bark garment*)

Avadātikā—oh ! How great is the misfortune ! I felt so much fear when taking away this bark-garment for fun; how much more ought he to feel who steals the wealth of another out of avarice ? I as if feel inclined to joke ; but one cannot, indeed, crack a joke oneself.

(तदनन्तर सपरिवार सीता का प्रवेश)

१८—सीता—ऐ सखि, अवदातिका कुछ भयभीत सी दिखाई दे रही है । क्या बात है ?

(Then enters Sītā with her attendants

Sītā—O friend, Avadatikā appears to be, as it were, in a terrifed condition. What can this be ?

Notes

१७—(१) अत्याहितम्—महाभीतिः। अर्थात् मैंने बहुत अनुचित कार्य किया है। अति+आ+धा+क्त (त)। अतिशयेन आधीयते स्म मनसि इति अत्याहितम्, अर्थात् जो मन में बहुत गहरा प्रभाव करता है, अनर्थ या महा-भय, क्योंकि ये अपने दुःखद-स्वरूप के कारण मन पर बहुत कटु प्रभाव छोड़ते हैं। अवदात शब्द का अर्थ होता है स्वच्छ, अतएव यहाँ पर कवि ने सीता की सखी को शुद्ध-स्वभाव के कारण सार्थक रूप से अवदातिका नाम दिया है। वह हँसी में नेपथ्यशाला से वल्कल उठा ले आई है, इसपर वह बहुत अधिक भयभीत है कि उसने ऐसा कुकृत्य किया है। इस वाक्य का भाव वक्तव्य नम्बर १५ से मिला कर पढ़ने से स्पष्ट होता है।—(२) परिहासेन अपि - विनोदेन अपि, हँसी में। परि+हस्+घञ् (अ)=परिहास। अवदातिका हँसी में वल्कल ले आई थी। नेपथ्य-पालिनी रेवा आशय ज्ञात होने पर उसे सरलता से क्षमा कर देती। परन्तु अपनी सरलता के कारण अवदातिका इतनी भयभीत थी। (३) किं पुनः—अवदातिका कहती है कि जब किसी दुर्भावना के बिना वल्कल हरण करने पर मुझे इतना भय है तो जो दुर्भावना के कारण स्वार्थ-बुद्धि से प्रेरित होकर दूसरे का धन हरण करते हैं उन्हें कितना भय होना चाहिए। अवदातिका का यह कथन कैकेयी के द्वारा किये जाने वाले राम के राज्याभिषेक में विघ्न की ओर संकेत करता है कि किस प्रकार राम के अधि-कार रूप राज्य को वह अपने पुत्र भरत के लिए लोभ के वशीभूत होकर माँगती है। उसे अपने इस कृत्य के लिए अत्यन्त लज्जित होना चाहिए।

(४) हसितुमिव०—अवदातिका के हृदय में वल्कल लाने के कारण चोरी का जो भाव उदित हुआ, उसके कारण हँसना सा चाहती है। बिना चोरी के ही वह अपने आप को चोर मान रही थी।

८— (१) हञ्जे—चेटी के लिए संबोधन है।

चेटी के लिए संबोधन शब्द 'हञ्जे' है। नीच दासी आदि के लिए 'हण्डे' और सखी के लिए 'हला' संबोधन हैं। हण्डे हञ्जे हलाह्वानं नीचां चेटीं सखीं प्रति'। इत्यमरः। (२) परिशंकितवर्णा—परिशंकितायाः भीताया इव वर्णः आकारो यस्याः सा। (बहुव्रीहि) भयभीत के तुल्य आकारवाली।

१९—चेटी—भट्टिनि! सुलभापराधः परिजनो नाम। अपराद्धा भविष्यति। (भट्टिणि! सुलहावराहो परिअणो णाम। अवरज्झा भविस्सदि।)

२०—सीता—नहि नहि, हसितुमिवेच्छति। (णहि णहि, हसिदुं विअ इच्छदि।)

२१—अवदातिका—(उपसृत्य) जयतु भट्टिनी। भट्टिनि! न खल्वहमपराद्धा। (जेदु भट्टिणी। भट्टिणि! ण खु अहं अवरज्झा।)

२२—सीता—का त्वां पृच्छति। अवदातिके! किमेतद् वामहस्तपरिगृहीतम्। (का तुमं पुच्छदि। ओदादिए! किं एदं वामहत्थपरिगहिदं।)

२३—अवदातिका—भट्टिनि! इदं वल्कलम्। (भट्टिणि! इदं वक्कलं।)

२४—सीता—वल्कलं कस्मादानीतम्! (वक्कलं किस्स आणीदं।)

१९—चेटी—महारानी, सेवकों से कुछ न कुछ अपराध हो ही जाता है। कुछ अपराध हो गया होगा।

Cheti—Mistress, a servant is likely to commit some offence. She might have been guilty.

२०—सीता—नहीं, नहीं। वह हँसना-सा चाह रही है।

Sītā—No, no; she seems to be desirous of laughing.

२१—अवदातिका—(*पास जाकर*) महारानी की जय हो। महारानी, मुझसे कोई अपराध नहीं हुआ है।

Avadātikā—(Approaching) May my lady be victorious. Lady, I am not guilty.

२२—सीता—तुमसे कौन पूछती है? अवदातिका, यह तुम्हारे बाएँ हाथ में क्या है?

Sītā—Who asks yon that? O Avadātikā, what is this held by you in your left hand?

२३—अवदातिका—महारानी, यह वल्कल है।

Avadātikā—My lady, it is a bark garment.

२४—सीता—तू यह वल्कल क्यों लाई है?

Sītā—Why have yon brought this bark-garment?

Notes

१९—(१) भट्टिनी—भट्टः राजा, सोऽस्ति अस्याः पतित्वेनेति भट्टिनी। भट्ट+इनि (इन्) +ङीप् (ई)। जिसके पति का राज्याभिषेक हो जाता है उसे 'राज्ञी' या 'देवी' नाम से संबोधित किया जाता है और रानियों को 'भट्टिनी'।

देवी कृताभिषेकायामितरासु तु भट्टिनी। इत्यमरः।

(२) सुलभापराधः—सुलभः अपराधः यस्य। बहुव्रीहि। सेवक को सामान्य अपराध में भी अपराधी मान लिया जाता है। अतः भयभीत है।

(३) अपराद्धा—अप+राध्+क्त+टाप्।

२२—(१) का त्वां०—कौन तुमको अपराधिनी बताता है?

(२) वामहस्तः०—वामश्च असौ हस्तः वामहस्तः तस्मिन् परिगृहीतम्। तत्पुरुष। बाएँ हाथ में लिया हुआ।

२४—(१) वल्कलम्—वक्कल । हिन्दी का बक्कल (पेड़ की छाल) इसी से बना है ।

(२) कस्मात्—कस्मात् कारणात्, किसलिए ।

२५—अवदातिका—शृणोतु भट्टिनी । नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा निर्वृत्तरङ्गप्रयोजनमशोकवृक्षस्यैकं किसलयमस्माभिर्याचितासीत् । न च तया दत्तम् । ततोऽर्हत्यपराध इतीदं गृहीतम् । (सुणादु भट्टिणी । णेवच्छपालिणी अय्यरेवा णिव्वुत्तरङ्गप्पओअणं असोअरुक्खस्स एक्कं किसलअं अह्मेहि जाइदा आसि । ण अ ताए दिण्णं । तदो अरिहदि अवराहो त्ति इदं गहिदं ।)

२६—सीता—पापकं कृतम् । गच्छ, निर्यातय । (पावअं किदं । गच्छ, णिय्यादेहि ।)

२७—अवदातिका—भट्टिनि ! परिहासनिमित्तं खलु मयैतदानीतम् । (भट्टिणि ! परिहासणिमित्तं क्खु मए एदं आणीदं ।)

२५—अवदातिका—महारानी, सुनिये । नेपथ्यरक्षिका आर्या रेवा से मैंने कहा था कि रंगमंच का काम पूरा हो जाय तो अशोक वृक्ष का एक पत्ता हमें दे देना, किन्तु उसने नहीं दिया है । अतः यह सोचकर कि इसका यह अपराध इस योग्य है (कि वल्कल चुरा लिया जाय), मैं यह (वल्कल) उठा लाई हूँ ।

Avadātikā—Let my lady hear. The worthy lady, Revā keeper of the stage-materials, was requested by me to give me a sprout of the Asoka tree, after the stage-purpose was served. But she did not give it. Therefore, thinking that her fault deserves (such treatment) I took away this (bark-garment).

२६—सीता—तुमने यह बड़ा पाप किया। जाओ, लौटा आओ।

Sitā—you have committed a sin. Go, and return it.

२७ - अवदातिका -- महारानी मैं तो इसे हँसी में ले आई थी।

Avadātikā—My lady, I have brought it away simply for the sake of fun.

Notes

२५—(१) नेपथ्यपालिनी—नेपथ्यस्य प्रसाधनभूमेः रङ्गालंकाराणां वा पालिनी रक्षिका। (तत्पुरुष०)। नेपथ्य शब्द का अर्थ है संगीतशाला में नटों आदि के सजने-सजाने का स्थान या अभिनय-कर्त्ताओं के वस्त्र-आभूषणादि तथा सजाने का सामान। जैसा कि भरत ने नाट्यशास्त्र में कहा है—

'रामादिव्यञ्जको वेषो नटे नेपथ्यमुच्यते।'

(२) निर्वृत्तरङ्गप्रयोजनम् निर्वृत्तं सम्पन्नं रङ्गप्रयोजनं रङ्गकार्यम् अस्य तत्। (बहुव्रीहि)। रङ्गमंच के सजाने का काम पूरा होने पर। किसलयं पल्लवः। किसलय अर्थात् पत्ता। यहाँ पर ऐसा अर्थ नहीं समझना चाहिए जैसे कि श्री परांजपे का अनुमान है, कि जिस नाटक के लिए पहले निर्देश किया गया है, वह पूरा हो गया है और उसके बाद अवदातिका ने पत्ता माँगा है, अपितु यहाँ पर यह भाव है कि आर्या रेवा को रंगमंच (स्टेज) सजाने का काम दिया गया था। उसने उसमें अशोक वृक्ष के पत्तों को लगाया था, जैसे कि विवाहादि के मण्डपों में आम के पत्ते लगाए जाते हैं। स्टेज तैयार होने पर जो अशोक के पत्ते बचे थे उनमें से एक पत्ता अवदातिक ने माँगा था, परन्तु रेवा ने नहीं दिया, अतः उसके इस अपराध पर अवदातिका ने वल्कल लेकर भाग जाना उचित समझा।

जिस नाटक का पहले निर्देश किया गया है वह राम के राज्याभिषेक के बाद होना था।

(३) अस्माभिः—यहाँ पर 'मया' 'मैंने' एक वचन का प्रयोग न होकर बहुवचन का प्रयोग इस बात को बताता है कि अवदातिका के साथ और बहुत सी स्त्रियाँ थीं, जो अशोक के पत्ते माँग रही थीं। बहुत सी स्त्रियों ने एक साथ अशोक के पत्ते माँगना प्रारम्भ किया होगा, अतएव सम्भवतः कुछ

होकर आर्या रेवा ने सबको निषेधात्मक उत्तर दे दिया होगा। अन्यथा अशोक का एक पत्ता दे देना बहुत महत्त्व का काम नहीं था।

स्त्रियाँ अशोक के पत्ते को बहुत चाहती हैं, ऐसा ऋतुसंहार ६, १६; रघुवंश ८. ६२ आदि से ज्ञात होता है। अपनी स्वामिनी सीता के सम्मुख वह अकेले होने पर बहुवचन का प्रयोग नहीं कर सकती थी।

(४) अर्हति अपराधः—'वल्कलहरणम्' इति शेषः। उसका अपराध इस योग्य है कि वल्कल उठा ले जाऊँ। इसलिए वल्कल उठा ले आई हूँ।

२६—(१) निर्यातय—प्रत्यर्पय, परावर्तय। लौटा दो। निर्+यत्+णिच्+'लोट् मध्यमपुरुष एकवचन। 'यत निकारोपस्कारयोः' (१०) उभयपदी, (पीड़ा देना, मारना, प्रोत्साहित करना)

२८—सीता—उन्मत्तिके! एवं दोषो वर्धते। गच्छ, निर्यातय निर्यातय। (उम्मत्तिए! एव्वं दोसो वड्ढइ। गच्छ, णिय्यादेहि णिय्यादेहि।)

२९—अवदातिका—यद् भट्टिन्याज्ञापयति। (जं भट्टिणी आणवेदि।) (प्रस्थातुमिच्छति।)

३०—सीता—हला! एहि तावत्। (हला! एहि दाव।)

३१—अवदातिका—भट्टिनि! इयमस्मि। (भट्टिणि! इअह्मि।)

३२—सीता—हला! किन्नु खलु ममापि तावच् शोभते। (हला! किंणु हु मम वि दाव सोहदि।)

अवदातिका—भट्टिनि! सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम। अलङ्करोतु भट्टिनी। (भट्टिणि! सव्वसोहणीअं सुरूवं णाम। अलङ्करोदु भट्टिणी।)

२८—सीता—पगली, इस प्रकार दोष बढ़ता है । जा, लौटा दे, लौटा दे ।

Sitā—Mad woman, but the crime bacomes worse in this way. Go and return it to her; do return it.

२६—अवदातिका, जैसी महारानी की आज्ञा । (जाना चाहती है ।)

Avadātikā—As my lady commands.

(Wishes to depart)

३०—सीता—सखि, जरा इधर आना ।

Sitā—Friend, come here.

३१—अवदातिका—महारानी, यह आई ।

Avadātikā—My lady, here I am.

३२—सीता—सखि, (मैं देखना चाहती हूँ कि) क्या यह वल्कल मुझे भी (पहनने पर) अच्छा लगता है ।

Sitā—Friend, (I want to see) if it appears well on my person (when worn by me).

३३—अवदातिका—महारानी, सुन्दर रूप सभी चीजों से सुशोभित होता है । आप इससे अपने आपको अलंकृत कीजिए ।

Avadātikā—My lady, an attractive form is really glorified by everything. Let my lady adorn herself (with thisgarment).

Notes

३३—(१) सर्वशोभनीयं०—सर्वेण सुन्दरेण असुन्दरेण वा वस्तुना शोभनीयं शोभयितुं शक्यं सर्वशोभनीयम् । सुन्दर या असुन्दर सभी चीजों से शोभित होता है । इसी सूक्ति को प्रकारान्तर से अभिज्ञानशाकुन्तल में कालिदास ने रक्खा है—

(क) किमिव हि मधुराणां मंडनं नाकृतीनाम् । (अभि० १.१८)

(ख) सर्वासु अवस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम् ।।

इसी भाव की अन्य सूक्तियाँ— (अभि० ६. पृ० १४५)

सर्वास्ववस्थासु चारुता शोभां पुष्यति । (मालतीमाधव २ पृ० २६)

अथवा सर्वमलङ्कारो भवति सुरूपाणाम्। (अभि० २)

यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि सीता ने यद्यपि वल्कल मनोरंजन के लिये पहना है परन्तु नाटकीय दृष्टि से यह वनवास का श्रीगणेश है।

३४—सीता—आनय तावत्। (गृहीत्वाऽलंकृत्य।) हला! पश्य, किमिदानीं शोभते? (आणेहि दाव। हला! पेक्ख, किं दाणिं सोहदि।)

३५—अवदातिका—तव खलु शोभते नाम। सौवर्णिकमिव वल्कलं संवृत्तम्। (तव खु सोहदि णाम। सोवण्णिअं विअ वक्कलं संवुत्तं।)

३६—सीता—हञ्जे! त्वं किञ्चिन्न भणसि। (हञ्जे! तुवं किञ्चि ण भणासि।)

३७ चेटी—नास्ति वाचा प्रयोजनम्। इमानि प्रहृषितानि तनूरुहाणि मन्त्रयन्ते। (णत्थि वाआए पओअणं। इमे पहरिसिदा तणूरुहा मन्तेन्ति।) (पुलकं दर्शयति।)

३८—सीता—हञ्जे! आदर्शं तावदानय। (हञ्जे! आदंसअं दाव आणेहि।)

३९—चेटी—यद् भट्टिन्याज्ञापयति। (निष्क्रम्य प्रविश्य।) भट्टिनि! अयमादर्शः। (जं भट्टिणी आणवेदि। भट्टिणि! अअं आदंसओ।)

४०—सीता—(चेटीमुखं विलोक्य।) तिष्ठतु तावदादर्शः। त्वं किमपि वक्तुकामेव। (चिट्ठदु दाव आदंसओ। तुवं किं वि वत्तु कामा विअ।)

३४—सीता—अच्छा ला। (लेकर तथा पहन कर) सखि, देख, क्या अब अच्छा लगता है?

Sita—Bring it to me. (Taking and wearing it.) Friend, see, does it become me now?

३५—अवदातिका—आपको यह अच्छा लगता है। यह वल्कल अब स्वर्णिम सा लगता है।

Avadātikā—It does appear splendid on you. The bark-garment seems, as it were, to be made of gold.

३६—सीता— सखि, तुम कुछ नहीं कहतीं?

Sitā—Friend, how is it that you do not say anything?

३७—चेटी— वाणी (शब्दों) की कोई आवश्यकता नहीं है। ये मेरे रोमांच ही मेरे भाव को व्यक्त कर रहे हैं। (रोमांच दिखाती है)।

Cheti—There is no need of words. For the hair standing erect out of joy, express (my feeling). (Shows the hair standing erect.)

३८—सीता—सखि, शीशा तो लाना।

Sitā—Friend, just bring a mirror.

३९—चेटी—जैसी आपकी आज्ञा। (बाहर जाकर फिर दर्पण लिये हुए आकर) महारानी, यह लीजिये दर्पण।

Cheti—As my lady commands. (Going and returning with a mirror). My lady, here is a mirror.

४०—सीता—(चेटी के मुख की ओर देखकर) अच्छा, अभी दर्पण रहने दो। तुम कुछ कहना सा चाहती हो।

Sitā—(Looking at the face of the cheti). Let the mirror remain aside. You seem to be wishing to say something.

Notes

३५—(१) सौवर्णिकम्—सुवर्णमयम्। तुम्हारे द्वारा धारण करने पर वल्कल तुम्हारे शरीर की शोभा से स्वर्णिम सा प्रतीत होता है। वल्कल साधारण रंग का था। सीता का रंग सुनहरा था, अतः वल्कल भी सुनहरा

सा प्रतीत होता था। रामायण और भट्टिकाव्य आदि में भी सीता का रूप सुनहरा वर्णन किया गया है।

तप्तकाञ्चनवर्णाभा रक्ततुङ्गनखी शुभा।
सीता नाम वरारोहा, वैदेही तनुमध्यमा॥
रामायण अरण्य० ३४.१६

हिरण्यमयी साललतेव जङ्गमा। भट्टि० २.४७

यहाँ पर 'तद्गुण' अलंकार है।

३७—(१) नास्ति वाचा प्रयोजनम्— कथनम् आवश्यकं नास्ति। कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। 'प्रयोजनम्' के कारण 'वाचा' में तृतीया।

(२) प्रहृषितानि—उद्गतानि। निकले हुए। प्र + हृष् + क्त।

(३) तनूरुहाणि—रोमाणि। रोम, रोंगटे। तन्वां रोहन्तीति। तन् + रुह + क (अ)। 'मूलविभुजदिभ्य कः' से क प्रत्यय। मेरे रोमाञ्च ही आपके वल्कल धारण करने से उत्पन्न शोभा को व्यक्त कर रहे हैं, अतः मुँह से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

(४) मन्त्रयन्ते—सूचयन्ति। सूचित कर रहे हैं।

३८—(१) आदर्शम् – दर्पणम्, दर्पण, शीशा। आ + दृश् + घञ्।

४०—(१) वक्तुकामा—वक्तुं कामः यस्याः सा। बोलने की इच्छुक। वच + तुमुन् = वक्तुम् + कामा। 'तुं काममनसोरपि' अर्थात् तुम् (तुमुन्) के म् का लोप हो जाता है, यदि उसके बाद काम या मनस् शब्द हो तो। अतः यहाँ पर वक्तुम् के म् का लोप हो गया। इसी प्रकार 'मनस्' के साथ 'वक्तुमनाः' रूप होता है।

(२) यहाँ पर चेटी का शीशा लाने के लिये जाना दो कार्यों को पूरा करता है। (१) शीशा लाना (२) राज्याभिषेक का समाचार लाना।

४१—चेटी—भट्टिनि! एवं मया श्रुतम्। आर्यबालाकिः कञ्चुकी भणति—अभिषेकोऽभिषेक इति। (भट्टिणि! एवं

मये सुदं । अय्यबालाई कञ्चुई भणादि—अहिसेओ अहिसेओ त्ति ।)

४२—सीता—कोऽपि भर्ता राज्ये भविष्यति । (को वि भट्टा रज्जे भविस्सदि ।)

(*प्रविश्यापरा*)

४३—चेटी—भट्टिनि ! प्रियाख्यानिकं प्रियाख्यानिकम् । (भट्टिणि ! पिअक्खाणिअं पिअक्खाणिअं ।)

४४—सीता—किं किं प्रतीष्य मन्त्रयसे । (किं किं पडिच्छिअ मन्तेसि ।)

४५—चेटी—भर्तृदारकः किलाभिषिच्यते । (भट्टिदारओ किल अहिसिञ्चीअदि ।)

४१—चेटी—महारानी, मैंने ऐसा सुना है । आर्य बालाकि कञ्चुकी कह रहे थे—राजतिलक है, राजतिलक है ।

Chetī—Mistress, I have heard thus. Noble Bālāki, the chamberlain, was saying 'coronation ! coronation !'.

४२—सीता—(ऐसा ज्ञात होता है कि) किसी राजा का राजतिलक होगा ।

Sītā—Some king, it seems, must be being installed on his throne.

(*दूसरी चेटी का प्रवेश*)

४३—चेटी—महारानी, शुभ संवाद है ! शुभ संवाद है !!

(*Enters another Cheti*)

Chetī—Mistress, good news for you, good news for you.

४४—सीता—अपने मन में क्या रखकर ऐसा कह रही हो ?

Sītā—Having what in your mind are you saying this ?

४५—चेटी—राजकुमार (राम) का ही राजतिलक हो रहा है ।

Chetī—Really the Prince (Rāma) is being enthroned.

Notes

४२—(१) कोऽपि भर्ता०—सीता महाराज दशरथ के जीवित रहते हुए राम का राज्याभिषेक नहीं चाहती। 'कोऽपि०' इस वाक्य से सीता के उच्च चरित्र का ज्ञान होता है कि वह अन्य सामान्य राजकुमारियों की तरह अनेक छल-प्रपंचों द्वारा महारानी होने की इच्छुक नहीं हैं। वह यही चाहती थी कि दशरथ के रहते हुए राम राजा न हों, अतएव यह समाचार पाने पर कि अभिषेक है, उन्होंने उत्तर दिया कि हमारे इस राज्य में किसी अन्य माण्डलिक राजा का महाराज दशरथ उस निर्दिष्ट प्रदेश के लिये राज-तिलक कर रहे हैं। मांडलिक राजाओं का वरण, राजतिलक आदि महा-राजा ही करते थे। सीता राम की राज्य-प्राप्ति तथा स्वयं महारानी होने के प्रति सर्वथा उदासीन हैं।

४३—(१) प्रियाख्यानिकम्—प्रियस्य आख्यानम् अस्मिन् अस्तीति प्रियाख्यान+ठन् (इक)। 'अत इनिठनौ' से ठन् प्रत्यय।

४४—(१) किं प्रतीष्य—कां वार्तां लब्ध्वा। क्या समाचार प्राप्त करके। प्रति+इष् धातु का अर्थ होता है—प्राप्त करना। जैसे राजशासनं प्रतीष्य (गृहीत्वा) (शाकुन्तल अंक ६), 'सत्कारः सत्कारेण प्रतीष्टः' (स्वीकृतः), (स्वप्नवासव ० अक ४)। प्रति+इष्+ल्यप् (य)।

४६—सीता— अपि तातः कुशली। (अवि तादो कुसली।)

४७—चेटी—महाराजेनैवाभिषिच्यते। (महाराएण एव्व अहिसिञ्चीअदि।)

४८—सीता—यद्येवं द्वितीयं मे प्रियं श्रुतम्। विशाल-तरमुत्सङ्गं कुरु।) (जइ एवं दुदीअं मे पिअं सुदं। विसाल-दरं उच्छङ्गं करेहि।)

४९—चेटी—भट्टिनि ! तथा। ([illegible] ण ! तह।) (तथा करोति।)

५०—सीता—आभरणान्यवमुच्य ददाति।

५१—चेटी—भट्टिनि! पटहशब्द इव। (भट्टिनि! पटहसद्दो विअ।)

५२—सीता—स एव। (सो एव्व।)

५३—चेटी—एकपदे अवघट्टित तूष्णीकः पटहशब्दः संवृत्तः। (एक्कपदे ओघट्टिअतुह्णीओ पटहसद्दो संवुत्तो।)

४६—सीता—पिता जी सकुशल तो हैं!

Sītā—Is the father Dasaratha) all right ?

४७—चेटी—महाराज (दशरथ) के द्वारा ही (राम का) अभिषेक किया जा रहा है।

Chetī—He is being enthroned by the great kin ghimself

४८—सीता—यदि ऐसी बात है तो मैंने यह दूसरा शुभसमाचार सुना। अपने उत्सङ्ग (आँचल, गोद का कपड़ा) को (पुरस्कार लेने के लिए) फैलाओ।

Sītā—If so, this is the second good news that I have heard. Please widen the garment on your lap (for holding the gift I am going to give you).

४६—चेटी—महारानी, अच्छी बात है। (वैसा करती है, अंचल फैलाती है।)

Chetī—Mistress just as you wish (Does accordingly).

५०—सीता—अपने आभूषणों को उतार कर देती है।

Sītā (Takes off her ornaments and gives them to her)

५१—चेटी—महारानी, पटह (नगाड़े) का शब्द सा (सुनाई पड़ रहा है)।

Chetī—Mistress, something like the sound of a drum (is being heard).

५२—सीता—हाँ, वही है। (अर्थात् अभिषेक के वाद्यों का ही शब्द है)

Sītā—Yes, it is so (*i. e.* for the coronation).

५३—चेटी—नगाड़े का शब्द बजने के साथ ही सहसा बन्द हो गया।

Cheti—The sound of the drum has ceased as soon as it was struck out.

Notes

४६—(१) अपि तातः०—वक्तव्य नं० ४६ और ४८ से सीता के उच्च चरित्र का ज्ञान होता है। वह राम के राज्याभिषेक के समाचार से प्रसन्न नहीं होती, अपितु उसे चिन्ता है महाराज दशरथ के स्वास्थ्य की। जब उसे यह ज्ञान हो जाता है कि वह सकुशल हैं और स्वयं राम का अभिषेक कर रहे हैं तब वह वस्तुतः प्रसन्न होती है।

४८—(१) विशालतरम्०—राम का अभिषेक और दशरथ की स्वस्थता इन दोनों सुखद समाचारों से सीता इतनी अधिक प्रसन्न होती है कि वह अपने सारे आभूषणों को पुरस्कार रूप में दे देना चाहती है।

५०—(१) आभरणानि०—अवमुच्य—उतार कर। अव+मुच् का अर्थ है उतारना और आ+मुच् का अर्थ है पहनना। प्राचीन समय में परम्परा थी कि शुभ सन्देश-वाहक को पुरस्कारादि दिया जाता था। चेटी ने राम का अभिषेक और दशरथ की कुशलता ये दोनों शुभ समाचार दिये। अतः सीता ने उसे अपने सारे आभूषण पुरस्कार रूप में दे दिये। यहाँ पर भास ने अपनी नाट्य-निपुणता का परिचय दिया है। उसने इसके द्वारा दो प्रयोजन सिद्ध किये हैं—(१) सीता को दशरथ के स्वास्थ्य की चिन्ता और कुशलता जानने पर प्रसन्नता। (२) सीता का अपने आभूषणों को उतार कर दे देना, वनवास की तैयारी का दूसरा चरण है।

वल्कलों को धारण करना वनवास का प्रथम चरण था।

५३—(१) अवघट्टित०—अवघट्टितः (अवघट्टनेन ताडनेन उत्पन्नः।) चासौ तूष्णीकश्च विरतश्च अवघट्टिततूष्णीकः। (कर्मधारयसमास) पटह का शब्द हुआ और सहसा समाप्त हो गया।

५४—सीता—को नु खलूद्घातोऽभिषेकस्य । अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम । (को णु खु उग्घादो अहिसेअस्स । अहवा बहुवुत्तन्ताणि राअउलाणि णाम ।)

५५—चेटी—भट्टिनि ! एवं मया श्रुतं—भर्तृदारकमभिषिच्य महाराजो वनं गमिष्यतीति । (भट्टिणि ! एवं मए सुदं—भट्टिदारअं अहिसिञ्चिअ महाराओ वणं गमिस्सदित्ति ।)

५६—सीता—यद्येवं न तदभिषेकोदकं मुखोदकं नाम । (जइ एव्वं ण सो अहिसेओदओ मुहोदअं णाम ।)

५४—सीता—अभिषेक में कौन सा विघ्न आ पड़ा है ? अथवा राजकुलों में नाना प्रकार की घटनाएँ घटती ही रहती हैं ।

Sītā—What possibly can be the hindrance to the coronation ? Or why, royal palaces are generally full of various incidents.

५५—चेटी—महारानी, मैंने ऐसा सुना है—महाराज (दशरथ) राजकुमार राम का राज्याभिषेक करके वन में चले जाएँगे ।

Cheṭī Mistress, this is what I have heard—

The great king will retire to the forest after having installed the crown-prince (on the throne).

५६—सीता—यदि ऐसी बात है तो वह अभिषेक का जल अभिषेक का जल नहीं होगा, अपितु (राजा के वियोग में बहने वाले आँसुओं से युक्त) मुख को धोने के लिए जल होगा ।

Sītā—If it is so, then it is not the coronation water, but water for washing (the tears from) the face.

Notes

५४—(१) उद्घातः—विघ्नः । विघ्न ।

(२) बहुवृत्तान्तानि—बहवः नानाप्रकारकाः वृत्तान्ताः व्यतिकराः येषु तानि। (बहुव्रीहि)। जहाँ पर अनेक प्रकार की घटनाएँ होती रहती हैं। कितने ही निर्धारित कार्य विघ्नरूप अन्य कारणों के आ जाने से नहीं हो पाते।

५५—(१) एवं मया०—अभिषेक में क्या विघ्न उपस्थित हुआ है और पटह-नाद क्यों बन्द हो गया है, इसका आनुमानिक समाधान चेटी देती है कि सम्भवतः महाराज दशरथ के वन-प्रस्थान के विचार से दुःख के कारण प्रसन्नता-सूचक नगाड़े का बजाना बन्द कर दिया गया है।

५६—(१) अभिषेकोदकम्०—सीता के कथन का भाव यह है कि यदि राम का अभिषेक करके महाराज वन को चले जाएँगे, तो वह अभिषेक इष्ट नहीं है। पिता के वियोग में राम अवश्य रोएँगे और उनके अश्रुओं के पोंछने के लिये यह अभिषेक का जल होगा। वस्तुतः प्रसन्नता-सूचक अभिषेक-जल न होगा। इस वाक्य के द्वारा भी महाराज के प्रति सीता की अत्यधिक आदर-भावना स्पष्ट होती है।

(*ततः प्रविशति रामः।*)

५७—रामः—हन्त भोः !

आरब्धे पटहे स्थिते गुरुजने भद्रासने लङ्घिते
स्कन्धोच्चारणनम्यमानवदनप्रच्योतितोये घटे।
राज्ञाहूय विसर्जिते मयि जनो धैर्येण मे विस्मितः
स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो ! विस्मयः ॥५॥

'विरम्यतामिदानीं पुत्र'ेति स्वयं राज्ञा विसर्जितस्यापनीतभारोच्छ्वसितमिव मे मनः। दिष्ट्या स एवास्मि रामः महाराज एव महाराजः। यावदिदानीं मैथिलीं पश्यामि।

५७—अन्वय—पटहे आरब्धे, गुरुजने स्थिते, भद्रासने लङ्घिते (सति) घटे स्कन्धोच्चारणानम्यमानवदनप्रच्योतितोये (सति), मयि राज्ञा आहूय विसर्जिते मे धैर्येण जनः विस्मितः, यदि स्वः पुत्रः पितुः वचः कुरुते भोः ! तत्र कः विस्मयः ।

(*राम का प्रवेश*)

राम—ओह !

जब नगाड़े बजने लगे, गुरुजन खड़े हो गये, मैं सिंहासन पर बैठ गया, और जब कन्धे तक उठा कर झुकाये हुए घड़े के मुख से जल (मेरे सिर पर) गिरने को ही था, तब राजा ने मुझे बुलाकर वहाँ से बिदा किया (अर्थात् सिंहासन छोड़ने के लिये कहा) । लोग मेरे इस धैर्य को देखकर आश्चर्यान्वित रह गये । यदि अपना ही पुत्र पिता की आज्ञा का पालन करता है तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? ॥ ५ ॥

'पुत्र ! इस समय (राज्याभिषेक को) रहने दो' इस प्रकार स्वयं राजा के द्वारा बिदा किये जाने पर, (राज्य के उत्तरदायित्व के) भार के हट जाने से मेरे मन ने शान्ति की साँस सी ली । भाग्य से (प्रसन्नता की बात है कि) मैं वह राम (राजकुमार) ही हूँ और महाराज (दशरथ) ही महाराज हैं (मैं नहीं) । अच्छा तो अब सीता से भेंट करता हूँ ।

Rāma—Alas ! Oh !

When the drum had begun to be beaten, the elderly persons hade stood about, the auspicious throne was ascended (by me) and water was about to fall down from the mouth of the jar as it was bent after being raised upto the shoulder, I was called by my name and sent away by the king; and people stood astonished at my fortitude; if a son obeys the order of his father, what room is there for astonishment ? (5)

As I was sent away by the king himself sayiny—"My son let this (ceremony) be stopped for the present," my mind breathed a sigh of relief, as it were, owing to the load (responsibility of government) being removed (from my head).

Fortunately I am the same Rāma (heir-apparent) and the great king (Daśaratha) the great king (as before). I will just see maithili (Sitā) now.

Notes

५७—(१) पटहे—पटहवादने। नगाड़े का बजाना।

(२) आरब्धे =प्रवृत्ते सति। प्रारम्भ होने पर। आ+रभ+क्त= आरब्ध।

(३) स्थिते—अभिषेकमङ्गलदर्शनोत्सुकतया उत्थिते सति। अभिषेक दर्शन की उत्सुकता से खड़े होने पर। स्थित—स्था+क्त (त)।

(४) भद्रासने० सिंहासने मया लङ्घिते आरूढे सति। सिंहासन पर आरूढ़ होने पर। भद्रासन के लिये देखें (१. वक्तव्य ११ पर विवरण)।

(५) स्कन्धो०—स्कन्धस्य उपरि उच्चारणं (घटस्य) उन्नयनं स्कन्धोच्चारणं तेन तथाकृते सति नम्यमानम् अधोमुखं क्रियमाणं यद् वदनं घटस्य मुखं तस्मात् प्रच्योतति इति प्रच्योति पतनोन्मुखं (न तु पतितं वस्त्राणाम् अनार्द्रत्वात्) तोयं जलं यस्य तथाभूते। (तत्पुरुषगर्भको बहुव्रीहिसमासः)। कन्धे तक उठा कर झुकाये हुए घड़े के मुँह से जल गिरने ही वाला था, तब।

उच्चारण उत्+चर्+णिच्+ल्युट् (अन)। यहाँ पर उच्चारण का अर्थ उठाना है, न कि 'कहना'। नम्यमान—नम्+यक् (य)+लट् के स्थान पर शानच् (आन)। प्रच्योतिन्—प्र+च्युत्+णिनि (इन्)। 'सुप्यजातौ०' से ताच्छील्य अर्थ में णिनि।

(६) राज्ञा आहूय—महाराजेन आकार्य। राजा ने मेरा नाम लेकर। आहूय—आ+ह्वे (ह्वा)+क्त्वा के स्थान पर ल्यप् (य)।

(७) विसर्जिते—सिंहासनादवतीर्य गच्छेत्याज्ञप्ते सति। सिंहासन से उतार कर जाओ ऐसा कहने पर। वि+सृज्+णिच्+क्त=विसर्जित।

(८) धैर्येण—धीरकर्मणा। धीरता से। नम्रतापूर्वक पिता की आज्ञा पालन करने तथा किसी प्रकार की आपत्ति न करने पर। धीरः—(१) धियं राति इति, धी+रा+क। (२) धियम् ईरयति इति, धी+ईर्+अण्। धीरस्य भावः धैर्यम्, धीर+ष्यञ् (य)।

(९) विस्मितः—आश्चर्यं प्राप्तः । आश्चर्ययुक्त हुआ । वि+स्मि+क्त ।

(१०) स्वः—स्वकीयः औरसः, न तु दत्तक इत्यादि । स्वः पुत्रः से यहाँ अर्थ है निजी पुत्र, गोद लिया हुआ आदि नहीं ।

(११) पुत्रः—आत्मजः । पुत्रः—पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते इति । पुत्+त्रै (त्रा)+क । पुत् अर्थात् नरक से रक्षा करने वाला । पिता की विपत्ति आदि तथा वंशोच्छेद-जन्य पाप से रक्षक ।

(१२) विस्मयः—आश्चर्यम् । वि+स्मि+अच् (अ) । 'एरच्' से अच् प्रत्यय ।

(१३) भोः यह संबोधन सूचक अव्यय है ।

(१४) यहाँ पर अर्थान्तरन्यास अलंकार है । शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

(१५) विरम्यताम्—अभिषेकमंगलं त्यज । कहीं पर 'विश्राम्यताम्' भी पाठ मिलता है । विश्राम की अपेक्षा विराम का भाव यहाँ अधिक उपयुक्त है ।

(१६ अपनीत०—अपनीतः दूरीकृतः भारः राज्यभारः यस्य तत् अपनीत-भारम्, अतएव उच्छ्वसितं सुखितम् । (पहले बहुव्रीहि, तदनन्तर कर्मधारय) यह मन का विशेषण है । राज्य-वहन का भार हट जाने के कारण सुखी ।

(१७) दिष्ट्या भाग्येन । भाग्य से । 'दिष्ट' शब्द का अर्थ है भाग्य ।

(१८) यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिये कि राम का यह कथन 'स्वगत' (अपने लिये) है, किसी दूसरे को सुनाने के लिये नहीं कहा गया है । राम को यह प्रसन्नता है कि उन पर राज्य का भार नहीं लादा गया है । वह पिता को ही महाराज के पद पर देखना चाहते हैं । इससे राज्य के प्रति उनकी उपेक्षा सूचित होती है ।

५८—अवदातिका—भट्टिनि ! भर्तृदारकः खल्वागच्छति नापनीतं वल्कलम् । (भट्टिणि ! भट्टिदारओ खु आअच्छइ णावणीदं वक्कलं ।)

५९—रामः—मैथिलि ! किमास्यते !

६०—सीता—हम् आर्यपुत्रः । जयत्वार्यपुत्रः । (हं अय्यउत्तो । जेदु अय्यउत्तो ।)

६१—रामः—मैथिलि ! आस्यताम् । (उपविशति ।)

६२—सीता—यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति । (जं अय्यउत्तो आणवेदि ।) (उपविशति ।)

६३—अवदातिका—भट्टिनि ! स एव भर्तृदारकस्य वेषः । अलीकमिवैतद् भवेत् । (भट्टिणि ! सो एव्व भट्टिदारअस्स वेसो । अलिअं विअ एदं भवे ।)

६४—सीता—तादृशो जनोऽलीकं न मन्त्रयते । अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम । (तादिसो जणो अलिअं न मन्तेदि । अहवा बहुवुत्तन्ताणि राअउलाणि णाम ।)

५८—अवदातिका—महारानी, राजकुमार आ रहे हैं। आपने अभी तक वल्कल नहीं उतारा !

Avadātikā—Lady, the prince, indeed, is coming. And yet you have not removed the bark-garment (from your body).

५६—राम—मैथिलि, (यहाँ) क्यों बैठी हो !

Rāma—Maithili, what are you sitting here for ?

६०—सीता—ओह आर्यपुत्र हैं ! (उठकर) आर्यपुत्र की जय हो।

Sītā—Oh, it is my Lord ! (Rising). Let my Lord be victorious.

६१—राम—मैथिलि, बैठो । (राम बैठते हैं)

Rāma—Maithili, please sit down (He sits down).

६२—सीता—जैसी आपकी आज्ञा । (बैठ जाती है)

Sītā—As my, lord commands. (Sits down.)

६३—अवदातिका—(एक ओर मुँह करके) महारानी, राजकुमार का वेष तो वही (अर्थात् प्रतिदिन वाला) है । वह (राज्याभिषेक की) बात असत्य सी ज्ञात होती है ।

Avadātikā—(Aside) Lady, the dress of the prince is the same as before, therefore, the news (about his coronation) must have been untrue.

६४—सीता—(एक ओर मुँह करके) वैसे (चेटी या कंचुकी जैसे) व्यक्ति असत्य नहीं बोलते । अथवा राजकुलों में नाना प्रकार की घटनाएँ होती रहती हैं ।

Sita—(Aside) people of that sort do not tell a lie, or rather, royal palaces are generally full of various incidents.

Notes

५८—(१) नापनीतम्०—सीता ने परिहास में वल्कल पहना था, और किसी अन्य के देखने से पूर्व उसे उतार देना चाहिये था । परन्तु नाटककार को अभीष्ट है कि वह उसे न उतारे । अतः वल्कल पहनते ही राम का प्रवेश होता है और अवदातिका के संकेत करने पर भी सीता ने उसे नहीं उतारा । संभवतः राम के सहसा आ जाने से चाहते हुए भी न उतार सकी ।

६०—(१) हम्—आश्चर्यसूचक शब्द । जैसे हिन्दी में—ऐं, ऊँह, ओह । 'हम् आर्यपुत्र' के बाद (उत्थाय) (उठकर) होना चाहिये, क्योंकि आगे सीता को बैठने के लिये कहा गया है ।

६३—(१) भट्टिनि०—वक्तव्य नं० ६३ और ६४ के प्रारम्भ में (जनान्तिकम्) होना चाहिये । दोनों वक्तव्य सीता और अवदातिका की गुप्तवार्ता हैं, अतएव वक्तव्य नं० ६५ में राम ने पूछा है कि क्या कह रही हो ? यहाँ पर वैसे व्यक्ति से अभिप्राय कंचुकी बालाकि से है, क्योंकि उससे ही अभिषेक का समाचार प्राप्त हुआ था । (देखो वक्तव्य १.४१)

६५—राम— मैथिलि ! किमिदं कथ्यते ?

६६—सीता—न खलु किञ्चित् । इयं दारिका भणति—अभिषेकोऽभिषेक इति । (ण खु किंचि । इअं दारिआ भणादि—अहिसेओ अहिसेओ त्ति ।)

६७—राम—अवगच्छामि ते कौतूहलम्। अस्त्यभिषेकः। श्रूयताम्। अद्यास्मि महाराजेनोपाध्यायामात्यप्रकृतिजनसमक्ष-मेकप्रकारसंक्षिप्तं कोसलराज्यं कृत्वा बाल्याभ्यस्तमङ्कमारोप्य मातृगोत्रं स्निग्धमाभाष्य 'पुत्र ! राम ! प्रतिगृह्यतां राज्यम्' इत्युक्तः।

६५—राम – मैथिलि, यह क्या बात कर रही हो !

Rāma—Maithili, what are you talking about ?

६६—सीता—कुछ नहीं। यह लड़की कह रही थी—अभिषेक, अभिषेक।

Sītā—It is nothing serious. This girl was saying—corona-, tion coronation.

६७—राम—मैं तुम्हारी उत्सुकता को समझता हूँ। हाँ, अभिषेक था। सुनो। आज महाराज ने आचार्य, मन्त्रिवर्ग, मित्रजन तथा नगरवासिजनों के सम्मुख, एक प्रकार से कोसलराज्य को एकत्र करके, बाल्यकाल में अभ्यस्त गोद में बैठाकर, प्रेमपूर्वक मातृगोत्र (कौसल्यानन्दन) से संबोधित करके कहा—'पुत्र, राम, तुम इस राज्य को स्वीकार करो।'

Rāma—I understand your curiosity. There was a coronation. Listen. Today after having placed me on his lap, to which I was accustomed in my childhood and after having discribed in terms of endearment to the name of my mother, the great king addressed me in the presence of the priests, ministers, friendly persons and the citizens, having thereby consolidated the Kosala kingdom, saying, "My son, Rāma, accept this kingdom."

Notes

६५—(१) मैथिली—मिथिलानाम् विदेहानां राजधानी, तत्र भवः मैथिलः, स्त्री चेत् मैथिली। मिथिला+अण्+ङीप्। मिथिला विदेहों की राजधानी थी, वहाँ पर उत्पन्न होने वाला मैथिल, स्त्री मैथिली।

६६—(१) दारिका—यहाँ पर दारिका (लड़की) से किसका निर्देश है, यह विचारणीय है। अवदातिका नहीं हो सकती, क्योंकि उसने अभिषेक की सूचना नहीं दी थी। अतः यहाँ पर दारिका से 'चेटी' ही अर्थ समझना चाहिए, क्योंकि उसी ने यह समाचार सुनाया था। वह रंगमंच से गई नहीं थी। यहाँ इस वाक्य से पूर्व (चेटी निर्दिश्य) (चेटी की ओर संकेत करके) ऐसा उल्लेख होना चाहिये।

६७—(१) उपाध्यायः—आचार्यः। उपेत्य अधीयते अस्मात्। उप+अधि+इ+घञ् (अ)। जिसके पास जाकर विद्याध्ययन किया जाता है।

(२) अमात्य—अमा सह भवः अमात्यः। अमा+त्यप् (त्य) 'अमेह-क्वतसित्रेभ्य एव' वार्तिक (पा० ४. २. १०४) से त्यप् प्रत्यय। अमा अर्थात् साथ रहने वाला। इसी प्रकार अमावास्या का अर्थ है—जिस दिन सूर्य और चन्द्रमा साथ अर्थात् एक राशि में रहते हैं।

(३) प्रकृति शब्द के कई अर्थ हैं, मन्त्री, प्रियजन, प्रजा आदि। यहाँ पर 'अमात्य' शब्द निर्दिष्ट होने के कारण प्रजा अर्थ लिया जायगा।

६८—सीता—तदानीमार्यपुत्रेण किं भणितम्। (तदाणीं अय्यउत्तेण किं भणिदं।)

६९—रामः—मैथिलि! त्वं तावत् किं तर्कयसि,

७०—सीता—तर्कयाम्यार्यपुत्रेणाभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निःश्वस्य महाराजस्य पादमूलयोः पतितमिति। (तक्केमि अय्यउत्तेण अभणिअ किञ्चि दिग्घं णिस्ससिअ महाराअस्स पादमूलेसु पडिअं त्ति।)

७१—रामः—सुष्ठु तर्कितम्। अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते। तत्र हि पादयोरस्मि पतितः।

समं वाष्पेण पतता तस्योपरि ममाप्यधः ।
पितुर्मे क्लेदितौ पादौ ममापि क्लेदितं शिरः ॥६॥

६८—सीता—तब आपने क्या उत्तर दिया ?

Sitā—Then what was said by you in reply ?

६९—राम—मैथिलि, तुम क्या अनुमान करती हो ?

Rāma—maithili, what is your own guess ?

७०—सीता—मेरा अनुमान है कि आप कुछ न कह कर लम्बी साँस लेकर महाराज के चरणों पर गिर गये होंगे ।

Sītā—I think that without saying anything, you must have heaved a long sigh and fallen down at the feet of the great king.

७१—अन्वय - समम् उपरि पतता तस्य वाष्पेण मम शिरः क्लेदितम् अधः (पतता) मम अपि (वाष्पेण मे पितुः अपि पादौ क्लेदितौ ।

राम—तुमने ठीक अनुमान किया । समान शील वाले जोड़े विरले ही होते हैं । मैं वहाँ (वस्तुतः महाराज के) चरणों पर गिर गया था ।

एक साथ (दोनों के आँसू बहने लगे), मेरे (सिर के) ऊपर गिरते हुए पिता के आँसुओं ने मेरे सिर को गीला कर दिया और नीचे (पिता के चरणों पर गिरते हुए) मेरे भी (आँसुओं ने) पिता जी के दोनों चरणों को गीला कर दिया । (६)

Rāma—You have guessed rightly. Rarely are created couples of similar natures There I did fall at his feet.

By the tears simultaneously falling—his on me and mine down (on his feet), were rendered wet my head and the feet of my father. (6)

Notes

७१—(१) तुल्यशीलानि—तुल्यं परस्परानुकूलं शीलं स्वभावो येषां तानि । (बहुव्रीहिः) । परस्पर अनुकूल स्वभाव वाले ।

(२) द्वन्द्वानि—मिथुनानि । जोड़े । राम के कथन का भाव है कि हम दोनों का जोड़ा वस्तुतः समान शील वाला है अतः दोनों, दोनों के हृद्‌गत भावों को पूर्णतया जानते और समझते हैं ।

(३) समं०—इस श्लोक में 'भग्नप्रक्रमता दोष' है । यहाँ पर प्रथम दो पदों में जिस क्रम से वर्णन है, उसके सर्वथा विपरीत क्रम से तृतीय और चतुर्थ पद में वर्णन है । प्रथम चरण का सम्बन्ध तृतीय से होना चाहिये था, परन्तु ऐसा न होकर चतुर्थ चरण से है और द्वितीय का तृतीय चरण से सम्बन्ध है । अतः क्रमभंग दोष है । यदि अन्तिम दो पदों को निम्नलिखित रूप में पढ़ें तो क्रमभंग दोष दूर हो जाता है ।

क्लेदितं मे शिरः, पादौ क्लेदितौ च पितुर्मम ।

(४) पतता—च्वरता । गिरते हुए । पत्+शतृ (अत्)+(टाप् तृ० एकवचन) ।

(५)—मम—मेरा । 'मम' के स्थान पर 'मे' आदेश ।

(६) क्लेदितौ—आर्द्रतां गमितौ । गीले किये गये । क्लिद्+णिच्+क्त =क्लेदित । णिच् न होने पर 'क्लिन्न' रूप बनता है, गीला । क्लिद् आर्द्रीभावे (४) परस्मैपदी ।

(७) अनुष्टुपछन्द है । अनुष्टुप् का लक्षण है—

पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
षष्ठं गुरु विजानीयादेतत् पद्यस्य लक्षणम् ॥

७२—सीता—ततस्ततः । (तदो तदो ।)

७३—रामः—ततोऽप्रतिगृह्यमाणेष्वनुनयेषु आसन्नजरादोषैः स्वैः प्राणैरस्मि शापितः ।

७४—सीता—ततस्ततः । (तदो तदो ।)

७५—रामः—ततस्तदानीं

शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटेऽभिषेके
छत्रे स्वयं नृपतिना रुदता गृहीते ।

सम्भ्रान्तया किमपि मन्थरया च कर्णे
राज्ञः शनैरभिहितं च न चास्मि राजा ॥७॥

७६—सीता—प्रियं मे। महाराज एव महाराजः, आर्य-पुत्र एवार्यपुत्रः। (पिअं मे। महाराओ एव्व महाराओ, अय्य-उत्तो एव अय्यउत्तो)

७२—सीता—तब फिर (क्या हुआ)?

Sītā--What happened afterwards?

७३—राम—जब मैंने उनके (राज्य-ग्रहण के) अनुनयों को स्वीकार नहीं किया, तब उन्होंने वृद्धावस्था के कारण जीर्ण-शीर्ण प्राणों की शपथ दी।

Rāma—Then when I did not accept his solicitations (to accept kingdom), I was conjured by him in the name of his own life, already smitten by the infirmities of age

७४—सीता—तब फिर?

Sītā—And then?

७५—अन्वय—शत्रुघ्नलक्ष्मणगृहीतघटे अभिषेके (सति), छत्रे रुदता नृपतिना स्वयं गृहीते (सति), सम्भ्रान्तया मन्थरया च राज्ञः कर्णे किमपि शनैः अभिहितं च, (अहम्) च राजा न अस्मि।

राम—तब उस समय,

जब अभिषेक के लिए शत्रुघ्न और लक्ष्मण ने कलश सँभाला, (आनन्द के) अश्रु बहाते हुए महाराज ने स्वयं छत्र पकड़ा, शीघ्रतापूर्वक आकर मन्थरा ने राजा के कान में कुछ धीरे से कहा और मैं राजा नहीं हुआ ॥७॥

Rāma—Then on that occasion when for the coronation the jar was taken up by Sātrughna and Laksmana and the (royal) umbrella was held (over my head) by the king himself, shedding tears (of joy), something was whispered into the ear of the king by Mantharā, who came up in haste, and I was no longer a king. (7)

७६—सीता—अच्छा हुआ महाराज ही महाराज रहे और आर्यपुत्र आर्यपुत्र ही रहे।

Sita—This is a good news for me. The great king is still the great king, while my husband is just as he was before.

Notes

७३—(१) अप्रतिगृह्यमाणेषु—अस्वीक्रियमाणेषु । राज्याभिषेकार्थ प्रार्थनाओं के स्वीकार न करने पर। अ + प्रति + ग्रह् + यक् + शानच् + सुप्।

(२) आसन्न०—आसन्नः संप्राप्तः जरादोषः वृद्धावस्थाकृतदौर्बल्यादिकं येषां तैः। (बहुव्रीहि)। वृद्धावस्था के कारण दुर्बलता आदि से युक्त प्राणों की शपथ दी। 'प्राण' शब्द सदा बहुवचन होता है।

७५—(१) शत्रुघ्न०—शत्रुघ्नः लक्ष्मणश्च शत्रुघ्नलक्ष्मणौ, ताभ्यां गृहीत करघृतः घटः कलशः यस्मिन् तथाभूते। बहुव्रीहिः। शत्रुघ्न और लक्ष्मण ने कलश उठाया।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार अभिषेक के समय शत्रुघ्न अयोध्या में नहीं थे, वे भरत के साथ ही मामा के यहाँ थे।

गच्छता मातुलकुलं भरतेन तदानघ।
शत्रुघ्नो नित्य शत्रुघ्नो नीतः प्रीतिपुरस्कृतः ॥ अयोध्या० १.१

इसी प्रकार रामायण अयोध्याकांड ६४.१ में वर्णन है कि मामा के यहाँ से भरत और शत्रुघ्न को बुलाने के लिए तुरन्त दूत जावें।

परन्तु भास के वर्णन से ज्ञात होता है कि उन्हें शत्रुघ्न को अयोध्या में ही दिखाना अभीष्ट है। अतएव तृतीय अंक में मामा के यहाँ से लौटने पर भरत ने भट (सैनिक) से प्रश्न किया है कि 'क्या शत्रुघ्न मुझसे मिलने आए हैं?'

किं शत्रुघ्नो मामभ्युपगतः?

इसी प्रकार तृतीय अंक श्लोक २ 'भ्रातरः' में बहुवचन द्वारा दिखाया है कि तीनों भाई मेरे पहुँचते ही मुझसे गले मिलेंगे।

'त्वरितमुपगता इव भ्रातरः ०'

अतः ज्ञात होता है कि कवि ने नाटकीय दृष्टिकोण से यह कथानक में परिवर्तन किया है।

प्रो० परांजपे ने रामायण के आधार पर ही शत्रुघ्न का अयोध्या में न होना मानकर श्लोक में शत्रुघ्न शब्द को लक्ष्मण का विशेषण माना है अर्थात् शत्रुहन्ता लक्ष्मण। शत्रून् हन्तीति शत्रुघ्नः यः लक्ष्मणः तेन गृहीतः घटः यस्मिन् तथाविधे। ऐसा अर्थ करना संभव है, परन्तु कवि को अभिप्रेत न होने से यहाँ पर यह अर्थ नहीं लिया गया है।

(२) रुदता—आनन्दाश्रूणि मुञ्चता। यहाँ हर्ष के अश्रु बहाने से अभिप्राय है।

(३) सम्भ्रान्तया—सत्वरम् आगतया। शीघ्रता से आये हुए। सम्+भ्रम्+क्त=सम्भ्रान्त।

(४) मन्थरया—रामायण के अनुसार दासी मन्थरा ने ही कैकेयी को इस प्रकार की अनुचित माँग के लिए प्रेरित किया था।

(५) अभिहितम्—उक्तम्, कहा। अभि+धा+क्त। मन्थरा ने राजा के कान में धीरे से कहा, अतः राम सुन न सके थे।

(६) च न च०—दो 'च' का प्रयोग क्रिया-यौगपद्य का बोधक है। मन्थरा ने कान में कुछ कहा और उसी क्षण से राजा नहीं रहा।

(७) इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है। उसका लक्षण है—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

७६—प्रियं मे—इस वचन के द्वारा पुनः सीता के चरित्र की उज्ज्वलता ज्ञात होती है। उसे राम को राज्य न मिलने का सर्वथा खेद नहीं है; अपि तु प्रसन्नता है कि महाराज अब भी हैं।

७७—रामः—मैथिलि! किमर्थं विमुक्तालङ्कारासि?

७८—सीता—न खलु तावदाबध्नामि। (ण खु दाव आबज्झामि।)

७९—रामः—न खलु! प्रत्यग्रावतारितैर्भूषणैर्भवितव्यम्। तथाहि—

कर्णौ त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ
संस्रंसिताभरणगौरतलौ च हस्तौ ।
एतानि चाभरणभारनतानि गात्रे
स्थानानि नैव समतामुपयान्ति तावत् ॥८॥

७७—राम—मैथिलि, तुमने आभूषण क्यों उतार दिये हैं ?

Rāma—Maithili, why have you taken off your ornaments?

७८—सीता—नहीं, मैंने तो पहना ही नहीं है ।

Sītā—No. I have not put them on as yet.

७९—अन्वय—त्वरापहृतभूषणभुग्नपाशौ कर्णौ, संस्रंसिताभरणगौरतलौ च हस्तौ, गात्रे च आभरणभारनतानि एतानि स्थानानि न एव तावत् समताम् उपयान्ति ।

राम—नहीं तो (ऐसी बात नहीं है) । आभूषण अभी उतारे हुए जान पड़ते हैं । क्योंकि—

शीघ्रतापूर्वक आभूषण उतारने के कारण कानों के छेद (आभूषण धारण करने का स्थान) अभी तक मुड़े हुए हैं । बलपूर्वक आभूषणों के निकालने के कारण हाथों की हथेलियाँ लाल पड़ गई हैं । तुम्हारे शरीर में आभूषणों के भार से अवनत स्थान (अवयव) अभी तक समता (स्वाभाविक दशा) को प्राप्त नहीं कर सके हैं ॥८॥

Rāma—No, it does not appear to be so. The ornaments must have been taken off just now. For, your ears have their lobes curved owing to the ornaments being removed in haste and your hands have the surface of their palms turned reddish white on account of their ornaments being pushed down with force; and these various parts of your body, bent down with the burden of ornaments, have not as yet recovered heir evenness. (8)

Notes

७८—न खलु—राम के यह पूछने पर कि तुमने आभूषण क्यों उतार दिये हैं, सीता कहती हैं कि मैंने अभी पहने ही नहीं थे। अभी पहनना भूल गई थी। सीता का यह कथन वस्तुतः असत्य है।

७९—(१) न खलु—सीता के उत्तर पर आपत्ति करते हैं कि ऐसा नहीं है। आभूषण अभी उतारे गये हैं। (२) प्रत्यग्राव०—प्रत्यग्रं सद्यः अवतारितैः अपनीतैः। तुरन्त उतारे हुए। (३) त्वरापहृत०—त्वरया अपहृतानि अपनीतानि भूषणानि ययोः तौ त्वरापहृतभूषणौ, अतएव भुग्नः वक्रतामापन्नः पाशः अधः प्रान्तभागो ययोस्तौ। बहुव्रीहिः। शीघ्रतापूर्वक आभूषण निकालने के कारण कानों के अधोभाग मुड़ गये हैं। भुग्न—भुज+क्त (त)। त को न। पाश शब्द पृथक् रूप से कानों के अधोभाग के लिए है। समास आदि में सुन्दर आदि अर्थ का बोधक होता है—जैसे—कर्णपाश (सुन्दर कान), कचपाश (केशसमूह)। (४) संस्रंसिता०—संस्रंसितानि बलात् स्वस्थानात् प्रच्यावितानि यानि आभूषणानि कटकादीनि तैः गौरं तलं ययोः तादृशौ। बहुव्रीहिः। बलपूर्वक आभूषण निकालने के कारण लाल पड़ी हुई हथेलियाँ। (५) आभरण०—आभरणानां भारेण नतानि निम्नतां गतानि। तत्पुरुषः। आभूषणों के भार से झुके हुए। समता अर्थात् पूर्वावस्था। (६) यहाँ पर वसन्ततिलका छन्द है। लक्षण पहले लिखा जा चुका है। (७) यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार है।

८०—सीता—पारयत्यार्यपुत्रोऽलीकमपि सत्यमिव मन्त्रयितुम्। (पारेदि अय्यउत्तो अलिअं पि सच्चं विअ मन्तेदुं।)

८१—रामः—तेन हि अलङ्क्रियताम्॥ अहमादर्शं धारयिष्ये। (तथा कृत्वा निर्वर्ण्य।) तिष्ठ।

आदर्शे वल्कलानीव किमेते सूर्यरश्मयः।
हसितेन परिज्ञातं क्रीडेयं नियमस्पृहा॥९॥

अवदातिके! किमेतत्?

८२—अवदातिका—भर्तः! "किन्तु खलु शोभते न शोभते" इति कौतूहलेनाबद्धानि। (भट्टा ! किण्णु हु सोहदि ण सोहदि त्ति कोदूहलेण आबज्झा।)

८०—सीता—आप असत्य को भी सत्य की तरह वर्णन करने की क्षमता रखते हैं।

Sītā—My Lord has the power to represent even an un-truth as truth

८१—अन्वय—आदर्शे वल्कलानि इव, एते सूर्यरश्मयः किम्। इतिसेन परिज्ञातम्, इयं क्रीडा, नियमस्पृहा (वा)।

राम—अच्छा तो आभूषण पहनो। मैं दर्पण (हाथ में) लेता हूँ।

(दर्पण हाथ में लेकर और ध्यानपूर्वक देखकर) ठहरो। दर्पण में ये वल्कल से ज्ञात होते हैं। क्या ये सूर्य की किरणें हैं? तुम्हारे हँसने से ज्ञात हुआ (कि ये वस्तुतः वल्कल हैं)। क्या यह हँसी है (क्या ये वल्कल हँसी में पहने हैं?) या (धार्मिक) नियमों के धारण की अभिलाषा है? ॥९॥

अवदातिका यह क्या (बात) है?

Rāma—Then adorn yourself. I shall hold the mirror. (Doing so and observing closely) Wait.

In the mirror they (the garments you have put on) appear like bark garments. Are these the rays of the sun? I have come to know from your smile (that they are bark garments). Is this (mere) fun or a desire for observiug some religious vow? (9)

Avadātikā—What is it?

८२—अवदातिका—महाराज, "क्या ये अच्छे लगते हैं या नहीं?" इसीलिए कुतूहलतावश इन्होंने ये पहन लिए।

Avadātikā—My lord, the bark garments were put on out of curiosity to see whether they become her or not.

Notes

८०—(१) पारयति—शक्नोति। अलीकम्—असत्यम्, अतात्त्विकम्। सीता ने अपने बचाव के लिये ऐसा कहा है। उसने गम्भीरतापूर्वक ऐसा नहीं कहा, क्योंकि राम का कथन सत्य था। सीता इसी रूप में बात टालना चाहती हैं कि 'आप झूठ को भी सच की तरह वर्णन कर सकते हैं, सच होता तो कहना ही क्या था।'

८१—(१) तेन हि—यदि ऐसी बात है तो। यदि तुमने अभी तक आभूषण धारण नहीं किये हैं, तो अब धारण करो।

(२) आदर्श०—यह राम का दर्पण दिखाना, परिहास नहीं समझना चाहिये। पहले दर्पण लाने के द्वारा अभिषेक का समाचार मिला था, अब दर्पण के द्वारा वल्कलों का अस्तित्व ज्ञात हुआ है। इस प्रकार दर्पण का उपयोग कवि ने दो कार्यों के लिये उपयोग किया है।

(३) निर्वर्ण्य—दर्पणे सीतायाः बिम्बं सम्यक्तया निरीक्ष्य। दर्पण में सीता के प्रतिबिम्ब को ध्यानपूर्वक देखकर। निर्+वर्ण्+ल्यप्। यहाँ पर यह आश्चर्य की बात प्रतीत होती है कि राम अभी तक यह नहीं देख पाये थे कि सीता वल्कल पहने हुए है। दर्पण में ध्यानपूर्वक देखने पर उन्हें वल्कलों का ज्ञान हुआ। इसके निम्नलिखित समाधान हो सकते हैं—(१) सीता के शरीर की स्वर्णिम शोभा से वल्कलों का वर्ण भी स्वर्णिम सा प्रतीत हो रहा था, अतः वे सहसा वल्कलों को न पहचान सके, अतएव आगे श्लोक में उनके सन्देह का वर्णन है कि क्या ये सूर्य की किरणें हैं ? (२) प्रत्यक्ष देख कर भी वे वल्कलों की चर्चा उचित नहीं समझते थे, अतएव अप्रत्यक्ष रूप से दर्पण में देखकर उसका निर्देश करते हैं। जैसा कि साधारणतया शिष्टाचार के कारण व्यवहार होता है। प्रत्यक्ष-निर्देश को शिष्टाचार की दृष्टि से अनुचित माना जाता है।

(४) वल्कलानीव—वल्कल पहनने का कोई अवसर न था, अतएव दर्पण में देख कर राम कहते हैं कि ये वल्कल से प्रतीत होते हैं। यहाँ पर

यह ध्यान देने योग्य है कि अब तक वल्कल शब्द का प्रयोग (देखो वक्तव्य नं० १६, १७, २३, २४, ३५ और ५८) एक वचन में (वल्कलम्) हो रहा था, परन्तु यहाँ पर सहसा बहुवचन (वल्कलानि) का प्रयोग हुआ है। यह एकवचन से बहुवचन हो जाना विचारणीय है। इसका उत्तर ज्ञात होता है –"जातावेकवचनम्" अर्थात् जाति का बोध कराने में एकवचन होता है। अतएव बहुवचन के अर्थ में एकवचन का प्रयोग पहले हुआ है। आगे प्रायः बहुवचन का ही प्रयोग हुआ है। 'वल्कल' शब्द पुल्लिंग और नपुंसक-लिंग दोनों हैं।

वल्कं वल्कलमस्त्रियाम्, इत्यमरः।

अतएव आगे 'वल्कलाः' प्रयोग भी हुआ है (१. १३५)। ऐसा ज्ञात होता है कि अवदातिका एक से अधिक वल्कल या वल्कलों का बंडल ही उठा कर भाग आई थी, जैसा कि वक्तव्य (१. १३५) से ज्ञात होता है।

(५) किमेते०—सीता के स्वर्णिम रूप से वल्कल स्वर्णिम हो रहा था। अतएव राम को सन्देह हुआ कि क्या ये सूर्य की किरणें हैं। यहाँ पर सन्देह अलंकार है।

(६) हसितेन०—सीता के हँसने पर वे कहते हैं कि तुम्हारे हँसने से ज्ञात होता है कि ये वल्कल ही हैं। हसित—हस् + क्त। परिज्ञात—परि + ज्ञा + क्त।

(७) क्रीडेयं०—क्रीडा + इयम्। यहाँ पर 'क्रीडा इयं, नियमस्पृहा वा' ऐसा होना चाहिये। भास ने इसी प्रकार कितने ही स्थानों पर 'वा' उचित होते हुए भी प्रयोग नहीं किया है। वहाँ पर 'वा' (अथवा) का अर्थ समझना चाहिये। यथा—'किं क्षमा, निर्मनस्विता (वा)' (१. ११९), 'कथं तिष्ठतु, यातु (वा) इति' (४. २४) यहाँ पर दो ऐच्छिक हैं—(१) ये वल्कल हँसी में पहने हैं, या (२) नियम-पालनार्थ पहने हैं ?

(८) यहाँ पर अनुष्टुप् छन्द है। लक्षण के लिये देखो १. ४. श्लोक।

८३—रामः—मैथिलि ! किमिदम्। इक्ष्वाकूणां वृद्धालङ्कारस्त्वया धार्यते। अस्त्यस्माकं प्रीतिः। आनय।

८४—सीता—मा खलु मा खल्वार्यपुत्रोऽमङ्गलं भणतु । (मा खु मा खु अय्यउत्तो अमङ्गलं भणादु ।)

८५—रामः—मैथिलि ! किमर्थं वारयसि ?

८६—सीता—उज्झिताभिषेकस्यार्यपुत्रस्यामङ्गलमिव मे प्रतिभाति । (उज्झिदाहिसेअस्स अय्यउत्तस्स अमङ्गलं विअ मे पडिहादि ।)

८७—रामः—

मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः ।
शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया ॥१०॥

८३—राम—मैथिलि, क्या बात है ? इक्ष्वाकुओं के वृद्धावस्था के अलंकार (इन वल्कलों को) क्यों धारण कर रही हो ? मैं भी (इन वल्कलों को) पहनना चाहता हूँ । लाओ तो ।

Rāma—Maithili, what is this, that you put on this ornament of the persons of the Ikṣvāku race in old age ? I have also a liking for it. Bring me one.

८४—सीता—नहीं, नहीं, आप ऐसी अशुभ बात मुँह से न निकालें ।

Sītā—No, no, my Lord should not utter these inauspicious words.

८५—राम—मैथिलि, क्यों रोकती हो ?

Rāma—Maithili, why do you prevent me ?

८६—सीता—आपका राज्याभिषेक अभी रुका है, अतएव मुझे आप का यह (वल्कल धारण) अशुभ सा प्रतीत होता है ।

Sītā—This appears as if inauspicious to me in the case of my lord, the coronation ceremony of whom has just been abandoned.

८७—अन्वय—परिहासे विशेषतः स्वयं मन्युं मा उत्पाद्य । हि यदा मे शरीरार्धेन त्वया पूर्वम् आबद्धाः ।

राम—स्वयं अमंगल की आशंका मत करो, विशेष रूप से विनोद के समय और जब मेरी अर्धांगिनी होकर तुमने पहले (वल्कल) पहन लिये हैं (तो मेरे पहनने में क्या दोष ?) ॥१०॥

Rāma—Do not yourself entertain an evil idea, especially in a matter of jest; and when they (bark-garments) have already been put on by you (who form) half of my body. (10)

Notes

८३—(१) इक्ष्वाकूणाम्—इक्ष्वाकुर्नाम वैवस्वतमनोः पुत्रः अयोध्यावासिरघुकुलस्य मूलपुरुषः । इक्ष्वाकोः गोत्रापत्यानि पुमांसः इक्ष्वाकवः तेषाम् । इक्ष्वाकु वैवस्वत मनु के पुत्र तथा अयोध्यावासी रघुकुल के आदि-पुरुष थे । उनके वंशज ऐक्ष्वाकव., बहुवचन में इक्ष्वाकु शब्द ही रहता है ।

(२) वृद्धालंकारः—वृद्धानाम् अलंकारः । वृद्धों का आभूषण या वृद्धावस्था में धारण करने योग्य आभूषण ।

८६—(१) उज्झिता०—उज्झितः अभिषेकः येन तस्य । बहुव्रीहि । जिसने अभिषेक का परित्याग किया है ।

८७—(१) मा उत्पाद्य—'मा' अव्यय का अर्थ है 'मत', 'नहीं' । 'मा स्म मालं च वारणे' इत्यमरः । 'अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा' (पा० ३. ४. १८) नियम के अनुसार निषेधार्थक 'अलम्' और 'खलु' के साथ क्त्वा (त्वा) प्रत्यय होता है, जैसे—अलं कृत्वा आदि । 'मा' और 'अलम्' का अर्थ एक ही है, अतः ज्ञात होता है कि इसी सादृश्य के आधार पर भास ने 'मा' के साथ भी क्त्वा या ल्यप् का प्रयोग किया है । पाणिनीय नियमानुसार यह प्रयोग अशुद्ध है । भास ने इस प्रकार 'मा' के साथ क्त्वा प्रत्यय का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया है ।

(२) परिहासे०—विनोद के समय विशेष रूप से अशुभ या अमंगल की भावना मन में लाना उचित नहीं है ।

(३) शरीरार्धेन०—स्त्री 'अर्धाङ्गिनी' कही जाती है, क्योंकि वह पति का आधा अंग है । स्त्री और पुरुष मिल कर एक अंग पूर्ण होता है ।

'अर्धो वा एष आत्मनो यत् पत्नी' इति श्रुतिः ।

जब मेरे अर्धांगरूप तुमने वल्कल धारण कर लिया तो मेरे धारण करने में कोई दोष नहीं है ।

(४) यहाँ पर अनुष्टुप् छन्द है ।

(नेपथ्ये)

८८—हा हा महाराजः ।

८९—सीता—आर्यपुत्र ! किमेतत् ? (अय्यउत्त ! किं एदं ?)

९०—रामः—(आकर्ण्य)

नारीणां पुरुषाणां च निर्मर्यादो यदा ध्वनिः ।
सुव्यक्तं प्रभवामीति मूले दैवेन ताडितम् ॥ ११ ॥

तूर्णं ज्ञायतां शब्दः ।

(प्रविश्य)

९१—काञ्चुकीयः—परित्रायतां परित्रायतां कुमारः !

९२—रामः—आर्य ! कः परित्रातव्यः ?

९३—काञ्चुकीयः—महाराजः ।

(नेपथ्य में)

८८—हाय ! हाय !! महाराज !!!

(*Behind the curtain*)

Alas ! Alas ! The great king—

८९—सीता—आर्यपुत्र, यह क्या ?

Sitā—My lord, what can this be ?

९०—अन्वय—नारीणां पुरुषाणां च यदा ध्वनिः निर्मर्यादः, सुव्यक्तं प्रभवामि इति दैवेन मूले ताडितम् ॥

राम—(सुनकर)

क्योंकि स्त्रियों और पुरुषों की ध्वनि (कोलाहल) असाधारण रूप से हो रही है, अतः स्पष्ट है कि भाग्य ने 'सर्वशक्तिमान् हूँ' इस विचार से मूल पर (महाराज पर) आघात किया है ॥ ११ ॥

शीघ्र कोलाहल (का कारण) ज्ञात करो।

Rāma—(Listening.)

Since this noise of women and men is loud beyond limit, it is quite evident, Fate thinking itself to be all-powerful, has struck at the very root (of our good luck). (11)

Let at once the (cause of the) noise be ascertained.

(*प्रविष्ट होकर*)

६१—कंचुकी—कुमार, रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

(*Entering*)

Chamberlain.—May the prince protect, may the prince protect.

६२—राम—आर्य, किसकी रक्षा करनी है ?

Rāma.—Noble one, who is to be protected ?

६३—कंचुकी—महाराज की।

Chamb.—The great king.

Notes

८८—(१) हा हा०—हाय, हाय, दो बार कहना अत्यधिक दुःख की अवस्था का सूचक है।

९०—(१) निर्मर्यादः—मर्यादाम् अतिक्रान्तः निर्मर्यादः । तत्पुरुष । सीमा का उल्लंघन करके। (२) यदा—यतः, क्योंकि। यहाँ पर 'यदा' 'यतः' के अर्थ में है। (३) सुव्यक्तम्—सुस्पष्टम्। स्पष्ट है। असाधारण कोलाहल हो रहा है, अतः स्पष्ट है कि दैव (भाग्य) ने कोई आपत्ति डाली है। (४) प्रभवामीति—'अहं प्रभवामि सर्वं कर्तुं शक्नोमि' इति विचार्य। भाग्य ने यह सोचकर कि मैं सब कुछ कर सकता हूँ। (५) मूले—मूलभूते महाराजे प्रहृतम्। मूलभूत महाराज पर प्रहार किया है। राम को भय हुआ कि कोई

महान् आपत्ति दशरथ पर आ पड़ी है। (६) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है। (७) तूर्णम्०—कोलाहल का कारण जानने के लिए अवदातिका या चेटी को कहा गया है।

९४—रामः—महाराज इति । आर्य ! ननु वक्तव्यमेक-शरीरसंक्षिप्ता पृथिवी रक्षितव्येति । अथ कुत उत्पन्नोऽयं दोषः ?

९५—काञ्चुकीयः—स्वजनात् ।

९६—रामः—स्वजनादिति । हन्त ! नास्ति प्रतीकारः ।

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा ।
कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति ॥१२॥

६४—राम—महाराज को ? आर्य, तब तो आपको कहना चाहिये कि एक शरीर में संक्षिप्त रूप से विद्यमान समग्र पृथ्वी की रक्षा करनी है। किन्तु यह विपत्ति कहाँ से उत्पन्न हुई है ?

Rāma.—Is it the great king. Noble one, you should rather say the whole earth, compressed into one body, is to be protected But from whom has this danger arisen ?

६५—कंचुकी—आत्मीय जन से ही।

Chamb—From a relative.

६६—अन्वय—अरिः शरीरे प्रहरति, तथा स्वजनः हृदये (प्रहरति), कस्य स्वजनशब्दः मे लज्जाम् उत्पादयिष्यति ।

राम—क्या आत्मीय जन से ? ओह ! तब तो इसका कोई प्रतिकार नहीं है।

शत्रु शरीर पर प्रहार करता है, किन्तु आत्मीय-जन हृदय पर (प्रहार करते हैं)। इस 'स्वजन' शब्द द्वारा बोध्य कौन है, जो मेरे लिए लज्जा का कारण होगा ॥१२॥

Rāma—You say from a relative. Alas ! Then there can be no remedy for it.

An enemy strikes at the body, a relative does so at the heart. To whom does this term 'a relative' belong, that will cause shame to me. (12)

Notes

९४—(१) ननु वक्तव्यम्—'महाराज की रक्षा कीजिए' यह सुन कर राम को आश्चर्य हुआ, क्योंकि जो सारी पृथ्वी की रक्षा कर सकते हैं, उनकी रक्षा का प्रश्न आश्चर्य की बात थी। कंचुकी दशरथ को मूर्च्छावस्था में देख कर सूचनार्थ राम के पास आया था। (२) एक शरीर०— एकस्मिन् शरीरे महाराजरूपे संक्षिप्ता संक्षिप्य स्थिता। तत्पुरुष। महाराज दशरथरूपी एक शरीर में संक्षिप्त रूप से विद्यमान पृथ्वी। दशरथ सम्पूर्ण पृथ्वी के राजा थे, उनकी रक्षा करने का अभिप्राय होता है सारी पृथ्वी की रक्षा। संक्षिप्त—सम्+क्षिप्+क्त (त)। (३) दोषः—आपत्तिः। यहाँ पर दोष का भाव विपत्ति है।

९६—(१) नास्ति०—यदि किसी अन्य से विपत्ति आई हुई होती तो उसका वध किया जा सकता था, या उसको पकड़कर कारागार आदि में रख देते, परन्तु आत्मीय जन के साथ यह व्यवहार नहीं किया जा सकता, अतः असाध्य स्थिति है। प्रतीकार—प्रति+कृ+घञ् (अ)। 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्' से प्रति की इ को दीर्घ। (२) शरीरे०—भास की यह उक्ति बहुत ही मार्मिक है एवं सत्य है। शत्रु शरीर को ही दुःख देता है, परन्तु स्वजन (अपने संबन्धी) शत्रुवत् होने पर सीधे हृदय पर चोट करते हैं, क्योंकि वे परिवार की आन्तरिक स्थिति को जानते हैं। उनका आघात सहन करना अत्यन्त कठिन होता है। (३) कस्य०—किसके नाम के साथ जुड़ा हुआ यह 'स्वजन' शब्द है, जो मुझे सदा के लिए लज्जित करेगा, क्योंकि मैं उसका प्रतीकार नहीं कर सकूँगा। कस्य=केन धृतः, किसके द्वारा धारण किया गया। (४) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

९७—काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याः कैकेय्याः ।

९८—रामः—किमम्बायाः ? तेन हि उदर्केण गुणेनात्र भवितव्यम् ।

९९—काञ्चुकीयः—कथमिव ?

१००—रामः—श्रूयताम्,

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या ।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ॥१३॥

१०१—काञ्चुकीयः—कुमार ! अल्पमुपहतासु स्त्रीबुद्धिषु स्वमार्जवमुपनिक्षेप्तुम् । तस्या एव खलु वचनाद् भवदभिषेको निवृत्तः ।

६७—कंचुकी—महारानी कैकेयी का ।

Chamb.—Of the respected kaikeyi.

६८—राम—क्या ? माता (कैकेयी) का (स्वजनशब्द) ? तब तो इसका परिणाम अवश्य गुणकारी (सुखद) होगा ।

Rāma—What ! to my mother. Then in this case the result will be blissful.

६६—कंचुकी—किस तरह ?

Chamb.—How possibly ?

१००—अन्वय—यस्याः भर्ता शक्रसमः, या च मया पुत्रवती, तस्याः कस्मिन् फले स्पृहा, येन अकार्यं करिष्यति ।

राम—सुनो,

जिसका पति इन्द्र के तुल्य है, मैं जिसका पुत्र हूँ, उसे किस फल (वस्तु) की कामना हो सकती है ? जिसके कारण वह कोई दुष्कार्य करे ॥१३॥

Rāma.—Listen

For (the accomplishment of, what object can there be a longing in the mind of one, whose husband is like Indra, and

who is blessed with a son by having me, that she may be tempted to commit any evil deed ? (13)

१०१—कंचुकी—कुमार, दुष्ट-स्वभाववाली स्त्री-बुद्धि पर आप अपनी सरलता का आरोप मत कीजिये। उसी के कथन से तो आपका अभिषेक रुक गया।

Chamb.—Prince, you should not attribute your own straight forwardness to the perverse tendencies of a woman's mind. Indeed, your coronation was stopped at her bidding.

Notes

९८—(क) उदर्केण०—'उदर्क' शब्द का अर्थ है, 'भावी परिणाम' 'उदर्कः फलमुत्तरम्' इत्यमरः। परिणामेन गुणकारिणा भवितव्यम्, तो परिणाम गुणकारी होना चाहिये। उदर्क—उदर्क्यते, उदच्यते वा इति। उत्+अर्क्+अच् (अ) या उद्+अृच्+अच् (अ)।

१००—(१) शक्रसमः०—जब पति इन्द्रतुल्य है और शक्तिशाली मुझ जैसा पुत्र है तो उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जायेंगी, वह पाप क्यों करेगी। शक्रेण समः तुल्यः—शक्रसमः। तत्पुरुष। भर्ता—भृ+तृच (तृ)। पुत्रवती—पुत्र+मतुप् (मत्)+ङीप् (ई)। स्पृहा—स्पृह्+अङ् टाप्। अकार्य—कृ+ण्यत्=कार्य+नञ् समास। (२) यहाँ पर अनुष्टुप् छन्द है।

१०१—(१) उपहतासु—स्वभावदुष्टासु, स्वभाव से ही दुष्ट। (२) स्त्रीबुद्धिषु—स्त्रियां मतिषु। स्त्रियों की बुद्धि पर। (३) आर्जवम्—बुद्धिसारल्यम्। सरलता। ऋजु+अण्, ऋजोर्भावः। (४) अलम् उपनिक्षेप्तुम्—यहाँ पर 'अलम्' निषेध अर्थ में है, अतः 'अलंखल्वोः०' इस नियम से क्त्वा प्रत्यय ही होना चाहिये, 'उपनिक्षिप्य,' तुमुन् नहीं।

१०२—रामः—आर्य! गुणाः खल्वत्र।

१०३—काञ्चुकीयः—कथमिव ?

१०४—रामः—श्रूयताम्,

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव ताव-
न्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव ।
नवनृपतिविमर्शे नास्ति शङ्का प्रजाना-
मथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे ॥१४॥

१०५—कांचुकीयः—अथ च तयाऽनाहूतोपसृतया भरतोऽभिषिच्यतां राज्य इत्युक्तम् । अत्राऽप्यलोभः ?

१०२—राम—आर्य, इसमें बहुत से लाभ हैं ।

Rāma—Noble one, but there are advantages therein.

१०३—कंचुकी—कैसे ?

Chamb.—How, pray ?

१०४—अन्वय—तावत् पार्थिवस्य एव वनगमननिवृत्तिः, मम पितृपरवत्ता स एव बालभावः, प्रजानां नवनृपतिविमर्शे शङ्का नास्ति, अथ च मे भ्रातरः परिभोगैः न वञ्चिताः ।

राम—सुनिए, प्रथम तो महाराज का वन जाना रुक गया, मैं पिता की छत्रच्छाया में रह गया, वही मेरा बाल्य-काल का सुख रह गया । "नवीन राजा कैसा होगा ?" यह सब चिन्ता प्रजा को नहीं करनी पड़ी और मेरे भाई भी राज्य-सुख के उपभोग से वंचित नहीं हुए ॥१४॥

Rāma. Listen.

In the first place, the king is spared from retirement to the forest; then my dependence on my father remains intact; the state of my boyhood is retained as before. The subjects will have no misgivings about the administration (of the kingdom) by a new king; and lastly my brothers are not deprived of the enjoyments of pleasure (which they share with me now). (14)

१०५—कंचुकी—और बिना बुलाए उसने पास जाकर कहा कि 'भरत का राज्याभिषेक कर दीजिये' । क्या इस कार्य में भी उसने अपने अलोभ (गुण) का परिचय दिया है ?

Chamb.—But she, coming near without being called, said that Bharata should be installed on the throne. Even in doing this did she display (the virtue of the) absence of avarice ?

Notes

१०४—(१) वनगमन०—राम ने यहाँ पर अपने अभिषेक न होने के पाँच लाभ गिनाए हैं—(१) पिता का वन को न जाना (२) अपना पिता के निरीक्षण में रहना (३) बाल्य-काल का आनन्द, (४) 'नवीन राजा कैसा होगा' इसकी चिन्ता प्रजा को न होना, (५) भाइयों का समान राज्य-सुख से वंचित न होना। (२) तावत्—प्रथमम्। पहले तो।। (३) पार्थिवस्य—नृपतेः। महाराज दशरथ की। पृथिव्याः ईश्वरः, पार्थिवः, पृथ्वी+अण्। (४) वनगमन०—वनगमनात् अरण्यगमनात् निवृत्तिः विरामः। तत्पुरुष। वन-गमन से रुक जाना। राम का अभिषेक होने पर वे निश्चित रूप से वन में चले जाते। राम भी सीता के सदृश ही पिता के सुख के लिये विशेष चिन्तित हैं। गमन—गम्+ल्युट् (अन)। निवृत्ति—नि+वृत्+क्तिन् (ति)। (५) पितृपरवत्ता—पितृवशवर्तित्वम्। पिता के अधीन रहना। पितुः परवत्ता अधीनता। तत्पुरुष। परवत्ता—पर+मतुप्+तल्+टाप्। (६) नवनृपति०—नवस्य नूतनस्य नृपतेः राज्ञः विमर्शे परीक्षणे। तत्पुरुष। नवीन राजा के परीक्षण में। अथवा नवनृपतेः विमर्शे राज्यतन्त्रचिन्तने। तत्पुरुष। नवीन राजा के प्रबन्ध की चिन्ता। विमर्श—वि+मृश्+घञ् (७) परिभोगैः—परि परितः भोगैः परिभोगैः। राजकीय-सुख। परिभोग-परि+भुज्+घञ्। (८) वञ्चिताः—वञ्चनां प्रापिताः। ठगे गये। वञ्च्+णिच्+क्त। (९) इस श्लोक में मालिनी छन्द है। उसका लक्षण है—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

१०५—(१) अनाहूतोप०—अनाहूता चासौ उपसृता च। कर्मधारय समास। बिना बुलाये पहुँची हुई। आहूत—आ+ह्वे (ह्वा)+क्त (त)=आहूत+नञ् समास। उपसृत—उप+सृ+क्त (त)। (२) अत्राप्यलोभः—क्या इससे कैकेयी की लोभ-भावना प्रकट नहीं होती ? अथवा इसमें भी

अलोभरूपी गुण मिश्रित है। 'गुणाः खल्वत्र' के ऊपर यह व्यंग्य है। लुभ् + घञ् = लोभ + नञ् समास = अलोभः, न लोभः—अलोभः ।

१०६—रामः—आर्य ! भवान् खल्वस्मत्पक्षपातादेव नार्थमवेक्षते । कुतः;

शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थे यदि याच्यते ।
तस्या लोभोऽत्र नास्माकं भ्रातृराज्यापहारिणाम् ॥१५॥

१०७—काञ्चुकीयः—अथ ।

१०८—रामः—अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि महाराजस्य वृत्तान्तस्तावदभिधीयताम् ।

१०६—अन्वय—शुल्के विपणितं राज्यं पुत्रार्थे यदि याच्यते । अत्र तस्याः लोभः, भ्रातृराज्यापहारिणाम् अस्माकं न (लोभः) ।

राम—आर्य, आप हमारे प्रति पक्षपात के कारण ही वास्तविकता को नहीं देख रहे हैं । क्योंकि विवाह के अवसर पर प्रतिज्ञात राज्य यदि पुत्र के लिए माँगती है, तब तो वह लोभी है, परन्तु भाई के राज्याधिकार को अपहरण करनेवाला मैं (लोभी) नहीं ॥१५॥

Rāma. Noble one, simply through partiality towards us you do not see the real thing. For,—

If the kingdom promised to her by way of dowry is claimed by her for her son, you say it is avarice on her part, but on the part of me, who was going to deprive my brother of his kingdom ? (15)

१०७—कंचुकी—और फिर—।

Chamb.—Then again -

१०८—राम—अब और अधिक माता की निन्दा नहीं सुनना चाहता । पहले महाराज का समाचार बताइए ।

Rāma.—I do not wish to hear any more reproach against my mother. Tell at once the news about the great king.

Notes

१०६—(१) अस्मत्पक्षपातादेव—पक्षे पातः पक्षपातः तस्मात् । हमारे प्रति झुकाव के कारण, अर्थम्—वास्तवम् अर्थम् । वास्तविक स्थिति को। (२) शुल्के—विवाहकालिके कन्यादेये। विवाह समय पर कन्या को जो दिया जाता है। उस समय दशरथ ने कैकेयी के पुत्र को राज्य देने का वचन दिया था।

'शुल्कं विवाहार्थं जामातुर्गृह्यते च यत्।' इति शाश्वतः।

(३) विपणितं०—विपणित विक्रीतम्। खरीदे हुए। 'विक्रयो विपणः पणः' इति वैजयन्ती। (४) भ्रातृराज्या०—भ्रातुः राज्यम् अपहरन्तीति = भ्रातृराज्यापहारिणः तेषाम्। भाई के राज्य का अपहरण करने वाले। (५) इस श्लोक में व्यंग्य है कि कैकेयी तो अपनी उचित माँग माँगने पर भी लोभी कही जा रही हैं, और मैं भाई के राज्य का अपहरण करने पर भी लोभी नहीं ?

(६) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

१०८—परिवादं—निन्दाम्। निन्दा को। परिवाद—परि + वद् + घञ्। महाराजस्य—राम को महाराज के शुभ समाचार जानने की ही चिन्ता है, अतः अभिषेक वाली बात बन्द करके उन्होंने दशरथ के स्वास्थ्य का हाल पूछा है।

१०९ – कांचुकीयः—ततस्तदानीम्,

शोकादवचनाद् राज्ञा हस्तेनैव विसर्जितः।
किमप्यभिमतं मन्ये मोहं च नृपतिर्गतः ॥१६॥

११०—रामः—कथं मोहमुपगतः।

(नेपथ्ये)

१११—कथं कथं मोहमुपगत इति।

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया।

११२—रामः—(आकर्ण्य पुरतो विलोक्य)
अक्षोभ्यः क्षोभितः केन लक्ष्मणो धैर्यसागरः ।
येन रुष्टेन पश्यामि शताकीर्णमिवाग्रतः ॥१७॥

१०६—अन्वय—शोकात् अवचनात् राज्ञा हस्तेन एव विसर्जितः । नृपतिः मोहं गतः च, किमपि अभिमतं मन्ये ।

कंचुकी—तब उस समय,

शोक के कारण मौन राजा ने हाथ (के संकेत) से ही (मुझे आपके पास) भेजा । मैं समझता हूँ, यह कुछ अच्छा ही हुआ कि महाराज मूर्च्छावस्था को प्राप्त हो गये ॥१६॥

Chamb.—Thereafter ,at that time,

I was sent (to you) by the king with (a motion of) his hand alone as he was struck dumb through sorrow and it was somewhat desirable that the king fell into a swoon, I think. (16)

११०—राम—क्यों वे मूर्च्छित हो गए ?

Rāma—Has he fallen into a swoon ?

(नेपथ्य में)

१११—क्यों (पूछते हो)—'क्यों वे मूर्च्छित हो गए ? यदि राजा की मूर्च्छावस्था को तुम सहन नहीं कर सकते तो धनुष को धारण करो । दया-भाव मत दिखाओ ।

(*Behind the curtain*)

How do you ask, 'Has he fallen into a swoon ?'

If yon cannot bear the swooning of the king, then take up your bow. Let no mercy be shown ;—

११२—अन्वय—धैर्यसागरः अक्षोभ्यः लक्ष्मणः केन क्षोभितः ? रुष्टेन येन अग्रतः शताकीर्णम् इव पश्यामि ।

राम—(शब्दों को सुनकर और सामने देखकर) धैर्य के समुद्र, कभी क्षुब्ध न होने वाले लक्ष्मण को किसने क्रुद्ध कर दिया है ? जिसके क्रुद्ध होने से मैं अपने सामने सैकड़ों (लक्ष्मणों) की भीड़ सी देखता हूँ ॥२७॥

Rāma—(Hearing the words and looking in front.)

By whom is provoked Lakṣmaṇa, the ocean of fortitude and incapable of being agitated ? Who provoked, I behold a crowd of hundred (Lakṣmaṇas) in front of me. (17)

Notes

१०९—(१)शोकात्—कैकेयीवचनोत्पन्नाद् दुःखात्, कैकेयी के वचन से उत्पन्न दुःख से। शोक—शुच+घञ्(अ)। (२) अवचनात्—किमपि अनुक्त्वा। कुछ कहे बिना। वचन—वच्+ल्युट्(अन)। (३) हस्तेन एव—हस्तसंकेतेन एव। हाथ के संकेत से ही। (४) विसर्जितः संप्रेषितः। (अहमितिशेषः)। भेजा हुआ। (मैं) विसर्जित—वि+सृज्+णिच्+क्त। (५) किमप्यभिमतं मन्ये—इसका दो प्रकार से अर्थ हो सकता है—(१) 'अभिमतं' 'मोहम्' का विशेषण मानने पर अर्थ होगा—किमपि अभिमतम् इष्टम् मोहं गतः प्राप्तः, इति मन्ये। राजा मूर्च्छावस्था को प्राप्त हुए, जो कि उनके लिए इष्ट थी, ऐसा मैं समझता हूँ। मूर्च्छावस्था में दुःख या शोक सरलता से सहा जा सकता है, चेतनावस्था में उतनी सरलता से नहीं। (२) किमपि०—इत्यादि का पृथक् वाक्य मानने पर इसका अर्थ होगा, राजा मूर्च्छावस्था को प्राप्त हुए और इसको मैं कुछ अंश तक अभिमत (अभीष्ट, उचित) समझता हूँ। अभिमत—अभि+मन्+क्त। (६)मोहम्—मूर्च्छावस्थाम्, संज्ञाहीनताम्। मूर्च्छावस्था को। मोह—मुह+घञ्। (७) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

१११—(१) कथं कथम्०—यह नेपथ्य में लक्ष्मण की उक्ति है, जो कि उन्होंने क्रोध में कहा है। पहले 'कथम्' का अर्थ यहाँ पर है 'क्यों (पूछते हो ?)'। अर्थात् प्रश्न पूछने का समय नहीं है। यदि राजा की मूर्च्छावस्था

असह्य है तो धनुष उठाओ और विपत्ति का प्रतिकार करो। दया करने से काम नहीं चलेगा।

११२—(१) अक्षोभ्यः—क्षोभयितुम् अशक्यः। जिसको सरलता से क्रुद्ध नहीं किया जा सकता। क्षोभ्यः—क्षुभ्—णिच् + यत् (य) कर्मणि = क्षोभ्यः = नञ् समास, न क्षोभ्यः, अक्षोभ्यः। राम का लक्ष्मण को 'अक्षोभ्य' और 'धैर्यसागर' कहना, लक्ष्मण की क्षमाशीलता, गम्भीरता और असाधारण धीरता का द्योतक है। साथ ही इस श्लोक के द्वारा राम का लक्ष्मण के प्रति असाधारण प्रेम भी व्यक्त होता है। (२) क्षोभितः— क्षुब्धावस्थां प्रापितः। क्षुब्ध किया गया है। क्षुभ् + णिच् + क्त (त)। (३) धैर्यसागरः—धैर्यस्य सागरः समुद्रः। षष्ठी तत्पुरुष। (४) रुष्टेन—क्रुद्धेन। क्रुद्ध होने पर। रुष् + क्त = रुष्टः। (५) शताकीर्णमिव—जनशतसान्द्रम्। सैकड़ों व्यक्तियों से परिपूर्ण सा। अकेला लक्ष्मण भी क्रुद्ध होने पर सैकड़ों व्यक्तियों के तुल्य प्रतीत होता है। भास के इस श्लोक की राम-विषयक कालिदास की उक्ति से तुलना कीजिये—

> एको दाशरथिः कामं यातुधानाः सहस्रशः।
> ते तु यावन्त एवाजौ तावांश्च ददृशे स तैः॥
>
> रघुवंश० १२.४५.

(६) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

(ततः प्रविशति धनुर्बाणपाणिर्लक्ष्मणः।)

११३—लक्ष्मणः—(सक्रोधम्।) कथं कथं मोहमुपगत इति।

> यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया
> स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते।
> अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
> युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम्॥१८॥

११३—अन्वय—यदि राज्ञः मोहं न सहसे, धनुः स्पृश, मा दया (अस्तु), स्वजननिभृतः मृदुः सर्वः अपि एवं परिभूयते। अथ न रुचितं त्वं

मां मुञ्च, अहं लोकं युवतिरहितं कर्तुं कृतनिश्चयः (अस्मि), यतः वयं छलिताः।

(हाथ में धनुष-बाण लिये हुए लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण—(क्रोध में) क्यों (पूछते हैं) 'क्यों वे मूर्छित हो गये ?'

यदि आप राजा की मूर्च्छावस्था को सहन नहीं कर सकते तो धनुष धारण कीजिये। दया न दिखाइये। अपने सम्बन्धियों के प्रति शान्तिपूर्ण एवं सरलभाव वाले प्रत्येक व्यक्ति का ही इस प्रकार अनादर होता है। यदि आपको यह (प्रकार) रुचिकर नहीं है तो आप मुझे (जैसा मैं चाहूँ, वैसा करने के लिये) छोड़ दीजिए (अनुमति दीजिए)। मैंने यह निश्चय कर लिया है कि संसार से युवतियों का अस्तित्व ही समाप्त कर दूँगा, क्योंकि हम (स्त्री जाति के द्वारा, कैकेयी के द्वारा) ठगे गये हैं ॥ १८ ॥

(Then enters Lakṣmaṇa with his bow and arrow in his hand)

Lakṣmaṇa—(With anger) How do you ask—'How did he fall into a swoon ?

If you cannot bear the swooning of the king, then take up your bow. Let no mercy be shown. Everyone who is tender-hearted and compassionate towards his relatives, is thus insulted. But if you do not (yourself) like (this course) then give me leave (to act as I like). For I have formed a resolution to make this word destitute of women, since we are defrauded (by a woman). (18)

Notes

११३—(१) धनुर्बाण०—धनुर्बाणश्च पाणौ यस्य सः। बहुव्रीहि। (२) मा दया—यहाँ पर 'दया' प्रथमान्त प्रयोग है अतः इसके साथ 'अस्तु' रखना चाहिये, अर्थात् दया न कीजिए। 'स्पृश' के साथ संबन्ध के लिये 'दयाम्' पाठ चाहिए। (३) स्वजन०—स्वजने निभृतः विनीतः शान्तः। तत्पुरुष। स्वजनों के प्रति विनीत या शान्त। निभृत—नि + भृ + क्त (त)। (४) मृदुः—सरलः मृदुः। सोधा। 'मृदुः परिभूयते' सूक्ति है। इसी भाव को व्यक्त

करने वाली सूक्तियाँ है—(१) मृदुर्हि परिभूयते (२) आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः। (३) शठे शाठ्यं समाचरेत्। (४) मायाचारो मायया वर्तितव्यः, साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः। (महाभारत)। (५) रुचितम्—रुचिकरम्। रुचिकर। रुच् + क्त (६) मुञ्च॰—यहाँ पर भाव यह है कि आप मुझे स्वीकृति दें कि जैसा मैं चाहूँ, करूँ। केवल छोड़ देना भाव नहीं है। (७) कृतनिश्चयः—कृतः निश्चयः येन सः। बहुव्रीहि। दृढसंकल्पयुक्त। (८) युवति॰—कैकेयी ने हमारे साथ छल किया है, अतः उस जाति (स्त्री जाति) का ही विनाश करना है। (९) यहाँ पर हरिणी छन्द है। उसका लक्षण है—

नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।

११४—सीता—आर्यपुत्र ! रोदितव्ये काले सौमित्रिणा धनुर्गृहीतम्। अपूर्वः खल्वस्यायासः। (अय्यउत्त ! रोदिदव्वे काले सोमित्तिणा धणू गहीदं। अपुव्वो खु से आआसो।)

११५—रामः—सुमित्रामातः ! किमिदम् ?

११६—लक्ष्मणः—कथं कथं किमिदं नाम ?

क्रमप्राप्ते हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे।
इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता ॥१९॥

११७—रामः—सुमित्रामातः ! अस्मद्राज्यभ्रंशो भवत उद्योगं जनयति। आः, अपण्डितः खलु भवान्।

भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत् समम्।
यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा स राजा परिपाल्यताम् ॥२०॥

११४—सीता—आर्यपुत्र, सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण ने इस रोदन के अवसर पर धनुष उठाया है। इनका क्षोभ आश्चर्यजनक है।

Sītā—My lord, Lakṣmaṇa. son of Sumitra, has taken up his bow at a time, when he ought to shed tears. His anger is somewhat, surprising.

११५—राम—सुमित्रा-नन्दन (लक्ष्मण), यह क्या ?

Rāma.—You, who have Sumitra for your mothor, what is this ?

११६—अन्वय—क्रमप्राप्ते राज्ये हृते, नृपे भुवि शोच्यासने (सति), इदानीम् अपि सन्देहः किं क्षमा (उत) निर्मनस्विता।

लक्ष्मण—क्यों, आप यह क्यों पूछते हैं 'यह क्या ?' वंशपरम्परा के अनुसार प्राप्त राज्य के छिन जाने पर, राजा के शोचनीय अवस्था में भूमि पर पड़े होने पर, क्या अब भी (स्वकर्तव्य के प्रति) सन्देह है ? यह आपकी क्षमा (सहनशीलता) है या स्वाभिमानशून्यता ? ॥१६॥

Lakṣmaṇa—How, how you ask me 'what is this' ?

When the kingdom come by right succession has been snatched away (from you) and the king is reduced to a deplorable position on the earth, is there hesitation still (as to how to act); is this forgiveness or absence of self respect ? (19)

११७—अन्वय—भरतः वा राजा भवेत्, वयं वा ननु तत् समम्। यदि ते धनुःश्लाघा अस्ति, स राजा परिपाल्यताम् ॥

राम – सुमित्रापुत्र, हमारा राज्यनाश ही तुम्हें (इतना) उत्तेजित कर रहा है। खेद है, आप अविचारशील हैं। चाहे भरत राजा हों या हम (मैं), दोनों ही बातें (तुम्हारे लिए) बराबर हैं। यदि तुम्हें धनुष पर अभिमान है तो उस (भरत) राजा की रक्षा करो ॥२०॥

Rāma.—Sumitrā's son, my loss of kingdom incites you to action. Ah ! You are, indeed, without discrimination.

Whether Bharata becomes the king or I, surely it is the same (to you. if you boast of your bow-manship, let that king be protected. (20)

Notes

११४—(१)—रोदितव्ये—रोदनार्हे काले। रोदन के योग्य अवसर पर। रोदितव्यः—रुद् + तव्यत् (तव्य), रुदन्त्यस्मिन्निति रोदितव्यः, अधिकरण

में 'तव्यत्' प्रत्यय। (२) सौमित्रिणा—लक्ष्मणेन। सुमित्रायाः अपत्यम्, सुमित्रा + इञ्। 'बाह्वादिभ्यश्च' (पा० ४. १. ९६.) से इञ् प्रत्यय। सुमित्रा के पुत्र। (३) अपूर्वः—आश्चर्यकरः, आश्चर्यजनक। अभ्यासः—खेदः, आवेगः, आवेग।

११५—सुमित्रामातः—सुमित्रा माता यस्य सः। सुमित्रा जिसकी माता है, वह। भास को माता के नाम के साथ पुत्र को सम्बोधित करना बहुत अधिक प्रिय है, अतएव उन्होंने 'सुमित्रामातः' जैसे बहुत से प्रयोग किये हैं। इसी प्रकार के अन्य प्रयोग प्रतिमानाटक में अन्यत्र, तथा बालचरित, पंचरात्र आदि में भी मिलते हैं—कैकेयीमातः, कौसल्यामातः, गान्धारीमातः, शौरसेनीमातः, यादवीमातः आदि। हिन्दी में भी इस प्रकार के शब्द प्रचलित हैं—सुमित्रा-नन्दन, कौसल्या-नन्दन नन्द-नन्दन, देवकी-नन्दन आदि।

११६—(१) क्रमप्राप्ते—क्रमेण पितुरनन्तरं ज्येष्ठपुत्रेण राज्यं कर्तव्यमिति क्रमेण प्राप्ते आगते। तत्पुरुष। क्रमानुसार प्राप्त। (२) हृते—अपहृते सति। छिन जाने पर। (३) शोच्यासने—शोच्यं शोचनीयम् आसनं स्थितिः अवस्थानं यस्य तस्मिन्। बहुव्रीहि। शोचनीय अवस्था में पृथ्वी पर (सिंहासन पर नहीं।) राजा के गिरे हुए होने पर। शोच्य—शुच् + ण्यत्। आसन—आस् + ल्युट् (अन)। (४) सन्देहः—प्रतिक्रियां प्रति अनिश्चयः, इस अवस्था में भी क्या प्रतिकार करने में आप को कुछ सन्देह है? अर्थात् शीघ्रातिशीघ्र विघ्न का नाश करना चाहिये। सन्देहः—सम् + दिह् + घञ्। (५) किंक्षमा०—इसका दो प्रकार से अर्थ हो सकता है। (१) यहाँ पर बीच में 'वा' (अथवा) का अर्थ समझने पर अर्थ होगा, क्या यह आप की क्षमा (सहनशीलता) है या स्वाभिमानशून्यता। (२) यदि 'वा' न रक्खें तो इसका अर्थ होगा—क्या क्षमा (सहनशीलता) का अर्थ है स्वाभिमानशून्यता (आत्मगौरवहीनता)। यहाँ पर दोनों अर्थ लग सकते हैं।

(६) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

११७—(१) सुमित्रामातः—यहाँ पर 'सुमित्रामातः' शब्द सार्थक है। सुमित्रा का पुत्र भी सुमित्र होना चाहिये। उसमें क्रोध की अधिकता नहीं होनी चाहिये। (२) उद्योगम्०—व्यवसायं जनयति, प्रतिकारकर्मणि प्रवर्तयति। प्रतिकारार्थ प्रवृत्त कर रहा है। 'आः' कोप अर्थ में है। (३) अपंडितः—विचारशून्यः। विचारहीन। पण्डितः—पण्डा संजाता अस्य, पण्डा अर्थात् बुद्धि से युक्त। पण्डा + इतच्। 'तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच' से इतच् प्रत्यय। (४) वयम्०—राम ने यहाँ पर 'अहं' के स्थान पर 'वयं' (हम) ऐसा बहुवचन का प्रयोग किया है। 'हम राजा हों' ऐसा लक्ष्मण को प्रसन्न करने के लिये भी कहा गया है। क्योंकि दोनों ही अपने को समान रूप से एक दूसरे के सुख-दुःख का भागी समझते हैं। (५) यदि तेऽस्ति०—यह पंक्ति 'अभिषेक' (३—२२) में भी आती है, अतः ज्ञात होता है कि दोनों का रचयिता एक ही व्यक्ति है। धनुःश्लाघा—धनुर्धरोऽहमिति अभिमानः। मैं महाधनुर्धर हूँ, यदि ऐसा अभिमान हो तो। 'स राजा' से यहाँ पर भरत की ओर संकेत है। तुम उसकी रक्षा करो। (६) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

११८—लक्ष्मणः न शक्नोमि रोषं धारयितुम्। भवतु भवतु। गच्छामस्तावत्। (प्रस्थितः।)

११९—रामः—

त्रैलोक्यं दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता।
भ्रुकुटिर्लक्ष्मणस्यैषा नियतीव व्यवस्थिता ॥२१॥

सुमित्रामातः! इतस्तावत्।

१२०—लक्ष्मणः—आर्य! अयमस्मि।

११८—लक्ष्मण—मैं अपने क्रोध को नहीं रोक सकता। अच्छा लो मैं जाता हूँ। (प्रस्थान करता है)

Lakṣmaṇa—I am not able to control my anger. Very well. Here I depart at once. (Starts to go)

११६—अन्वय—त्रैलोक्यं दग्धुकामा इव ललाटपुटसंस्थिता, एषा लक्ष्मणस्य भ्रकुटिः नियती इव व्यवस्थिता।

राम—तीनों लोकों को जलाने की इच्छुक-सी, ललाट पर विद्यमान यह लक्ष्मण की भ्रकुटि (भौं) भाग्य की रेखा की तरह अटल है। २१ ॥ सुमित्रानन्दन, इधर तो (आना)।

Rāma—Like fate, of fixed operation, this frown of Lakṣmaṇa, appearing on the surface of his forehead, is fixed there as if desirous of consuming the three worlds. (21)

Son of Sumitra, please come here.

१२०—लक्ष्मण—आर्य यह हूँ।

Lakṣmaṇa—Noble one, here I am.

Notes

११८—(१) न शक्नोमि०—यह वाक्य अभिषेक और दूत-घटोत्कच दोनों नाटकों में आया है। (२) धारयितुम्—निरोद्धुम्। रोकने में असमर्थ हूँ। धृ+णिच् +तुमुन्। (३) गच्छामः०—यहाँ पर 'शक्नोमि' में एकवचन और 'गच्छामः' में बहुवचन ध्यान देने योग्य है। नाटकों में एक के लिये भी 'गच्छामः' या 'साधयामः' प्रयोग होता है।

११९—(१) त्रैलोक्यम्—त्रिभुवनम्। तीनों लोकों को। त्रयो लोकाः त्रैलोक्यम्। त्रिलोक+ष्यञ् (य)। चातुर्वर्ण्यादित्वात् स्वार्थे ष्यञ्। (२) दग्धुकामा—दहनोन्मुखी। जलाने की इच्छा वाली। दग्धुं कामो यस्याः सा दग्धुकामा। दग्धुम्+कामा, 'तुं काममनसोरपि' से म् का लोप। दग्धुम्—दह्+तुमुन् (तुम्)। (३) ललाटपुट०—भालगोचरा। ललाट पर विद्यमान। लक्ष्मण की भ्रकुटि और नियति दोनों से इसका सम्बन्ध है। भाग्य-रेखा भी मस्तक पर विद्यमान होती है। ललाटपुटे संस्थिता। तत्पुरुष। (४) नियती इव—नियति शब्द ह्रस्व इकरान्त है अतः 'नियतिरिव' होना चाहिये। प्रयत्नपूर्वक नियती शब्द भी बन सकता है। क्तिच् प्रत्ययान्त 'नियति' शब्द से 'कृदिकारादक्तिनः' वार्तिक (पा० ४. १.४५) से ङीष् प्रत्यय। तब 'निय-

तीव' प्रयोग शुद्ध हो सकेगा। 'वियतीव' भी पाठ मिलता है, 'भ्रकुटि जैसे आकाश में स्थिर हो' यह पाठ उचित प्रतीत नहीं होता है।

दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः, इत्यमरः।

(५) व्यवस्थिता—स्थिरभूता, समाहिता। अटल है। वि+अव+स्था+क्त। (६) इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

१२१—रामः—भवतः स्थैर्यमुत्पादयता मयैवमभिहितम्। उच्यतामिदानीम्।

तातें धनुर्नमयि सत्यमवेक्षमाणे
मुञ्चानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम्!
दोषेषु बाह्यमनुजं भरतं हनानि
किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु ॥२२॥

१२१—अन्वय—सत्यम् अवेक्षमाणे ताते धनुः नमयि (नमये, नमयानि), (किम्) स्वधन हरन्त्यां मातरि शरं मुञ्चानि, दोषेषु बाह्यम् अनुजं भरतं हनानि, त्रिषु पातकेषु रोषणाय किं रुचिरम्।

राम—तुम्हें शान्त करने के उद्देश्य से ही मैंने ऐसा (वैसा) कहा था। अब बताओ

सत्य की रक्षा करने वाले पिता पर धनुष उठाऊँ? अपने धन को लेने वाली माता पर बाण छोड़ूँ? निर्दोष छोटे भाई भरत को मार डालूँ? तीनों पापों (पितृवध, मातृवध, भ्रातृवध) में से कौन सा पाप तुम्हारे रोष को अभिमत है? ॥ २२ ॥

Rāmā.—I spoke this in order to produce calmness in you, say now—

Shall I bend the bow against father who had regard for truth? Shall I discharge an arrow against mother taking away her own property? Shall I slay the younger brother, Bharata, who is quite guiltless? Which of these three sins commends itself to you for being angry? (22)

Notes

१२१—(१) स्थैर्यम्—स्थिरताम्, शान्तिम्। तुम्हारे चित्त-विकार को शान्त करने के लिये। स्थिरस्य भावः—स्थैर्यम्, स्थिर + ष्यञ्। उत्पादयता—उत् + पद् + णिच् + शतृ + टा (तृतीया एक०)। (२) नमयि—यहाँ पर व्याकरण के अनुसार 'नमयै' या 'नमयानि प्रयोग होना चाहिये। क्या सत्य के पालक पिता पर धनुष झुकाऊँ (प्रहार करूँ)? इस व्याकरण-संबन्धी त्रुटि को दूर करने के लिए निम्नलिखित दो उपाय किये गये हैं। (१) 'नमयि' को पृथक् दो पद 'न मयि' माना है और अर्थ किया गया है कि 'मेरे विषय में (अर्थात् मुझको राज्य न देकर) सत्य की रक्षा करने वाले पिता पर तो धनुष नहीं उठाया जा सकता'। किन्तु ऐसा करना अनुचित है, क्योंकि अन्तिम पद में कहा गया है कि तीन पापों में से कौन सा पाप करना चाहते हो। यदि 'न मयि' पाठ माना जाय तो प्रथम पद में पापनिर्देश नहीं रहा, शेष दो ही पाप बनते हैं। अतः ऐसा पाठ कवि को अभीष्ट नहीं है। (२) 'नमयि' के स्थान पर 'नमतु' पाठ रक्खा गया है, इससे व्याकरण संबन्धी त्रुटि का परिमार्जन हो जाता है। अर्थ होगा—'सत्यरक्षक पिता पर धनुष झुके!' परन्तु यह पाठ भी उचित ज्ञात नहीं होता; क्योंकि आगामी दोनों पदों में 'मुञ्चानि', 'हनानि' लोट् उत्तमपुरुष एकवचन का प्रयोग है। अतः यहाँ पर भी लोट् उत्तम पुरुष एकवचन ही होना चाहिये। मेरे विचार से निम्नलिखित पाठ अधिक उपयुक्त होगा—'सत्यप्रिये पितरि किं नमयानि चापम्'।

(३) स्वधनम्०—क्या माता कैकेयी पर बाण चलाऊँ जो अपना पूर्वप्रतिज्ञात धन (राज्य) ले रही है? (४) दोषेषु बाह्यम्०—निर्दोषम्। क्या निर्दोष अनुज (छोटे भाई) भरत का वध करूँ। रोषणाय—क्रोधाय। क्रोध को। तुम्हारे क्रोध को इन तीनों पापों में से कौन सा पाप अभिमत है? (५) इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है। उसका लक्षण है—

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः॥

१२२— लक्ष्मणः—(सवाष्पम्) हा धिक् । अस्मान् अविज्ञायोपालम्भसे ।

यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे न मनोरथः ।
वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया ॥२३॥

१२३—राम—अत्र मोहमुपगतस्तत्रभवान् । हन्त निवेदितमप्रभुत्वम् । मैथिलि !

मङ्गलार्थेऽनया दत्तान् वल्कलांस्तावदानय ।
करोम्यन्यैर्नृपैर्धर्मं नैवाप्तं नोपपादितम् ॥२४॥

१२२—अन्वय—यत्कृते महति क्लेशे, मे राज्ये न मनोरथः । (किं तदिति) चतुर्दशवर्षाणि त्वया वने वस्तव्यं किल ।

लक्ष्मण—(रोते हुए) खेद है, आप मुझे सत्य रूप में न समझकर ही उलाहना दे रहे हैं ।

जिस कारण से (आप को) महान् कष्ट उठाना पड़ेगा (उस कारण को सोचकर) मेरे हृदय में राज्य की अभिलाषा नहीं है । (वह कारण यह है कि) आपको निश्चित रूप से चौदह वर्ष वन में निवास करना पड़ेगा ॥२३॥

Lakṣmaṇa.—(With tears) Alas ! pity ! you blame me without knowing me properly—the real cause of my anger—that—

The great hardships (to be caused to you) by which, revolving in my mind I had no desire for a kingdom. (It is this) that you have surely to reside in a forest for fourteen years. (23).

१२३—अन्वय—अनया दत्तान् वल्कलान् मङ्गलार्थं आनय तावत्, अन्यैः नृपैः न एव आप्तं न उपपादितं धर्मं करोमि ।

राम—क्या इसी बात पर महाराज मूर्च्छित हो गये ! खेद है, उन्होंने अपनी अधीरता व्यक्त कर दी । मैथिली,

इस (अवन्तिका) के द्वारा दिये हुए वल्कलों को मङ्गल-कार्य के लिए दो । मैं वैसा धर्म-कर्म करूँगा, अन्य राजाओं को जिसके लिए अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ और जो वैसा धर्म कर ही न सके । २४॥

Rāma—Is it that my reverend father fell into a swoon on this account ? Alas ! he has indicated his absence of mastery over himself. Maithili,

Bring here for an auspicious purpose those bark-garments which were given to you by this Avantikā. With them I shall perform a religious penance, which other kings had neither any opportunity for, nor had ever performed. (24)

Notes

१२२— (१) अस्मान् अविज्ञाय मम आशयं सम्यग्गृहीत्वा । मेरे भाव को ठीक न समझ कर मुझे दोष दे रहे हैं । (२) यत्कृते०—यत्कृते येन कारणेन कृते महति क्लेशे (मम हृदये विद्यमाने सति) मे राज्ये न मनोरथः । (तत् शृणु) तदस्ति—चतुर्दश० । जिस कारण से मेरे हृदय में महान् दुःख है और अतएव मेरी इच्छा राज्य की ओर सर्वथा नहीं है । वह कारण है—आपका चौदह वर्ष वन में रहना । श्लोक के प्रथम पाद का अन्वय इसी प्रकार लगाना चाहिए ।

(३) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ।

१२३—(१) अत्र—मच्चतुर्दशवर्षवनवासश्रवणेन । यहाँ पर 'अत्र' का भाव है मेरे चौदह वर्ष वनवास के सुनने के कारण क्या महाराज मूर्च्छित हो गये ! (२) अप्रभुत्वम्—खेद है कि राजा अपने आपको न सँभाल सके । इससे उनकी खेद को रोकने में असमर्थता ज्ञात होती है । (३) अनया—अवन्तिकया । अवन्तिका के दिये हुए वल्कलों को मंगल-कार्य (धर्माचरण) के लिए मुझे दो । पहले सीता ने जो कहा था कि अमंगल-सा प्रतीत होता है । उसका उत्तर राम ने पहले से दे दिया है ।

१२४—सीता—गृह्णात्वार्यपुत्रः । (गह्णदु अय्यउत्तो) ।

१२५—रामः—मैथिलि ! किं व्यवसितम् ?

१२६—सीता—ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम् । (णं सहधम्मआरिणी क्खु अहं ।)

१२७—रामः—मयैकाकिना किल गन्तव्यम् ।

१२८—सीता—अतो नु खल्वनुगच्छामि । (अदो णु खु अणुगच्छामि ।)

१२९—रामः—वने खलु वस्तव्यम् ।

१३०—सीता—तत् खलु मे प्रासादः । (तं खु मे पासादो ।)

१३१—रामः—श्वश्रूश्वशुरशुश्रूषाऽपि च ते निर्वर्तयितव्या ।

१३२—सीता—एतामुद्दिश्य देवतानां प्रणामः क्रियते । (णं उद्दिसिअ देवदाणं पणामो करीअदि ।)

१३३—रामः—लक्ष्मण ! वार्यतामियम् ।

१२४—सीता—आर्यपुत्र, लीजिए ।

Sītā—My lord take these.

१२५—राम—मैथिली, तुमने क्या निश्चय किया है ?

Rāma.—Maithili, what have you undertaken to do ?

१२६—सीता—मैं तो आपकी सहधर्मचारिणी हूँ ।

Sītā—Why, I am certainly your partner in duties.

१२७—राम—मुझे तो अकेले (वन) जाना है ।

Rāma.—But I have to go alone (to the forest).

१२८—सीता—अतएव मुझे आपके साथ जाना है, क्योंकि आप अकेले जा रहे हैं ।

Sītā—I must follow you there for this very reason (that you are going alone).

१२९—राम—(वहाँ तुम्हें) वन में रहना होगा ।

Rāma.—You will have to dwell in a forest.

१३०—सीता—वह मेरे लिए भवन होगा ।

Sītā—That will indeed be a palace to me.

१३१—राम—सास-ससुर की सेवा भी तो तुम्हें करनी है।

Rāma.—But you have to perform also the service of your mother-in-law and your father-in law.

१३२—सीता—इसी उद्देश्य से मैं देवताओं को प्रणाम करती हूँ (कि वे दोनों की सुरक्षा करें।)

Sītā—As regards that I offer my bow to the gods (invoke the gods to keep them safe).

१३३—राम—लक्ष्मण, इस (सीता) को (मेरे साथ वन जाने से) रोको।

Rāma.—Lakṣmaṇa, dissuade her (from following me).

Notes

१२४—गृह्णातु०—सीता ने वल्कल उतार कर देना चाहा, परन्तु सीता को भी वल्कलों की आवश्यकता थी, अतः राम ने वल्कल न लेकर दूसरी बात पूछनी प्रारम्भ कर दी। राम ने आर्या रेवा से चेटी द्वारा लाए हुए नये वल्कल लिये, जैसा कि वक्तव्य १. १३५, १३६, १३७ से स्पष्ट है।

१२५—किं व्यवसितम्—किं कर्तुमध्यवसितम्। तुमने अपने लिए क्या निर्णय किया है, तुम क्या करोगी?

१२६—(१) सहधर्मचारिणी—सह पत्या सह धर्मं चरितुं शीलं यस्याः सा, सहधर्मचारिणी। सहधर्म + चर् + णिनि + ङीप्। 'सुप्यजातौ०' से णिनि। मैं तुम्हारे दुःख में सदा साथ रहने वाली हूँ। अतः मुझे साथ चलना है।

१२८—अतो नु०—आप अकेले जायँगे, अतः आपके साथ मुझे अवश्य जाना है।

१३२—देवतानां०—देवताओं की अतएव पूजा करूँगी कि वे दोनों को सर्वथा सुरक्षित रक्खें। इसी प्रकार का भाव मुद्राराक्षस (अंक ७ पृ. १४४) में भी आया है—

'अनुगृह्णन्त्वेनं प्रसन्ना देवताः'

१३४—लक्ष्मणः—आर्य ! नोत्सहे श्लाघनीये काले वारयितुमत्रभवतीम् । कुतः—

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च ।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥२५॥

१३४—अन्वय—राहुदोषे अपि तारा शशाङ्कम् अनुचरति । वनवृक्षे च पतति (सति) लता च भूमिं याति । करेणुः च पङ्कलग्नं गजेन्द्रं न त्यजति । (इयं वनं) व्रजतु, धर्मं चरतु, हि नार्यः भर्तृनाथाः ।

लक्ष्मण—आर्य, जब कि (सीता के इस सुन्दर निश्चय के लिये) प्रशंसा होनी चाहिए उस समय मैं पूजनीया (सीता) को रोकने का साहस नहीं कर सकता । क्योंकि—

राहु के द्वारा ग्रहण होने पर भी तारा (रोहिणी) चन्द्रमा के साथ रहती है । और अन्य वृक्ष के गिरने पर लता भी भूमि पर गिर पड़ती है । गजराज के पङ्कमग्न (कीचड़ में फँसा हुआ) होने पर भी हथिनी उसको नहीं छोड़ती है । अतएव ये (सीता) भी (आपके साथ वन में) जावें और (अपने) धर्म का आचरण (पालन) करें, क्योंकि स्त्रियों के पति ही आश्रय होते हैं ॥२५॥

Lakṣmaṇa.– Noble one, I cannot bring myself to dissuade her at a time deserving praise (for this her resolve).

The star (Rohiṇi) follows the moon even at the time of the eclipse by Rāhu ; a creeper falls down to the ground when a forest tree (its resort) falls down; a female elephant never abandons her mate, the lord of elephants, even when stuck in mud. So let her go with you and discharge her duty because women are dependent upon their husbands. (25)

Notes

१३४—(१) श्लाघनीये काले—प्रशंसनीये अस्मिन् समये। इसके दो भाव हो सकते हैं—(अ) जब कि सीता की प्रशंसा की जानी चाहिए थी कि उसने उत्तम निश्चय किया है, ऐसे समय पर। (ब) श्लाघनीय को काल का विशेषण मानने पर अर्थ होगा—ऐसे सुन्दर समय पर, जब पत्नी को पति की सेवा का सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ है। कुछ पुस्तकों में 'श्लाघनीये कार्ये' पाठ है, किन्तु यह पाठ व्याकरण की दृष्टि से अनुचित है, क्योंकि 'वारयितुम्' में वारण (हटाना) अर्थ होने के कारण 'वारणार्थानामीप्सितः' (पा० १.४.२७) से पंचमी होने पर 'श्लाघनीयात् कार्यात्' रूप बनता है। (२) अत्रभवतीम्—पूजनीयाम्। अत्रभवान् तत्रभवान् का अर्थ होता है, आदरणीय, माननीय, पूज्य व्यक्ति (पुरुष)। स्त्री के लिए इसी प्रकार अत्रभवती, तत्रभवती शब्द हैं। अर्थ है—माननीया, पूज्या, आदरणीया। (३) तारा—यहाँ पर 'तारा' शब्द से 'रोहिणी' तारा का ग्रहण समझना चाहिए। 'रोहिणी' चन्द्रमा की सर्वप्रिया पत्नी है। अतएव शाकुन्तल में कालिदास ने भी कहा है—'उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्' शाकुन्तल ७. २२.। रोहिणी नक्षत्रों में चतुर्थ नक्षत्र है। इसमें पाँच तारे होते हैं। वह दक्ष की बहुत सी कन्याओं में से एक है।

(४) अनुचरति अनुसरति। साथ रहती है। अतएव सर्वदा अनुगमन के कारण सेवक 'अनुचर' कहा जाता है। (५) शशाङ्कम्—चन्द्रम्। शशः मृगः अङ्के यस्य सः। मृगाङ्क, चन्द्रमा। (६) राहुदोषेऽपि—राहुग्रसनरूपदोषे आपदि अपि। राहु के द्वारा ग्रहण रूपी आपत्ति में भी। मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास। दोष—दुष् + घञ्। (७) पतति—गजादिना भग्ने पतिते सति। हाथी आदि के द्वारा तोड़ने पर। पतति—पत् + शतृ + ङि (सप्तमी एक०)। (८) वनवृक्षे—वन्यपादपे। यहाँ पर 'वन' शब्द अनावश्यक है। यहाँ पर वृक्षमात्र अभीष्ट है। (९) याति—पतति। लता भूमि पर गिर पड़ती है। (१०) करेणुः—हस्तिनी। हथिनी। (११) पङ्कलग्नम्—कर्दममग्नम्। कीचड़ में फँसे हुए। पङ्के मग्नम्। तत्पुरुष। लग्न—लग् + क्त (त)। त को न हो जाता है। (१२) गजेन्द्रम्—गजराजम्। गजपति को। (१३)

व्रजतु—गच्छतु । यहाँ पर भाव है—तुम्हारे साथ वन में सीता जाय । (१४) चरतु धर्मम्—अपने कर्त्तव्य का पालन करे अर्थात् पति की सेवा करे । (१५) भर्तृनाथा हि नार्यः—यह सुभाषित है । भर्ता पतिः नाथः प्रभुः स्वामी रक्षको वा यासां तादृश्यः । बहुव्रीहि । पति ही जिनका स्वामी एवं रक्षक है, ऐसी स्त्रियाँ हैं । उन्हें भी तारा, लता आदि के तुल्य अपने पति को कभी नहीं छोड़ना चाहिए । यह श्लोक भारतीय संस्कृति की बहुत उत्तम शिक्षा प्रस्तुत करता है । कालिदास ने कुमारसंभव (४. ३३) में इसी प्रकार सुन्दर भाव व्यक्त किया है कि—

शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित् प्रलीयते ।
प्रमदाः पतिमार्गगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ॥

(१६)—इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है । (१७) इस श्लोक में मालिनि छन्द है ।

ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकैः ।

(*प्रविश्य*)

१३५—चेटी—जयतु भट्टिनी । नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा प्रणम्य विज्ञापयति—अवदातिकया सङ्गीतशालाया आच्छिद्य वल्कला आनीताः । इमेऽपरा अननुभूता वल्कलाः । निर्वर्त्यतां तावत् किल प्रयोजनमिति । (जेदु भट्टिणी । णेवच्छपालिणी अय्यरेवा पणमिअ विण्णवेदि—आदोदिआए सङ्गीदसालादो आच्छिन्दिअ वल्कला अणीदा इमा अवरा अणणुहूदा वक्कला । णिव्वत्तीअदु दाव किल पओअणं त्ति ।)

(*प्रविष्ट होकर*)

१३५—चेटी—महारानी की जय हो । नेपथ्यरक्षिका आर्या रेवा प्रणाम-पूर्वक निवेदन करती है कि अवदातिका संगीतशाला से कुछ वल्कल उठा लाई थी । ये और नये वल्कल हैं । आप इनसे अपना प्रयोजन पूरा कीजिएगा ।

(Having entered)

Cheti—May my lady be victorious. The worthy lady, Revā the keeper of the stage-materials, making her obeisance, requests Avadātikā has taken away by force some bark garments from the concert hall. These are others, not used before. Have your purpose served with these.

Notes

१३५—(१) आर्या रेवा विज्ञापयति—रेवा ने संभवतः अनुमान किया होगा कि जो वल्कल अवदातिका ले गई है, उनकी आवश्यकता सीता को होगी। अतएव स्वामिनी सीता को प्रसन्न करने के लिए उसने अच्छे और नये वल्कल भेजे। इस प्रकार कवि ने राम के लिए भी वल्कल यथासमय पहुँचवा दिये हैं।

(२)—आच्छिद्य—बलाद् अपहृत्य। बलपूर्वक लेकर। (३) अननुभूताः—उपयोगमप्राप्ताः। जिनको पहना नहीं गया है।

१३६—रामः—भद्रे ! आनय, सन्तुष्टैषा। वयमर्थिनः।

१३७—चेटी—गृह्णातु भर्ता। (गह्णदु भट्टा)। (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता।) (रामो गृहीत्वा परिधत्ते।)

१३८—लक्ष्मणः—प्रसीदत्वार्यः।

निर्योगाद् भूषणान्माल्यात् सर्वेभ्योऽर्धं प्रदाय मे।
चीरमेकाकिना बद्धं चीरे खल्वसि मत्सरी ॥२६॥

१३६—राम—भद्रे, इन्हें इधर लाओ। इनकी आवश्यकता पूर्ण हो गई है। मुझे इनकी आवश्यकता है।

Rāma.—Good lady, bring them here. Her purpose has been served. I am in need (of them).

१३७—चेटी—स्वामी, लीजिए। (वल्कल दे कर चली जाती है)

Cheti—May my lord take them. (Having handed over to him, she departs).

१३८—अन्वय—निर्योगात् भूषणात् माल्यात् सर्वेभ्यः मे अर्धं प्रदाय, चीरम् एकाकिना बद्धम्, चीरे मत्सरी असि खलु।

(राम वल्कलों को लेकर पहनते हैं,)

लक्ष्मण—आर्य, मुझ पर प्रसन्न हों (कृपा कीजिये), आपने (आज तक) वस्त्र, आभूषण, माला (आदि) सभी वस्तुओं में से मुझे आधा भाग दिया है। किन्तु आपने अकेले ही वल्कल बाँधे हैं (पहने हैं), वल्कलों के प्रति आपका इतना लोभ क्यों है ? ॥२६॥

(*After receiving Rāma puts them on*)

Lakṣmaṇa—May the noble brother be kind to me.

Having (until now) given me half of all such things as garments, ornaments, garlands (and the like) you have alone put on the bark garments; you are, indeed, jealous as regards the bark-garments (26)

Notes

१३६— (१) सन्तुष्टैषा –सीता सन्तुष्ट है, अर्थात् सीता की आवश्यकता पूर्ण हो गई है। (२) वयमर्थिनः—मम प्रयोजनम्। मुझे इन वल्कलों की आवश्यकता है।

१३८—(१) निर्योगात्—गणपति शास्त्री ने इसका अर्थ किया है—'वस्त्रकञ्चुकादेराच्छादनात्'। वस्त्र, कुर्त्ता आदि पहनने की वस्तुओं में से। 'निर्योग' शब्द का प्रयोग बहुत कम मिलता है। इसका यौगिक अर्थ होगा—निर्युज्यते इति, निर्युक्त इति, निर्योजित इति वा। जिसको लगाया जाय, पहना जाय, उपयोग में लाया जाय। यहाँ पर वस्त्रादि अर्थ लिया गया है। हरिवंश पुराण अ० ८६ में इसका प्रयोग मिलता है—

प्राङ्मुखश्चारुनिर्युक्तो मेरुशृङ्गसमप्रभः।
रुक्मपत्रनिभस्तम्भश्चारुनिर्योगशोभितः।
प्रेक्षागारः स कंसस्य प्रचकाशेऽधिकं श्रिया॥

(२) प्रदाय—दत्त्वा। देकर। प्र + दा + क्त्वा (ल्यप्)।

(३) चीरम्—वल्कलम्। वल्कल।

(४) बद्धम्—परिहितम्। पहना। बन्ध् + क्त (त)।

(५) मत्सरी—ईर्ष्यायुक्तः । ईर्ष्यायुक्त । मत्सरः अस्यास्तीति । मत्सर +इनि ।

(६) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ।

१३९--रामः—मैथिलि ! वार्यतामयम् ।

१४०—सीता—सौमित्रे ! निवर्त्यतां किल । (सोमित्ते ! णिवत्तिअदु किल ।)

१४१—लक्ष्मणः—आर्ये !

गुरोर्मे पादशुश्रूषां त्वमेका कर्तुमिच्छसि ।
तवैव दक्षिणः पादो मम सव्यो भविष्यति ॥२७॥

१४२—सीता—दयतां खल्वार्यपुत्रः । संतप्यते सौमित्रिः । (दीअदु खु अय्यउत्तो । सन्तप्पदि सोमित्ती ।)

१३९—राम—मैथिलि, इस (लक्ष्मण) को मना करो (कि ऐसा आग्रह न करे)

Rāma.—Maithili, warn him off (from this).

१४०—सीता—सौमित्रि, ऐसा मत करो ।

Sītā—Son of Sumitrā, desist from this.

१४१ - अन्वय—मे गुरोः पादशुश्रूषां त्वम् एका कर्तुम् इच्छसि । तव एव दक्षिणः पादः, मम सव्यो भविष्यति ।

लक्ष्मण—आर्ये,

मेरे पूज्य (बड़े भाई) राम के चरणों की सेवा तुम अकेले ही करना चाहती हो । अच्छा, दक्षिण चरण पर तुम्हारा ही अधिकार होगा, (अर्थात् उसकी सेवा तुम्हीं करना), वाम चरण मेरा रहेगा (अर्थात् बाएँ पैर की सेवा मैं करूंगा) ॥ २७॥

Lakṣmaṇa.—Noble lady

You desire alone to serve the feet of my reverend brother; but let this right foot (of his) be for you, while the left one should be consigned to my care. (27)

१४२—सीता—आर्यपुत्र, आप दया करें। सौमित्रि बहुत दुःखित हो रहे हैं।

Sītā—My lord should take compassion, The son of Sumitrā is feeling distressed.

Notes

१३९—वार्यताम्०—राम का सीता से कहने का भाव यह है कि तुम लक्ष्मण को समझाओ कि वह वल्कल पहनने और वन जाने के लिये आग्रह न करें।

१४१—(१) गुरोः—ज्येष्ठभ्रातुः। मेरे पूजनीय बड़े भाई के। (२) पादशुश्रूषाम्—चरणसेवाम्। पादानां शुश्रूषाम् सेवाम् तत्पुरुष। शुश्रूषा—श्रोतुमिच्छा, श्रु+सन्+टाप् (आ) (३) सव्यः—वामः। बायां। अतएव 'अपसव्य' का अर्थ होता है 'दाहिना'। (४) इस लक्ष्मण के कथन से व्यक्त होता है कि जहाँ तक राम की सेवा का प्रश्न है, वे सीता का अधिकार अधिक मानते हैं, किन्तु अपना अधिकार सर्वथा समाप्त नहीं होने देना चाहते। अतः राम के दक्षिण चरण की सेवा का कार्य सीता को देते हैं और बाएँ चरण की सेवा का सौभाग्य स्वयं लेना चाहते हैं। भ्रातृ-भक्ति या भ्रातृ-प्रेम का बहुत सुन्दर उदाहरण है। (५) कुछ पुस्तकों में 'तवैव' के स्थान पर 'तवैष' पाठ है, परन्तु वह पाठ इतना प्रभावशाली नहीं है। (६) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

१४२—सन्तप्यते—खिद्यते। लक्ष्मण बहुत दुःखी हो रहे हैं। यदि उन्हें साथ न ले जाएँगे तो वह बहुत दुःखित होंगे।

१४३—रामः—सौमित्रे! श्रूयताम्। वल्कलानि नाम—

तपः सङ्ग्रामकवचं नियमद्विरदाङ्कुशः।
खलीनमिन्द्रियाश्वानां गृह्यतां धर्मसारथिः ॥२८॥

१४४—लक्ष्मणः—अनुगृहीतोऽस्मि। (गृहीत्वा परिधत्ते)

१४५—रामः—श्रुतवृत्तान्तैः पौरैः सन्निरुद्धो राजमार्गः। उत्सार्यतामुत्सार्यतां तावत्।

१४६—लक्ष्मणः—आर्य ! अहमग्रतो यास्यामि। उत्सार्यतामुत्सार्यताम्।

१४७—रामः—मैथिलि ! अपनीयतामवगुण्ठनम्।

१४८—सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति। (जं अय्यउत्तो आणवेदि।)

(अपनयति।)

१४३—अन्वय—तपःसंग्रामकवचं नियमद्विरदाङ्कुशः इन्द्रियाश्वानां खलीनं धर्मसारथिः गृह्यताम्।

राम—सौमित्रि, सुनो। यह वल्कल—

तपस्यारूपी संग्राम में कवच है, संयमरूपी हाथी को वश में रखने वाला अंकुश है। इन्द्रियरूपी अश्वों को निग्रह में रखने के लिए लगाम है। यह धर्म (रूपी रथ) का सारथि है। इसको ग्रहण करो। २८।

Rāma—Sumitrā's son, listen . The bark-garments, indeed, are,—

An armour in the battle of penance, a goad for controlling the elephant of the vows (to be observed), a bridle for checking the horses of the senses ; and a charioteer to drive the chariot of religious performances. Take them. (28)

१४४—लक्ष्मण—मैं आपका अनुगृहीत हूँ। (लेकर पहनता है।)

Lakṣmaṇa—I am favoured . (Takes and wears them).

१४५—राम—यह समाचार सुनकर (आए हुए) नागरिकों से राज-मार्ग सर्वथा रुक गया है। इन्हें हटा दो, हटा दो।

Rāma—The high road is blocked up by citizens, who have heard the news . Let it be cleard , Let it be cleared.

१४६—लक्ष्मण—आर्य, मैं आगे आगे चलूँगा। हट जाइए, हट जाइए।

Lakṣmaṇa—My noble lord, I shall march in the front. Make way, make way.

१४७—राम—मैथिली, अपना घूँघट हटा लो।

Rāma—Maithili, remove your veil.

१४८—सीता—जैसी आपकी आज्ञा। (घूँघट हटाती है।)

Sitā—As my lord orders. (Removes the veil).

Notes

१४३ —(१) तपः०—तपः तपश्चरणम् एव संग्रामो युद्धं तस्मिन् कवचं वर्म। तपस्या रूपी संग्राम का कवच। तत्पुरुष। (२) नियम०—नियमो व्रतं स एव द्विरदः हस्ती तन्नियमनार्थः अङ्कुशः सृणिः। तत्पुरुष। व्रत पालन रूपी हाथी को नियन्त्रित रखने वाला अंकुश। (३) खलीनम्०—इन्द्रियाणि एव अश्वाः, तेषाम्। तत्पुरुष। इन्द्रियरूपी घोड़ों के लिए। खलीनं—रश्मिः, लगाम इन्द्रियों की उपमा घोड़ों से दी जाती है, क्योंकि वे घोड़ों की तरह अनियन्त्रित चलती हैं, उन्हें नियन्त्रित करने की आवश्यकता होती है, वल्कल व्रती को सदा स्मरण दिलाते रहते हैं कि वे इन्द्रियों को वश में रक्खें। कठोपनिषद् (३. ४) में इसी प्रकार का रूपकात्मक वर्णन है कि—'इन्द्रियाणि हयान्याहुः'।

खलीन शब्द का अर्थ है—लगाम।

कविका तु खलीनोऽस्त्री। इत्यमरः।

(४) गृह्यताम्—'वल्कलानि' यद्यपि बहुवचन है, अतः क्रिया बहुवचन 'गृह्यन्ताम्' होनी चाहिए, परन्तु यहाँ पर अन्य उद्देश्य कवचम्, अङ्कुशः, खलीनम् और सारथिः एकवचन हैं अतः क्रिया भी एकवचन ही दी गई है। (५) धर्मसारथिः—धर्मस्य सारथिः चालकः। धर्म का सारथि। यहाँ पर पूर्व रूपकों के तुल्य धर्मरूपी रथ का सारथि अर्थ समझना चाहिए। रथ शब्द गम्य है। (६) यहाँ पर मालारूप परम्परितरूपक अलंकार है। (७) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

१४५—(१) श्रुतवृत्तान्तैः—श्रुतः वृत्तान्तः वार्ता यैः तैः । बहुव्रीहि । जिन्होंने यह समाचार सुना है ।

वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः उदन्तः स्यात् । इत्यमरः ।

(२) पौरैः—नागरिकैः, नागरिकों ने । पुरे भवाः—पौराः । पुर+अण्

(३) सन्निरुद्धः—रोक लिया है । सम् + नि + रुध् + क्त ।

१४७—(१) अवगुण्ठनम्–शिरोमुखाच्छादवस्त्रम् । घूँघट ।

१४९—रामः—भो भोः पौराः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः

स्वैरं हि पश्यन्तु कलत्रमेतद्
बाष्पाकुलाक्षैर्वदनैर्भवन्तः ।
निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो
यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ॥२९॥

१४९—अन्वय—बाष्पाकुलाक्षैः वदनैः भवन्तः एतत् कलत्रं स्वैरं हि पश्यन्तु । हि नार्यः यज्ञे विवाहे व्यसने वने च निर्दोषदृश्याः भवन्ति ।

राम—हे नागरिक जन, आप लोग सुनिये, सुनिये ।

सजल नेत्रों से पूर्ण मुखों से युक्त आप लोग इस मेरी भार्या (सीता) को निःशङ्क भाव से देखिये, क्योंकि यज्ञ, विवाह, विपत्ति और वन में स्त्रियों का दर्शन निर्दोष माना गया है ॥२९॥

Rāma.—O citizens, hear, hear, please.

May your honours behold, at will, this my wife with your faces, having the eyes filled with tears; since women can be seen without any objection in a sacrifice, at the marriage ceremony, when under calamity and when (living) in a forest. (29).

Notes

१४९—(१) स्वैरम्—यथेच्छम् । इच्छानुसार । स्व+ईरं=स्वैर । 'स्वादीरेरिणोः' वार्तिक (पा० ६. १.८९) से वृद्धि ।

(२) कलत्रम्—भार्याम् । भार्या को । 'कलत्र' शब्द भार्या, पत्नी-वाची है, परन्तु नपुंसकलिंग शब्द है । अतएव यहाँ पर विशेषण 'एतत्' आया है । इसी प्रकार पत्नीवाचक होते हुए 'दारा' शब्द पुल्लिंग है और बहुवचनान्त है । इँगलिश में Wife (पत्नी) शब्द स्त्रीलिंग है, परन्तु जर्मन भाषा में यह पुंलिंग है, Der weib (डेर वाइब) (पत्नी) ।

(३) वाष्पाकुलाक्षैः०—वाष्पैः आकुले वाष्पाकुले अक्षिणी येषां तैः । बहुव्रीहि । अश्रुपूर्ण नेत्रों से युक्त । यह 'वदनैः' (मुख) का विशेषण है । अतः अर्थ होगा—अश्रुपूर्ण नेत्रों से युक्त मुखों वाले आप लोग । 'वदनैः' में उपलक्षण में तृतीया । 'वदनैः उपलक्षिताः भवन्तः' ।

(४) निर्दोषदृश्याः—इसके दो भाव हो सकते हैं (क) निर्दोषाश्च दृश्याश्च । द्वन्द्व समास । देखने योग्य होती हैं, और देखने में कोई दोष नहीं है । अथवा निर्दोषं यथा भवति तथा दृश्याः । अर्थ पूर्ववत् । (ख) निर्दोषं दोषं विना दृश्या द्रष्टुं योग्याः । तत्पुरुष । अदुष्टभावना से देखने योग्य ।

(५) व्यसने—विपत्तौ, आपदि । विपत्ति के समय ।

(६) इसी भाव का श्लोक वाल्मीकि रामायण युद्धकांड ११४.२८ में आया है ।

व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे ।
न क्रतौ नो विवाहे वा दर्शनं दूष्यते स्त्रियः ॥

(७) इस श्लोक में 'इन्द्रवज्रा' छन्द है । उसका लक्षण है—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।

(*प्रविश्य*)

१५०—काञ्चुकीयः—कुमार ! न खलु न खलु गन्तव्यम् ।

एष हि महाराजः,

श्रुत्वा ते वनगमनं वधूसहायं
सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम् ।
उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः
कान्तारद्विरद इवोपयाति जीर्णः ॥३०॥

१५०—अन्वय—वधूसहायं सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रं ते वनगमनं श्रुत्वा, उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः जीर्णः कान्तारद्विप इव उपयाति।

(प्रविष्ट होकर)

कंचुकी—कुमार, मत जाइए, मत जाइए। क्योंकि ये महाराजा, वधू के सहित आपके वन-गमन तथा भ्रातृ-प्रेम के कारण लक्ष्मण के साथ जाने के निश्चय को सुनकर (सहसा) उठकर, भूतल की धूलि से धूसर अङ्ग-युक्त वृद्ध वन्य-गज के तुल्य इधर आ रहे हैं ॥३०॥

(*Entering*)

A chamberlain—Prince, not indeed, not indeed, should you depart. For here the great king,

Having heard of your departure (resolve to go) to the forest with your wife, wherein Lakṣmaṇa is determined to follow you on account of his fraternal affection, has like an old wild-elephant, risen up, with his body besmeared with the dust of the surface of the earth, and is coming hither wards. (30).

Notes

१५०—(१) महाराज मूर्च्छित थे, परन्तु इस वाक्य से ज्ञात होता है कि वे फिर सचेत होकर संभवतः राम को वनगमन से रोकने के लिए आ रहे हैं।

(२) वधूसहायम्—सपत्नीकम्। पत्नीसहित। वधूः भार्या सहायः यस्मिन् तत् वधूसहायम्। पत्नी जिस (वनगमन) में सहायक है।

(३) सौभ्रात्र०—(क) शोभनस्य भ्रातुर्भावः सौभ्रात्रं भ्रातृप्रेम। तेन व्यवसिता अध्यवसिता लक्ष्मणानुयात्रा लक्ष्मणस्यानुगमनं यस्मिन्। बहुव्रीहि। भ्रातृप्रेम के कारण लक्ष्मण के साथ जाने का निश्चय जिसमें है। (ख) अथवा सौभ्रात्रेण व्यवसितः कृतोद्योगः, लक्ष्मणस्तस्य अनुयात्रा अनुगमनं यस्मिन्। भ्रातृप्रेम के कारण बद्ध-परिकर लक्ष्मण जिसमें साथ जायँगे। सौभ्रात्र—सुभ्रातृ + अण्। व्यवसित—वि + अव + सो (सा) + क्त। 'द्यतिस्यति-

मास्थामित्त्विकिति' (पा० ७, ४, ४१) से 'सा' के आ को इ । तुलना करें— 'सौभ्रात्रमेषां हि कुलानुसारि' । (रघुवंश १६, १)

(४) उत्थाय—चेतनां प्राप्य उत्थितः । चेतनावस्था में आकर, उठकर ।

(५) क्षितितल०—क्षितितले भूमौ यो रेणुः धूलिः तेन रूषितं लिप्तम् अङ्गं यस्य सः । बहुव्रीहि । पृथ्वी की धूलि से धूसरित (मटमैला) । यह विशेषण राजा और हाथी दोनों के साथ लगेगा। रेणुरूषित के अर्थ में दूसरा प्रयोग 'धूलिधूसरित' होता है । तुलना करें – 'अन्तर्गिरिरेणुरूषितः' (किरात० १, ३४) । 'गुण्ठितरूषिते द्वे धूलिलिप्तस्य' । इत्यमरः ।

(६) कान्तारद्विरदः—वन्यगजः । जंगली हाथी । द्वौ रदौ दन्तौ यस्य सः द्विरदः हस्ती । बहुव्रीहि । द्विरद अर्थात् हाथी ।

(७) जीर्णः—वृद्धः । वृद्ध । जॄ + क्त (त) । त को न ।

(८) इस श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द है । उसका लक्षण है—

त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ।

१५१—लक्ष्मणः—आर्य !

चीरमात्रोत्तरीयाणां किं दृश्यं वनवासिनाम् ।

१५२—रामः—

गतेष्वस्मासु राजा नः शिरः स्थानानि पश्यतु ॥३१॥

(*इति निष्क्रान्ताः सर्वे*)

प्रथमोऽङ्कः ।

१५१—लक्ष्मण—आर्य,

(चीर वल्कल) मात्र धारण करने वाले हम वनवासियों को क्या देखना ?

Lakṣmaṇa—Noble one,

What is to be seen of us, dressed in tattered barks only and (almost) living in a forest ?

१५२—राम—हमारे चले जाने पर राजा हमारे प्रमुख निवासस्थानों को देखें ॥३१॥

(सब का प्रस्थान)

प्रथम अंक समाप्त ॥१॥

Rāma.—When we are gone, the king may have a look at the principal places of our residence. (31)-

(*Exeunt Omnes*)

End of Act I

Notes

१५१—(१) चीरमात्र०—चीरमात्रं वल्कलमात्रं, न तु दर्शनीयं दुकूलादिकम्, उत्तरीयं परिधानं येषां तेषाम् । बहुव्रीहि । वल्कलमात्र धारण करने वाले ।

(२) वनवासिनाम्—वनेचराणाम् । वनवासी अभी तक न होने पर भी लक्ष्मण आवेश में ऐसा कहते हैं । हम लोगों में अब क्या दर्शनीय रह गया है, जिसे राजा देखें ।

१५२—(१) शिरःस्थानानि—प्रधाननिवासस्थानानि । मुख्यनिवासस्थानों को । महाराज को हमारे मिलने पर अधिक शोक न हो, अतः दशरथ से बिना मिले राम आदि प्रस्थान करते हैं । 'हम लोग जाते हैं, हमारे जाने पर महाराज हमारे रिक्त भवनों को देखें' इस प्रकार राम पिता से मिलने में उपेक्षा करते हैं । भास ने अंक को समाप्त करने की शीघ्रता में संभवतः ऐसा किया है । रामायण के अनुसार दशरथ ने सुमन्त्र के द्वारा राम को बुलवाया और राम पिता से मिलकर वन को गए । (रामायण, अयोध्याकांड अ० ३३, २६—३१ तथा अध्याय ३४)

'शिरःस्थान' शब्द महाभारत (वनपर्व २५८,१३) में मुख्य स्थान, ऊँचे स्थान के अर्थ में आया है —

पुनर्बहुमृगं रम्यं काम्यकं काननोत्तमम् ।
मरुभूमेः शिरःस्थानं तृणबिन्दुसरःप्रति ॥ इत्यादि ॥

प्रो० देवधर ने 'स्थान' शब्द को 'सादृश्य'वाचक मान कर इसका अर्थ किया है कि 'शिरःसादृश्यानि' शिर की समानता को अर्थात् हमारे चित्रों को जो कि हमारे निवासस्थानों की दीवारों पर चित्रित हैं, राजा उन्हें देखकर सन्तोष करें। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

(२) अंक का लक्षण है—

(क) एकाहचरितैकार्थमित्थमासन्ननायकम्।
पात्रैस्त्रिचतुरैरङ्कं तेषामन्तेऽस्य निर्गमः॥ (दशरूपक)

(ख) भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' के २० वें अध्याय में 'अङ्क' का विस्तृत विवेचन किया है कि—

अङ्क इति रूढिशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान्।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः॥१४॥
अङ्कसमाप्तिः काव्यच्छेदो न बीजसंहारः।
वस्तुव्यापी बिन्दुः काव्यसमुत्थोऽत्र नित्यं स्यात्॥१५॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः।
किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवगन्तव्यः॥१६॥
ये नायका निगदितास्तेषां प्रत्यक्षचारिसंयोगः।
नानाऽवस्थान्तरितः कार्यस्त्वङ्को यथार्थरसः॥१७॥
नायकदेवीपरिजनपुरोहितामात्यसार्थवाहानाम्।
नैकरसान्तरविहितो ह्यङ्कः खलु वेदितव्यः सः॥१८॥
पञ्चावरा दशपरा ह्यङ्काः स्युर्नाटके प्रकरणे च।
निष्क्रामः सर्वेषां यस्मिन्नङ्कः स विज्ञेयः॥१९॥

॥ प्रथम अंक समाप्त

अथ द्वितीयोऽङ्कः

—:०:—

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

१—कांचुकीयः—भो भोः प्रतिहारव्यापृताः ! स्वेषु स्वेषु स्थानेष्वप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः ।

(प्रविश्य)

२—प्रतिहारी—आर्य ! किमेतत् ? (अय्य ! किं एदं ?)

३—कांचुकीयः—एष हि महाराजः सत्यवचनरक्षणपरो राममरण्यं गच्छन्तमुपावर्तयितुमशक्तः पुत्रविरहशोकाग्निना दग्धहृदय उन्मत्त इव बहु प्रलपन् समुद्रगृहके शयानः—

मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे
शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः ।
सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः
शोकाद् भृशं शिथिलदेहमतिर्नरेंद्रः ॥१॥

४—प्रतिहारी—हा हा एवंगतो महाराजः ? (हा हा एव्वंगओ महाराओ ।)

५—कांचुकीयः—भवति ! गच्छ ।

६—प्रतिहारी—आर्य ! तथा । (अय्य ! तह ।) (निष्क्रांताः ।)

(तदनन्तर कञ्चुकी का प्रवेश)

१—कञ्चुकी—ऐ द्वार-रक्षण पर नियुक्त व्यक्तियो (द्वारपालो), अपने अपने स्थानों पर आप लोग सावधान रहिए।

(*Then enters a chamberlain*).

Chamberlain —O you, who are engaged in the act of door-keeping (door-keepers). Be you careful at your respective posts.

(प्रविष्ट होकर)

२—प्रतिहारी—आर्य, यह क्यों ?

(*Entering*).

Pratihārī—Sir, what is this for ?

३—अन्वय—युगक्षयसन्निकर्षे चलन् मेरुः इव, अप्रमेयः महोदधिः शोषं व्रजन् इव, मंडलमात्रलक्ष्यः च पतन् सूर्यः इव, शोकात् भृशं शिथिल-देहमतिः नरेन्द्रः (अस्ति) ।

कंचुकी—ये सत्यप्रतिज्ञ (अपने सत्य वचनों के रक्षक) महाराज (दशरथ), वन को जाते हुए राम को लौटाने में असमर्थ होकर, पुत्रवियोग के शोक की अग्नि से सन्तप्त-हृदय, उन्मत्त की तरह बहुत प्रलाप करते हुए, समुद्रगृह में सोये हुए—

प्रलयकाल के समीप आने पर कम्पायमान सुमेरु पर्वत तुल्य, सूखते हुए अगाध (असीम) महासमुद्र के तुल्य, मंडलमात्र (बिम्बमात्र) ही दृष्टिगोचर होने वाले तथा गिरते हुए सूर्य के तुल्य, महाराज भी शोकाधिक्य के कारण अत्यधिक कृशकाय और चेतनाहीन होते जा रहे हैं ॥१॥

Chamb.—This great king, who was intent on maintaining the integrity of his promise, not being albe to turn back Rāma, who was proceeding to the forest, and (there by) having his heart burnt with the fire in the form of the sorrow of separation from his son, is lying down in the Samudra house, and is, like an insane man talking excessively in an incoherent manner (where),

Like the Meru mountain having its foundation shaking or like the great unfathomable ocean beginning to dry up, or like the sun falling down with his orb only visible, at the

approach of the termination of a Yuga, the king has (the frame of) his body and mind greatly unhinged owing to sorrow.

४—प्रतिहारी—हाय, हाय, महाराज की यह अवस्था हो गई है ?

Pratihāri—Oh ! It is a pity that the great king has been reduced to such a condition.

५—कंचुकी—भद्रे, आप जाइये (अपना काम कीजिये) ।

Chamb.—Lady, go (to attend to your duty).

६—प्रतिहारी—आर्य, अच्छी बात है । (प्रस्थान)

Pratihāri—Noble one, so I do. (Exit).

Notes

१—(१) प्रतिहार०—द्वारपालकाः । द्वारपाल । प्रतिहारे द्वारे व्यापृताः नियुक्ताः । तत्पुरुष । प्रतिहार—प्रति + हृ + घञ् । व्यापृत—वि + आ + पृ + क्त (त) ।

(२) अप्रमत्ताः—सावधानाः, सावधान । अप्रमत्त—प्र + मद् + क्त—प्रमत्त + नञ् समास ।

३—(१) सत्यवचन०—सत्यवचनस्य रक्षणे परः तत्परः । तत्पुरुष । अपने सत्य वचन की रक्षा में तत्पर ।

(२) उपावर्तयितुम्—निवर्तयितुम्, लौटाने में । उप + आ + वृत् + णिच् + तुमुन् । कालिदास ने भी इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है—

'त्वदुपावर्तनशङ्कि मे मनः' रघुवंश ८. ५३

उपावर्तन का दूसरा अर्थ 'मानना, समझा बुझाकर बात मनवाना' भी होता है । तब इसका अर्थ होगा—'मनाने में असमर्थ राजा' । भवभूति ने मालतीमाधव (अंक ८ पृ० १६१) में इस अर्थ में प्रयोग किया है—

'कथं वामशीलां मालतीमुपावर्तये'

(३) समुद्रगृहके—'समुद्रगृह' कृत्रिम झील के बीच में बने हुए छोटे विश्रामगृह एवं क्रीडागृह को कहते हैं । राजभवन के समीप निर्मित क्रीडागृह, जो कि चारों ओर फव्वारों से घिरा हुआ हो, उसको भी 'समुद्रगृह' कहते हैं ।

स्वप्नवासवदत्तम् (अंक ५) में तथा कालिदास के मालविकाग्निमित्र (अंक ४ पृ० ७४) में 'समुद्रगृह' का उल्लेख है।

'समुद्रगृहमित्युक्तं जलयन्त्रनिकेतनम्' इति हारावली।

(४) युगक्षय०—युगस्य क्षयः अन्तः युगान्तः तस्य सन्निकर्षे सन्निधाने सामीप्ये। तत्पुरुष। प्रलय के समीप आ जाने पर। 'युगक्षय०' का संबन्ध प्रथम तीनों पक्तियों से है। प्रलय-काल में ही मेरु चलायमान होता है, समुद्र सूख जाते हैं और सूर्य गिरने लगता है।

(५) महोदधिः—महांश्चासौ उदधिः समुद्रः, महासागरः, महासागर। कर्म-धारय।

(६) अप्रमेयः—प्रमातुम् इयत्तया परिच्छेत्तुम् अशक्यः, अनिर्वचनीयः। जिसकी इयत्ता निर्धारित नहीं की जा सकती। नञ् + प्र + मा + यत् (या)

(७) मण्डलमात्रलक्ष्यः—मण्डलमात्रेण बिम्बमात्रेण लक्ष्यः दृश्यः। तत्पुरुष। सूर्य का तेज नष्ट होने से केवल गोलामात्र दीखने वाला।

(८) शिथिलदेह०—शिथिलः हीनः देहः शरीरं मतिः बुद्धिश्च यस्य सः। बहुव्रीहि। शोक के कारण जिसका शरीर और बुद्धि शिथिल हो गई है।

(९) इस श्लोक में द्वितीय और तृतीयपद में महोदधि और सूर्य के विशेषण हैं, परन्तु प्रथम और चतुर्थ पद में नहीं हैं। समता के लिये चारों पदों में विशेषण चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं है, अतः यहाँ पर 'क्रमभङ्गदोष' है।

(१०) इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

७—कांचुकीयः—(सर्वतो विलोक्य) (क) अहो तु खलु रामनिर्गमनदिनादारभ्य शून्यैवेयमयोध्या संलक्ष्यते। कुतः—

नागेन्द्रा यवसाभिलाषविमुखाः सास्रेक्षणा वाजिनो
हेषाशून्यमुखाः सवृद्धवनिताबालाश्च पौरा जनाः।
त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः क्रन्दन्त उच्चैर्दिशा
रामो याति यया सदारसहजस्तामेव पश्यन्त्यमी॥२॥

(ख) यावदहमपि महाराजस्य समीपवर्ती भविष्यामि । (परिक्रम्यावलोक्य ।) अये ! अयं महाराजो महादेव्या सुमित्रया च सुदुःसहरपि पुत्रविरहसमुद्भवं शोकं निगृह्यात्मानमेव संस्थापयन्तीभ्यामन्वास्यमानस्तिष्ठति । कष्टा खल्वत्रस्था वर्तते । एष एष महाराजः—

पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युच्चैर्लपन् मुहुः ।
दिशं पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः ॥३॥

(*निष्क्रान्तः*)

मिश्रविष्कम्भकः ।

७—(क) अन्वय—नागेन्द्राः यवसाभिलाषविमुखाः, वाजिनः सास्रे क्षणा हेषाशून्यमुखाः, त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः उच्चैः क्रन्दन्त सवृद्धवनिताबालाः पौराः जनाः च, यया दिशा सदारसहजः रामः याति, तामेव अमी पश्यन्ति ।

कंचुकी—(चारों ओर देखकर) ओह, जिस दिन से राम गये, उसी दिन से यह अयोध्या सर्वथा सूनी (अमनोरम) दिखाई पड़ रही है । क्योंकि गजराजों ने चारा खाने की इच्छा छोड़ दी है । सजलनेत्र अश्वों ने अपने मुँह से हिनहिनाना छोड़ दिया है । भोजन की चर्चा छोड़कर (या भोजन और विनोद-वार्ता छोड़कर) खिन्न-वदन, जोर से रोते हुए, आबाल-वनिता-वृद्ध पुरवासी जन, जिस दिशा में अपनी पत्नी और अपने (छोटे) भाई के साथ राम गये हैं, उसी दिशा की ओर ये सब टकटकी लगाकर देख रहे हैं ॥२॥

Chamb.—(Looking all round). Oh this Ayodhyā appears to be really deserted since the day that Rāma went out of it. For—

The lordly elephants show no desire for (to eat) fodder ; the horses have their eyes filled with tears and mouths devoid of neighing; and these citizens, including old men, women

and children, having given up all talk about taking their food, (or taking food and merry talks) with faces extremely miserable and loudly crying, are looking in that very direction by which Rāma accompanied by his wife and brother has gone. (2)

(ख) अन्वय—उत्थाय उत्थाय च मुहुः हा हा इति उच्चैः लपन् पतति । तामेव दिशं पश्यति यया रघूद्वहः यातः ।

अच्छा, अब मैं भी महाराज के समीप पहुँचता हूँ। (घूमकर और देखकर) आह ! ये हैं महाराज (दशरथ) जो पुत्र-वियोग-जन्य अतिदुःसह शोक को भी रोककर, अपने आप को (दशरथ को) समझाती हुई महादेवी (कौशल्या) और सुमित्रा के द्वारा सेवा किए जा रहे हैं। अत्यन्त ही दयनीय अवस्था है। ये, ये महाराज—

उठ-उठ कर, बार-बार जोर से हाय हाय चिल्लाते हुए (पृथ्वी पर) गिर पड़ते हैं। उसी दिशा की ओर निर्निमेष देख रहे हैं, जिस दिशा में रघुकुल-श्रेष्ठ (राम) गए हैं ॥३॥

(*प्रस्थान*)

मिश्र-विष्कम्भक समाप्त

Now I too shall be by the side of the great king. (Walking on and looking.) Ah, here is the great king attended upon by the chief queen (*i. e.* Kausalyā) and Sumitra, who are composing him, having suppressed the grief although very unbearable, caused by the separation of their sons. The situation is indeed painful. This, this great king—

Frequently uttering in a loud tone the words 'Alas ! Alas !' and getting up over and over again, falls down to the ground and looks in that very direction by which the chief of Raghus (i.e. Rāma) has depart ed. (3)

Exit.

Here ends the mixed Viṣkambhaka.

Notes

७—(१) नागेन्द्राः—गजेन्द्राः, गजराज।

(२) यवसाभिलाषविमुखाः—तृणग्रासग्रहणपराङ्मुखाः, चारे की इच्छा से विमुख। यवसे अभिलाषः यवसाभिलाषः, तस्मात् विमुखाः। तत्पुरुष। 'शष्पं बालतृणं घासो यवसं तृणमर्जुनम्' इत्यमरः।

(३) सास्रेक्षणाः—सबाष्पनयनाः। सजलनयन। अस्रैः अश्रुभिः सहिते सास्रे अक्षिणी येषां ते। बहुव्रीहि। ईक्षण—ईक्ष् + ल्युट् (अन)।

(४) हेषाशून्य०—हेषा अश्वशब्दः तया शून्यं रहितं मुखं वदनं येषां ते। बहुव्रीहि। घोड़ों (के मुँह) ने हिनहिनाना छोड़ दिया था।

(५) सवृद्ध०—वृद्धैः वनिताभिः बालैश्च सहिताः। बहुव्रीहि। वृद्ध, स्त्रियों तथा बालकों के सहित नागरिक।

(६) त्यक्ताहार०—इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(१) त्यक्ता आहार-कथा यैः ते। बहुव्रीहि। जिन्होंने भोजन की चर्चा भी छोड़ दी है। (२) त्यक्ताः आहाराः कथाश्च विनोदकथाश्च यैः ते। जिन्होंने भोजन और मनोरञ्जन (विनोद-कथा) छोड़ दिया है।

(७) सुदीन०—सु अधिकं दीनं खिन्नं वदनं मुखं येषां ते। बहुव्रीहि। अत्यधिक खिन्न (मुरझाये हुए) मुँह वाले।

(८) सदार०—दारैः भार्यया सहजेन भ्रात्रा च सहितः सदारसहजः। तत्पुरुष। पत्नी और भाई के साथ। सहज—सह जायते इति सहजः, सहोदरः।

(९) इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

(१०) समीपवर्ती—निकटस्थः। पास में विद्यमान। समीपे वर्तते इति समीपवर्तिन्—समीप + वृत् + णिनि।

(११) सुदुःसहम्—अत्यधिकम् असह्यम्। अत्यधिक असह्य। सु + दुः + सह् + खल् (अ)। यहाँ पर 'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्' (पा० ३. ३. १२६) से खल् प्रत्यय।

(१२) पुत्रविरह०—पुत्रयोः सुतयोः विरहात् वियोगात् समुद्भवं जातम्। तत्पुरुष। पुत्रों के वियोग से उत्पन्न।

(१३) निगृह्य—संस्तभ्य । रोककर । नि + ग्रह् + क्त्वा (ल्यप्) ।

(१४) आत्मानमेव०—इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(१) आत्मानमेव (प्रथमं) संस्थापयन्तीभ्यां, (पश्चात् संस्थाप्यमान:) अन्वास्यमान: महाराज: । पहले अपने आप को ही सँभालती हुई कौसल्या और सुमित्रा के द्वारा बाद में सँभाला जाता हुआ राजा । (२) 'आत्मानमेव' का सम्बन्ध 'महाराज.' से होने पर अर्थ होगा—महाराज दशरथ अपने आप को (दशरथ को) आश्वासन देती हुई उन दोनों के द्वारा सेवा किये जा रहे थे ।

(१५) संस्थापयन्तीभ्याम्—समाश्वासयन्तीभ्याम् । आश्वासन देती हुई । संस्थापयन्ती—सम् + स्था + णिच् + शतृ + ङीप् ।

(१६) अन्वास्यमान:—सेव्यमान: । सेवा किया जाता हुआ ।

अनु + आस् + यक् + शानच् ।

(१७) उत्थाय च—'च' दूसरे 'उत्थाय' के बाद होना चाहिये, या 'उत्थाय च उत्थाय च' ऐसा होना चाहिये । उत्थाय—उत् + स्था + क्त्वा (ल्यप्) । बार बार उठ कर ।

(१८) लपन्—वदन् । चिल्लाते हुए । लप् + शतृ ।

(१९) रघूद्वहः—रघूणां रघुकुलोत्पन्नानाम् उद्वह: श्रेष्ठ: । तत्पुरुष । रघुवंशियों में श्रेष्ठ । उद्वह—उद्वहतीति, उद् + वह् + अच् ।

(२०) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ।

(२१) मिश्रविष्कम्भक का लक्षण—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ॥
एकानेककृतः शुद्धः, संकीर्णो नीचमध्यमैः ॥ (दशरूपक)

भूत और भावी कथांश की सूचना के लिये 'विष्कम्भक' होता है । यह नाट्य में संक्षेप के लिए लाया जाता है । यह मध्यम कोटि के पात्रों द्वारा किया जाता है । जब एक या एक से अधिक मध्यम पात्र इसमें भाग लेंगे तो वह 'विष्कम्भक' या 'शुद्धविष्कम्भक' कहा जाता है, और जब उसमें मध्यम और नीच पात्र भाग लेते हैं तो वह 'मिश्रविष्कम्भक' कहा जाता है । यहाँ पर कंचुकी मध्यम कोटि का पात्र है तथा प्रतिहारी 'नीच पात्र है' अतः

'मिश्र विष्कम्भक' है। साहित्यदर्पण (परिच्छेद ६, श्लोक ५५—५६) में तथा नाटकशास्त्र में (अध्याय २० श्लोक ३७—३९) विष्कम्भक की विस्तृत विवेचना की गई है।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा देव्यौ च।)

८—राजा—

(क) हा वत्स ! राम ! जगतां नयनाभिराम !
हा वत्स ! लक्ष्मण ! सलक्षणसर्वगात्र !
हा साध्वि ! मैथिलि ! पतिस्थितचित्तवृत्ते !
हा हा गताः किल वनं बत मे तनूजाः ॥४॥

(ख) चित्रमिदं भोः, यद् भ्रातृस्नेहात् पितरि विमुक्तस्नेहमपि लक्ष्मणं द्रष्टुमिच्छामि। वधु ! वैदेहि !

रामेणापि परित्यक्तो लक्ष्मणेन च गर्हितः।
अयशोभाजनं लोके परित्यक्तस्त्वयाऽप्यहम् ॥५॥

(तदनन्तर निर्दिष्टरूप में राजा और दोनों रानियों का प्रवेश)

८—(क) अन्वय—हा जगतां नयनाभिराम ! वत्स ! राम !, हा सलक्षणसर्वगात्र ! वत्स ! लक्ष्मण ! हा पतिस्थितचित्तवृत्ते ! साध्वि ! मैथिलि ! हा हा, बत मे तनूजाः वनं गताः किल।

राजा—हा संसार के नयनों के लिए अभिराम पुत्र राम ! हा सर्वशुभलक्षणों से युक्त सर्वाङ्ग पुत्र लक्ष्मण ! हा पतिपरायणे साध्वि सीते ! हाय, हाय ! शोक ! मेरे सब बच्चे वन को चले गए ॥४॥

(Enters the King as described and the two Queens)

The king—O my son Rama, who are delightful to the eyes of all the worlds ! O my son Lakṣmaṇa, with all your limbs having their proper auspicious marks ! O chaste Maithili, the devotion of whose mind is centred in your husband ! Oh ! Alas ! my children have gone to the forest. (4).

(ख) अन्वय—रामेण अपि परित्यक्तः, लक्ष्मणेन च गर्हितः, लोके अयशोभाजनम्, त्वया अपि अहं परित्यक्तः।

यह आश्चर्य की बात है कि भ्रातृस्नेह के कारण पितृ-स्नेह को छोड़ देने पर भी लक्ष्मण को देखने के लिये मैं लालायित हूँ। वधु ! वैदेहि ! राम ने भी मुझे छोड़ दिया, लक्ष्मण ने भी मेरा तिरस्कार किया, (अब) मैं संसार में अयश का पात्र बना हूँ, क्या तुमने भी मुझे छोड़ दिया ! ॥५॥

This is strange that I long to see Lakṣmaṇa, though he has renounced his affection for his father, owing to his love for his brother. O my daughter-in-law, Vaidehi,

I, who am relinquished even by Rāma and reprehended by Lakṣmaṇa and who have consequently become. the receptacle of infamy in the world, have been abandoned even by you ! (5)

Notes

८—(क) १—जगतां नयनाभिरामः—जगतां लोकानां, नयनयोः लोचनयोः अभिरामः रमणीयः। तत्पुरुष। संसार के नेत्रों को सुखकर। २—सलक्षण०—लक्षणैः सामुद्रिकशास्त्रोक्तशुभलक्षणैः सहितानि युक्तानि सर्वाणि गात्राणि अङ्गानि यस्य सः। बहुव्रीहि। समस्त सामुद्रिक शास्त्रोक्त शुभ चिह्नों से युक्त जिसके शरीरावयव हैं। ३—पतिस्थित०—रत्यौ भर्तरि स्थिता लग्ना चित्तवृत्तिः मनोव्यापारः यस्याः सा, पतिस्थितचित्तवृत्तिः। बहुव्रीहि। पतिपरायणा। ४—बत—खेदे, कष्टम्। 'बत' अव्यय के कई अर्थ हैं—

'खेदानुकम्पासन्तोषविस्मयामन्त्रणे बत।' इत्यमरः। ५—तनूजाः—पुत्रकाः। बच्चो ! तनूजाः में सीता का भी समावेश है। ६—इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

(ख)—१—भ्रातृस्नेहात्—भ्रातरि रामे स्नेहात्। तत्पुरुष। राम के प्रति प्रेम के कारण। स्नेह-स्निह्+घञ्। २—विमुक्तस्नेहम्—विमुक्तः त्यक्तः स्नेहः प्रेम येन तम्। बहुव्रीहि। प्रेम का त्याग करने वाले। विमुक्त—वि+मुच्+क्त। ३—गर्हितः—निन्दितः। मेरे परित्याग के कारण जिसने

मेरी एक प्रकार से निन्दा की है। गर्ह् + क्त—गर्हितः। ४—अयशोभाजनम्—अयशसः अकीर्तेः भाजनं पात्रम्। तत्पुरुष। अयश के पात्र। 'भाजन' शब्द नपुंसक लिंग में आता है। अतः यहाँ पर 'अयशोभाजनः' पुल्लिंग दशरथ के लिये नहीं आया। ५—इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

(ग) पुत्र राम! वत्स लक्ष्मण! वधु वैदेहि! प्रयच्छत मे प्रतिवचनं पुत्रकाः! शून्यमिदं भोः! न मे कश्चित् प्रतिवचनं प्रयच्छति। कौसल्यामातः! क्वासि?

सत्यसन्ध! जितक्रोध! विमत्सर! जगत्प्रिय!।
गुरुशुश्रूषणे युक्त! प्रतिवाक्यं प्रयच्छ मे ॥६॥

(ग) अन्वय—सत्यसन्ध! जितक्रोध! विमत्सर! जगत्प्रिय! गुरुशुश्रूषणे युक्त! मे प्रतिवाक्यं प्रयच्छ।

पुत्र राम, प्रिय लक्ष्मण, बहू वैदेहि, हे मेरे प्रिय बच्चो! मेरे वचनों का उत्तर तो दो। ओह, यहाँ तो सूना पड़ा है। कोई मुझे प्रत्युत्तर नहीं देता है। हे कौसल्या-नन्दन, तुम कहाँ हो?

ऐ सत्यप्रतिज्ञ, अक्रोधी, मात्सर्यशून्य, संसार के प्रिय, गुरुजनों (बड़ों) की सेवा में तत्पर (राम)! मुझे प्रत्युत्तर दो ॥६॥

My son Rāma, dear Lakṣmaṇa, daughter-in law Vaidehi, give a reply to me. Oh, it is all vacant here. Nobody speaks anything with me. Son of Kausalyā, where are you!

O you, true to your promise, with anger conquered, free from jealousy, loved by the world and devoted to the service of the elders, give me a reply. (6)

Notes

ग—(१) प्रयच्छत,—दत्त। दो।

(२) प्रतिवचनम्—प्रत्युत्तरम्। प्रत्युत्तर। प्रति + वच् + ल्युट् (अन)

(३) पुत्रकाः—तनूजाः। पुत्रो। 'पुत्र' शब्द से क प्रत्यय 'अनुकम्पा' (दयाभाव) अर्थ में है।

(४) कौसल्यामातः—राम ! राम ! कौसल्या माता यस्य सः तत्संबुद्धिः। कौसल्या जिसकी माता है। बहुव्रीहि०। इसी प्रकार लक्ष्मण और भरत के लिये—'सुमित्रामातः' 'कैकेयीमातः' आया है। 'बालचरित' में 'शौरसेनीमातः' और 'यादवीमातः' प्रयोग भी ऐसे ही हैं। 'चारुदत्त' नाटक में 'काणेलीमातः' प्रयोग आता है। महाभारत वनपर्व (१८०, २) में 'कुन्तीमातः' प्रयोग भी इसी प्रकार का है।

(५) सत्यसन्धः—सत्यप्रतिज्ञः। सत्या सन्धा प्रतिज्ञा यस्य सः, सत्यसन्धः। बहुव्रीहि॥

(६) जितक्रोधः—आत्मवशीकृतकोपः। जितः आत्मायत्तः कृतः क्रोधः कोपः येन सः जितक्रोधः। बहुव्रीहि। जिसने क्रोध को जीत लिया है।

(७) विमत्सरः—ईर्ष्याहीनः। ईर्ष्या-रहित। विगतः मत्सरः ईर्ष्या द्वेषो वा यस्य सः विमत्सरः। बहुव्रीहि।

(८) गुरुशुश्रूषणे—गुरुसेवायाम्। गुरोः पूज्यस्य शुश्रूषणं सेवा गुरुशुश्रूषणं तस्मिन्। तत्पुरुष। गुरु-सेवा में तत्पर।

(९) प्रतिवाक्यम्—प्रतिवचनम्। प्रत्युत्तर।

(१०) अनुष्टुप् छन्द है।

(११) इस श्लोक में विशेषण साभिप्राय हैं, अतः यहाँ परिकर अलंकार है। इसका लक्षण है—

उक्तैर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः।

साहित्यदर्पण १०, ५७.

(घ) हा क्वासौ सर्वजनहृदयनयनाभिरामो रामः। क्वासौ मयि गुर्वनुवृत्तिः ! क्वासौ शोकार्तेष्वनुकम्पा। क्वासौ तृणवद्गणितराज्यैश्वर्यः। पुत्र ! राम ! वृद्धं पितरं मां परित्यज्य किमसम्बद्धेन धर्मेण ते कृत्यम्। हा धिक्। कष्टं भोः।

सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥७॥

(घ) अन्वय—रामः सूर्य इव गतः, सूर्यदिवस इव लक्ष्मणः अनुगतः। सूर्यदिवसावसाने छाया इव सीता न दृश्यते।

हाय कहाँ है वह हृदय और नेत्रों को तृप्त करने वाला राम ! कहाँ है वह मुझ पर अत्यधिक भक्ति रखने वाला ! कहाँ है वह शोक से पीड़ितों पर दया की मूर्ति ! कहाँ है वह सम्पूर्ण राज्य के ऐश्वर्य को तृण-तुल्य कुछ न समझने वाला ! पुत्र राम ! मुझ वृद्ध पिता को छोड़कर इस असम्बद्ध (अनुचित, अनावश्यक या मुझसे सम्बन्ध न रखने वाले) धर्म से तुम्हें क्या करना है ! हा धिक्कार है ! क्या ही कष्टप्रद बात है !

राम सूर्य की तरह चला गया, सूर्य के पीछे दिन की भाँति लक्ष्मण भी चला गया। सूर्य और दिन की समाप्ति पर छाया के तुल्य सीता भी नहीं दिखाई दे रही है ॥७॥

Oh, where is that Rāma, who is agreeable to the hearts and eyes of all men ? Where is he deeply devoted to me ? Where is that embodiment of compassion towards those distressed with sorrow ? Where is he, who showed no regard for the mastery of thekingdom, as if it were a blade of grass ? O my son Rāma, abandoning me, your father, what have you to do with Duty, which does not stand to reason (or, not connected with me) ? Oh, pity ! How painful !

Rāma has departed like the sun ; Lakṣmaṇa has followed him as day light does thesun ; Sīta is not seen like a shadow at the disappearance of the sun and day-light. (7)

Notes

घ—(१) सर्वजन०—सर्वजनानां हृदयानि नयनानि च तेभ्यः अभिरामः तत्पुरुष। सबके हृदयों और नेत्रों को आनन्दप्रद।

(२) गुर्वनुवृत्तिः—गुर्वी महती चासौ अनुवृत्तिः अनुरक्तिः। कर्मधारय। मुझ पर अत्याधिक निष्ठा। यहाँ पर बहुव्रीहि समास करने पर इसका अर्थ होगा 'गुर्वी अनुवृत्तिर्यस्य सः, मुझ पर अधिक निष्ठा वाला। यही अर्थ यहाँ पर अधिक प्राकरणिक है।

(३) अनुकम्पा— दया। यहाँ पर कृपा-कर्त्ता पर लक्षणा से कृपा का आरोप है। अतः अर्थ होगा—शोक-पीड़ितों पर दया करने वाला।

(४) तृणवत्०—तृणवत् अगणितं राज्यैश्वर्यं येन सः। बहुव्रीहि। राज्य के ऐश्वर्य को तृणवत् कुछ न समझने वाला।

(५) असम्बद्धेन—अनुचितेन। एक ओर पिता को छोड़ना, दूसरी ओर धर्म करना, यह असम्बद्ध है। यहाँ भाव है— पिता को छोड़ने वाले धर्म को मत अपनाओ।

(६) सूर्यदिवसा०— सूर्यदिवसयोः अवसाने अन्तर्धाने। तत्पुरुष। सूर्य और दिन के अन्तर्धान होने पर। सूर्य और दिन का अभेद्य सम्बन्ध है। सूर्य के साथ दिन रहता है और समाप्त होता है। सूर्य के तुल्य राम वन को चले गये, अतएव लक्ष्मण भी उनके पीछे चले गये। दोनों के साथ ही छाया तुल्य सीता भी चली गई, क्योंकि 'छाया' सूर्य-प्रिया मानी जाती है, वह सूर्य के साथ रहती है।

(७) यहाँ पर उपमा अलंकार है। काव्य की दृष्टि से यह श्लोक बहुत सुन्दर है।

(८) इस श्लोक में आर्या छन्द है। उसका लक्षण है—

यस्याः प्रथमे पादे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या॥

(ङ) (ऊर्ध्वमवलोक्य) भोः कृतान्तहतक!

अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः।
वने व्याघ्री च कैकेयी त्वया किं न कृतं त्रयम्॥८॥

९—कौसल्या—(सरुदितम्।) अलमिदानीं महाराजोऽतिमात्रं सन्तप्य परवशमात्मानं कर्तुम्। ननु सा तौ च कुमारौ महाराजस्य समयावसाने प्रेक्षितव्या भविष्यन्ति। (अलं दाणि महाराजो अदिमत्तं सन्तप्पिअ परवसं अत्ताणं कादुं। णं सा ते अ कुमारा महाराजस्स समआवसाणे पेक्खिदव्वा भविस्सन्ति।

१०—राजा—का त्वं भोः !

११—कौसल्या—अस्निग्धपुत्रप्रसवित्रिनी खल्वहम् ।

(असिणिद्धपुत्तप्पसविणी खु अहं)

(ङ) अन्वय—वयम् अनपत्याः, रामः अन्यस्य महीपतेः पुत्रः, कैकेयी च वने व्याघ्री, त्वया (इदम्) त्रयं किं न कृतम् ।

(ऊपर की ओर देखकर) अरे दुर्दैव, मुझे पुत्रहीन, राम को किसी अन्य राजा का पुत्र, तथा कैकेयी को वन में व्याघ्री, ये तीनों काम तुमने क्यों नहीं किये ? ॥८॥

(Looking upwards.) O cruel fate !

Why did you not do these three things—me, sonless, Rāma, the son of anther king, and Kaikeyī, a tigress in the forest (8)

६—कौसल्या—(रोती हुई) महाराज ! अब बहुत अधिक शोक करके अपने आप को अधीर न करें । अवश्य ही महाराज (चौदह वर्ष का) समय बीतने पर सीता को और उन दोनों राजकुमारों (राम और लक्ष्मण) को देख सकेंगे ।

Kausalyā—(Weeping). The great king should not now make himself helpless by lamenting very much, Surely she and the two princes can be seen by the great king at the period fixed.

१०—राजा—तुम कौन हो ?

King—Who are you.

११—कौसल्या—उसी निष्प्रेमी (निर्मम) पुत्र की माता मैं हूँ ।

Kausalyā—I am, indeed, the mother of that unloving son.

Notes

(ङ) १—कृतान्तहतक—कालहतक । दुर्भाग्य, दुर्दैव । 'हतक' शब्द निन्दा अर्थ में है । २—अनपत्याः—निष्पुत्राः । पुत्रहीन । नास्ति अपत्यं येषां ते । बहुव्रीहि । ३—रामः०—दशरथ के कथन का भाव यह है कि ए,

दुर्दैव, यदि यही करना था तो मुझे राम जैसा पुत्र ही न दिया होता। इससे तो निष्पुत्र ही अच्छा रहता। राम को किसी भाग्यशाली महाराज के यहाँ जन्म दिया होता, हम तो भाग्यहीन हैं। कैकेयी को रानी न बनाकर कहीं वन में व्याघ्री बनाया होता, क्योंकि उसने ऐसा ही घृणित कार्य किया है; जैसा कि कोई व्याघ्री करती। यहाँ पर कैकेयी पर बहुत कठोर व्यंग्य है। ४—यहाँ पर व्यंग्यरूप से अर्थ प्रकट करने के कारण 'पर्यायोक्त' अलंकार है। पर्यायोक्तं यदा भङ्ग्या गम्यमेवाभिधीयते। सा० दर्पण १०. ६१। ५—यहाँ पर अनुष्टुप् छन्द है।

९—(१) अलमिदानीम्०—यहाँ पर 'अलम्' निषेध अर्थ में है। आदेश के भाव को व्यक्त करता है, अतः 'महाराजः' प्रथमान्त न होकर 'महाराज! संबोधन रखना अधिक उचित है।

१२—राजा—किं किं सर्वजनहृदयनयनाभिरामस्य रामस्य जननी त्वमसि कौसल्या?

१३—कौसल्या—महाराज! सैव मन्दभागिनी खल्वहम्। (महाराज! सा एव मन्दभाइणी खु अहं।)

१४—राजा—कौसल्ये! सारवती खल्वसि। त्वया हि खलु रामो गर्भे धृतः।

अहं हि दुःखमत्यन्तमसह्यं ज्वलनोपमम्।
नैव सोढुं न संहर्तुं शक्नोमि मुषितेन्द्रियः ॥९॥

(सुमित्रां विलोक्य) इयमपरा का?

१२—राजा—क्या कहा! क्या तुम सब मनुष्यों के हृदय और नेत्रों को तृप्त करने वाले राम की जननी कौसल्या हो?

King—What! Are you Kausalyā, the mother of Rāma, who is agreeable to the hearts and eyes of all people?

१३—कौसल्या—महाराज! मैं वही अभागिनी हूँ।

Kausalyā—Great king, I am indeed the same unfortunate woman.

१४—अन्वय—अहं हि मुषितेन्द्रियः अत्यन्तम् असह्यं ज्वलनोपमं दुःखं सोढुं संहर्तुं (वा) न एव शक्नोमि ।

राजा—कौसल्ये, तुम भाग्यशालिनी हो, तुमने ही राम को अपने गर्भ में धारण किया है। (अभागा तो मैं हूँ।) मेरी इन्द्रियों की शक्ति नष्ट हो गई है। मैं इस अत्यन्त असह्य प्रदीप्त अग्नि के तुल्य (दाहक) दुःख को न सहन ही कर सकता हूँ और न रोक ही सकता हूँ ॥९॥

(सुमित्रा की ओर देखकर) यह दूसरी स्त्री कौन है ?

King—Kausalyā, you are really possessed of greatness, since you could hold Rāma in your womb.

For, I, deprived of the power of my senses, am feeble neither to bear nor suppress grief which is extremely unbearable and firelike. (9)

(Looking at Sumitrā). Who is this other lady ?

Notes

१२—(१) सर्वजन०—कौसल्या ने दुःखावेग में कहा था कि 'मैं निर्मम पुत्र की माता हूँ'। दशरथ ने कौसल्या के इस कथन का खण्डन करते हुए कहा कि 'नहीं, तुम सर्व-लोक-प्रिय राम की माता हो'।

१४—(१) सारवती—भाग्यवती। सारं प्रशस्तं वस्तु रामनामकं तद्वती। रामरूपी सुन्दर रत्नवाली हो, तुम अभागिनी कैसे ! तुमने ही राम को जन्म दिया है। राम को गर्भ में रखना बड़े धैर्य का काम था, अतः तुम धीर हो। भास ने 'बालचरित' (१.१२) में भी इसी प्रकार वर्णन किया है। वसुदेव कहते हैं—

अहो गुरुत्वं बालस्य ।

गर्भे यया धृतः श्रीमानहो धैर्यं हि योषितः ।

(२) असह्यम्—असहनीयम् ।

(३) ज्वलनोपमम्—प्रदीप्ताग्नितुल्यम्, सन्तापप्रदत्वात्। अग्नि के सदृश दुःखदायी, और सन्तापकारी होने से दोनों समान हैं। ज्वलनस्य उपमा यस्य तम्। बहुव्रीहि। अथवा, ज्वलनेन सदृशं ज्वलनोपमम्। अग्नि के तुल्य। (४) नैव सोढुं०—न मर्षयितुं, न वा संहर्तुं शक्नोमि। दुःख को न सह ही सकता हूँ और न उसे रोक ही सकता हूँ। इसकी तुलना कालिदास के निम्नलिखित वर्णनों से कीजिए—

(क) न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम्। (शाकुन्तल, ५.१५) (ख) शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ। (कुमारसंभव ५.८५.)। सोढुम्—सह+तुमुन्। संहर्तुम्—सम्+हृ+तुमुन्।

(५) मुषितेन्द्रियः—मुषितानि नष्टसामर्थ्यानि इन्द्रियाणि यस्य सः। बहुव्रीहि। जिसकी इन्द्रियों की शक्ति क्षीण हो गई है। राजा के 'का त्वं भोः' और सुमित्रा के लिए 'इयमपरा का' इन कथनों से इस बात की पुष्टि होती है कि उनकी दृष्टि बहुत निर्बल हो गई थी। अतः वे आगे (अंक २, श्लोक १८) कहते हैं कि—'अङ्गं मे स्पृश कौसल्ये न त्वां पश्यामि चक्षुषा'॥ वाल्मीकिरामायण में भी दशरथ की ऐसी ही अवस्था का वर्णन है—

चक्षुषा त्वां न पश्यामि, स्मृतिर्मम विलुप्यते।
दूता वैवस्वतास्त्वेते कौसल्ये त्वरयन्ति माम्॥

अयोध्या० ६५. ६५.

वे न देख सकने के कारण ही सुमित्रा के लिए आगे कहते हैं कि 'यह कौन है?'

(६) श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

१५—कौसल्या—महाराज! वत्सलक्ष्मण—(महाराज! वच्छलक्खण) (इत्यर्धोक्ते)

१६—राजा—(सहसोत्थाय) क्वासौ क्वासौ लक्ष्मणः। न दृश्यते। भोः कष्टम्।

(देव्यौ ससंभ्रममुत्थाय राजानमवलम्बेते।)

१७–कौसल्या—महाराज ! वत्सलक्ष्मणस्य जननी सुमित्रेति वक्तुं मयोपक्रान्तम्। (महाराज ! वच्छलक्खणस्स जणणी सुमित्तत्ति वत्तुं मए उववकन्दं)

१८—राजा—अयि सुमित्रे !

तवैव पुत्रः सत्पुत्रो येन नक्तन्दिवं वने।
रामो रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते ॥१०॥

१५—कौसल्या—महाराज, वत्स लक्ष्मण—(इसी बीच में ही)

Kausalyā—Great king, dear Lakṣmaṇa—

(At this half uttered).

१६—राजा—(सहसा उठकर) वह कहाँ है ? वह लक्ष्मण कहाँ है ? दिखाई नहीं पड़ता है। बड़े दुःख की बात है !

(दोनों रानियाँ सहसा उठकर राजा को सँभालती हैं।)

King—(Getting up hurriedly). Where is he ! Where is that Lakṣmaṇa ! He is not seen. Oh misery !

(The two queens rise in haste and support the king).

१७—कौसल्या—महाराज, मैं तो यह कह रही थी कि वत्स लक्ष्मण की माता सुमित्रा हैं !

Kausalyā—Great king, I had begun to say—

'Dear Lakṣmaṇa's mother, Sumitrā'.

१८—अन्वय—तव एव पुत्रः सत्पुत्रः येन वने रघुकुलश्रेष्ठः रामः नक्तन्दिवं छायया इव अनुगम्यते।

राजा—हे सुमित्रे, तेरा ही पुत्र सुपुत्र है, जो वन में रघुकुल श्रेष्ठ राम के पीछे दिन रात छाया की तरह चलता है ॥१०॥

King—O Sumitrā,

Your son alone is a worthy son, by whom Rāma, the best of the Raghu's race, is night and day accompanied, like s hadow, in the forest. (10)

Notes

१५—(१) वत्सलक्ष्मण—'वत्सलक्ष्मण'—इतना सुनते ही बात काट कर राजा बोल उठे 'कहाँ है लक्ष्मण' ! इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तल में 'शकुन्तलावण्णं पेक्ख। कुत्र वा मम माता। वत्सस्य मृत्तिकामयूरस्य लावण्यं० ! 'शकुन्तलावण्णं' में शकुन्तला की ध्वनि सुनकर भरत कहता है—'कहाँ है माता !' इत्यादि।

१७—(१) उपक्रान्तम्—प्रस्तुतमासीत्। प्रस्तुत किया था, प्रारम्भ किया था। उप+क्रम्+क्त।

१८—(१) नक्तन्दिवम्—अहोरात्रम्। दिनरात। नक्तं च दिवा च नक्तन्दिवम्। 'अचतुरविचतुर०' (पा० ५.४.७७) से निपातन।

(२) छाययेव—जिस प्रकार छाया मनुष्य को नहीं छोड़ती है, उसी प्रकार कभी साथ न छोड़ने वाले लक्ष्मण के द्वारा अनुगत। (३) यहाँ पर अनुष्टुप् छन्द है।

(*प्रविश्य*)

१९—काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः। एष खलु तत्रभवान् सुमन्त्रः प्राप्तः।

२०—राजा—(सहसोत्थाय सहर्षम्।) अपि रामेण।

२१—काञ्चुकीयः—न खलु रथेन।

२२—राजा—कथं कथं रथेन केवलेन। (इति मूर्छितः पतति।)

२३—देव्यौ—महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि। (महाराज ! समस्ससिहि समस्ससिहि।)

२४—काञ्चुकीयः—भोः। कष्टम्। ईदृग्विधाः पुरुषविशेषा ईदृशीमापदं प्राप्नुवन्तीति विधिरनतिक्रमणीयः। महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि। (गात्राणि परामृतः)

२५—राजा—(किञ्चित् समाश्वस्य ।) बालाके ! सुमन्त्र एक एव ननु प्राप्तः ।

२६—काञ्चुकीयः—महाराज ! अथ किम् ।

(प्रविष्ट होकर)

१६—कंचुकी—महाराज की जय हो । ये आर्य सुमन्त्र आ गये ।

(*Entering*)

A Chamberlain—May the great king be victorious. Indeed the respectable Sumantra has come.

२०—राजा—(सहसा उठकर हर्ष से) क्या राम के साथ ?

King—(Rising up suddenly in joy) with Rāma !

२१—कंचुकी—नहीं, केवल रथ के साथ ।

Chamb.—Not ineeed, with the chariot.

२२—राजा—क्यों, केवल रथ के साथ ही क्यों ? (मूर्च्छित होकर गिरता है ।)

King—How, with the chariot alone !

(*Falls down in a swoon.*)

२३—दोनों रानियाँ—महाराज, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये ।

(दोनों राजा के शरीर पर हाथ फेरती हैं)

The two queens—Great king, take courage, take courage. (They pass their palms along his limbs).

२४—कंचुकी—ओह, खेद है । इस प्रकार के महापुरुष भी ऐसी (घोर) विपत्ति को प्राप्त करते हैं, वस्तुत: भाग्य (भवितव्यता) टाला नहीं जा सकता है । महाराज, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये ।

Chamb.—Oh ! Alas ! Fate is inexorable, that such great persons are liable to such a calamity ! Great king take courage, take courage.

२५—राजा—(कुछ सँभल कर) बालाकि, क्या वस्तुतः सुमन्त्र अकेला ही आया है ?

King – (Recovering a little) O Bālāki, has Sumantra returned alone !

२६—कंचुकी—महाराज, हाँ ।

Chamb.—Yes, my great lord.

Notes

२०—(१) अपि रामेण—'सह' इति शेषः । क्या राम के साथ ?

२४—(१) ईदृग्विधाः—ईदृशी विधा येषां ते । बहुव्रीहि । इस प्रकार के ।

(२) पुरुषविशेषाः—विशिष्यते इति विशेषः । पुरुषाणां विशेषाः पुरुषविशेषाः, तत्पुरुष । श्रेष्ठ पुरुष । विशेष्—वि—शिष्+घञ् ।

(३) विधि०—भाग्य टाला नहीं जा सकता । अनतिक्रमणीयः—नञ्+अति+क्रम्+अनीयर । स्वप्नवासवदत्तम् (अंक ४ पृ० ३७) में भी कहा है—

'अनतिक्रमणीयो हि विधिः ।'

२७—राजा—कष्टं भोः !

शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः ।
नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः ॥११॥
तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

२८—काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

२९—राजा—

धन्याः खलु वने वातास्तटाकपरिवर्तिनः ।
विचरन्तं वने रामं ये स्पृशन्ति यथासुखम् ॥१२॥

२७—अन्वय—शून्यः यदि रथः प्राप्तः, मम मनोरथः भग्नः । नूनं दशरथं नेतुं कालेन रथः प्रेषितः ।

राजा—हा ! शोक है !

यदि रथ खाली लौटा है तो मेरे (सब) मनोरथ टूट गए, (मेरा मनरूपी रथ टूट गया)। अवश्य ही दशरथ को ले जाने के लिए काल (यम) ने यह (खाली) रथ भेजा है ॥११॥

ऐसी बात है तो (सुमंत्र को) शीघ्र अन्दर बुला लाओ।

King—Oh ! Alas !

If the chariot has returned empty, the desire is destroyed (the chariot of my mind is shattered); surely it is the chariot sent by Death, to carry away Daśaratha, as it is empty. (11)

Then let Sumantra be ushered in quickly.

२८—कंचुकी—जो महाराज की आज्ञा। (प्रस्थान)

Chamb—Just as the great king orders. (Exit)

२९—अन्वय—तटाकपरिवर्तिनः वने वाताः धन्याः खलु। ये वने विचरन्तं रामं यथासुखं स्पृशन्ति।

राजा—सरोवरों के चारों ओर बहने वाली वन की हवाएँ सर्वथा धन्य हैं, जो कि वन में विचरण करते हुए राम को स्वेच्छापूर्वक स्पर्श करती हैं ॥१२॥

King—Fortunate, indeed, are the breezes in the forest that blow along the tanks, as they touch Rāma, moving in the forest at pleasure. (12)

Notes

२७—(१) शून्यः—रामादिरहितः। राम आदि से रहित।

(२) मनोरथः—अभिलाषः। मेरे मनोरथ सर्वथा नष्ट हो गए। अब तक आशा थी कि संभवतः राम मेरे दुःख का विचार करके लौट आवें, अब वह आशा भी नहीं रही। दूसरी ओर 'मनोरथ' शब्द श्लेष द्वारा 'मनसः रथः—मनोरथः' यह अर्थ बताता है कि मेरा मनरूपी रथ टूट गया। अब मैं जीवित नहीं रह सकता। रथ खाली आने का भाव यह है कि काल (मृत्यु) ने मुझे ले जाने के लिए यह रथ भेजा है।

(३) अनुष्टुप् छन्द है।

२९—(१) तटाक०—तटाकं पद्माकरं जलाशयं परितः वर्तन्ते इति। सरोवर के चारों ओर बहने वाली। तटाक+परि+वृत्+णिनि। 'सुप्य-जातौ'० से णिनि। (२) विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण १०म परिच्छेद श्लोक ५६ की व्याख्या में 'अप्रस्तुतप्रशंसा' का एक उदाहरण दिया है, जो कि इस श्लोक से सर्वथा मिलता है। टीकाकार ने कहा है कि 'दशरथस्योक्तिरियम्' (दशरथ का कथन है)—

धन्याः खलु वने वाताः कह्लारस्पर्शशीतलाः।
राममिन्दीवरश्यामं ये स्पृशन्त्यनिवारिताः॥

(३) यहाँ पर दशरथ के कथन का भाव है कि हवाएँ धन्य हैं, किन्तु मैं अभागा हूँ।

(४) यहाँ पर 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलंकार है। अनुष्टुप् छन्द है।

(*ततः प्रविशति सुमन्त्रः*)

३०—सुमन्त्रः—(सर्वतो विलोक्य सशोकम्)

एते भृत्याः स्वानि कर्माणि हित्वा,
स्नेहाद् रामे जातबाष्पाकुलाक्षाः।
चिन्तादीनाः शोकसंदग्धदेहा
विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति॥१३॥

(उपेत्य) जयतु महाराजः।

३०—अन्वय—एते भृत्याः स्वानि कर्माणि हित्वा रामे स्नेहात् जात-बाष्पाकुलाक्षाः चिन्तादीनाः शोकसंदग्धदेहाः विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति।

(*तदनन्तर सुमन्त्र का प्रवेश*)

सुमन्त्र—(चारों ओर देखकर शोक के साथ)

ये भृत्य (नौकर आदि) अपने-अपने कार्यों को छोड़कर राम के प्रति स्नेह के कारण उत्पन्न हुए अश्रुओं से पूर्ण नेत्र वाले, चिन्ता के कारण

दीन, शोक (रूपी अग्नि) से दग्ध शरीर, ज़ोर ज़ोर से विलाप करने वाले राजा को धिक्कार रहे हैं ॥१३॥

(समीप जाकर) महाराज की जय हो ।

(*Then enters Sumantra.*)

Sumantra—(Looking around with sorrow).

These servants, who have neglected their duties, whose eyes are closly filled with tears arising out of affection for Rāma, who are miserable-looking owing to sad thoughts and who are burnt by (the fire of) sorrow, are reproaching the loudly-lamenting king. (13)

(Approaching) May the great king be victorious.

Notes

३०—(१) हित्वा—त्यक्त्वा । छोड़कर । हा + क्त्वा (त्वा) । 'जहातेश्च क्त्वि' (पा० ७. ४. ४३) से 'हा' के स्थान पर 'हि' ।

(२) जातबाष्प०—जातैः बाष्पैः अश्रुभिः आकुले पूर्णे अक्षिणी लोचने येषां ते । बहुव्रीहि । उत्पन्न हुए आँसुओं से जिनकी आँखें पूर्ण हैं ।

(३) चिन्तादीनाः—चिन्तया शोकेन दीनाः खिन्नाः । तत्पुरुष । शोक के कारण मलिन-मुख । दीनः—दी + क्त (त) । त को न ।

(४) शोकसन्दग्ध०—शोकेन सन्दग्धः ज्वलितः देहः शरीरं येषां ते । बहुव्रीहि । शोक (रूपी अग्नि) से जिनका शरीर जल गया है । अर्थात् अत्यधिक शोक से सन्तप्त । शोकः—शुच् + घञ् । च् को क् । सन्दग्ध—सम् + दह् + क्त (त) । देहः—दिह् + घञ् ।

(५) गर्हयन्ति—निन्दन्ति । निन्दा कर रहे हैं ।

(६) इस श्लोक में शालिनी छन्द है । उसका लक्षण है—

माप्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ।

(७) उपेत्य—समीपं गत्वा । पास जाकर । उप + इ + क्त्वा (ल्यप्) । 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (पा० ६. १. ७१) से धातु और प्रत्यय के बीच में तुक् (त्) का आगम ।

३१—राजा—भ्रातः ! सुमन्त्र !

क्व मे ज्येष्ठो रामः—

नहि नहि युक्तमभिहितं मया ।

क्व ते ज्येष्ठो रामः प्रियसुत ! सुतः सा क्व दुहिता
विदेहानां भर्तुर्निरतिशयभक्तिर्गुरुजने ।
क्व वा सौमित्रिर्मां हतपितृकमासन्नमरणं
किमप्याहुः किं ते सकलजनशोकार्णवकरम् ॥१४॥

३१—अन्वय—प्रियसुत ! ते ज्येष्ठः सुतः रामः क्व, गुरुजने निरतिशयभक्तिः विदेहानां भर्तुः दुहिता सा क्व, सौमित्रिः वा क्व, किं ते हतपितृकम् आसन्नमरणं सकलजनशोकार्णवकरं मां किमपि आहुः ।

राजा—भाई सुमन्त्र, कहाँ है मेरा ज्येष्ठ (ज्येष्ठ पुत्र) राम—?

नहीं, नहीं, मैंने ठीक नहीं कहा ।

ऐ पुत्रों को प्रेम करने वाले, तुम्हारा ज्येष्ठ पुत्र राम कहाँ है ? गुरुजनों पर असीम भक्ति रखने वाली, विदेह-राज (जनक) की पुत्री वह (सीता) कहाँ है ? वह सुमित्रा का पुत्र (लक्ष्मण) कहाँ है ? क्या उन्होंने (राम, सीता, लक्ष्मण ने) मरणासन्न, सब लोगों के लिए शोक-समुद्र को उत्पन्न करने वाले, मुझ नीच पिता को कुछ सन्देश भेजा है ॥१४॥

King—Brother Sumantra,

Where is my eldest (son) Rāma ?—

No, no I did not say what was proper.

Where is that eldest son of your, O you lover of sons ! Where is that daughter of the Lord of the Videhas, who possesses an unsurpassed devotion for the elderly persons ? Where is the son of Sumitrā ? Have they sent any message to their wretched father, who is on the point of death and who created a sea of sorrow for all people (to plunge in) ? (14)

Notes

३१—(१) क्व मे०—दशरथ ने पहले स्वाभाविक प्रेरणा से कहा कि 'मेरा ज्येष्ठ पुत्र राम—'परन्तु कुछ सोचकर फिर अपने आपको वनवास देने का दोषी समझकर राम आदि को अपना पुत्र कहने का अधिकार न मानकर कहा कि 'हे सुमन्त्र, तुम्हारा पुत्र राम कहाँ है ? तुम राम आदि को पुत्रवत् मानते हो, अतः राम तुम्हारा ही ज्येष्ठ पुत्र है। (२) प्रियसुत—प्रियः सुतः रामः यस्य सः। बहुव्रीहि जिसको राम आदि प्रिय हैं। (३) विदेहानां भर्तुः—विदेहानाम् अधिपस्य। तत्पुरुष। विदेह-प्रदेश के अधिपति। (४) निरतिशयभक्तिः—निरतिशयं भक्तिः यस्याः सा। यहाँ पर नपुंसक पूर्वपद—बहुव्रीहि समास है। 'सामान्ये नपुंसकम्' के नियमानुसार 'निरतिशयं' नपुंसकलिङ्ग है। असीम भक्ति वाली। यहाँ पर 'निरतिशया भक्तिः यस्याः सा' ऐसा बहुव्रीहि समास नहीं हो सकता क्योंकि उस अवस्था में 'निरतिशया-भक्तिः' रूप बनेगा ' स्त्रियाः पुंवद्०' (पा० ६. ३ ३४) से 'निरतिशया' को पुंवद्भाव नहीं होगा, क्योंकि 'भक्ति' शब्द प्रियादिगण में है। (५) क्व वा०—'वा' यहाँ 'च' (और) के अर्थ में आया है। 'व' का अर्थ 'और' भी होता है।

वा विकल्पोपमानयोः समुच्चये च। इति वैजयन्ती।

(६) हतपितृकम्—हतः दैवोपहतः पिता, हतपिता, स एव कुत्सितः हतपितृकः। नीच पिता। यहाँ पर 'कुत्सा' (निन्दा, घृणा)। अर्थ में कन् (क) प्रत्यय अन्त में लगा है। (७) आसन्न०—आसन्नं मरणं मृत्युः यस्य तम्। बहुव्रीहि। मरणासन्न। (८) सकल०—सकलजनेभ्यः शोकार्णवस्य करः कर्ता। तत्पुरुष। सब मनुष्यों के लिए शोकरूपी समुद्र को उत्पन्न करने वाला (९) श्लोक में 'शिखरिणी' छन्द है। उसका लक्षण है—

'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी'।

३२—सुमन्त्र—महाराज ! मा मैवममङ्गलवचनानि भाषिष्ठाः। अचिरादेव तान् द्रक्ष्यसि।

३३—राजा—सत्यमयुक्तमभिहितं मया। नायं तपस्विनामुचितः प्रश्नः। तत् कथ्यताम्। अपि तपस्विनां तपो वर्धते। अप्यरण्यानि स्वाधीनानि विचरन्ती वैदेही न परिखिद्यते।

३४—सुमित्रा—सुमन्त्र! बहुवल्कलालङ्कृतशरीरा बालाप्यबालचारित्रा भर्तुः सहधर्मचारिणी अस्मान् महाराजं च किञ्चिन्नालपति। (सुमन्त! बहुवक्कलालङ्किदसरीरा बालावि अबालचारित्ता भत्तुणो सहधम्मआरिणी अह्मे महाराजं च कञ्चिणालवदि।)

३५—सुमन्त्रः—सर्व एव महाराजम्—

३२—सुमन्त्र—महाराज, नहीं, इस प्रकार के अमङ्गल वचन न कहिए। शीघ्र ही आप उनको देखेंगे।

Sumantra—My great lord, do not, please do not, utter such inauspicious words. You will behold them before long.

३३—राजा—वस्तुतः मैंने अनुचित कहा था। तपस्वियों के विषय में ऐसा प्रश्न करना उचित नहीं है। अच्छा तो बताओ—क्या तपस्वियों का तप सकुशल चल रहा है? (राम के द्वारा) अपने अधीन किये हुए (अतएव निरापद) वनों में विचरण करती हुई वैदेही कहीं थकती तो नहीं?

King—Really I spoke what was improper. This is not a fit question in the case of ascetics. Tell me then—Does the penance of the ascetics go on well? I hope, Vaidehi does not feel fatigued while roaming through forests brought under her sway (rendered safe for) her by Rāma,

३४—सुमित्रा—सुमन्त्र, बहुत से (अनेक प्रकार के) वल्कलों से विभूषितशरीरा, बाला होते हुए भी युवती के तुल्य चरित्र-धारिणी, पति की सहधर्मचारिणी (सीता) ने हम लोगों को और महाराज को कुछ (सन्देश) कहा तो नहीं है?

Sumitrā—Sumantra, does not Sītā, whose body must have been adorned with various bark-garments, who, although young, has all the characteristics of a grown-up woman and who is accompanying her husband in all the religious practices, say anything to us, as well as to the great king?

३५—सुमन्त्र—सबने ही महाराज को—

Sumadtra—To the king, all of them—

Notes

३२—(१) मा मा भाषिष्ठा:—मा मा भाषस्व। मत कहिए। 'माङि लुङ्' से माङ् (मा) के कारण भाष् धातु से लुङ्। (२) अमङ्गल०—सुमन्त्र का संकेत 'आसन्नमरणम्' की ओर है।

३३—(१) सत्यमयुक्तम्०—यहाँ पर 'सत्यममङ्गलम्०' दशरथ को कहना चाहिए था, परन्तु वे अर्धमूर्छित अवस्था में थे, उनका ध्यान सर्वथा वन में निवास करने वाले राम आदि की ओर था, अतः वे सुमन्त्र की बात पर अधूरा ध्यान देकर अपनी ही बात फिर कहने लगे। (२) स्वाधीनानि—स्वायत्तानि। अपने वश में किये हुए। स्वस्मिन्नधि स्वाधीनम् 'सप्तमी शौण्डैः' (पा० २.१.४०) से समास। तत्पुरुष। स्व+अधि+ख (ईन) 'अषडक्षा०' (पा० ५.४.७) से 'ख' (ईन) प्रत्यय। वन अपने वश में थे अतः कोई भय सीता के लिए नहीं था।

३४—(१) बहुवल्कला०—बहु अनेकविधं यथा स्यात्तथा वल्कलाभ्याम् अलंकृतं शरीरं यस्याः सा। बहुव्रीहि। अनेक प्रकार के वल्कलों से सुशोभित शरीर वाली।

(२) बालापि अबालचारित्रा—विरोधाभास अलंकार है। बाला होते हुए भी उसका चरित्र अबाला (पूर्णयुवती) के समान था। अबालचारित्रा—अबालाया इव चारित्रं यस्याः सा। बहुव्रीहि। चारित्र—चरित्रमेव चारित्रं शीलम्। 'प्रज्ञादिभ्यश्च' से अण् प्रत्यय। चरित्र+अण्—चारित्र।

(१) सहधर्मचारिणी—सह भर्त्रा सार्धं धर्मं चरितुं शीलम् अस्याः सा। बहुव्रीहि। सह + धर्म + चर् + णिनि + 'सुप्यजातौ०' से णिनि प्रत्यय।

३५—सर्वं एव महाराजम्—राजा ने वाक्य पूरा होने से पहले ही सुमन्त्र को रोक दिया। यहाँ पर (इत्यर्धोक्ते) बाद में होना चाहिए। वक्तव्य नं० ५१ में यह वाक्य पूर्ण हुआ है।

३६—राजा—न न। श्रोत्ररसायनैर्मम हृदयातुरौषधैस्तेषां नामधेयैरेव श्रावय।

३७—सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः। आयुष्मान् रामः।

३८—राजा—राम इति। अयं रामः। तन्नामश्रवणात् स्पृष्ट इव मे प्रतिभाति। ततस्ततः।

३९—सुमन्त्रः— आयुष्मान् लक्ष्मणः।

४०—राजा—अयं लक्ष्मणः। ततस्ततः।

४१—सुमन्त्रः—आयुष्मती सीता जनकराजपुत्री।

४२—राजा—इयं वैदेही। रामो लक्ष्मणो वैदेहीत्ययमक्रमः।

४३—सुमन्त्रः—अथ कः क्रमः।

३६—राजा—नहीं, नहीं। मेरे कानों के लिये रसायन और व्यथित हृदय के लिये औषधरूप उनके नामों के (उच्चारण के) साथ ही (उनके सन्देश को) सुनाओ।

King—No. no. Communicate (their message) to me, with (a mention of) ther very names, the elixirs to my ears and medicine to my distressed heart.

३७—सुमन्त्र—जैसी महाराज की आज्ञा। आयुष्मान् राम—

Sumantra—As the great king commands. The long-lived Rāma—

३८—राजा—अच्छा राम। यह है राम। उसका नाम सुनने से मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे मैंने उसका स्पर्श सा किया हो। इसके बाद ?

King—Rāma, you say; here is Rāma. On hearing his name he appears to be, as it were, touched by me. Then ?

३९—सुमन्त्र—आयुष्मान् लक्ष्मण—

Sumantra—The long-lived Lakṣmaṇa—

४०—राजा—यह है लक्ष्मण। तत्पश्चात् ?

King—Here is Lakṣmaṇa. And further ?

४१—सुमन्त्र—आयुष्मती जनकराजपुत्री सीता—

Sumantra—The long-lived Sītā daughter of king Janaka—

४२—राजा—यह है वैदेही। 'राम, लक्ष्मण, वैदेही' यह क्रम ठीक नहीं है।

King—Here is Vaidehī. Rāma. Lakṣmaṇa, Vaidehi. This is not the proper order.

४३—सुमन्त्र—अच्छा तो ठीक क्रम कौन सा है ?

Sumantra—Then what is the proper order.

Notes

३६—(१) श्रोत्ररसायनैः—श्रोत्रजीवनप्रदैः, श्रोत्रसुखैः। कानों को जीवन दान देने वाला या कर्णसुखद। श्रोत्रयोः रसायनानि तैः। तत्पुरुष। वैद्यक में 'रसायन' उन औषधों को कहते हैं, जिनके खाने से आदमी वृद्ध या रुग्ण न हो। 'रस' 'पारा' को कहते हैं। रसायन पारा एवं धातुओं को फूँककर तैयार किये जाते हैं।

(२) हृदया०—हृदयातुरस्य हृदयव्यथायाः औषधानीव तैः। हृदय की व्यथा के लिये औषधि-तुल्य। तत्पुरुष।

३८—अयं रामः—सुमन्त्र ज्यों ही राम आदि का नाम उच्चारण करता है, त्योंही दशरथ अपने संकल्प के द्वारा उनकी साक्षात् मूर्ति अपनी आँखों के सामने देखते हैं।

४३—अयमक्रमः—अर्थात् यह क्रम ठीक नहीं है। भास ने 'पञ्चरात्र' में भी ऐसा वर्णन किया है—

द्रोणः—अयमक्रमः। दुर्योधनः—अथ कः क्रमः। (अंक १)

४४—राजा रामो वैदेही लक्ष्मण इत्यभिधीयताम्।
रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठत्वत्रापि मैथिली।
बहुदोषाण्यरण्यानि सनाथैषा भविष्यति ॥१५॥

४५—सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः। आयुष्मान् रामः।

४६—राजा—अयं रामः।

४७—सुमन्त्रः—आयुष्मती जनकराजपुत्री।

४८—राजा—इयं वैदेही।

४९—सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः।

५०—राजा—अयं लक्ष्मणः। राम! वैदेहि! लक्ष्मण! परिष्वजध्वं मां पुत्रकाः।

सकृत् स्पृशामि वा रामं सकृद् पश्यामि वा पुनः।
गतायुरमृतेनेव जीवामीति मतिर्मम ॥१६॥

४४—अन्वय—मैथिली अत्रापि रामलक्ष्मणयोः मध्ये तिष्ठतु। अरण्यानि बहुदोषाणि, एषा सनाथा भविष्यति।

राजा—राम, वैदेही, लक्ष्मण ऐसा कहिये।

मैथिली यहाँ (नामों के उच्चारण में) भी राम और लक्ष्मण के बीच में रहे। वनों में बहुत सी विपत्तियाँ होती हैं, (दोनों के बीच में रहने से) वह सनाथ (रक्षकों से युक्त) रहेगी ॥१५॥

King—You should say—Rāma, Vaidehī, Lakṣmaṇa. Let Maithilī stand between Rāma and Lakṣmaṇa, even here; the forests abound in perils, she will have protectors. 15

४५—सुमन्त्र—जैसी महाराज की आज्ञा । आयुष्मान् राम—

Sumantra—As the great king commands. The long-lived Rama—

४६—राजा—यह है राम ।

King—Here is Rāma.

४७—सुमन्त्र—आयुष्मती जनकराजपुत्री—

Sumantra—The long-lived daughter of Janaka—

४८—राजा—यह है वैदेही ।

King—Here is Vaidehī.

४९—सुमन्त्र—आयुष्मान् लक्ष्मण—

Sumantra—Tne long-lived Lakṣmaṇa—

५०—अन्वय—सकृत् रामं स्पृशामि वा, पुनः सकृत् पश्यामि वा, गतायुः अमृतेन इव जीवामि, इति मम मतिः ।

राजा—यह है लक्ष्मण । राम, वैदेही, लक्ष्मण, ऐ मेरे बच्चो, मुझसे गले मिलो ।

मैं एक बार फिर (अर्थात् अन्तिम बार) राम को स्पर्श कर रहा हूँ । एक बार फिर राम को देख रहा हूँ । जिस प्रकार मरणासन्न व्यक्ति अमृत से जीवित रह जाता है, मैं समझता हूँ, उसी प्रकार मैं भी (राम आदि के काल्पनिक स्पर्श और दर्शनरूपी) इस अमृत से जीवित हूँ ॥१६॥

King—Here is Lakṣmaṇa. Rāma, Vaidehī, Lakṣmaṇa, embrace me, my children.

Once I touch Rāma, once I see him again—with this nectar. I think, I live, as one, whose life has ended, lives with nectar, (16)

Notes

४४—(१) अत्रापि—राम आदि के इस नामोच्चारण में भी ।

(२) बहुदोषाणि—बहुपायानि । बहुत से विघ्नों, संकटों एवं भयों से युक्त । बहवो दोषा अपाया येषु तानि । बहुव्रीहि । वाल्मीकि रामायण में भी यही भाव आया है—

बहुदोषं हि कान्तारं वनमित्यभिधीयते । (अयोध्या० २८.१)

(३) सनाथैषा०—रक्षकयुक्ता भविष्यति । अस्ति नाथः रक्षकः यस्याः सा। बहुव्रीहि । जिसका रक्षक है । आगे और पीछे दोनों ओर रक्षक रहने से वह सुरक्षित रहेगी। 'अतिस्नेहः पापशंकी' इस न्याय के अनुसार दशरथ सीता के प्रति स्नेहाधिक्य के कारण इतने अधिक चिन्तित हैं। वाल्मीकि रामायण से ज्ञात होता है कि राम ने वस्तुतः यही रक्षात्मक उपाय वन में अपनाया था—

अग्रतो गच्छ सौमित्रे सीता त्वामनुगच्छतु ।
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि सीतां त्वां चानुपालयन् ॥
अयोध्या०५२. ९६.

(४) अनुष्टुप् छन्द है ।

५०—(१) परिष्वजध्वम्—आलिङ्गत । आलिंगन करो ।

(२) सकृत् स्पृशामि—दशरथ राम आदि के नाम को सुनकर राम आदि का काल्पनिक चित्र अपने सामने प्रस्तुत कर लेते हैं, और उसी को छूते और देखते हैं। मरणासन्न होने के कारण वे कहते हैं कि मैं अब अन्तिम बार राम को छू रहा हूँ और देख रहा हूँ। राम के इसी स्पर्श और दर्शन से मैं अब तक जीवित रह सका हूँ। काल्पनिक दर्शन ने भी मेरे लिये अमृत का काम किया है ।

(३) गतायुः—गतं समाप्तप्रायम् आयुः यस्य सः । बहुव्रीहि । जिसकी आयु समाप्त हो गई है, मरणासन्न ।

(४) अनुष्टुप् छन्द है ।

५१—सुमन्त्रः—शृङ्गवेरपुरे रथादवतीर्यायोध्याभिमुखाः स्थित्वा सर्व एव महाराजं शिरसा प्रणम्य विज्ञापयितुमारब्धाः ।

कमप्यर्थं चिरं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुटिताधराः ।
बाष्पस्तम्भितकण्ठत्वादनुक्त्वैव वनं गताः ॥१७॥

५२—राजा—कथमनुक्त्वैव वनं गताः । (इति द्विगुणं मोहमुपगतः ।)

५३—सुमन्त्रः—(ससम्भ्रमम्) बालाके ! उच्यताममात्येभ्यः अप्रतीकारायां दशायां वर्तते महाराज इति ।

५४—काञ्चुकीयः—तथा ! (निष्क्रान्तः ।)

५१—अन्वय—चिरं कमपि अर्थं ध्यात्वा, वक्तुं प्रस्फुटिताधराः, बाष्पस्तम्भितकण्ठत्वात् अनुक्त्वा एव वनं गताः ।

सुमन्त्र—शृंगवेरपुर में रथ से उतर कर, अयोध्या की ओर मुख करके, खड़े होकर, सभी ने महाराज को अवनत-शिर से प्रणाम करके संदेश कहने का उपक्रम किया ।

बहुत देर तक कुछ विचार कर उन्होंने कहने के लिए अपने अधरों को संचालित किया । किन्तु आँसुओं से गला भर जाने के कारण (कण्ठावरोध के कारण) वे बिना कुछ (सन्देश) कहे हुए ही वन को चले गये ॥१७॥

Sumantra—Getting down from the chariot at Sṛṅgaverapura, standing with their faces turned towards Ayodhyā, and saluting the great king with their heads, they all began to think of a message.

Having pondered over something for a long time they made a quivering motion of their lips in order to speak ; but their throats being choked up with tears; they departed to the forest without giving any message. (17)

५२—राजा—क्या कुछ कहे बिना ही वन को चले गये ? (यह कह कर दुगुनी मूर्च्छा को प्राप्त हो गये ।)

King—How did they depart to the forest without saying a word at all ? (Doubly faints.)

५३—सुमन्त्र—(घबड़ाहट के साथ) बालाकि, मन्त्रियों से कह दो—महाराज असाध्य अवस्था में हैं ।

Samantra—(In haste). Bālaki, say to the ministers—the king is in an irremediable condition.

५४—कंचुकी—अच्छी बात है। (जाता है)

Chamb.—So I will. (**Exit**).

Notes

५१—(१) श्रृंगवेरपुरे—कतिपय पुस्तकों में 'श्रृङ्गिवेरपुरे' यह पाठ है, परन्तु रामायण में 'श्रृङ्गवेरपुर' ही निर्देश है, अतः यही पाठ ग्राह्य है। श्रृङ्गवेरपुर गंगा के किनारे निषादों का एक निवासस्थान था, जहाँ पर राम, गंगा पार करने से पूर्व कुछ समय रहे थे।

आससाद महाबाहुः श्रृंगवेरपुरं प्रति।
सुमन्त्रमब्रवीत् सूतमिहैवाद्य वसामहे॥

(रामायण, अयोध्या० ५०. २६)

(२) अवतीर्य—उतर कर। अव + तॄ + क्त्वा (ल्यप्)।

(३) प्रस्फुटिताधराः—प्रस्फुटिताः प्रचलिताः अधराः ओष्ठपुटाः येषां ते। बहुव्रीहि। जिनके ओष्ठ हिले हैं।

(४) बाष्प०—बाष्पेण स्तम्भितः निरुद्धः कण्ठो येषां तेषां भावः बाष्पस्तम्भितकण्ठत्वं तस्मात्। आँसुओं के कारण गला भर जाने से। बहुव्रीहि समास के बाद भावार्थक 'त्व' प्रत्यय। राम आदि दशरथ की अत्यन्त दयनीय अवस्था को सोचकर दुःख के आवेग के कारण कहना चाहते हुए भी कुछ न कह सके। विवश होकर बिना कुछ कहे ही वन में चले गये। सीता के विषय में वाल्मीकि रामायण का भी यही कथन है—

जानकी तु महाराज निःश्वसन्ती तपस्विनी।
अदृष्टपूर्वव्यसना नैव मां किञ्चिदब्रवीत्॥

(अयोध्या० ५८. ३४)

भास ने नाटकीय प्रभाव की वृद्धि के लिये राम और लक्ष्मण को भी शोकातुर होने के कारण सन्देश न देना लिखा है। परन्तु यह रामायण के

विरुद्ध है। राम और लक्ष्मण के सन्देश के लिए देखें, रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग ५२. २७—३६ और सर्ग ५८. ५१—३३।

(५) अनुष्टुप् छन्द है।

५३—अप्रतीकारायाम् असाध्यायाम्। महाराज की अवस्था असाध्य हो चुकी है। अप्रतीकार—प्रति+कृञ्+घञ्। प्रति की इकार को दीर्घ। प्रतीकार+नञ् समास।

५५—देव्यौ—महाराज! समाश्वसिहि समाश्वसिहि। (महाराज! समस्ससिहि समस्ससिहि।)

५६—राजा—(किंचित् समाश्वस्य।)

(क) अङ्गं मे स्पृश कौसल्ये! न त्वां पश्यामि चक्षुषा।
रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निवर्तते ॥१८॥

५५—दोनों रानियाँ—महाराज धैर्य रक्खें, धैर्य रक्खें।

The queens—Great king, be consoled, be consoled

५६—अन्वय—कौसल्ये! मे अंगं स्पृश, त्वां चक्षुषा न पश्यामि। रामं प्रति गता बुद्धिः अद्यापि न निवर्तते ॥

(क) राजा—(कुछ सँभल कर)

कौसल्या, मेरे अंगों पर हाथ फेरो। मैं तुम्हें आँख से देख नहीं पा रहा हूँ। मेरी राम की ओर गई हुई बुद्धि अब भी नहीं लौट रही है ॥१८॥

King—(Recovering a little).

O Kausalyā, touch my body I do not see you, with my eye. My mind, gone to Rāma, does not return even yet. (18)

Notes

५६—(१) समाश्वस्य—चेतनां प्राप्य। कुछ होश में आकर। सम्+आ+श्वस्+क्त्वा (ल्यप्)।

(२) अंगं मे०—वाल्मीकि रामायण में भी इसी प्रकार का वर्णन है कि दशरथ की आँखों की शक्ति सर्वथा क्षीण हो गई थी। भास के इस श्लोक से सर्वथा मिलता हुआ रामायण का श्लोक है—

न त्वां पश्यामि कौसल्ये साधु मां पाणिना स्पृश।
रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते॥
अयोध्या० ४२. ३४,

(३) रामं प्रति गता—रामविषये स्वयं याता, न तु प्रेषिता। राम की ओर स्वयं गई हुई, मैंने भेजा नहीं था। मेरी सम्पूर्ण भावना राम की ओर लगी हुई है। मुझे अन्य किसी भी बात का इस समय ध्यान नहीं है। मरणासन्न व्यक्ति का ध्यान साधारणतया परमात्मा की ओर जाने लगता है। जो पुण्यात्मा हैं, उनकी चित्तवृत्ति विशेष रूप से परमात्मा की ओर लग जाती है। दशरथ की भी वही अवस्था है।

(४) यहाँ पर अनुष्टुप् छन्द है।

(ख) पुत्र! राम! यत् खलु मया सन्ततं चिन्तितं—
राज्ये त्वामभिषिच्य सन्नरपतेर्लाभात् कृतार्थाः प्रजाः
कृत्वा त्वत्सहजान् समानविभवान् कुर्वात्मनः सन्ततम्।
इत्यादिश्य च ते तपोवनमितो गन्तव्यमित्येतया
कैकेय्या हि तदन्यथा कृतमहो निःशेषमेकक्षणे ॥१९॥

(ख) अन्वय—त्वां राज्ये अभिषिच्य, प्रजाः सन्नरपतेः लाभत् कृतार्थाः कृत्वा, त्वत्सहजान् सन्ततम् आत्मनः समानविभवान् कुरु, इति ते आदिश्य च, (मया) इतः तपोवनं गन्तव्यम्, इति (यत् खलु मया सन्ततं चिन्तितम्) तत् निःशेषम् अहो! एतया कैकेय्या एकक्षणे अन्यथा कृतम्।

पुत्र राम, जो कि सदा मैं अपने मन में सोचा करता था कि—

तुम्हारा राज्याभिषेक करके, प्रजा को श्रेष्ठ राजा की प्राप्ति से कृतकृत्य करके, और तुम्हें यह आदेश देकर कि 'तुम अपने भाइयों को भी सदा अपने समान ही ऐश्वर्ययुक्त करना', मैं यहाँ से तपोवन को जाऊँगा, हाय, यह सब कुछ (निश्चय) इस कैकेयी ने एक क्षण में ही बिगाड़ डाला ॥१९॥

Son Rāma, what I always resolved in my mind, (i,e)

Having installed you on the throne and made the subjects satisfied by the attainment of a good king, and also having asked you always to raise your brothers to a status equal to yours, I should go from here to a penance-grove—all that has been, in a moment, entirely undone by this Kaikeyi. (19)

Notes

(ख) (१) सन्ततम्—सर्वदा । सम् + तत = सन्तत । 'समो वा हिततयो:' नियम के अनुसार 'सम् के म् का लोप यहाँ पर विकल्प से होता है, अतः 'सन्ततम्' और 'सततम्' दोनों रूप बनते हैं ।

(२) अभिषिच्य—संस्थाप्य । अभिषेक करके । अभि + सिच् + क्त्वा (ल्यप्) । (३) सन्नरपते—श्रेष्ठभूपतेः । उत्तम राजा के लाभ से । सन् उत्तमः सज्जनो वा, चासौ नरपतिः नृपः तस्य । कर्मधारय । (४) लाभात्—प्राप्तेः । प्राप्ति से । लाभ—लभ् + घञ् । (५) कृतार्थाः—कृतकृत्याः । कृतकृत्य, आनन्दित । कृताः अर्थाः यैः ते बहुव्रीहि । जिन्होंने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया है । (६) त्वत्सहजान्—तव भ्रातृन् लक्ष्मणादीन् । अपने भाइयों को । यहाँ पर 'आत्मसहजान्' पाठ उचित है । (७) समानविभवान्—तुल्यैश्वर्यान् । समान-स्थिति वाले, तुल्य धन-प्रतिष्ठा आदि से युक्त । (८) निःशेषम्-अखिलम् । सम्पूर्ण, सब कुछ । (९) एकक्षणे—क्षणमात्रेण । क्षण भर में । (१०) यहाँ पर 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है ।

(ग) सुमन्त्र ! उच्यतां कैकेय्याः—

गतो रामः प्रियं तेऽस्तु त्यक्तोऽहमपि जीवितैः ।
क्षिप्रमानीयतां पुत्रः पापं सफलमस्त्विति ॥२०॥

५७—सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

५८—राजा—(ऊर्ध्वमवलोक्य ।) अये ! रामकथाश्रवणसन्दग्धहृदयं मामाश्वासयितुमागताः पितरः । कोऽत्र ?

(प्रविश्य)

५९—काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः।

६०—राजा—आपस्तावत् ।

६१—काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य-प्रविश्य ।) जयतु महाराजः । इमा आपः ।

(ग) अन्वय—रामः गतः (वनम्), ते प्रियम् अस्तु, अहमपि जीवितैः त्यक्तः, पुत्रः क्षिप्रम् आनीयताम् पापं सफलम्, अस्तु इति ।

सुमन्त्र, कैकेयी से कह दो—

राम (वन में) चले गए, तुम्हारी कामना पूर्ण हो, मुझे भी मेरे प्राण छोड़ चले, अपने पुत्र (भरत) को शीघ्र बुलवा लो, तुम्हारा पाप (पापयुक्त अभीष्ट) सफल हो ॥२०॥

Sumantra, say to Kaikayī—

Rāma is gone ; may you gain your desired object ! I too am abandoned by my life ; let your son be brought (here) quickly, that your sin (evil desire) may have its fruit. (20)

५७—सुमन्त्र—जैसी महाराज की आज्ञा ।

Sumantra—As the great king commands.

५८—राजा—(ऊपर की ओर देखकर) ओह, राम की (विपत्ति की) कथा के सुनने से दग्धहृदय मुझको आश्वासन देने के लिए मेरे पितरगण आगए हैं। यह कौन है ?

king—(Looking upwards), Oh ! the spirits of my departed ancestors have come to comfort me, whose heart is burnt by the hearing of Rāma's account, who is here !

(प्रविष्ट होकर)

५९—कंचुकी—महाराज की जय हो।

Chamb.—(Entering) Victory to the great king.

६०—राजा—जल लाना ।

King—Just bring me water.

६१—कंचुकी—जैसी महाराज की आज्ञा। (बाहर जाकर और फिर प्रविष्ट होकर) महाराज की जय हो। यह जल है।

Chamb—As the great king commands. (Going out and entering). Victory to the great king. Here is water.

Notes

(ग)—(१) जीवितैः—प्राणैः। प्राण शब्द के तुल्य जीवित का भी बहुवचन में प्रयोग है। (२) पापम्—रामनिर्वासनरूपम्। राम का वन भेजना रूपी पाप। कैकेयी के कुकृत्य पर निन्दापूर्ण उपालम्भ है।

५७—यदाज्ञापयति—यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि सुमन्त्र राजा के पास से नहीं हटते हैं, क्योंकि उन्हें ज्ञात है कि महाराज मरणासन्न हैं। राजा का कथन भी केवल अपने भावों का प्रकाशन है, वस्तुतः कैकेयी के लिये कोई सन्देश नहीं है।

५८—(१) रामकथा०—रामस्य कथायाः श्रवणेन सन्दिग्धं प्रज्वलितं हृदयं यस्य तम्। बहुव्रीहि। राम की दुःखगाथा के सुनने से सन्तप्त हृदय। (२) आगताः पितरः—मरणासन्न व्यक्ति अपने मृत पूर्वजों के चित्र आदि प्रायः देखते हैं। यही अवस्था दशरथ की है। भास ने इसी प्रकार 'अभिषेक' (अंक १) में बाली की मृत्यु तथा 'उरुभंग' में दुर्योधन की मृत्यु के समय भी ऐसे ही अप्सराओं, पूर्वजों और विमानों आदि के दर्शन का वर्णन किया है।

६२—राजा—(आचम्यावलोक्य।)

अयममरपतेः सखा दिलीपो, रघुरयमत्रभवानजः पिता मे।
किमभिगमनकारणं, भवद्भिः, सह वसने समयो ममापि तत्र॥२१॥

राम! वैदेहि! लक्ष्मण! अहमितः पितॄणां सकाशं गच्छामि।
हे पितरः! अयमयमागच्छामि। (मूर्छया परामृष्टः।)

(काञ्चुकीयो यवनिकास्तरणं करोति।)

६३—सर्वे—हा हा महाराजः। हा हा महाराजः। (हा हा महाराओ।) (निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति द्वितीयोऽङ्कः।

६१—अन्वय—अयम् अमरपतेः सखा दिलीपः, अयं रघुः, (अयम्) अत्रभवान् मे पिता अजः, किम् अभिगमनकारणम्, भवद्भिः सह तत्र वसने मम अपि समयः (उपस्थितः)।

राजा—(आचमन करके और देखकर)

ये हैं इन्द्र के मित्र (महाराज) दिलीप, ये हैं (महाराज) रघु, ये हैं पूजनीय मेरे पिता (महाराज) अज। आप लोगों के यहाँ आने का क्या कारण है? अब तो आप लोगों के साथ वहाँ (स्वर्ग में) निवास का मेरा भी समय उपस्थित हो गया है ॥२१॥

राम, वैदेही, लक्ष्मण, मैं अब यहाँ से अपने पितरों के पास जा रहा हूँ। हे पितरो, मैं यह आया। (मूर्छित हो जाते हैं।)

(कंचुकी उनके ऊपर चादर डाल देता है।)

king—Performing Āchamana and looking.)

Here is Dilīpa the friend of the lord of gods, this is Raghu and this my father, the revered, Aja. What can be the cause of your coming here? This is the time for me also to come to reside there (in the heaven) along with you (21)

Rāma, Vaidehī. Lakṣmaṇa. I go from here to be by the side of my departed fathers. My forefathers, here I come. (He is overpowered by swoon).

(The chamberlain spreads over him a shroud).

(सब का प्रस्थान)

६३—सब - हा महाराज! हा महाराज!

द्वितीय अंक समाप्त ॥२॥

All—Alas ! alas ! the great king.

(*Exeunt omnes*).

End of Act II

Notes

६२—(१) अमरपतेः—इन्द्रस्य । इन्द्र के मित्र दिलीप । (२) दिलीपः—यहाँ पर दिलीप, रघु और अज यह जो क्रम दिया गया है, वही क्रम रघुवंश में मिलता है । इस प्रकार दशरथ ने पिता, पितामह और प्रपितामह के दर्शन किये । आगे तृतीय अङ्क में प्रतिमागृह में भी इन्हीं की प्रतिमाएँ हैं । रामायण, विष्णुपुराण आदि में इक्ष्वाकु राजाओं की जो नामावलि दी गयी है, उसमें दिलीप और राम के बीच में १६ से २० तक राजाओं की संख्या है । भास और कालिदास दोनों ने यही उपर्युक्त क्रम माना है । (३) रामायण अयोध्याकांड सर्ग ६४ में दशरथ की मृत्यु का वर्णन करते हुए केवल इतना ही उल्लेख है कि वे राम के दुःख में मरे और राम का चित्र उनकी आँखों के आगे था । भास ने उसमें यह नवीन चामत्कारिक वर्णन अपनी ओर से मिलाया है । (४) इस श्लोक में 'पुष्पिताग्रा' छन्द है । उसका लक्षण है—

अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

(५) 'मूर्छया परामृष्टः' के स्थान पर 'स्वर्यातः' या 'स्वर्गं गतः' नाटकीय संकेत अधिक उचित है । 'अभिषेक' में बाली के लिए 'स्वर्यातः' है और 'उरुभंग' में दुर्योधन के लिए 'स्वर्गं गतः' है । दोनों में से कोई पाठ यहाँ होना चाहिए, क्योंकि देहावसान के बाद ही कंचुकी राजा के ऊपर चादर डाल सकता था । (६) यवनिका०—यहाँ पर 'यवनिका' का अर्थ पर्दा डाल देना नहीं है, अपितु चादर या कपड़ा राजा के ऊपर डालना अर्थ है ।

६३—(१) हा हा०—इसमें संस्कृत वाला प्रथम भाग सुमन्त्र और कंचुकी द्वारा कहा हुआ है, और अन्तिम प्राकृत वाला अंश कौसल्या और सुमित्रा के द्वारा कहा गया है ।

द्वितीय अंक समाप्त

अथ तृतीयोऽङ्कः

(*ततः प्रविशति सुधाकारः ।*)

१—सुधाकारः—(सम्मार्जनादीनि कृत्वा ।) भवतु, इदानीं कृतमत्र कार्यमार्यसंभवकस्याज्ञप्तम् । यावन्मुहूर्तं स्वप्स्यामि । (स्वपिति ।) (भोदु, दाणिं किदं एत्थ कय्यं अय्यसंभवअस्स आणत्तं । जाव मुहुत्तं सुविस्सं ।)

(*प्रविश्य*)

२—भटः—(चेटमुपगम्य ताडयित्वा) अङ्घो दास्याः पुत्र ! किमिदानीं कर्म न करोषि । (ताडयति ।) (अङ्घो दासीएपुत्त ! किं दाणिं कम्मं ण करेसि ।)

३—सुधाकारः—(बुद्ध्वा) ताडय मां ताडय माम् । (तालेहि मं तालेहि मं ।)

४—भटः—ताडिते त्वं किं करिष्यसि । (ताडिदे तुवं किं करिस्ससि ।)

५—सुधाकारः—अधन्यस्य मम कार्तवीर्यस्येव बाहुसहस्रं नास्ति । (अहण्णस्स मम कत्तवीअस्स विअ बाहुसहस्सं णत्थि ।)

६—भटः—बाहुसहस्रेण किं कार्यम् । (बाहुसहस्सेण किं कय्यं ।)

७—सुधाकारः—त्वां हनिष्यामि । (तुवं हणिस्सं ।)

तृतीय अंक

Act III

(तदनन्तर सुधाकार का प्रवेश)

१—सुधाकार—(झाड़ू लगाना आदि काम करके) अच्छा, आर्य संभवक ने जो आज्ञा दी थी, वह सब काम मैंने कर लिया। अब थोड़ी देर सो लूँ। (सोता है)

(*Then enters Sudhākāra*)

Sudhākāra -(Having done cleaning of the ground and other things). well, I have done the work to be done here as ordered by the noble Sambhavaka. I will just sleep for a while. (Sleeps).

(प्रविष्ट होकर)

२—भट—(चेट के पास जाकर और उसे पीट कर) अरे दासीपुत्र, अब काम क्यों नहीं कर रहा है ?

(मारता है)

(*Entering*)

Bhata—(Approaching cheta and beating him). O you, son of a whore, why are you not now doing your work ? (Beats).

३—सुधाकार—(जगकर) मुझे मार लो, मुझे मार लो।

Sudhākāra—(Waking up). Beat me, beat me.

४—भट—मारूँगा ही तो तुम क्या कर लोगे ?

Bhata—What can you do, if you are beaten ?

५—सुधाकार—मैं अभागा हूँ कि मेरे भी कार्तवीर्य (सहस्रार्जुन) के तुल्य हजार हाथ न हुए।

Sudhākāra—Unfortunate that I am, I have not got a thousand arms like Kārtavīrya.

६—भट—हजार हाथ होते तो क्या करता ?

Bhata—What is to be done by those thousand arms ?

७—सुधाकार—तुमको मार डालता।

Sudhākāra—I will kill you.

Notes

१—(१) सुधाकार—'सुधा' का अर्थ चूना भी होता है। मकानों पर सफेदी करने वाले या चूना करने वाले को 'सुधाकार' कहते हैं। इनका कार्य है—मकान की स्वच्छता करना, सफेदी करना आदि। 'सुधा' शब्द से ही 'सौध' (प्रासाद, महल) शब्द बना है, जिसका अर्थ है 'सुधया रक्तं निर्मितं वा' जिस पर सफेदी हुई है, या चूने से बना।

वाल्मीकिरामायण में सुधाकार के अतिरिक्त अन्य शिल्पकारों का भी उल्लेख किया गया है। भरत जब राम से मिलने चित्रकूट गये थे, तब वे सब भी साथ गये थे।

अथ भूमिप्रदेशज्ञाः सूत्रकर्मविशारदाः।
स्वकर्माभिरताः शूराः खनका यन्त्रकास्तथा ॥१॥
कर्मान्तिकाः स्थपतयः पुरुषा यन्त्रकोविदाः।
तथा वर्द्धकयश्चैव मार्गिणो वृक्षतक्षकाः ॥२॥
रूपकाराः सुधाकारा वंशचर्मकृतस्तथा।
समर्था ये च द्रष्टारः पुरतश्च प्रतस्थिरे ॥३॥

अयोध्या० सर्ग ८०

(२) सम्मार्जनादीनि—स्वच्छता आदि। 'आदि' शब्द से यहाँ पर क्या भाव लिया गया है, यह आगे वक्तव्य ११ से स्पष्ट होता है।

(३) स्वपिति—यहाँ पर 'स्वपिति' का अर्थ 'सोने के लिये लेटता है' यही समझना चाहिए, क्योंकि वक्तव्य ३ पर जाग जाता है। अतः उसे नींद आ जाना सम्भव नहीं है।

२—(१) चेटम्—सुधाकार ही 'चेट' शब्द से सम्बोधित किया गया है। चेट शब्द का अर्थ है—भृत्य, नौकर।

(२) अङ्घो—क्रोधसूचक अव्यय है।

(३) दास्याःपुत्रः— यह एक शब्द है। यह निन्दा या गाली देना है। निन्दा अर्थ में षष्ठी विभक्ति का 'अलुक्' वैकल्पिक होता है। दासीपुत्र भी गाली है। दासी का पुत्र। 'पुत्रेऽन्यतरस्याम्' (पा० ६. ३. २२) से षष्ठी अलुक्।

५—(१) कार्तवीर्यस्य—कार्तवीर्य कृतवीर्य का पुत्र था। हैहयों का राजा था उसकी राजधानी माहिष्मती थी। उसने दत्तात्रेय को प्रसन्न करके कई वर प्राप्त किये थे :—एक सहस्र भुजाएँ, सोने का रथ जो कि उसकी इच्छानुसार चलता था (देखो रघुवंश ६. ३९)। कार्तवीर्य का ही दूसरा नाम सहस्रार्जुन या सहस्रबाहु था। परशुराम ने उसका वध किया था। सुधाकार के कहने का भाव यह है कि मेरे भी सहस्र हाथ होते तो मैं हजारों हाथों से तुम्हारी पिटाई करता। मेरे भाग्य अच्छे नहीं थे, अतएव मुझे एक हजार हाथ नहीं मिल सके। कार्तवीर्य के नाम-स्मरण का माहात्म्य कहा जाता है कि—

> कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रभृत्।
> योऽस्य संकीर्तयन्नाम कल्यमुत्थाय मानवः॥
> न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं च लभते ध्रुवम्॥

८—भट—एहि दास्याः पुत्र ! मृते मोक्ष्यामि। (पुनरपि ताडयति।) (एहि दासीए पुत्त। मुदे मुञ्चिस्सं।)

९—सुधाकारः—(रुदित्वा।) शक्यमिदानीं भर्तः। मेऽपराधं ज्ञातुम्। (सक्कं दाणि भट्टा मे अवराहं जाणिदुम्।)

१०—भटः—नास्ति किलापराधो नास्ति। ननु मया संदिष्टो भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टकृतसंतापेन स्वर्गं गतस्य भर्तुर्दशरथस्य प्रतिमागेहं द्रष्टुमद्य कौसल्यापुरोगैः सर्वैरन्तःपुरैरिहागन्तव्यमिति। अत्रेदानीं त्वया किं कृतम्। (णत्थि अवराहो णत्थि। णं मए संदिट्ठो भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जविब्भट्ठकिदसंदावेण सग्गं गदस्स भट्टिणो दसरहस्स पडिमागेहं

देट्ठुं अज्ज कोसल्लापुरोएहिं सव्वेहिं अंतेउरेहिं इह आअंतव्वं त्ति । एत्थ दाणि तुए किं किदं ।)

८—भट—अरे दासीपुत्र, आ । तेरे प्राण लेकर ही छोड़ूँगा । (फिर मारता है ।)

Bhata—Come now, you son of a whore. I will leave you (only) when you are dead. (Beats him again).

९—सुधाकार—(रोते हुए) तो क्या, स्वामी, मैं अपराध जान सकता हूँ ?

Sudhākāra—(Crying). Is it possible now, master, to know my fault ?

१०—भट—नहीं; वस्तुतः तुम्हारा कोई अपराध नहीं है । क्या मैंने तुम्हें नहीं कहा था कि राजकुमार राम को राज्य न प्राप्त होने के कारण उत्पन्न दुःख से दिवंगत महाराज दशरथ के प्रतिमागृह को देखने के लिये आज यहाँ पर कौसल्या के साथ सारी अन्तःपुर (रनवास) की स्त्रियाँ आएँगी । बता, इस विषय में तूने क्या काम किया है ?

Bhata—No no, indeed, there is no fault ! Why ! were you not told by me that all the ladies of the harem, headed by Kausalyā, would come here to-day to see the state-house of king Daśaratha, gone to heaven owing to the affliction caused by prince Rāma's loss of kingdom ? Now what have you done with regard to this ?

Notes

८—मृते मोक्ष्यामि—मृते एव त्यक्ष्यामि । मरने पर ही छोड़ूँगा, प्राण लेकर ही छोड़ूँगा ।

१०—(१) नास्ति किलापराधः०—भट ने व्यंग्य में कहा कि तुम्हारा कोई अपराध नहीं है ! अर्थात् वस्तुतः अपराध तुमने किया है, काम पूरा नहीं किया है ।

(२) राज्यविभ्रष्टकृतसन्तापेन—रामस्य राज्यात् यत् विभ्रष्टं विभ्रंशः, तस्मात् कृतेन संजातेन सन्तापेन दुःखेन। तत्पुरुष। राम को राज्य न मिलने के कारण उत्पन्न सन्ताप से दिवंगत। यहाँ पर 'विभ्रष्टम्' विभ्रंशः के अर्थ में है। भावार्थ में क्त प्रत्यय है।

(३) दशरथस्य प्रतिमागेहम्—'दशरथस्य प्रतिमायाः गेहम्' यहाँ पर 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः' इस नियमानुसार षष्ठी तत्पुरुष समास है। 'प्रतिमागेह' का अर्थ है, जिस मन्दिर या भवन में मृत पितरों की प्रतिमाएँ (प्रस्तर मूर्तियाँ) रक्खी जाती हैं। श्री ए. के. पिशरोटी का कथन है कि मृत पूर्वजों की मूर्तियाँ रखने का प्रचलन सबसे अधिक केरल प्रदेश में है।

(४) अन्तःपुरैः—अन्तःपुर का अर्थ है रनवास, यहाँ पर रानियाँ या स्त्रियाँ रहती हैं। यहाँ पर बहुवचन वहाँ रहने वाली स्त्रियों के लिए है।

११—सुधाकारः—पश्यतु भर्ता। अपनीतकपोतसन्दानकं तावद् गर्भगृहम्। सौधवर्णकदत्तचन्दनपञ्चाङ्गुला भित्तयः। अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि। प्रकीर्णाः बालुकाः। अत्रेदानीं मया किं न कृतम्। (पेक्खदु भट्टा। अवणीद-कवोदसन्दाणअं ऽभगिहं। सोहवण्णअदत्तचंदणपञ्चाङ्-गुला भित्तीओ। ओसतमल्लदामसोहीणि दुवाराणि। पइण्णा वालुआ। एत्थ दाणिमए किं ण किदं।)

१२—भटः—यद्येवं विश्वस्तो गच्छ। यावदहमपि सर्वं कृतमित्यमात्याय निवेदयामि। (जइ एवं विस्सत्थो गच्छ। जाव अहं वि सव्वं किदं त्ति अमच्चस्स णिवेदेमि।)

(*निष्क्रान्तौ* ।)

प्रवेशकः।

११—सुधाकार—आप देख लीजिए। सर्वप्रथम मैंने (प्रतिमागृह) के अन्दर के भाग से कबूतरों के घोंसले हटा दिये हैं। दीवारों पर चूने की

सफेदी के ऊपर चन्दन का पञ्चांगुल (पाँच अंगुलियों का छाप, थापा) लगा दिया है । लटकी हुई मालाओं से द्वार सुशोभित हैं । रेत (बालू) फैला दिया है । तो मैंने इस विषय में क्या काम नहीं किया है ?

Sudhākāra—Let the master see. In the first place the inner appartment is cleared of all the nests of pigeons. The walls have the marks of the five fingers smeared with sandal paste impressed on their chunum-coating. The doors are charming with garlands of flowers suspended from them. And the sands have been scattered about. So, what have I not done in connection with this ?

१२—भट—यदि ऐसी बात है, तो विश्वासपूर्वक (निर्भय होकर) जाओ । तब तक मैं भी 'सब काम कर दिया है' इस प्रकार मन्त्रिमहोदय को सूचना दे आता हूँ ।

(*दोनों का प्रस्थान* ।)

प्रवेशक-समाप्त

Bhata—If so, go in full confidence. In the meanwhile I too, will tell the minister that all has been accomplished.

(*Exeunt Both.*)

End of Praveśaka.

Notes

११—(१) अपनीत०—अपनीतानि कपोतानां सन्दानानि बन्धाः, नीडानि वा यस्मात् तादृशं गर्भगृहम् । बहुव्रीहि । जहाँ से कबूतरों के घोंसले हटा दिये हैं । संदीयते अनेन इति सन्दानम् । जिसके द्वारा बाँधा जाता है, रस्सी आदि । यहाँ पर घोंसला अर्थ है, क्योंकि रस्सी आदि के छोटे टुकड़े से कबूतर घोंसला बनाते हैं । जिस मकान में व्यक्ति नहीं रहते वहाँ कबूतर आदि अपने घोंसले बना लेते हैं । (२) गर्भगृहम्—प्रतिमागेहस्यान्तर्गृहम् । प्रतिमागृह का आन्तरिक भाग । (३) सौधवर्णक०—सौधे वर्णके दत्तं निवेशितं चन्दनपञ्चाङ्गुलं चन्दनमयपञ्चाङ्गुलन्यासो यासु ताः । बहुव्रीहि । चूने की सफेदी के ऊपर चन्दन का पञ्चांगुल स्थापक (थापा) जिन पर है, ऐसी

दीवारें । (४) अवसक्त०—अवसक्तैः संयोजितैः माल्यदामभिः पुष्पस्रग्गुणैः शोभितुं शीलं येषाम् इति । अवसक्तमाल्यदामन् + शुभ् + णिनि । लटकाई हुई मालाओं की रस्सियों से सुशोभित द्वार । (५) प्रकीर्णा बालुकाः—द्वार के सन्मुख मार्ग में रेत इसलिए डाल दी जाती है कि मार्ग सुन्दर एवं सुगम्य हो जाए । प्रकीर्णा—प्र + कॄ + क्त ।

(६) प्रवेशक का लक्षण—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥

सा० दर्पण. ६. ५७.

'प्रवेशक' में निम्नश्रेणी के पात्र या पात्रों के द्वारा भूत और भावी घटनाओं का निर्देश किया जाता है । नाटक में संक्षेप के लिये यह रक्खा जाता है । यह दो अङ्कों के बीच आता है । अतएव प्रथम अङ्क में प्रवेशक नहीं आ सकता है । विष्कम्भक और मिश्र विष्कम्भक से इसका अन्तर यह है कि विष्कम्भक मध्यम श्रेणी के एक या दो पात्रों द्वारा होता है । मिश्रविष्कम्भक में मध्यम श्रेणी और निम्न श्रेणी दोनों के पात्र रहते हैं और प्रवेशक में निम्न श्रेणी के पात्र ।

तदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
प्रवेशकोऽङ्कद्वयस्यान्ते शेषार्थस्योपसूचकः ।

(दशरूपक)

(*ततः प्रविशति भरतो रथेन सूतश्च*)

१३—भरतः—(सावेगम् ।) सूत ! चिरं मातुलपरिचयाद्विज्ञातवृत्तान्तोऽस्मि । श्रुतं मया दृढमकल्यशरीरो महाराज इति । तदुच्यताम्—पितुर्मे को व्याधिः ।

१४—सूतः— हृदयपरितापः खलु महान्,

१५—भरतः—किमाहुस्तं वैद्याः

१६—सूतः— न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः ।

१७—भरतः—किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि

१८—सूतः— भूमौ निरशनः,

१९—भरतः—किमाशा स्याद्

२०—सूतः— दैवं

२१—भरतः— स्फुरति हृदयं वाहय रथम् ॥१॥

२२—सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (रथं वाहयति।)

(तदनन्तर रथ पर बैठे हुए भरत और सारथि का प्रवेश)

१३—भरत—(चिन्तापूर्वक) सारथि, चिर काल तक मामा के यहाँ रहने से मुझे (अयोध्या का) कुछ भी समाचार विदित नहीं है। मैंने सुना है कि महाराज बहुत अधिक अस्वस्थ-शरीर हैं तो बताओ कि मेरे पिता को क्या रोग है?

(Then enters Bharata in a chariot with the charioteer).

Bharata—(With agony) charioteer, owing to my long stay with my maternal uncle I am ignorant of the affairs (at Ayodhyā) I heard the great king was severely indisposed in body. Tell me then—what is my father's malady?

१४—सूत—दारुण मानसिक सन्ताप।

Charioteer—Great mental torment, to be sure.

१५—भरत—वैद्यों का उनको क्या कहना है?

Bharata—What do the physicians say to him, (about it).

१६—सूत—उस (रोग) की चिकित्सा में कोई भी वैद्य निपुण नहीं है।

Charioteer—The physicians, indeed, have not the skill to treat that malady.

१७—भरत—क्या वे खाना खाते हैं और उन्हें नींद भी आती है?

Bharata—Does he take his meal, and sleep?

१८—सूत—निराहार भूमि पर पड़े रहते हैं।

Charioteer—He lies on the ground without food.

१९—भरत—क्या (उनके जीवित रहनेकी) कुछ आशा है ?

Bharata—Can there be any hope (of his living) ?

२०—सूत—भाग्य (के अधीन है) ।

Charioteer—(It rests with) Destiny.

२१—भरत—मेरा हृदय धड़क रहा है, (शीघ्र) रथ चलाओ ॥१॥

Bharata—My heart palpitates , drive the chariot. (1)

२२—सूत—जैसी आपकी आज्ञा (रथ चलाता है) ।

Charioteer—As the long-lived one commands. (Drives the chariot).

Notes

१३—(१) चिरं मातुल०—बहुत समय से मामा के यहाँ रहने के कारण । वाल्मीकि-रामायण के अनुसार राम आदि चारों भाइयों का विवाह एक ही दिन हुआ था । विवाह के अनन्तर भरत और शत्रुघ्न दोनों अपने मामा (अश्वपति) के यहाँ रहने के लिए केकय (सिन्धु प्रान्त की सीमा का प्रदेश) चले गये । अभिषेक के समय तक दोनों वहीं पर रहे । वाल्मीकि-रामायण का कथन है कि—

गच्छता मातुलकुलं भरतेन तदानघ ।
शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नो नीतः प्रीतिपुरस्कृतः ॥१॥
स तत्र न्यवसद् भ्रात्रा सह सत्कारसत्कृतः ।
मातुलेनाश्वपतिना पुत्रस्नेहेन लालितः ॥२॥
अयोध्या० सर्ग १.

पद्मपुराण (पातालखंड, अध्याय ३६) के अनुसार भरत अपने मामा अश्वपति के यहाँ विवाह के बाद १२ वर्ष रहे । विवाह के १२ वर्ष बाद राम का वनवास जाना हुआ । १५ वर्ष की आयु में राम का विवाह हुआ था और २७ वर्ष की आयु में वनवास हुआ । पद्मपुराण का कथन है कि—

रामः पञ्चदशे वर्षे षड्वर्षामथ मैथिलीम् ।
उपयेमे विवाहेन रम्यां सीतामयोनिजाम् ॥१७॥

ततो द्वादश वर्षाणि रेमे रामस्तया सह ।
सप्तविंशतितमे वर्षे यौवराज्यमकल्पयत् ॥
राजानमथ कैकेयी वरद्वयमयाचत ॥१८॥

अतएव भरत का कथन ठीक है कि चिरकाल से अयोध्या का कुछ समाचार विदित नहीं हुआ है। (२) मातुलपरिचयात्—मातुलस्य समीपे निवासात्। मामा के समीप रहने से। 'परिचय' का अर्थ जान-पहचान है, यहाँ पर लाक्षणिक अर्थ निवास-स्थान है। (३) अविज्ञात०—अविज्ञाताः वृत्तान्ताः येन सः। बहुव्रीहि। जिसको वृत्तान्त ज्ञात नहीं है। (४) दृढम्—अत्यधिकम्। बहुत अधिक। (५) अकल्यशरीरः—अकल्यम् अनिरामयं व्याधिग्रस्तं शरीरं यस्य सः। बहुव्रीहि। 'अकल्य' अर्थात् अस्वस्थ शरीर-युक्त। वार्तो निरामयः कल्यः उल्लाघो निर्गतो गदात्। इत्यमरः।

१५—हृदयपरितापः—मानसिकसन्तापः। मानसिक रोग है। परिताप—परि + तप् + घञ्।

१६—खलु०—मानसिक रोग है। अतः कोई वैद्य उनकी चिकित्सा में समर्थ नहीं है। शारीरिक रोग की ही चिकित्सा वे कर सकते हैं।

१७ किमाहारं०—भोजन करते हैं या नहीं? नींद आती है या नहीं? ये दो प्रश्न इसलिए हैं कि इनसे रोगी की अवस्था का बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है।

१८—(१) भूमौ०—पूर्वोक्त दोनों प्रश्नों का उत्तर है—(१) निर-शनः—भोजन नहीं करते हैं। (२) भूमौ (शेते)—भूमि पर पड़े रहते हैं। नींद आने का ढंग होता तो शान्तिपूर्वक शय्या पर सोते। 'भूमौ' यह भी व्यक्त करता है कि उन्हें जीवन से घृणा हो गई है, शय्या पर लेटना भी नहीं चाहते। यहाँ पर प्रश्न के उत्तर के क्रम से 'निरशनः भूमौ (शेते)' होना चाहिए।

१९—आशा—जीविताशा। क्या जीने की आशा है?

२०—दैवम्—दैवाधीनमेव तस्य जीवितम्। उनका जीवन अब भाग्य के ही अधीन है।

२१—इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है। उसका लक्षण है—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥

२३—भरतः—(रथवेगं निरूप्य ।) अहो तु खलु रथवेगः। एते ते,

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं
रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥२॥

सूतः—आयुष्मन्! सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्यया भवितव्यम्।

२३—अन्वय—द्रुतरथगतिक्षीणविषयाः द्रुमाः धावन्ति इव, उद्वृत्ताम्बुः नदी इव मही नेमिविवरे निपतति (इति भाति), अरव्यक्तिः नष्टा, जवात् चक्रवलयं स्थितम् इव (भाति), अश्वोद्धूतं रजः च पुरतः पतति, अनुपतति।

भरत—(रथ के वेग को देखकर) क्या ही तीव्र रथ का वेग है! ये सब, वृक्ष भागते हुए से प्रतीत होते हैं, रथ की अतितीव्रगति के कारण उनके (वृक्षों के) बीच का व्यवधान नष्टप्राय हो रहा है। भँवर से युक्त नदी के तुल्य पृथ्वी (रथ की) धुरी के छिद्र में प्रविष्ट सी हो रही है। चक्र के आरों का पृथक् स्पष्ट रूप से दीखना बन्द हो गया है। अतिवेग के कारण पहियों का घेरा रुका हुआ सा प्रतीत होता है। घोड़ों के (खुरों) द्वारा उठाई हुई धूल (रथ के) सामने उठती है परन्तु रथ का पीछा नहीं कर पाती, अर्थात् रथ के वेगपूर्वक आगे निकल जाने से धूल पीछे ही छूट जाती है, रथ के साथ नहीं चलने पाती ॥२॥

Bharata—(Marking the speed of the chariot). How great indeed is the speed of the chariot ! Here these,

Trees seem to run, the spaces between them being shortened by the swift motion of the chariot, like a river with its water curbing up the ground seems to fall (enter) into the covity of the rim (of the wheels), the spokes have ceased to appear distinctly, the circles of the wheels stand still as it were through speed, and the dust thrown up by (the hoofs of) horses falls forward but does not follow (the chariot). (2).

२४—सूत—आयुष्मन्, चारों ओर वृक्षों की (सघनता से जन्य) आर्द्रता से ज्ञात होता है कि अयोध्या आ गई ।

Charioteer—Long-lived one, on account of the glossy appearance (or freshness) of the trees, Ayodhyā must be in the vicinity

Notes

२३—(१) अहो तु खलु—भास ने 'अहो नु खलु' के स्थान पर 'अहो तु खलु' प्रयोग अपने नाटकों में बहुत से स्थलों पर किया है। अधिक प्रचलित प्रयोग 'अहो नु खलु' है, आश्चर्य-बोधन में यह अव्यय-समूह प्रयुक्त होता है।

(२) द्रुमा धावन्तीव—यहाँ पर उत्प्रेक्षा है। वृक्ष ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे भाग रहे हों।

(३) द्रुतरथ०—द्रुतया शीघ्रया रथगत्या रथसंचारेण क्षीणाः लघुकृतो विषयः दृष्टिगोचरांशः येषां ते। बहुव्रीहि। रथ की गति की तीव्रता के कारण वृक्षों के मध्यभाग का स्थल बहुत न्यून सा हो रहा था। रथ इतनी तीव्रता से जा रहा था कि वृक्षों के बीच में जो स्थान था, वह अपेक्षाकृत बहुत कम ज्ञात होता था, अतः एक वृक्ष के बाद दूसरा वृक्ष तुरन्त दिखाई देता था। 'विषय' शब्द का अर्थ है प्रदेश या स्थान। यहाँ पर 'विषय' दो वृक्षों के मध्य में आने वाले स्थान के अर्थ में है।

'इन्द्रियार्थे जनपदे विषयो गोचरे पदे।' इति शाश्वतकोशः।

(४) नदीवोद्वृत्ताम्बुः—उद्वृत्ताम्बुः उद्भ्रान्तजला नदी इव। भँवर से युक्त नदी के तुल्य। जिस प्रकार भँवर से युक्त नदी में पानी चारों ओर से चक्कर खाकर केन्द्रभाग में अन्दर चला जाता है, उसी प्रकार रथ के वेग से पृथ्वी ऐसी प्रतीत होती थी मानो रथ की धुरी के छिद्र में चक्कर काट कर गिर रही है।

उद्वृत्तम् उद्भ्रान्तम् अम्बु उदकं यस्यां सा, उद्वृत्ताम्बुः नदी। बहुव्रीहि। जिसमें जल चक्कर काट रहा है ऐसी नदी।

(५) नेमिविवरे—नेम्याः प्रधेः विवरं रन्ध्रं तस्मिन् तत्पुरुष। नेमि अर्थात् धुरी के छेद में। (६) अरव्यक्तिर्नष्टा—अराणां व्यक्तिः स्फुटप्रतीतिः नष्टा तिरोहिता। 'अरव्यक्तिः' में तत्पुरुष समास। रथ के पहियों के आरे पृथक्-पृथक् नहीं दीखते थे। भरत संभवतः उत्सुकता के कारण नीचे पहियों की ओर ही देख रहे थे। रथ की तीव्रगति के कारण आरे पृथक् नहीं दीखते थे। (७) स्थितमिव०—वेग के कारण रथ के पहियें रुके हुए से प्रतीत होते थे। अति तीव्र चक्कर खाने के कारण पहिये का घूमना नहीं दीखता था। (८) रजश्च०—अश्वोद्धूतं अश्वखुरोत्थापितं रजः धूलिः च पुरतः पतति उद्गच्छति, परन्तु न अनुगच्छति न अनुयाति। घोड़ों के द्वारा उठाई हुई धूल रथ के सामने कुछ क्षण के लिए उठती हुई दीखती थी, किन्तु रथ की तीव्रता के कारण धूल पृष्ठभाग में चली जाती थी और रथ के बराबर तेजी से न चलने के कारण वह रथ का पीछा नहीं कर सकती थी। धूल पीछे छूट जाती थी, रथ आगे निकल जाता था। कालिदास ने भी शाकुन्तल में कहा है कि—

आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया। शाकुन्तल १.८.

(९) इस श्लोक में उत्प्रेक्षा और स्वभावोक्ति अलंकार हैं। अतः उत्प्रेक्षा सहकृत स्वभावोक्ति है। (१०) इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है।

२४—वृक्षाणां सोप०—वृक्षों के हरा-भरा होने के कारण ज्ञात होता है कि अयोध्या समीप ही है। नगर के समीप के वृक्षों की ही विशेष

मुरझा होती है। वृक्षों की हरियाली आदि से अयोध्या का अनुमान किया। सूत अयोध्या से ही भरत को बुलाने गया होगा, अतः उसे ज्ञात होने पर भी भरत के लिए उसने ऐसा कहा कि अयोध्या समीप आ गई। भास ने अभिषेक (अंक १) में भी ऐसा प्रयोग किया है

सोपस्नेहतया वनान्तरस्य अभितः खलु किष्किन्धया भवितव्यम्।

२५—भरतः—अहो नु खलु स्वजनदर्शनोत्सुकस्य त्वरता मे मनसः सम्प्रति हि,

पतितमिव शिरः पितुः पादयोः स्निह्यतेवास्मि राज्ञा समुत्थापितः।
त्वरितमुपगता इव भ्रातरः क्लेदयन्तीव मामश्रुभिर्मातरः ॥३॥
सदृश इति महानिति व्यायतश्चेति भृत्यैरिवाहं स्तुतः सेवया।
परिहसितमिवात्मनस्तत्र पश्यामि वेषं च भाषां च सौमित्रिणा ॥४॥

२५—अन्वय—पितुः पादयोः (मे) शिरः पतितम् इव, स्निह्यता राज्ञा समुत्थापितः इव अस्मि। भ्रातरः त्वरितम् उपगता इव, मातरः माम् अश्रुभिः क्लेदयन्ति इव, सदृशः इति महान् इति व्यायतः च इति भृत्यैः सेवया अहं स्तुतः इव, तत्र सौमित्रिणा आत्मनः वेषं च भाषां च परिहसितम् इव पश्यामि।

भरत—ओह, आत्मीय जनों के दर्शनार्थ उत्सुक मेरा मन कितना व्याकुल हो रहा है ! क्योंकि इस समय,

ऐसा प्रतीत होता है कि मेरा शिर पिता के चरणों में झुक गया है। प्रेम से मानों पिता ने मुझे उठा लिया है। भाई शीघ्रतापूर्वक जैसे मेरे समीप आ गये हैं और माताओं ने मानों मुझको अपने (आनन्द के) अश्रुओं से आर्द्र कर दिया है। '(पिता के) सदृश ही हैं', 'स्थूल हो गए हैं', 'अधिक हृष्ट-पुष्ट हो गये हैं', इस प्रकार नौकर मानों सेवाभाव से मेरी स्तुति कर रहे हैं। और मैं देख रहा हूँ कि लक्ष्मण वहाँ पर वेष और मेरी (केकय-प्रदेशीय) भाषा (या टोन) की मानों हँसी उड़ा रहा है। ३—४॥

Bharata—Oh ; How great indeed is the impatience of my mind, that is anxious to see the relatives ! For now,

My head is, as if, fallen at the feet of my father, and I am as it were, raised up by the king melting with affection; my brothers have quickly come up to me, and the mothers bathe me, as it were with their tears (of joy); I am praised as it were by the servants serving me with expressions like—He is like (his father), he has grown stout and is tall (or well developed by exercise); and I fancy Lakṣmaṇa there laughing at (the mode of) my dress and my accent (lit. language). (3—4)

Notes

२५—(१) अहो तु खलु—भास ने 'अहो नु खलु' के स्थान पर 'अहो तु खलु' प्रयोग कतिपय स्थलों पर किया है। सम्भव है, प्रतिलिपि करने वालों ने भ्रमवश 'नु' को 'तु' पढ़ लिया हो। भास के अन्य नाटकों में भी ऐसा प्रयोग मिलता है। यह आश्चर्य-बोधक अव्यय-समूह है। (२) स्वजन०—स्वजनानां दर्शनं तत्र उत्सुकस्य व्यग्रस्य। तत्पुरुष। स्वजनों के दर्शन के लिए उत्कंठित। (३) त्वरता—सम्भ्रमत्वम्। अधीरता। त्वरते इति त्वरः त्वरणं त्वरो वा। त्वरस्य भावः त्वरता। त्वर् धातु से यह रूप बन सकता है परन्तु साधारणतया 'त्वरा' शब्द प्रयोग में आता है, उससे त्वरात्व, या त्वराता रूप बनता। 'त्वरता' रूप अप्रचलित है, सम्भवतः मूलपाठ 'सत्वरता' रहा हो, प्रमादवश 'स' छूट गया है। 'सत्वरम्' प्रचलित प्रयोग है, उससे यह रूप बन सकता है।

(४) पतितमिव०—इन दोनों श्लोकों में भरत अपने मनोभावों को व्यक्त करता है कि चिरकाल बाद पिता के पास पहुँचने पर उसका किस प्रकार स्वागत आदि होगा। ये भरत के मानसिक विचार हैं, अतः प्रत्येक वाक्य के साथ 'इव' (जैसे या मानों) का अर्थ समिश्रित है। यहाँ पर कहे गये ६ वाक्यों में से दो का सम्बन्ध पिता से है, तृतीय का भाइयों से, चतुर्थ का माताओं से, पंचम का भृत्यों से और षष्ठ का लक्ष्मण से। क्रम की दृष्टि से माताओं के बाद भाइयों का वर्णन तथा भृत्यों से पूर्व लक्ष्मण का वर्णन अधिक उपयुक्त है।

(५) स्निह्यता इव 'इव' का सम्बन्ध 'समुत्थापितः' के साथ है।

स्निह्यता— स्निह् + शतृ + टा (तृतीया एक०)

(६) समुत्थापितः—मानों राजा ने उठा लिया। सम् + उत् + स्था + णिच + क्त (७) त्वरितम्— द्रुतम्। शीघ्र। त्वरा संजाता अस्य त्वरितम्। त्वरा + इतच् (इत)। 'तदस्य संजातम्०' से इतच् प्रत्यय। (८) उपगताः—प्राप्ताः, प्राप्त हुए। उप + गम् + क्त। (९) भ्रातरः—भ्रातृवर्ग। यहाँ पर भ्रातृ शब्द में बहुवचन है। अतः इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि भास को यही अभीष्ट है कि शत्रुघ्न भी अयोध्या में ही थे। अन्यथा राम और लक्ष्मण के लिए यहाँ पर 'भ्रातरौ' द्विवचन आता, बहुवचन नहीं। विशेष विवरण के लिए देखो अङ्क १ श्लोक ७ की व्याख्या। (१०) क्लेदयन्ति इव—आर्द्रयन्ति इव। मानों आँसुओं से गीला कर रही थीं। क्लिद् + णिच + लट् (अन्य० बहु०)।

(११) अश्रुभिः—आनन्दाश्रुभिः। आनन्द के आँसुओं से। भरत को चिरकाल बाद देखने से हार्दिक प्रसन्नता के कारण। (१२) सदृश इति—भास ने चित्रित किया है कि भरत का रूप और स्वर (आवाज) अपने पिता के रूप और स्वर से बहुत अधिक मिलते थे। देखिये (अंक ३ वक्तव्य ८१; अंक ४ वक्तव्य २५, २६, २७, ५२) इनमें भरत और दशरथ के स्वर-सादृश्य का वर्णन है, (अंक ३ वक्तव्य ३९, ७७ तथा अंक ४ में ३०, ३९, ४९) रूप-सादृश्य का। भरत आकृति में राम से भी बहुत मिलते-जुलते थे। देखो चतुर्थ-अंक में सीता का वक्तव्य। (१३) महान् इति—स्थूलकाय। कुछ मोटे-ताजे। (१४) व्यायतः—दीर्घाङ्गः, परिचितव्यायामो वा। व्यायत के दो अर्थ हो सकते हैं (१) आयत का अर्थ है बड़ा, लम्बा। व्यायत अर्थात् अधिक लम्बे। (२) व्यायत—वि + आ + यम् + क्त = व्यायत का अर्थ व्यायाम से परिपुष्ट शरीर। वेषं च भाषां च०—व्यास और शाल्मली नदी की दूसरी ओर के देश का नाम केकय है। अब यह काश्मीर के अन्तर्गत है और 'कक्का' कहलाता है। वहाँ का वेष और भाषा भी सीमाप्रान्त और काश्मीर के वेष और भाषा का मिश्रण होगा। अयोध्या के लिए विचित्र होने से लक्ष्मण उसकी हँसी करेंगे। (१५) इन दोनों श्लोकों में 'प्रभा' और 'स्रग्विणी' छन्दों के

मिश्रण से 'उपजाति' छन्द है । प्रभा और स्रग्विणी छन्दों का लक्षण है—

'स्वरशरविरतिर्ननौ प्रभा' 'कीर्तितैषा चतूरेफिका स्रग्विणी' ।

उपजाति के विषय में कहा गया है कि 'इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिस्विदमेव नाम ' जिस प्रकार इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मेल से उपजाति होता है, उसी प्रकार अन्य दो छन्दों के मेल से भी उपजाति छन्द होता है । यहाँ पर प्रभा और स्रग्विणी के मेल से उपजाति छन्द है ।

द्वितीय श्लोक के तृतीय चरण में यतिभंग दोष है । श्री परांजपे ने इन दोनों श्लोकों को एक श्लोक मान कर इसमें 'दंडक' छन्द का भेद माना है । दंडक छन्द में २७ अक्षर होते हैं । यहाँ पर एक पद में २४-ही अक्षर उस हिसाब से होते हैं, अतः ऐसा मानना उचित नहीं है । श्री गणपति शास्त्री ने 'संकृति' छन्द वृत्तभेद से माना है । यह भी उचित नहीं है । संकृति छन्द में २४ अक्षर होते अवश्य हैं, परन्तु 'संकृति' छन्द का ऐसा कोई भेद नहीं है, जो उपर्युक्त श्लोक में घटे । 'संकृति' छन्द का लक्षण है—

भूतमुनीनैर्यतिरिह भतना: स्भौ भनयाश्च यदि भवति तन्वी ॥

२४ अक्षरों वाला ऐसा कोई छन्द नहीं है, अतः प्रभा और स्रग्विणी के मिश्रण से बने हुए दो श्लोक ही मानने चाहिए ।

२६—सूतः—(आत्मगतम्) भोः ! कष्टम्, यदयमविज्ञाय महाराजविनाशमुदर्के निष्फलमाशां परिवहन्नयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः । जानद्भिरप्यस्माभिर्न निवेद्यते । कुतः,

पितुः प्राणपरित्यागं मातुरैश्वर्यलुब्धताम् ।
ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासं च त्रीन् दोषान् कोऽभिधास्यति ॥५॥

(प्रविश्य)

२७—भटः—जयतु कुमारः ।

२८—भरतः—भद्र ! किं शत्रुघ्नो मामभिगतः ।

२९—भटः—अभिगतः खलु वर्तते कुमारः। उपाध्यायास्तु भवन्तमाहुः।

३०—भरतः—किमिति किमिति।

२६—अन्वय—पितुः प्राणपरित्यागं, मातुः ऐश्वर्यलुब्धताम्, ज्येष्ठभ्रातुः च प्रवासं, (एतान्) त्रीन् दोषान् कः अभिधास्यति।

सूत—(स्वगत) ओह! दुःख की बात है कि ये राजकुमार (भरत) महाराज (दशरथ) की मृत्यु का समाचार न जानने के कारण, परिणाम-स्वरूप निष्फल आशा को धारण किए हुए, अयोध्या में प्रवेश करेंगे। (समाचार को) जानते हुए भी मैं उन्हें नहीं बता रहा हूँ। क्योंकि,

पिता का देहावासन, माता का राज्यलोभ, ज्येष्ठ भाई (राम) का वनवास, इन तीनों विपत्तियों को कौन कहने में समर्थ है ॥५॥

Charioteer—(To himself) Oh! what a pity it is that this prince, ignorant of the demise of the great king, will enter Ayodhyā entertaining a hope which is to prove vain in the end. And no communication can be made by me although knowing (everything). For,

His father's relinquishment of life; his mother's avarice for royalty, and the exile of his eldest brother—who will give utterance to these three disasters? (5)

(प्रविष्ट होकर)

२७—भट—राजकुमार की जय हो!

Bhata—Prosperity to the Prince!

२८—भरत—भद्र, क्या शत्रुघ्न (मेरे स्वागतार्थ) आए हैं?

Bharata—Good man, has Satrughna come up (to receive me)?

२९—भट—राजकुमार (शत्रुघ्न) आ ही रहे हैं, किन्तु उपाध्यायों ने आपको कहा है—

Bhata—The prince indeed has come up, but the priests send to your honour—

३०—भरत—क्या कहा, क्या कहा ?

Bharata—What is it, what is it ?

Notes

२६—(१) आत्मगतम्—स्वमतम्, मन में। स्वगत का लक्षण है—'अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।' जो बात सुनाने योग्य न हो, अर्थात् जिसको साथ में अभिनय करने वाले न सुनें, केवल श्रोता ही सुने, इस अभिप्राय से कहा जाता है, उसे 'स्वगत' कहते हैं। इसी को 'आत्मगत' भी कहते हैं। (२) उदर्के—परिणामे। फलस्वरूप या अन्त में। यहाँ पर अर्थ है भरत के अयोध्या पहुँचने पर। (३) त्रीन् दोषान्—यहाँ पर 'दोष' का अर्थ है विपत्ति या अनर्थ। सूत के कहने का भाव यह है कि ये तीनों विपत्तियाँ इतनी भयंकर हैं कि मुझ जैसा साधारण व्यक्ति, जानते हुए भी कहने का साहस नहीं कर सकता। क्योंकि इनके सुनने से भरत को असह्य दुःख होगा। (४) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

२८—किं शत्रुघ्नः०—भरत ने पूछा कि क्या शत्रुघ्न मेरे स्वागतार्थ आए हैं ? उन्हें भी भाई से मिलने के लिए आना चाहिए था।

२९—अभिगत:०—भरत को सान्त्वना देने के लिए भट ने कहा कि शत्रुघ्न आ ही रहे हैं।

३१—भटः—एकनाडिकावशेषः कृत्तिकाविषयः। तस्मात् प्रतिपन्नायामेव रोहिण्यामयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः।

३२—भरतः—बाढमेवम्। न मया गुरुवचनमतिक्रान्तपूर्वम्। गच्छ त्वम्।

३३—भटः—यदाज्ञापयति कुमारः। (निष्क्रान्तः।)

३१—भट—कृत्तिका नक्षत्र अभी एक घड़ी (२४ मिनट) अवशेष है। अतएव आप रोहिणी नक्षत्र के लग जाने पर अयोध्या में प्रवेश करेंगे।

Bhata—There is as yet one Ghatikā (*i, e.* 24 minutes) to pass before the period fo the Kṛttikā constellation will be over; the prince, therefore, should enter Ayodhyā as soon as Rohiṇi sets in.

३२—भरत—अच्छी बात है, ऐसा ही होगा; मैंने आज तक गुरुओं के वचन का उल्लंघन नहीं किया है। तुम जाओ।

Bharata—Very well, I will do so I have never before transgressed the orders of the preceptors, you may go.

३३—भट—जैसी आपकी आज्ञा। (जाता है)

Bhata—As the prince commands. (Exit)

Notes

३१—(१) एकनाडिका०—एक नाडिका अर्थात् एक घड़ी या एक दंड। एक घड़ी २४ मिनट की होती है। ६० घड़ी का अहोरात्र होता है। कृत्तिका का विषय अर्थात् समय एक घड़ी और शेष रह गया है, उसके बाद रोहिणी नक्षत्र का समय प्रारम्भ हो जायगा। मास के प्रत्येक दिन २७ नक्षत्रों में से एक नक्षत्र क्रमशः रहता है। प्रत्येक नक्षत्र का समय ठीक साठ घड़ी न हो कर कुछ कम या अधिक भी होता है। साधारणतया एक नक्षत्र एक दिन रहता है। इन नक्षत्रों के विभिन्न मतानुसार कई वर्गीकरण हैं। इनमें से एक वर्गीकरण के अनुसार कृत्तिका नक्षत्र क्रूर नक्षत्र माना गया है, उस समय कुछ शुभ कार्य निषिद्ध हैं और रोहिणी अक्रूर (शुभ) नक्षत्र माना गया है, उस समय शुभ कार्य विहित हैं। कृत्तिका का एक नाम 'अग्नि' भी है। कृत्तिका नक्षत्र में सर्वप्रथम गृह-प्रवेश निषिद्ध है। 'मुहूर्तगणपति' में इसका विचार है कि—

अथ यात्रानिवृत्तौ गृहप्रवेश: ॥

(क) प्रवेशो भूपतेर्यात्रानिवृत्तौ निजमंदिरे।
श्रेष्ठे वारे गुरौ शुक्रे बुधे चन्द्रे शनैश्चरे॥
चित्रोत्तरानुराधाख्ये रोहिणीरेवतीमृगे॥

(ख) स्वस्य नाशः प्रवेशे स्यात् पूर्वासु भरणीमघे ।
आर्द्राश्लेषाभिधे मूले ज्येष्ठायां पुत्रनाशनम् ॥
कृत्तिकायां गृहे धातो विशाखायां मृतिः स्त्रियाः ॥

(२) रोहिण्याम्०—प्रश्न हो सकता है कि क्रूर और अक्रूर नक्षत्रों में अन्य भी नक्षत्र हैं, कृत्तिका और रोहिणी को भास ने क्यों लिया। इसका उत्तर यह है कि रामायण (अयोध्या० ३. ४; ४. २१) के अनुसार राम का अभिषेक चैत्र सुदी १०मीं को होना था, उसी दिन वनवास हुआ। उससे छठे दिन दशरथ का स्वर्गवास हुआ, देखो, (रामायण, अयोध्या० ६३. ४ और ६४. ७७-७८)। अर्थात् चैत्र पूर्णिमा को दशरथ का स्वर्गवास हुआ। चैत्र पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र था। क्षेमेन्द्र की 'रामायणमंजरी' (अयोध्या०) (प्राप्तेषु केकयपुरं दिनैर्दूतेषु सप्तभिः) के अनुसार दूत भरत को बुलाने के लिये 'केकय-पुर' सातवें दिन पहुँचे। और रामायण के अनुसार भरत को अयोध्या पहुँचने में सात दिन लगे। एक दिन भरत के प्रस्थान को जोड़ने पर १५ या १६ दिन लगे होंगे। चित्रा नक्षत्र से कृत्तिका नक्षत्र १६वाँ है, अतः सबसे उपयुक्त कृत्तिका नक्षत्र ही पड़ता है, जिस दिन भरत पहुँचे होंगे। अतएव यहाँ रोहिणी नक्षत्र में अयोध्या में प्रवेश बताया है।

तां पुरीं पुरुषव्याघ्रः सप्तरात्रोषितः पथि।
अयोध्यामग्रतो दृष्ट्वा सारथिं चेदमब्रवीत् ॥ (रामा० अयोध्या० ७१,१६)

३४—भरतः—अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमिष्ये । भवतु, दृष्टम्। एतस्मिन् वृक्षान्तराविष्कृते देवकुले मुहूर्तं विश्रमिष्ये। तदुभयं भविष्यति—दैवतपूजा विश्रमश्च। अथ च उपोपविश्य प्रवेष्टव्यानि नगराणीति सत्समुदाचारः। तस्मात् स्थाप्यतां रथः।

३५—सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (रथं स्थापयति)

३६—भरतः—(रथादवतीर्य) सूत ! एकान्ते विश्राम-याश्वान्।

३७—सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (निष्क्रान्तः)

३४—भरत—किस प्रदेश में विश्राम करूँ ? अच्छा, देख लिया। वृक्षों के मध्यभाग से दृष्टिगोचर होने वाले इस मन्दिर में विश्राम करूँगा। इस प्रकार दोनों कार्य हो जायँगे देव-पूजा और विश्राम। यह शिष्टाचार भी है कि नगरों के समीप थोड़ा बैठकर विश्राम करके उनमें प्रवेश करना चाहिये। इसलिये रथ को रोक दो।

Bharata—Now in what region shall I rest myself ? Well, I have seen. I shall take rest for a short while in this temple, disclosed by the spaces between the trees. A double object. will be gained by this—worship to the deities and rest. Besides, this is the practice of the good that cities should be entered after sitting on the outskirts. Let the chariot, therefore, be stopped.

३५—सूत—जैसी आपकी आज्ञा। (रथ को रोकता है)

Charioteer—As the long-lived one commands.

(Stops the chariot

३६—भरत—(रथ से उतर कर) सूत, एकान्त में ले जाकर घोड़ों को विश्राम करने दो।

Bharata—(Descending from the chariot) charioteer, let the horses rest in a secluded place.

३७—सूत—जैसी आपकी आज्ञा। (प्रस्थान)

Chartoteer—As the long-lived one commands. (Exit).

३४—(१) विश्रमिष्ये—दीर्घप्रवासजन्यं खेदमपनेोष्यामि। विश्राम करूँगा। 'श्रम्' धातु दिवादिगणी परस्मैपदी है, अतः यहाँ पर 'विश्रमिष्यामि' रूप होना चाहिये। आत्मनेपद उपयुक्त नहीं है।

(२) वृक्षान्तरा०—वृक्षान्तरेण वृक्षमध्यावकाशेन आविष्कृते दर्शिते। तत्पुरुष। वृक्ष के मध्यभाग से दीखने वाले।

(३) देवकुले—देवालये, मन्दिर में।

(४) उपोपविश्य—यहाँ पर 'उपोप' को समस्त न मानकर उप+उपविश्य ऐसा छेद करना चाहिये। नगर के समीप बैठकर या रुक कर।

(५) समुदाचारः—शिष्टाचारः, शिष्टाचार।

३८—भरत :—(किञ्चिद् गत्वाऽवलोक्य) साधुमुक्तपुष्पलाजाविष्कृता वलयः। दत्तचन्दनपञ्चांगुला भित्तयः। अवसक्तमाल्यदामशोभीनि द्वाराणि। प्रकीर्णा वालुकाः। किन्नु खलु पार्वणोऽयं विशेषः, अथवा आह्निकमास्तिक्यम्। कस्य नु खलु दैवतस्य स्थानं भविष्यति। नेह किंचित् प्रहरणं ध्वजो वा बहिश्चिह्नं दृश्यते। भवतु प्रविश्य ज्ञास्ये। (प्रविश्यावलोक्य) अहो क्रियामाधुर्यं पाषाणानाम्। अहो भावगतिराकृतीनाम्। दैवतोद्दिष्टानामपि मानुषविश्वासताऽऽसां प्रतिमानाम्। किन्नु खलु चतुर्दैवतोऽयं स्तोमः। अथवा यानि तानि भवन्तु। अस्ति तावन्मे मनसि प्रहर्षः।

कामं दैवतमित्येव युक्तं नमयितुं शिरः।
वार्षलस्तु प्रणामः स्यादमंत्रार्चितदैवतः ॥६॥

३८—अन्वय—दैवतम् इत्येव शिरः नमयितुं कामं युक्तम्, तु प्रणामः अमन्त्रार्चितदैवतः वार्षलः स्यात्।

भरत—(कुछ दूर चलकर और देखकर) यहाँ पर तो विधिवत् डाले हुए फूल और खील से सुशोभित नैवेद्य (दृष्टिगोचर हो रहे हैं।) दीवारों पर चन्दन का पंचांगुल (पाँचों अँगुलियों की छाप) दिया हुआ है। लटकती हुई मालाओं से द्वार सुशोभित हैं। रेत चारों ओर बिछाया हुआ है। क्या यह किसी पर्व (त्यौहार) सम्बन्धी विशेष आयोजन है ? अथवा यह दैनिक नियम-पालन है। अच्छा, यह किस देवता का स्थान (मंदिर) हो सकता है ! यहाँ तो कोई (मन्दिर का) बाह्य-चिह्न शस्त्र या ध्वजा (आदि) दिखाई ही

नहीं देती है । अच्छा, अन्दर जाकर ज्ञात करता हूँ। (प्रविष्ट हो कर और देखकर) अहा पत्थरों पर क्या ही सुन्दर कारीगरी (की गई है) । अहा मूर्तियाँ (क्या सुन्दरता से) अपने अन्तर्गत भावों को व्यक्त कर रही हैं, (अर्थात् सजीव सी प्रतीत होती हैं) । ये मूर्तियाँ यद्यपि देवताओं से संबद्ध हैं (अर्थात् देवमूर्तियाँ हैं) तथापि ऐसा विश्वास उत्पन्न कर रहीं हैं कि (वस्तुत:) मनुष्यों की हैं । क्या यह चार देवताओं का समूह है ? अथवा जो कोई भी हों, होने दो । (इन्हें देखकर वस्तुत: मेरे मन में तो बहुत अधिक प्रसन्नता है ।

इन्हें देवता (की मूर्तियाँ) मानकर इनको प्रणाम करना युक्त ही है । किन्तु (देवताओं का ठीक निर्धारण न होने से) मंत्रों के सहित देवता की पूजा न होने से मेरा प्रणाम शूद्रोचित प्रणाम ही होगा ॥६॥

Bharata—(Going forth a little and seeing) Here are offerings as shown by the flowers and fried well arranged The walls have marks of five fingers with sandal at paste impressed on them. The doors appear beautiful with the garlands hanging from them. The sands have been spread out. Is this a special decoration, due to some festival ! Or is this theistical performance an every day affair ! Of what deity indeed can this be the place of worship ! There is no external sign of (any particular deity) to be seen here, such as any weapon or a banner . Well, I shall know it on entering it. (Entering in and looking) Oh, the attractiveness of the workmanship of (exhibited on) the stones. Oh, how excellent the expression of sentiment in thease figures. These statues, although intended to represent some deities have the aptitude of creating conviction that they must be of human beings. Can it be that this is a group of four deities ? Or let them be whatever they are. There is certainly an ecstasy of joy in my mind (on seeing them).

I allow that it is proper to bend the head just thinking these to be (the statues of) deities ; but my salutation will be in the manner of a Vṛṣala (Sūdra), wherein the deity is worshipped without (the use of) any Mantras. (6)

Notes

३८—(१) साधुमुक्त०—साधु सम्यक्तया मुक्तानि अर्जितानि पुष्पाणि लाजाश्च तैः आविष्कृताः प्रकाशिताः । तत्पुरुष । सुन्दर रूप से या विधिपूर्वक डाले हूए फूलों और खीलों से सुशोभित । साधु शब्द से यहाँ पर तीन अर्थ लग सकते हैं—(१) शास्त्रीय विधिपूर्वक, (२) अच्छे प्रकार से, (३) सज्जन वर्ग । गणपति शास्त्री ने अन्तिम अर्थ लेकर इसका अर्थ किया है—साधुना देवपूजकेन सज्जनेन मुक्तैः अवकीर्णैः पुष्पैः लाजैः च आविष्कृताः । सज्जन भक्त के द्वारा डाले हुए फूलों और खीलों से प्रकाशमान । शुभ अवसरों पर खील एवं फूल डाले जाते हैं । देवपूजा में खील एवं फूल डालना आज-कल भी प्रचलित है ।

(२) वलयः—देवतोपहाराः । देवताओं के लिये दी जाने वाली भेंट नैवेद्य ।

(३) दत्तचन्दन०—देखो अंक ३ वक्तव्य संख्या ११ पर नोट ।

(४) अवसक्तमाल्य०—रामायण युद्ध० १२७. ६ में 'स्रग्दाममुक्तपुष्पैश्च' की व्याख्या करते हुए टीकाकार ने स्रज् दामन् और पुष्प का अन्तर स्पष्ट किया है कि—'विरलपुष्पबन्धाः स्रजः । निबिडपुष्पबंधं दाम । मुक्तपुष्पाणि बन्धनरहितानि पुष्पाणि ।' जिसमें थोड़े फूल होते हैं, ऐसी माला को 'स्रज्' कहते हैं । घने फूलों वाली माला को 'दामन्' और बन्धन रहित फूलों को पुष्प । अवसक्तानि माल्यदामानि तैः शोभन्ते इति । लटकी हुई फूल-मालाओं से सुशोभित द्वार ।

(५) पर्वणः—पार्वणि भवः । पर्वन् + अण् । पर्व के दिन होने वाला उत्सव या त्यौहार । यह साधारणतया पूर्णिमा या अमावस्या को होता है । यहाँ पर अमावस्या का पर्व समझना चाहिए । भरत के इस कथन से भी ज्ञात होता है कि वे अमावस्या या प्रतिपदा को अयोध्या पहुँचे थे ।

(६) विशेषः—विशिष्टो विधिः। यहाँ पर विशेष का अभिप्राय है विशेष आयोजन या समारोह।

(७) आह्निकम्—अह्निभवम्। दैनिक।

(८) आस्तिक्यम्—'अस्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्यासौ आस्तिकः।' अस्ति + ठक्। 'अस्ति नास्तिदिष्टं मतिः' (पा० ४. ४. ६०) से ठक् प्रत्यय। ठ को इक। आस्तिक अर्थात् जो परमात्मा और परलोक को मानता है। आस्तिकस्य भावः आस्तिक्यम्। आस्तिक + ष्यञ्। आस्तिकता यहाँ पर प्रतिदिन का धार्मिक कृत्य।

(९) दैवतस्य स्थानम्—देवता का स्थान अर्थात् देवता का मन्दिर।

(१०) प्रहरणं ध्वजो वा—विभिन्न देवताओं के पृथक् अपने संकेत चिह्न हैं और उनके मन्दिरों पर ध्वजा या उन शस्त्रों के चिह्न होते हैं, जिससे किसका मन्दिर है, यह बाहर से ज्ञात हो जाता है, जैसे त्रिशूल चिह्न शिव का, शक्ति कार्त्तिकेय का, ध्वजाएँ जैसे—गरुडध्वज, मकरध्वज, वृषभध्वज आदि पृथक् पृथक् देवताओं के सूचक हैं।

(११) क्रियामाधुर्यम्—शिल्पसौष्ठवम्। यहाँ पर क्रिया का अर्थ है शिल्प-क्रिया, कारीगरी या बनावट। माधुर्य का यहाँ पर अर्थ है—सुन्दरता, रम्यता क्या ही पत्थरों पर सुन्दर कारीगरी की गई है।

(१२) भावगतिः—हृद्गतविकाराविष्करणम्। हार्दिक मनोभावों की अभिव्यक्ति। मूर्तियाँ प्रसन्न-चित्त आदि हैं। भावाभिव्यक्ति के कारण मूर्तियाँ सजीव सी ज्ञात होती हैं।

(१३) अहो—आश्चर्य सूचक अव्यय।

(१४) दैवतोद्दिष्टानाम्०—दैवतत्वेन कल्पितानाम्। ये देवतारूप में बनाये गये हैं।

(१५) मानुषविश्वासता—मानुषा इति विश्वासः मानुषविश्वासः, तस्य भावः। इन प्रतिमाओं को देखने से ऐसा विश्वास जागृत होता है कि ये मनुष्यों की प्रतिमाएँ हैं।

(१६) चतुर्दैवतः—चत्वारि दैवतानि यस्य अवयवाः सः। बहुव्रीहि। चार देवता, जिसके अवयव हैं, ऐसा समूह। स्तोमः—संघः। स्तोम अर्थात् समूह। क्या ये कोई विशेष चार देवता हैं?

(१७) अथवा यानि०—जो कोई भी हों, होने दो। भरत के इस कथन से स्पष्ट है कि उन्हें इन मूर्तियों के देवता होने में सन्देह है।

(१८) कामम्—तथापि। फिर भी।

(१९) वार्षल:—वृषलस्य शूद्रस्य अयम्। वृषलस्य+अण्। शूद्रों के लिये उचित। जिस प्रकार शूद्र बिना मन्त्र का उच्चारण किये हुए देवपूजा करते हैं, उसी प्रकार देवता का ठीक ज्ञान न होने से मेरा प्रणाम भी शूद्रोचित प्रणाम ही होगा। शूद्रों के लिये पूजा आदि में मन्त्रपाठ आवश्यक नहीं है।

(२०) अमन्त्रार्चित०—मन्त्रैः मन्त्रपाठपूर्वकम् अर्चितं पूजितं दैवतं यस्मिन् तादृशः न भवतीति अमन्त्रार्चितदैवतः। जिसमें मन्त्रपाठ सहित देवता की पूजा नहीं की जाती।

(२१) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

(*प्रविश्य*)

३९—देवकुलिकः—भोः! नैत्यकावसाने प्राणिधर्ममनुतिष्ठति मयि को नु खल्वयमासां प्रतिमानामल्पान्तराकृतिरिव प्रतिमागृहं प्रविष्टः। भवतु, प्रविश्य ज्ञास्ये। (प्रविशति)

४०—भरतः—नमोऽस्तु।

४१—देवकुलिकः—न खलु न खलु प्रणामः कार्यः।

(*पुजारी का प्रवेश*)

३९—देवकुलिक—अरे, नैत्यिक कर्मों (पूजा-पाठ आदि) के बाद मेरे भोजन करते समय कौन, इन प्रतिमाओं से बहुत अधिक समान आकार वाला व्यक्ति, प्रतिमा-गृह में प्रविष्ट हुआ है! अच्छा, मैं अन्दर जाकर ज्ञात करता हूँ। (अन्दर प्रविष्ट होता है)

(*Enters the keeper of the temple*).

Devakulika—oh, while I was taking my food (ltt. attending to the function of living beings) after having finished my daily duties, who can, indeed, this be, possessing a form almost resembling (lit. differing very little from) the statues,

that has entered the statue house ? Very well, I shall know by entering (the statue-house)

(Enters).

४०—भरत—मैं (देवताओं को) नमस्कार करता हूँ ।

Bharata—I offer my salutation (to these deities).

४१—देवकुलिक—नहीं, नहीं, प्रणाम मत कीजिए ।

Devakulika—Do not, do not make the bow

Notes

३९—(१) देवकुलिक:—देवगृहपूजक: । पुजारी, मन्दिर का रक्षक । (२) नैत्यकावसाने—नैत्यकस्य नित्यकर्मण: अवसाने समाप्तौ । तत्पुरुष । नित्यकर्मों अर्थात् पूजा-पाठ आदि के बाद । नैत्यक:—नित्यं भव:, नित्य+वुञ् । दैनिक कर्तव्य । कर्म तीन प्रकार के होते हैं—

(१) नैत्यिक—दैनिक सन्ध्या, पूजा-पाठ शौच, स्नानादि । (२) नैमित्तिक—किसी विशेष अवसर पर किए जाने वाले, जैसे विशेष पर्व आदि पर किए जाने वाले कार्य । (३) काम्य—जो किसी विशेष कामना से किए जाते हैं; जैसे—पुत्रेष्टियज्ञ आदि ।

(३) प्राणिधर्मम्०—भोजनं कुर्वति सति । भोजन करते समय । प्राणिधर्म शब्द का शब्दार्थ है—प्रत्येक प्राणी द्वारा किया जाने वाला कार्य, यहाँ पर भोजन अर्थ है; क्योंकि वही सबसे मुख्य जीवधर्म है । इस पुजारी के कथन से ज्ञात होता है कि भरत जिस समय वहाँ पहुँचे थे, उस समय भोजन का समय अर्थात् मध्याह्न हो रहा था ।

(४) प्रतिमानाम्०—प्रतिमाओं से बहुत कम अन्तर वाले आकार को धारण करने वाला । पुजारी ने प्रतिमाओं और भरत के रूपसाम्य को तुरन्त पहचान लिया ।

४०—नमोऽस्तु—भरत का यह नमस्कार प्रतिमाओं को है, न कि पुजारी को ।

४२—भरतः—मा तावद्भोः !

वक्तव्यं किञ्चिदस्मासु विशिष्टः प्रतिपाल्यते ।
किंकृतः प्रतिषेधोऽयं नियमप्रभविष्णुता ॥७॥

४३—देवकुलिकः—न खल्वेतैः कारणैः प्रतिषेधयामि भवन्तम्। किन्तु दैवतशङ्कया ब्राह्मणजनस्य प्रणामं परिहरामि। क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः।

४४—भरतः—एवम् ? क्षत्रियाः ह्यत्रभवन्त अथ के नामात्रभवन्तः !

४५—देवकुलिकः—इक्ष्वाकवः।

४२—अन्वय—अस्मासु किञ्चिद् वक्तव्यम् (अस्ति किम्), विशिष्टः प्रतिपाल्यते, नियमप्रभविष्णुता (वा), अयं प्रतिषेधः किंकृतः।

भरत—ओह, ऐसा मत कीजिए।

क्या हममें (मुझमें) कोई दोष है ? क्या (हमारी अपेक्षा किसी) विशिष्ट व्यक्ति की प्रतीक्षा कर रहे हैं ? (अथवा) नियन्त्रण के अधिकार का मद तुम्हें है ? यह निषेध किस कारण से कर रहे हो ? ॥७॥

Bharata—Oh, do not do this.

Is there anything to be found fault with us ? Or is some one superior (to us) being awaited ? Is it your power to enforce certain rules (to be observed here) ? To what is this prohibition due ? (7)

४३—देवकुलिक—नहीं, मैं इन कारणों से आपको नहीं रोक रहा हूँ। किन्तु मैं इसलिए रोक रहा हूँ कि आप ब्राह्मण होकर देवता समझकर (इन मूर्तियों को) प्रणाम न करें। ये पूजनीय क्षत्रिय हैं।

Devakulika—It is not for these reasons that I forbid your honour. But I prevent a man of the Brāhmaṇa class from saluting these, mistaking them for deities. For these honoured ones are Kṣatriyas.

४४—भरत—अच्छा यह बात है ? ये लोग क्षत्रिय हैं। तो ये महानुभाव कौन-कौन हैं ?

Bharata—Is it so ? These are Kṣatriya personages. Now who can their honours be ?

४५—देवकुलिक—ये इक्ष्वाकु-वंशीय (क्षत्रिय) हैं।

Devakulika—They ere Ikṣvākus.

Notes

४२—(१) वक्तव्यम्—दूषणम्। दोष या त्रुटि। दोष या त्रुटि की ओर निर्देश करके कहा जाता है, अतः वक्तव्य का अर्थ दोष भी है। कुत्सिते वाच्यवक्तव्यौ। इति वैजयन्ती। (२) विशिष्टः—यहाँ पर विशिष्ट के दो अर्थ हो सकते हैं—(क) क्या किसी विशेष व्यक्ति की प्रतीक्षा कर रहे हैं, अर्थात् क्या वही पूजा कर सकता है? (ख) विशिष्ट का अर्थ विशिष्ट विधि लेने पर अर्थ होगा, क्या कुछ विशेष विधि का यहाँ पर पालन करना होता है?

(३) किंकृतः—किंनिमित्तकः। किस कारण से (४) नियम०—नियमः अनेन प्रणामः कार्योऽनेन नेति नियमनं तत्र प्रभविष्णुता सामर्थ्यम्। यह व्यक्ति प्रणाम कर सकता है, यह नहीं, इस प्रकार के नियन्त्रण के सामर्थ्य के आधार पर क्या आप मुझे रोक रहे हैं? (५) अनुष्टुप् छन्द है। भास की संक्षेपपूर्ण रचना का यह सुन्दर उदाहरण है। इसी प्रकार का अन्य श्लोक है—अंक १ श्लोक ६।

४३—ब्राह्मणजनस्य—पुजारी ने भरत को ब्राह्मण समझ कर रोका। भास के इस कथन से ज्ञात होता है कि उसके समय में इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता था कि अन्य वर्ण के व्यक्ति ब्राह्मण को प्रणाम करें और वह अन्यों को प्रणाम न करके 'स्वस्ति, चिरं जीव' आदि आशीर्वाद दे।

४६—भरतः—(सहर्षम्) इक्ष्वाकव इति।

एते तेऽयोध्याभर्तारः।

एते ते देवतानामसुरपुरवधे गच्छन्त्यभिसरी-
मेते ते शक्रलोके सपुरजनपदा यान्ति स्वसुकृतैः॥

एते ते प्राप्नुवन्तः स्वभुजबलजितां कृत्स्नां वसुमती-
मेते ते मृत्युना ये चिरमनवसिताश्छन्दं मृगयता ॥८॥

भोः ! यदृच्छया खलु मया महत् फलमासादितम् । अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान् ।

४६—अन्वय—एते ते (ये) असुरपुरवधे देवतानाम् अभिसरी गच्छन्ति । एते ते (ये) स्वसुकृतैः सपुरजनपदाः शक्रलोके यान्ति । एते ते (ये) स्वभुजबलजितां कृत्स्नां वसुमतीं प्राप्नुवन्तः (सन्ति) । एते ते (ये) छन्दं मृगयता मृत्युना चिरम् अनवसिताः ।

भरत—(प्रसन्नतापूर्वक) अच्छा, ये इक्ष्वाकुवंशीय (राजा) हैं ? यही वे अयोध्या के विख्यात राजा हैं ।

ये वे ही (राजा) हैं, जो असुरों की नगरी के विध्वंस के समय देवताओं के सहायतार्थ उनके साथ जाते थे । ये ही वे (राजा) हैं जो अपने पुण्यों के प्रभाव से समस्त प्रजावर्ग (नागरिक और देशवासी) के साथ स्वर्ग (इन्द्रलोक) को जाते थे । ये ही वे (राजा) हैं जिन्होंने अपनी भुजाओं के बल से जीत कर समस्त पृथ्वी को प्राप्त किया था (अपने अधिकार में किया था) । ये ही वे (राजा) हैं जिनकी इच्छा का अनुसरण करने वाली मृत्यु ने उनको चिरकाल तक नष्ट नहीं किया ॥८॥

अहा ! अकस्मात् मुझे महान् फल मिल गया । अच्छा, तो बताओ ये कौन हैं ?

Bharata—(With joy) Are they the Ikṣvākus ? There are those (famous) rulers of Ayodhyā.

These are those (kings) who went to the assistance of gods, when they had to destroy the city of the demons; these are (the kings) who went to Indra's world with their subjects by virtue of their good deeds, these are the kings who brought under their sway the whole earth conquered by the powers of their arms, these are the kings that were long spared by death that had to seek their pleasure. (8)

Oh, by chance, indeed, did I come across this great advantage.

Tell me then who this honoured king is ?

Notes

४६—(१) असुरपुरवधे—दैत्यनगरीविनाशे । असुराणां पुराणां वधे नाशे कर्तव्ये । तत्पुरुष । राक्षसों के नगर के नाश के समय । यहाँ पर लक्षणा से 'वध' शब्द का अर्थ विध्वंस या विनाश लेना होगा, क्योंकि 'असुरों' के नगरों का वध अर्थ ठीक नहीं लगता । इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि असुरों और उनके नगरों के विनाश के अवसर पर ।

(२) अभिसरीं गच्छन्ति—साहाय्यार्थम् अभिसरणं कुर्वन्ति । सहायता के लिये साथ जाते थे । 'अभिसरी' का अर्थ है—सहायतार्थ जाना, साथ जाना, युद्ध में सहायतार्थ जाना । भास ने ही इस शब्द का प्रयोग किया है । भास ने अन्य नाटकों में भी इसका प्रयोग किया है । इसके स्थान पर 'अभिसरि' शब्द का प्रयोग अंक ४.६२ में किया है ।

(३) शक्रलोके—इन्द्रपुरीम् । स्वर्ग को । यहाँ पर 'शक्रलोके यान्ति' के स्थान पर 'शक्रलोकं यान्ति' द्वितीया का प्रयोग उचित है, क्योंकि गमनार्थक धातुओं के साथ द्वितीया होती है ।

(४) सपुरजनपदाः—पौरजानपदसहिताः । नगर और देश की प्रजा के साथ । पुराश्च जनपदाश्च तैः सहिताः । सहार्थ में बहुव्रीहि । पुर अर्थात् नगर और जनपद अर्थात् प्रदेश के साथ । यहाँ पर पुर और जनपद शब्द लक्षणा से पुरवासी और जनपद-निवासी प्रजा के लिये हैं । कालिदास ने रघुवंश (१५.१०१.१०२) में वर्णन किया है कि राम अपने साथ अयोध्यावासियों को भी स्वर्ग में ले गये ।

(५) स्वसुकृतैः—स्वपुण्यैः । अपने पुण्यों से ।

(६) प्राप्नुवन्तः—लभमानाः । 'सन्तीति' शेषः । प्राप्त करते थे । यहाँ पर 'सन्ति' होना चाहिये ।

(७) स्वभुजबलजिताम्—स्वबाहुपराक्रमविजिताम् । 'स्वभुजबाहुबलेन जिताम्' तत्पुरुष । अपनी भुजाओं के बल से जीती हुई ।

(८) कृत्स्नाम्—समग्राम्। सम्पूर्ण।

(९) वसुमतीम्—पृथ्वीम्। पृथ्वी को। वसु+मतुप्+ङीप्।

(१०) अनवसिताः—अविनाशिताः। चिरकाल तक मृत्यु के द्वारा नष्ट नहीं किये गये। अवसित—अव+सो (सा)+क्त=अवसित+नञ् समास =अनवसित। 'षोऽन्तकर्मणि' धातु से क्त प्रत्यय, 'द्यतिस्यतिमास्थामिति किति' से आ को इ।

(११) छन्दं मृगयता मृत्युना—मृत्युविषयाम् इच्छाम् अन्विष्यता मृत्युना। छन्द का अर्थ है इच्छा, मृत्युविषयक इच्छा की प्रतीक्षा करने वाली मृत्यु के द्वारा। मृत्यु इक्ष्वाकु-वंशियों के वश में थी, वे इच्छा-मरण थे अर्थात् जब वे स्वयं चाहते थे, तभी मरते थे, उससे पूर्व नहीं। अतः मृत्यु को उनकी इच्छा की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। रामायण उत्तरकांड सर्ग १०४ में राम को भी इच्छा-मरण बताया गया है। इसी प्रकार भीष्म को भी इच्छामरण माना जाता है। मृगयता—मृग+णिच् (चुरादि)+शतृ+टा।

(१२) इस श्लोक में सुवदना छन्द है। उसका लक्षण है—
ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिः मरभनययुतौ भ्लौ गः सुवदना।

(१३) यदृच्छया—अनायासेन। बिना प्रयत्न के ही।

(१४) आसादितम्—प्राप्तम्। आ+सद्+णिच्+क्त।

(१५) अत्रभवान्—पूजनीयोऽसौ। अत्रभवान् और तत्रभवान् शब्द पूजनीय, माननीय अर्थ में आते हैं।

४७—देवकुलिकः—अयं खलु तावत् सन्निहितमर्वरत्नस्य विश्वजितो यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्वलितधर्मप्रदीपो दिलीपः।

४८—भरतः—नमोऽस्तु धर्मपरायणाय! अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान्?

४९—देवकुलिकः—अयं खलु तावत् संवेशनोत्थापनयोरनेकब्राह्मणजनसहस्रप्रयुक्तपुण्याहशब्द रवो रघुः।

४७—देवकुलिक—ये (महाराज) दिलीप हैं, जिन्होंने विश्वजित् (संसार की विजय) यज्ञ का अनुष्ठान किया था, जिसके लिए सम्पूर्ण रत्नों को एकत्र संग्रह करके रक्खा जाता है और जिन्होंने धर्म के प्रदीप को सर्वदा प्रज्वलित रक्खा।

Devakulika—This is, indeed, (king) Dilīpa, the performer of Viśvajit sacrifice requiring the best things of all kinds to be collected for it, and who kept burning the lamp of righteousness.

४८—भरत—सदा धर्मपरायण (धर्मनिष्ठ) को नमस्कार। अच्छा, बताइए, ये कौन हैं।

Bharata—My salutation to him ever devoted to Dharma (the observation of religious law). Say who this honoured one is ?

४९—देवकुलिक—ये (महाराज) रघु हैं, जिनके शयन और उठाने के समय कितने ही सहस्र ब्राह्मण पुण्याह ('दिन शुभकारी हो') मन्त्रों का उच्चारण करते थे।

Devakulika—This is indeed, king Raghu, who when sleeping and being aroused from sleep, had the expressions—An auspicious day to you—addressed to him by several thousands of Brāhmaṇas.

Notes

४७—(१) सन्निहित०—सन्निहितानि समुपस्थापितानि सर्वाणि रत्नानि उत्कृष्टद्रव्याणि यस्मिन् तस्य। बहुव्रीहि। जिसमें सम्पूर्ण बहुमूल्य वस्तुएँ लाकर रक्खी गई हैं। यहाँ 'रत्न' शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—(क) 'रत्न' मणि (ख) बहुमूल्य वस्तुएँ।

(२) विश्वजितो यज्ञस्य०—विश्वजिन्नामकस्य अध्वरस्य सम्पादयिता। विश्वजित् नामक यज्ञ का कर्ता। विश्वं जयतीति विश्वजित्। विश्व+जि+क्विप् प्रत्यय। 'ह्रस्वस्य पिति०' से तुक् (त्)। यज्ञ—यज्+नङ् (न)। 'यजयाच०' सूत्र से नङ् प्रत्यय। प्रवर्तयिता—प्र+वृत्+णिच्+तृच्। विश्व-

जित् यज्ञ सम्पूर्ण पृथ्वी का दिग्विजय करने के बाद किया जाता है। रामायण (बालकांड ४२.८) के अनुसार दिलीप ने बहुत से महायज्ञ किये थे।

दिलीपस्तु महातेजा यज्ञैर्बहुभिरिष्टवान्। रामायण।

रघुवंश (सर्ग ३.३८ और ६९) के अनुसार उसने ९९ यज्ञ किए थे, परन्तु रघुवंश (४.८६ तथा ५.१) के अनुसार दिलीप ने नहीं, अपितु रघु ने विश्वजित् यज्ञ किया था।

स विश्वजितमाजह्रे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम्। रघु० ४८.६।

तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं निःशेषविश्राणितकोशजातम्। रघु० ५.१। भास ने किस आधार पर दिलीप को विश्वजित् यज्ञ का कर्त्ता माना है, यह गवेषणीय है। संभव है, उसके ९९ यज्ञों में विश्वजित् यज्ञ की भी गणना हो। विश्वजित् यज्ञ में यजमान पुरोहितों को अपना सर्वस्व दक्षिणा-रूप में दे देता था।

'विश्वजित् सर्वदक्षिणः' इति श्रुतिः।

अतएव रघुवंश (५.१) में रघु के लिए कहा गया है कि उसने अपना सर्वस्व दानरूप में दे दिया था।

(३) प्रज्वलित०—प्रज्वलितः सततप्रदीप्तः धर्मः धर्मरूपः प्रदीपो दीपको यस्य सः। बहुव्रीहि। धर्मरूपी दीपक को सदा प्रदीप्त रखने वाले। इसके लिए देखिए—

आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः। रघु० १.१३.

तस्य धर्मरतेरासीद् वृद्धत्वं जरसा विना। रघु १.२३.

(४) प्रदीपो दिलीपः—में अनुप्रास अलंकार है।

४८—धर्मपरायणाय—धर्मैकनिष्ठाय। धर्म में सर्वदा तत्पर।

४९— १) संवेशनो०—संवेशनं शयनम् उत्थापनं तस्मात्प्रबोधनं तयोः (तत्काले इत्यर्थः) अनेकैः बहुभिः ब्राह्मणजनसहस्रैः द्विजातिसहस्रैः प्रयुक्तः विहितः पुण्याहशब्दः पुण्याहमन्त्रवाचनं तस्य रवः ध्वनिः यस्य सः। बहुव्रीहि। सोने और प्रातःकाल उठाने के समय सहस्रों ब्राह्मण पुण्याहमंत्रों का उच्चारण करते थे। संवेशन का अर्थ है शयन।

सं+विश् धातु का अर्थ होता है सोना। कालिदास ने इसका प्रयोग किया है—

संवेशाय विशाम्पतिम्। विससर्जोदितश्रियम्। रघु० १.९३

संविष्टः कुशशयने निशां निनाय। रघु० १.९५

उत्थापन अर्थात् उठाना। भास के इस कथन से ज्ञात होता है कि रघु बहुत ब्राह्मणभक्त था। वह बन्दियों के स्तुतिपाठ से नहीं, अपि तु ब्राह्मणों के मन्त्रपाठ के साथ सोता और उठता था।

(२) पुण्याह०—'पुण्याहम् इति शब्दः। पुण्याह-वाचन। दिन शुभकारी हो, इस भाव के समर्थक मंत्रों का पाठ।

यजमान कहता है कि—'मम आशीर्वचनमपेक्षमाणस्य अमुकं कर्म करिष्यमाणस्य पुण्याहमिति भवन्तो ब्रुवन्तु, स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु।

ब्राह्मण उत्तर में कहता है कि—'अस्तु पुण्याहम्। आयुष्मते स्वस्ति।' इत्यादि।

संवेशन—सम्+विश्+ल्युट् (अन)। उत्थापन—उत्+स्था+णिच्+ल्युट्। प्रयुक्त—प्र+युज्+क्त। पुण्याहम्—पुण्यं च तत् अहः। कर्मधारय। पुण्य+अहन्+टच्। राजाहः सखिभ्यष्टच्' (पा० ५.४.९१) से समासान्त टच् प्रत्यय।

'उत्तमैकाभ्यां च' (पा० ५.४.९०) से अह्न' आदेश का निषेध।

५०—भरतः—अहो बलवान् मृत्युरेतामपि रक्षामतिक्रान्तः। नमोऽस्तु ब्राह्मणजनावेदितराज्यफलाय। अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान्।

५१—देवकुलिकः—अयं खलु तावत् प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तराज्यभारो नित्यावभृथस्नानप्रशान्तरजा अजः।

५०—भरत—ओह! प्रबल मृत्यु इस (मंत्रों द्वारा की गई) रक्षा को भी पार कर गई। ब्राह्मण-जनों को समग्र ऐश्वर्य समर्पित करने वाले (इस महाराज रघु) को मेरा प्रणाम। अच्छा, बताइए, ये कौन हैं!

Bharata—Ah ! How powerful is death that over-stepped this protection ! My salutation be to him, who gave away the fruits of sovereignty to the Brāhmaṇas. Well, now tell me who is this revered king ?

५१—देवकुलिक—ये हैं महाराज अज, जिन्होंने अपनी प्रियतमा (इन्दुमती) के वियोग-दुःख में राज्यकार्य छोड़ दिया था और जिन्होंने प्रतिदिन किए जाने वाले यज्ञों के पश्चात् स्नानों से अपने रजोगुण को नष्ट कर दिया था।

Devakulika—This is, indeed, king Aja, who cast off the responsibility of Government through grief caused by the loss of his wife (*i.e.*, Indumati), and who had the effects of the quality of foulness washed off from him by his constant ablutions at the conclusion of sacrifices.

Notes

५०—(१) रक्षाम्०—पुण्याह-वाचन पूर्वक आशीर्वादों से की गई रक्षा को। मृत्यु प्रबल है, अतएव मंत्रों द्वारा की गई रक्षा को भी उसने तोड़ दिया। (२) ब्राह्मण०—ब्राह्मणजनेभ्यः आवेदितं निवेदितं समर्पितं वा राज्य-फलम् ऐश्वर्यं येन तस्मै। बहुव्रीहि। जिसने ब्राह्मणों को अपना ऐश्वर्य दक्षिणा आदि रूप में समर्पित कर दिया है। रघु की दानशीलता का उल्लेख कालिदास ने भी किया है—

तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं निःशेषविश्राणितकोशजातम्। रघु० ५. १.

श्री परांजपे ने यहाँ पर 'आवेदित' का अर्थ 'प्रदत्त' करते हुए इसका अर्थ किया है कि 'ब्राह्मणों के आशीर्वादों से जिसको ऐश्वर्य प्राप्त हुआ था' परन्तु यह अर्थ भास का अभीष्ट अर्थ नहीं प्रतीत होता है। 'ब्राह्मणों को दान देना' अर्थ अधिक उपयुक्त है और प्राकरणिक है।

श्री काले ने 'आवेदित' के स्थान पर 'विदित' पाठ मान कर अर्थ किया है कि 'ब्राह्मणों ने जिसके राज्यफल (ऐश्वर्य) का आनन्दानुभव किया है, यहाँ पर मूल पाठ 'आवेदित' ही ठीक प्रतीत है। 'विदित' नहीं।

५१—(१) प्रियावियोग०—प्रियायाः इन्दुमत्याः वियोगेन विरहेण। निर्वेदः शोकः तेन परित्यक्तः राज्यभारः राज्यसंरक्षणक्रियाकलापः येन सः। बहुव्रीहि। अपनी पत्नी इन्दुमती के वियोग-दुःख में जिसने राज्यभार छोड़ दिया था। इसके विस्तृत विवरण के लिए देखें कालिदास का रघुवंश सर्ग ८ में अजविलाप प्रकरण।

(२) नित्यावभृथ०—नित्यं प्रतिदिनम् अवभृथस्नानम् अवभृथो दीक्षान्ते यज्ञविशेषस्तत्र स्नानं तेन प्रशान्तं प्रणष्टं रजः रजोगुणविकारो यस्य सः। बहुव्रीहि। प्रतिदिन यज्ञ के बाद स्नान से जिसका रजोगुण धुल गया है। पत्नी के वियोग-जन्य दुःख को अज ने नियमित यज्ञ आदि शुभकार्यों द्वारा शान्त किया। राज्यभार छोड़ कर अज ने तपस्वी-जीवन बिताया। इस प्रकार राज्यभार-त्याग का जो दोष अज पर आता था, उसका समाधान भास ने किया है। रजस् शब्द के यहाँ दोनों अर्थ श्लेष से लग सकते हैं—(१) धूल, (२) रजोगुण। यज्ञ के पश्चात् किए जाने वाले स्नान को 'अवभृथ' कहते हैं।

५२—भरतः—नमोऽस्तु श्लाघनीयपश्चात्तापाय। (दशरथस्य प्रतिमामवलोकयन् पर्याकुलो भूत्वा) भोः! बहुमानव्याक्षिप्तेन मनसा सुव्यक्तं नावधारितम्। अभिधीयतां कस्तावदत्रभवान्।

५३—देवकुलिकः—अयं दिलीपः।

५४—भरतः—पितृपितामहो महाराजस्य। ततस्ततः।

५५—देवकुलिकः—अत्रभवान् रघुः।

५६—भरतः—पितामहो महाराजस्य। ततस्ततः।

५७—देवकुलिकः—अत्रभवानजः।

५८—भरतः—पिता तातस्य। किमिति किमिति।

५२—भरत—प्रशंसनीय पश्चात्ताप करने वाले (महाराज) को नमस्कार (दशरथ की प्रतिमा को देखते हुए व्याकुल होकर) ओह, (आपने जो कुछ कहा) उसे मैं ठीक नहीं समझ पाया, क्योंकि मेरा मन सर्वथा (इन महानुभावों के) सम्मान की भावना में लीन था। अच्छा तो बताइये ये कौन महानुभाव हैं ?

Bharata—My homage to him whose penitence was laudable. (Looking at the statue of Daśaratha and being perturbed). Oh, I did not comprehend very clearly (what you said) owing to my mind being wholly taken up by the high respect (I felt for these). Now tell me—Who is this personage ?

५३—देवकुलिक—ये (महाराज) दिलीप हैं।

Devakulika—This is king Dilīpa

५४—भरत—महाराज (दशरथ) के प्रपितामह। और ये ?

Bharata—The great-grand-father of the great king (Dasatatha). The next one ?

५५—देवकुलिक—ये महाराज रघु हैं।

Devakulika—This is the revered Raghu.

५६—भरत—अच्छा, महाराज (दशरथ) के पितामह। और ये ?

Bharata—Yes, he is the grand-father of the great king. And this one ?

५७—देवकुलिक—ये महाराज अज हैं।

Devakutik—This is the revered Aja.

५८—भरत—अच्छा, हमारे पिता जी के पिता जी। क्या कहा ! क्या कहा !

Bharata—Yes, he is the father of my father. What, what did you say ?

Notes

५२—(१) श्लाघनीय०—श्लाघनीयः प्रशंसनीयः पश्चात्तापः प्रियाः-विषयकः अनुतापो यस्य तस्मै। बहुव्रीहि। जिसका प्रिया-सम्बन्धी दुःख या पश्चात्ताप प्रशंसनीय है। प्रियतमा के लिये प्रेमाधिक्य स्वाभाविक है।

(२) दशरथस्य०—भरत को विश्वास था कि दशरथ जीवित हैं, परन्तु उनकी प्रतिमा को देखकर वह सहसा किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। क्योंकि उसे ऐसी आशा नहीं थी, अतएव वह अपने आप को सँभाल न सका।

(३) बहुमान०—बहुमानात् अतिगौरवात् व्याक्षिप्तेन तत्रासक्तेन। तत्पुरुष। अति आदर-भावना के कारण तल्लीन होने से वस्तुतः यह बहाना ठीक नहीं है। भरत की व्याकुलता का वास्तविक कारण दशरथ की प्रतिमा को देखना है।

(४) अवधारितम् ज्ञातम्। जाना, समझा। अव+धृ+णिच्+क्त।

५३—दिलीपः—यहाँ पर दिलीप, रघु और अज का जो क्रम दिया गया है, वह कालिदास के रघुवंश के वर्णन से सर्वथा मिलता है। यह क्रम पद्मपुराण के अनुसार है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार क्रम दूसरा है, देखें अयोध्या कांड अध्याय ११०—

५९—देवकुलिकः—अयं दिलीपः, अयं रघुः, अयमजः।

६०—भरतः—भवन्तं किञ्चित् पृच्छामि। धरमाणानामपि प्रतिमाः स्थाप्यन्ते?

६१—देवकुलिकः—न खलु, अतिक्रान्तानामेव।

६२—भरतः—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम्।

६३—देवकुलिकः—तिष्ठ?

येन प्राणाश्च राज्यं च स्त्रीशुल्कार्थे विसर्जिताः।
इमां दशरथस्य त्वं प्रतिमां किं न पृच्छसे ॥९॥

५९—देवकुलिक—ये दिलीप हैं, ये रघु हैं और ये अज हैं।

Devakulika—This is Dilipa; this is Raghu and this is Aja.

६०—भरत—मैं आप से कुछ पूछना चाहता हूँ। क्या यहाँ पर जीवितों की भी प्रतिमाएँ स्थापित हैं?

Bharata—I wish to ask you something. Are the statues of living persons also set up here?

६१—देवकुलिक—नहीं तो, केवल उन्हीं की जो दिवंगत हो चुके हैं।

Devakulika—Not at all ; only of those that have passed away.

६२—भरत—तो मैं आप से (जाने की) आज्ञा लेता हूँ।

Bharata—Then I take leave of you.

६३—अन्वय—येन स्त्रीशुल्कार्थे प्राणाः च राज्यं च विसर्जिताः, (तस्य) दशरथस्य इमां प्रतिमां त्वं किं न पृच्छसे ?

देवकुलिक—जरा रुकिये।

जिन्होंने स्त्री-शुल्क (स्त्री के देय धन) को पूर्ण करने के लिए अपने प्राण और राज्य को छोड़ दिया (त्याग कर दिया), उन दशरथ की प्रतिमा के विषय में आप क्यों नहीं कुछ पूछते ॥९॥

Devakulika—Stay.

Why do you not make any inquiry about this statue of Daśaratha, who has giveu up his life and kingdom for the dowry of his wife. (9)

Notes

६०—धरमाणानाम्—जीवतामपि। क्या जीवितों की भी मूर्तियाँ यहाँ हैं ! 'धृञ् धारणे' (१ उभयपदी) का यह रूप है। धृ+शानच्। धृ धातु का यहाँ पर अर्थ है जीवन धारण। साधारणतया दिवादिगणी 'धृङ् अवस्थाने' (४. आत्मनेपदी) का जीवन धारण अर्थ में प्रयोग आता है, पर उसका रूप 'ध्रियते' से ध्रियमाण होगा, 'धरमाण' नहीं। यह भ्वादि० 'धरते' से रूप है। माघ ने भी प्रयोग किया है।

ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत् कुतः सुखम्। शिशुपाल० २.३५

६१—अतिक्रान्तानामेव—मृतानामेव। दिवंगतों की ही। अति+क्रम्+क्त।

६२—(१) आपृच्छे०—मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। 'आ' उपसर्ग पहले होने पर पृच्छ् धातु से 'आङि नुप्रच्छ्योः' वार्तिक से आत्मनेपद होता है। यहाँ पर पूछने का अर्थ है बिदाई की आज्ञा लेना।

६३—(१) स्त्रीशुल्कार्थे—विवाह काले स्त्रियै देयतया प्रतिज्ञातं द्रव्यं स्त्रीशुल्कं तदर्थे। विवाह के अवसर पर स्त्री को देने के लिए जो प्रतिज्ञा की जाती है, उसे स्त्री-शुल्क (स्त्री को दहेज) कहते हैं। उस प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिये दशरथ ने अपने राज्य और प्राणों को छोड़ा। रामायण में आता है कि दशरथ ने कैकेयी को राज्य देने की प्रतिज्ञा की थी।

पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद् राज्यशुल्कमनुत्तमम्। अयोध्या० १०७. ३

(२) विसर्जिताः—त्यक्ताः। वि + सृज् + क्त। यहाँ पर 'विसर्जितम्' होना चाहिये, क्योंकि 'राज्यम्' नपुं० एक० बाद में है। बाद वाले के अनुसार लिंग वचन होता है। यहाँ पर 'प्राणाः' के अनुसार लिंग वचन हुआ है। 'राज्यम्' के साथ विसर्जितम् अन्वय होगा।

(३) पृच्छसे—जिज्ञास से। पूछते हो। यहाँ पर 'पृच्छसि' प्रयोग होना चाहिए, क्योंकि पृच्छ् धातु परस्मैपदी है। उसको 'आ' या 'सम्' उपसर्ग पहले होने पर आत्मनेपद होता है। व्याकरण की दृष्टि से 'पृच्छसि' और 'विसर्जितम्' ही पाठ श्लोक में होना चाहिये। छन्द की दृष्टि से भी दोनों पाठ ठीक हो जाते हैं, क्योंकि पादान्त वर्ण गुरु मान लिया जाता है।

६४—भरतः—हा तात! (मूर्छितः पतति। पुनः प्रत्यागत्य।)

हृदय! भव सकामं यत्कृते शङ्कसे त्वं
शृणु पितृनिधनं तद् गच्छ धैर्यं च तावत्।
स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्द-
स्त्वथ च भवति सत्यं तत्र देहो विशोध्यः ॥१०॥

आर्य!

६४—अन्वय—हृदय! सकामं भव, यत्कृते त्वं शङ्कसे तत् पितृनिधनं शृणु, धैर्यं च तावत् गच्छ। तु यदि अयं नीचः शुल्कशब्दः मां स्पृशति, अथ च सत्यं भवति, तत्र देहः विशोध्यः।

भरत—हा तात ! (मूर्छित होकर गिरता है । फिर सचेत होकर ।)

ऐ हृदय, अब तू कृतार्थ हो । जिसकी तू आशंका कर रहा था, उस पिता के निधन के समाचार को सुन और धैर्य धारण कर । किन्तु यदि इस अधम शुल्कशब्द का सम्बन्ध मुझसे है, और यदि यह (समाचार) सत्य सिद्ध होता है तो मुझे अपने शरीर की (अग्निपरीक्षा आदि द्वारा) शुद्धि करनी पड़ेगी ॥१०॥

आर्य,

Bharata—Alas, my father ! (Falls down in a swoon, but coming to consciousness again,

Heart, be you satisfied now, hear of the death of my father of which you had fears, but take courage. If this base talk about (the demand of) the promised marriage-gift has reference to me, and again it proves true then (in that case) my body will have to be purified by an ordeal (10)

Noble sir,

Notes

६४—(१) हा तात—भरत का यह कथन 'हा तात !' से लेकर 'विशोध्यः' श्लोक के अन्त तक 'स्वगत' समझना चाहिए और 'आर्य' 'प्रकाशम्' समझना चाहिये । यद्यपि ऐसा भास ने लिखा नहीं है, परन्तु लेखक का भाव ऐसा ही है ।

(२) प्रत्यागत्य—चेतनां लब्ध्वा । होश में आकर । प्रति+आ+गम्+ल्यप् । (३) हृदय—अपने हृदय को संबोधित करके यह श्लोक कहा गया है, अतः 'स्वगत' मानना उचित है । यहाँ अपने हृदय को भर्त्सना है । (४) सकामम्—पूर्णमनोरथं भव । पूर्णकामना वाला हो । कामेन मनोरथेन सहितं सकामम् । सहार्थक बहुव्रीहि । कालिदास की भी ऐसी उक्ति है—

भव हृदय साभिलाषम्० । शाकुन्तल. १.२३

(५) यत्कृते—यदर्थम् । जिसके लिए अर्थात् जिसकी तू शंका कर रहा था ।

(६) पितृनिधनम्—पितुः जनकस्य दशरथस्य निधनं मरणम् । तत्पुरुष । पिता दशरथ की मृत्यु को सुन ।

(७) स्पृशति—विषयं करोति । यदि शुल्क शब्द का किसी प्रकार भी मैं विषय होऊँ तो ।

(८) नीचः शुल्कशब्दः—दशरथ से कैकेयी ने दहेज रूप में जो यह माँग की थी, उसे भरत अधम कार्य समझता है । भरत के कथन का भाव यह है कि संभव है, प्रजा यह समझे कि केकयपुर जाने से पहले मैंने कैकेयी से ऐसा कहा (बहकाया) था कि तू मेरे लिये राज्य माँगना ।

(९) अथ—यहाँ पर 'अथ' 'यदि' के अर्थ में है ।

(१०) सत्यं भवति—'एतद् इति शेषः' । यदि यह सत्य है, अर्थात् जनता का मुझ पर यदि यही सन्देह है कि मैंने ही ऐसा किया है तो । तत्र = तर्हि, तो ।

(११) देहो विशोध्यः—शरीरम् अग्निधारणादिना निर्दोषतां प्रापयितव्यः । मुझे अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने के लिए अपने शरीर को अग्निप्रवेश आदि परीक्षाओं से शुद्ध करना होगा ।

(१२) यहाँ पर मालिनीछन्द है ।

६५—देवकुलिकः—आर्येति इक्ष्वाकुकुलालापः खल्वयम् । कच्चित् कैकेयीपुत्रो भरतो भवान् ननु ?

६६—भरतः—अथ किम्, अथ किम् । दशरथपुत्रो भरतोऽस्मि, न कैकेय्याः ।

६७—देवकुलिकः—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम् ।

६८—भरतः—तिष्ठ । शेषमभिधीयताम् ।

६९—देवकुलिकः—का गतिः । श्रूयताम् । उपरतस्तत्रभवान् दशरथः । सीतालक्ष्मणसहायस्य रामस्य वनगमनप्रयोजनं न जाने ।

७०—भरतः—कथं कथमार्योऽपि वनं गतः। (द्विगुणं मोहमुपगतः।)

७१—देवकुलिकः—कुमार ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

६५—देवकुलिक—'आर्य' कहकर संबोधित करना यह तो इक्ष्वाकुवंशियों की पद्धति है। क्या आप कैकेयी के पुत्र भरत तो नहीं हैं ?

Devakulika—'Noble sir' is indeed the way of addressing strangers peculiar to the Ikṣvāku race. Are you then Bharata, the son of Kaikeyī ?

६६—भरत—जी हाँ, जी हाँ। मैं दशरथ का पुत्र भरत हूँ, न कि कैकेयी का।

Bharata—Yes, yes. I am the son of Daśartha, not of Kaikeyī.

६७—देवकुलिक—अच्छा तो मुझे (जाने की) आज्ञा दीजिये।

Devakulika—If so, I take leave of you.

६८—भरत—रुकिये। शेष विवरण मुझे बताइये।

Bharata—Stay, tell me the remaining part of the story.

६९—देवकुलिक—क्या किया जाय ! (अच्छा तो) सुनिये। महाराज दिवंगत हो गये हैं। सीता और लक्ष्मण के साथ राम के वन जाने का कारण मुझे ज्ञात नहीं है।

Devakulika—What help ! Listen. The revered Dasaratha is dead But I do not know the reason of Rāma's departure to the forest, together with Sītā and Lakṣmana.

७०—भरत—क्या, क्या आर्य भी वन को चले गये ! (घोर मूर्च्छा को प्राप्त होता है।)

Bharata—How, how is it that my noble brother has gone to the forest ! (Doubly faints).

७१—देवकुलिक—कुमार, धैर्य रखिये, धैर्य रखिये।

Devakulika—Be composed, be composed, prince.

Notes

६५—(१) आर्येति—अपरिचित को 'आर्य' शब्द से सम्बोधित करना इक्ष्वाकुवंशियों की परम्परा है। 'आर्य' शब्द को सुनकर पुजारी ने भरत को पहचाना और अनुमान किया कि ये कैकेयी के पुत्र भरत हैं। भास ने इस प्रकार वक्तव्य या कार्य से व्यक्ति को पहचानने की नवीनता अपने नाटकों में रक्खी है। इसी प्रकार भरत ने सुमन्त्र को कार्य द्वारा पहचाना।

सर्वसमुदाचारसंनिकर्षस्तु मां सूचयति। कच्चित् तातसुमन्त्रो भवान् ननु। अंक ३ वक्तव्य सं० ८५।

(२) इक्ष्वाकु०—इक्ष्वाकुकुलस्य आलापः सगौरवम् आमन्त्रणम्। तत्पुरुष। इक्ष्वाकुवंशियों के सम्बोधन की पद्धति।

६६—(१) दशरथपुत्रः—दशरथस्य पुत्रः। तत्पुरुष। भरत अपने आप को कैकेयी का पुत्र नहीं कहना चाहते, अतएव 'न कैकेय्याः पुत्रः' न कहकर केवल 'न कैकेय्याः' ही कहते हैं।

६७—(१) आपृच्छे०—यहाँ पर पुजारी भरत से जाने की आज्ञा माँगता है, क्योंकि वह आगे भरत की बातों का उत्तर देना नहीं चाहता। वह अशुभ समाचार अपने मुख से नहीं कहना चाहता। अतएव आगे कहता है कि 'का गतिः' अर्थात् सारी बात बताने के अतिरिक्त मेरे पास और कोई गति (चारा) नहीं है।

६९—(१) उपरतः—मृतः। दिवंगत हो गये। उप + रम् + क्त।

(२) सीता०—सीतालक्ष्मणौ सहायौ यस्य सः, तस्य। बहुव्रीहि। सीता और लक्ष्मण जिसके साथ हैं, ऐसे राम के वन-गमन के कारण को नहीं जानता।

७२—भरतः—(समाश्वस्य)

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥११॥

आर्य ! विस्तरश्रवणं मे मनसः स्थैर्यमुत्पादयति तत् सर्वमनवशेषमभिधीयताम् ।

७३—देवकुलिकः—श्रूयताम् । तत्रभवता राज्ञाऽभिषिच्यमाने तत्रभवति रामे भवतो जनन्याभिहितं किल ।

७२—अन्वय—पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् अटवीभूताम् अयोध्यां पिपासार्तः क्षीणतोयां नदीम् इव अनुधावामि ।

भरत—(होश में आकर)

पिता और भाई (राम) से शून्य, (अब) वनरूप में प्रतीत होती हुई अयोध्या की ओर मैं उसी प्रकार शीघ्रतापूर्वक जा रहा हूँ, जिस प्रकार कोई प्यास से दुःखित व्यक्ति सूखी नदी की ओर दौड़ा जा रहा हो ॥११॥

आर्य, विस्तारपूर्वक सुनना मेरे मन को स्थिरता (शान्ति) प्रदान करेगा। अतः सारी बात पूरी-पूरी मुझे बताइए ।

Bharata—(Recovering).

I am hastening to reach Ayodhya reduced to a forest, being deserted by my father and brother, like a man oppressed by thirst running after a river with its water dried up. (11)

Noble one, a detailed narration will give composure to my mind. So tell me the whole, leaving out nothing.

७३—देवकुलिक—सुनिए । जब माननीय महाराज (दशरथ) राजकुमार राम का अभिषेक कर रहे थे तब सुना है आपकी माता ने कहा—

Devakulika—Listen. When prince Rāma was being installed on the throne by the revered king, your mother is reported to have said—

Notes

७२—(१) अटवीभूताम्—अटव्या समाम्, अरण्यतुल्याम् । वन के सदृश । 'भूत' शब्द के तीन अर्थ हैं—प्राणी, भूतकाल और सदृश । 'भूतं प्राण्यतीते समे त्रिषु' । इत्यमरः । अटवीभूता । सुप्सुपा से समास । यह 'च्वि'

प्रत्यय का भी रूप हो सकता है—न अटवी अटवीभूता इति अटवीभूताताम्। जो जंगल नहीं है, वह जंगल हो गया है, ऐसी वनतुल्य अयोध्या।

(२) वर्जिताम्—हीनाम्, परित्यक्ताम्। हीन, रहित। वृज्+क्त = वर्जित, (३) पिपासार्तः—पिपासया जलाभिलाषया आर्तः पीडितः। तत्पुरुष। प्यास से दुःखित। पिपासा—पा+सन्।

(४) क्षीणतोयाम्०—शुष्कजलां सरितम् इव। जिसका जल सूख गया है, ऐसी नदी के तुल्य। क्षीण—क्षी+क्त। त को न। राम का दर्शन भरत के लिए इसी प्रकार है, जिस प्रकार प्यासे को जल।

(५) यहाँ पर उपमा अलंकार है। दशरथ और राम से हीन अयोध्या, जल से रहित नदी के तुल्य है। अनुष्टुप् छन्द है।

(६) विस्तरश्रवणम्—विवरण-सहित सुनना। विस्तर—वि+स्तृ+अप् (अ)। इसका अर्थ होता है—शाब्दिक विस्तार, विस्तृत विवरण। वि+स्तृ+घञ् का रूप 'विस्तार' होता है। इसका अर्थ होता है—फैलाना, विस्तृत करना। विस्तार, विग्रह और व्यास ये तीनों पर्यायवाची शब्द हैं।

विस्तारो विग्रहो व्यासः स च शब्दस्य विस्तरः। इत्यमरः। इसी धातु का रूप 'विष्टर' भी बनता है। इसका अर्थ होता है—आसन, वृक्ष। 'वृक्षासनयो विष्टरः' (पा० ८.३.९३)

(७) स्थैर्यम्—स्थिरताम् शान्तिम्। शान्ति को। स्थिर+ष्यञ्। स्थिरस्य भावः। (८) अनवशेषम्—निःशेषम्। पूरा-पूरा। कुछ भी न छोड़ते हुए।

७४—भरतः—तिष्ठ।

तं स्मृत्वा शुल्कदोषं भवतु मम सुतो राजेत्यभिहितं
तद्धैर्येणाश्वसत्या व्रज सुत! वनमित्यार्योऽप्यभिहितः।
तं दृष्ट्वा बद्धचीरं निधनमसदृशं राजा ननु गतः
पात्यन्ते धिक्प्रलापा ननु मयि सदृशाः शेषाः प्रकृतिभिः॥१२॥

(मोहमुपगतः।)

७४—अन्वय—तं शुल्कदोषं स्मृत्वा मम सुतः राजा भवतु इति (तया) अभिहितम् । तद्धैर्येण आश्वसत्या सुत ! वनं व्रज इति आर्यः अपि अभिहितः । तं बद्धचीरं दृष्ट्वा राजा अवश्यं निधनं गतः ननु । प्रकृतिभिः शेषाः सदृशाः धिक्प्रलापाः मयि ननु पात्यन्ते ।

भरत—अच्छा, रुकिए,

उस घृणित विवाह-शुल्क का स्मरण करके उसने कहा होगा कि 'मेरा पुत्र राजा हो' । (अपनी माँग स्वीकृत हो जाने के कारण) उस विश्वास से प्रोत्साहित होकर उसने आर्य (राम) से भी कहा होगा कि—'पुत्र, वन में जाओ'। उनको वल्कलधारी देखकर राजा अवश्य ही असामयिक मृत्यु को प्राप्त हुए होंगे। प्रजावर्ग (माता कैकेयी के ऊपर डालने से) शेष बचे हुए एवं (कैकेयी के ऊपर डाले गए धिक्कारों के) सदृश ही धिक्कार अवश्यमेव मुझपर डाल रहे होंगे ।।१२।।

(मूर्छित हो जाता है)

Bhārata—You need nat proceed.

Having remembered that evil promise of the marriage gift she must have said—'Let my son be the king' ; encouraged by the confidence produced by that (her demand being granted), she must have said to my revered brother—'son, go to the forest' ; seeing him clad in barks the king must have surely met an ignoble death ; and verliy merited expressions of reproach are being cast on me by the subjects similar to and after what have temained of, those (cast on my mother). (12)

Notes

७४—(१) शुल्कदोषम्—दुष्टशुल्कम्, दोषपूर्णं शुल्कम् । भरत अपनी माता कैकेयी को दोष देते हैं कि उसकी मेरे लिए राज्य की माँग अनुचित और अन्यायपूर्ण थी । बड़े भाई राम को छोड़कर मेरे लिए राज्य माँगना अनुचित था ।

(२) तद्धैर्येण०—स्ववचनपूर्तिजन्यविश्वासेन आश्वसत्या सन्तोषं गतया। यहाँ पर धैर्य शब्द का अर्थ है विश्वास। राजा ने उसके कथन को मान लिया, इससे उसके हृदय में विश्वास का भाव दृढ़ हुआ। इसी विश्वास के आधार पर उसने राम को वन जाने के लिए कहा। आश्वसत्या—आ+श्वस्+शतृ+टाप् (तृतीया ए० व०)।

(३) बद्धचीरम्—वल्कलधारिणम्। वल्कलधारी देखकर।

(४) असदृशम्०—अनुचितम्, अननुरूपम्। अनुचित। राजा की मृत्यु वन में तपोमय जीवन बिताते हुए होनी चाहिए थी। राजा की घर पर मृत्यु अनुचित थी। अतएव आगे श्लोक १८ में कहा गया है—'नृपो गृह-मृत्युना०' यहाँ पर 'असदृश' का अर्थ असामयिक मृत्यु भी लिया जा सकता है।

(५) सदृशाः—जैसे कैकेयी पर धिक्कार पड़े हैं, वैसे ही धिक्कार।

(६) शेषाः—बचे हुए। कैकेयी पर पड़ने के बाद बचे हुए धिक्कार।

(७) प्रकृतिभिः—प्रजाभिः। यहाँ प्रकृति का अर्थ प्रजा है। पात्यन्ते—डाले जाते हैं।

(८) इस श्लोक में सुवदना छन्द है।

(नेपथ्ये)

७५—उत्सरतार्याः ! उत्सरत। (उस्सरह अय्या ! उस्सरह।)

७६—देवकुलिकः—(विलोक्य) अये,

काले खल्वागताः देव्यः पुत्रे मोहमुपागते।
हस्तस्पर्शो हि मातॄणामजलस्य जलाञ्जलिः ॥१३॥

(नेपथ्य में)

७५—आप लोग हट जाइए, हट जाइए।

(*Behind the curtain*).

Move away, gentlemen, move away.

७६—अन्वय—पुत्रे मोहम् उपागते देव्यः काले आगताः खलु । हि मातृणाम् हस्तस्पर्शः अजलस्य जलाञ्जलिः ।

देवकुलिक—(देखकर)

पुत्र के मूर्छित होने पर देवियाँ (माताएँ) बड़े समय से पहुँची हैं, क्योंकि माताओं के हस्त का स्पर्श जलार्थी (प्यासे) के लिए जलकी अञ्जलि के तुल्य है ॥१३॥

Devakulika—(Looking on)

The queens, indeed, have come at an opportune time when their son has fallen into a swoon, for the touch of the hand of mothers is just like the handful of water to one in want of water, (13).

Notes

७५१—उत्सरतार्याः—किसी विशेष व्यक्ति के इस प्रकार प्रवेश की विधि भास ने अपनाई है । 'आप लोग हटिए, हटिए' इस प्रकार कथन से ज्ञात होता है कि मार्ग साफ कीजिए, कोई विशिष्ट महानुभाव आ रहे हैं ।

७६– (१) काले—उचिते समये । उचित समय पर । बड़े अच्छे मौके से ।

(२) पुत्रे मोहम्०—पुत्रे भरते मूर्छिते सति । जब पुत्र भरत मूर्छित हो गए हैं, ऐसे समय पर । मोह—मुह + घञ् । उपागत—उप + आ + गम् + क्त ।

(३) हस्तस्पर्शः—हस्तकृतः स्पर्शः । हाथ के द्वारा किया हुआ स्पर्श । स्पर्शः—स्पृश + घञ् ।

(४) अजलस्य—जलार्थिनः । जिसको जल की आवश्यकता है, उसके लिए । जिसके पास पानी नहीं है, परन्तु पानी की आवश्यकता जिसको है ।

(५) जलाञ्जलिः—जिस प्रकार जल की अंजलि प्यासे को तृप्त कर देती है, उसी प्रकार माताओं के हाथ के द्वारा किया गया स्पर्श मनुष्य को जीवन-शक्ति प्रदान करता है । मूर्छित को होश में लाने के लिए जल की आवश्यकता

होती है, अतः यहाँ पर जल की उपमा उचित है। भवभूति ने भी इसी प्रकार कहा है—

प्रियस्पर्शो हि पाणिस्ते तत्रैव नियतो भरः।

उत्तररामचरित १.१०.

(६) अनुष्टुप् छन्द है।

(ततः प्रविशन्ति देव्यः सुमन्त्रश्च)

७७—सुमन्त्रः—इत इतो भवत्यः।

इदं गृहं तत् प्रतिमानृपस्य नः, समुच्छ्रयो यस्य स हर्म्यदुर्लभः।
अयन्त्रितैरप्रतिहारिकागतैर्विना प्रणामं पथिकैरुपास्यते ॥१४॥

(प्रविश्यावलोक्य) भवत्यः! न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम्।

अयं हि पतितः कोऽपि वयस्स्थ इव पार्थिवः।

७८—देवकुलिकः—

परशङ्कामलं कर्तुं गृह्यतां भरतो ह्ययम् ॥१५॥

(निष्क्रांतः।)

७७—अन्वय—नः प्रतिमानृपस्य इदं तत् गृहम्, यस्य सः समुच्छ्रयः हर्म्यदुर्लभः। अयन्त्रितैः पथिकैः प्रणामं विना उपास्यते ॥

(तदनन्तर रानियों और सुमन्त्र का प्रवेश)

सुमन्त्र—आप लोग इधर से आइए, इधर से।

हमारे प्रतिमारूप में विद्यमान महाराज (दशरथ) का यह वह गृह (प्रतिमागृह) है, जिसकी असाधारण ऊँचाई राजभवनों में भी प्राप्त होनी कठिन है। यहाँ पर बिना नियन्त्रण के और द्वारपाल की आज्ञा लिए बिना ही अन्दर आए हुए यात्रियों के द्वारा बिना प्रणाम किए ही उपासना की जाती है ॥१४॥

(प्रविष्ट होकर और देखकर) माताएँ, आप लोग अन्दर न आवें, अन्दर न आवें।

क्योंकि, यहाँ (भूमि पर) यह कोई पड़ा हुआ है । जैसे युवक-शरीर-धारी महाराज ही हों ।

(Then enter the queens and Sumantra)

Sumantra—This way, madams, this way.

This is that house of our king now existing as a statue, possessing height scarcely to be found in a royal mansion ; it is visited without a salutation by travellers unrestrained and enteting without being announced by doorkeepers (14)

(Entering and seeing) Madams, you should not, indeed. enter. you should not.

For, here has fallen (on the ground) some one resembling the king when in his youth.

७८—देवकुलिक—

आप लोग दूसरे की आशंका मत कीजिए। ये भरत हैं, इन्हें उठाइए ॥१५॥

(*जाता है।*)

Devakulika—Enough of yonr taking him for a stranger ; lift him up ; for he is Bharata (15)

Exit.

Notes

७७—(१) सुमन्त्रः—महारानियों के साथ सुमन्त्र का प्रवेश। सुमन्त्र महाराज दशरथ का सारथि था। वही महारानियों के साथ आया है। श्री परांजपे का कथन है कि यह सुमन्त्र संभवत: मन्त्रियों में से एक मन्त्री है, उसी का यहाँ पर निर्देश है। परन्तु उनका यह अनुमान उचित प्रतीत नहीं होता है।

(१) यदि वह मन्त्री सुमन्त्र होता तो रानियों के साथ न आता, और यदि वह साथ आता भी तो रानियों के साथ इतने घनिष्ठ रूप से मिश्रित नहीं हो सकता था। आगे वक्तव्य सं० ८५ से ज्ञात होता है कि वह रानियों के प्रत्येक कार्य में सेवाभाव से उपस्थित रहता है। (२) भरत उसे 'तात'

शब्द से (वक्तव्य सं० ८५) 'तात सुमन्त्रो भवान्ननु' संबोधित करते हैं, जैसा कि चतुर्थ अंक (वक्तव्य सं० १०) में 'भोस्तात' यह सम्बोधन सारथि सुमन्त्र के लिए करते हैं। अतः दोनों सुमन्त्र सारथि सुमन्त्र ही समझने चाहिए।

(२) इदं गृहम्—इदं प्रतिमागृहम्। यहाँ पर गृह शब्द 'प्रतिमागृह' के लिए प्रयुक्त हुआ है।

(३) प्रतिमानृपस्य—प्रतिमारूपो नृपः प्रतिमानृपः, तस्य। प्रतिमा (मूर्ति) रूप में अवशिष्ट राजा दशरथ का। यहाँ पर नृप शब्द राजा दशरथ के लिए है।

(४) यस्य समुच्छ्रयः—यस्य औन्नत्यम्। जिसकी ऊँचाई। यहाँ भाव यह है कि प्रतिमागृह इतना ऊँचा था कि साधारण व्यक्ति का भी ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हो जाता था। सम् + उत् + श्रि + अच् समुच्छ्रयः।

(५) हर्म्यदुर्लभः—हर्म्ये प्रासादे दुर्लभः दुष्प्रापः। महलों में भी उतनी ऊँचाई दुर्लभ है। बड़े-बड़े महल भी इतने ऊँचे नहीं थे, जितना वह प्रतिमागृह ऊँचा था। दुर्लभ—दुर् + लभ् + खल् (अ)।

(६) अयन्त्रितैः—अनिषिद्धैः। बिना रोकटोक के। राजभवनों में प्रवेश नियंत्रित होता है। यहाँ पर किसी प्रकार की कोई रोक नहीं है। यन्त्रित—यन्त्र् + क्त।

(७) अप्रतिहारिकागतैः—प्रतिहारिकानिर्देशं विनैव आगतैः प्रविष्टैः। तत्पुरुष। प्रतिहारी (द्वारपालिका) के निर्देश के बिना ही प्रविष्ट। यहाँ पर राजभवन से अन्तर यह है कि राजभवन में पहले प्रतिहारी जाकर राजा को किसी के आगमन की सूचना देती है और राजा की आज्ञा प्राप्त होने पर कोई अन्दर जा सकता है, परन्तु यहाँ ऐसा कोई विधान नहीं है।

(८) विना प्रणामम्—ये मूर्तियाँ दिवंगत मनुष्यों की थीं, देवताओं की नहीं, अतः उन्हें प्रणाम नहीं किया जाता था।

(९) इस श्लोक में 'वंशस्थ' छन्द है। उसका लक्षण—

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।

(१०) कोऽपि—सुमन्त्र भरत को पहचान न सका, अतः उसने कहा कि कोई पड़ा हुआ है। पतितः—पत् + क्त। गिरा हुआ।

(११) वयस्थ इव०—तरुणः । वयस्थ शब्द का अर्थ है युवक ।
वयस्थस्तरुणो युवा । इत्यमरः ।

वयसि तरुणे स्थितः—वयस्थः । युवावस्था में विद्यमान । भरत दशरथ से इतने अधिक मिलते थे कि सुमन्त्र को ऐसा ज्ञात हुआ मानों युवावस्था में दशरथ हों । यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

७८—(१) परशङ्काम्०—परोऽयमिति शंका न कर्तव्या । यह कोई अन्य व्यक्ति है, ऐसी शंका न करें, ये भरत ही हैं ।

(२) गृह्यताम्—उत्थाप्यताम् । इनको उठाओ, सँभालो । (३) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ।

७९—देव्यः (सहसोपगम्य) हा जात ! भरत ! (हा जाद ! भरद ?)

८०—भरतः—(किञ्चित् समाश्वस्य) आर्य ?

८१—सुमन्त्रः—जयतु महा—(इत्यर्धोक्ते सविषादम् ।) अहो स्वरसादृश्यम् । मन्ये प्रतिमास्थो महाराजो व्याहरतीति ।

८२—भरतः—अथ मातृणामिदानीं काऽवस्था ।

८३—देव्यः—जात ? एषा नोऽवस्था । (जाद ? एसा णो अवस्था ।) (अवगुण्ठनमपनयन्ति ।)

८४—सुमन्त्रः—भवत्यः ! निगृह्यतामुत्कण्ठा ।

८५—भरतः—(सुमन्त्रं विलोक्य ।) सर्वसमुदाचारसन्निकर्षस्तु मां सूचयति । कच्चित् तात ! सुमन्त्रो भवान् ननु ?

७९—रानियाँ—(सहसा समीप जाकर) हा पुत्र भरत ।

The queens—(Advancing in haste). Ah, child Bharata.

८०—भरत—(कुछ होश में आकर) आर्य,

Bharata—(Recovering a little) Noble one,

८१—सुमन्त्र—जय हो महा—(इतनी आधी बात कहकर खेदपूर्वक) अहा, कितना स्वर-सादृश्य है। मैं समझता था कि प्रतिमा में विद्यमान महाराज ही बोल रहे थे।

Sumantra—Victory to the great—(with this half uttered, sorrowfully.) Oh ! how great is the similarity of sound ? I thought the great king in the statue was speaking.

८२—भरत—अब माताओं की क्या अवस्था है ?

Bharata—Now what is the condition of my mother ?

८३—रानियाँ—पुत्र, यह है हमारी अवस्था। (घूँघट हटाती हैं)

The gueens—Son,this is our condition. (They remove their veils.

८४—सुमन्त्र—देवियो, आप अपने दुःख को रोकिये।

Sumantra—Madams,check your sorrow.

८५—भरत—(सुमन्त्र को देखकर) आप का सारे शिष्टाचार के कार्यों में (रानियों के) साथ रहना मुझे सूचित करता है कि तात, आप सुमन्त्र ही तो नहीं हैं ?

Bharata—(Looking at Sumantra,) your presence (with the queens) on all occasions of decorum suggests to me—Revered one,I hope you are Sumantra. Is it not so.

Notes

८०—(१) आर्य०—भरत ने यह 'आर्य' शब्द देवकुलिक को सम्बोधन करते हुए कहा है। भरत मूर्छित थे। उन्हें पुजारी का जाना और माताओं आदि का आना अज्ञात है। वे देवकुलिक से प्रश्न पूछना चाहते हैं। भरत के मुँह से 'आर्य' शब्द सुनते ही सुमन्त्र को ऐसा भान हुआ मानों दशरथ बोल उठे हैं, अतः वह कहना चाहता था—जय हो महाराज की ! परन्तु अपनी त्रुटि तुरन्त समझ कर उसने कहा कि क्या ही भरत का स्वर दशरथ के स्वर के समान है। भरत का प्रश्न—'माताओं की क्या अवस्था है' यह देवकुलिक से था, परन्तु भास ने अपनी नाटकीय बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करते हुए

इस प्रश्न का उत्तर माताओं से ही दिलाया है। वे घूँघट हटा कर अपनी दयनीय आकृति दिखाती हैं। अतः दृश्य अत्यन्त करुणापूर्ण हो जाता है।

८४—उत्कण्ठा—मानसिक खिन्नावस्था। मल्लिनाथ ने मेघदूत (श्लोक ४८) में उत्कण्ठा का भाव स्पष्ट करते हुए श्लोक उद्धृत किया है कि—

रागे, त्वलब्धविषये वेदना महती तु या।
संशोषणी च गात्राणां तामुत्कंठां विदुर्बुधाः॥

८५—(१) सर्वसमुदाचार०—इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(१) सर्वस्मिन् समुदाचारे शिष्टाचारयुते कर्मणि सन्निकर्षः सामीप्यम्। तत्पुरुष। प्रत्येक शिष्टाचार से युक्त कार्य में रानियों के समीप रहना। अतिविश्वस्त वृद्ध सेवक आदि के अतिरिक्त और कोई सर्वदा रानियों के साथ नहीं रह सकता, अतः ज्ञात होता है कि आप तात सुमन्त्र हैं। सुमन्त्र के सामने घूँघट का हटाना और सुमन्त्र का उनको धैर्य धारण के लिये कहना विश्वास का सूचक है। (२) सर्वो गः समुदाचारः आप्तजनोचिताचारः, तस्य सन्निकर्षः उपस्थितिः। पूर्ण शिष्टाचार के साथ रानियों के साथ उपस्थित रहना। समुदाचार का अर्थ है 'शिष्टाचार' जैसे देवसमुदाचार, अतिथिसमुदाचार। समुदाचार—सम् + उत् + आ + चर् + घञ्।

८६—सुमन्त्रः—कुमार ! अथ किम्। सुमन्त्रोऽस्मि।
अन्वास्यमानश्चिरजीवदोषैः
कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः।
अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने
जीवामि शून्यस्य रथस्य सूतः॥१६॥

८६—अन्वय—चिरजीवदोषैः अन्वास्यमानः कृतघ्नभावेन विडम्ब्यमानः, अहं हि तस्मिन् नृपतौ विपन्ने शून्यस्य रथस्य सूतः जीवामि।

सुमन्त्र—कुमार, हाँ मैं सुमन्त्र (ही) हूँ।

दीर्घ-जीवन के दोषों से अनुगम्यमान (युक्त), कृतघ्नता के कारण उपहास को प्राप्त, मैं उस महाराज (दशरथ) के दिवंगत होने पर भी सूने रथ का सारथि (अभी तक) जीवित हूँ ॥१६॥

Sumantra—Prince, yes, I am Sumantra.

Chased by the evils of long life, mocked by ingratitude, I, the charioteer of an empty chariot, am (still) living, although the king is dead. (16)

Notes

८६—(१) अन्वास्यमानः—अनुगम्यमानः। अनुगमन किया जाता हुआ, युक्त। अनु + आस् + यक् (य) + शानच्।

(२) चिरजीवदोषैः—चिरजीवः चिरकालजीवनं तस्य दोषैः दूषणैः। तत्पुरुष। चिरकाल तक जीवित रहने के दोषों से युक्त, अर्थात् वृद्धावस्था के कारण वृद्धजनसुलभ दोष भी मेरे अन्दर आ गए हैं।

(३) कृतघ्नभावेन—कृतघ्नतया। कृतघ्नता के द्वारा। सुमन्त्र के कहने का भाव यह है कि सच्चे सेवक को अपने स्वामी के साथ ही जीवन दे देना चाहिए। मैं अपने स्वामी दशरथ के मरने के बाद भी जीवित हूँ, यह मेरी कृतघ्नता है। अतएव मैं उपहासास्पद हो गया हूँ।

(४) विडम्ब्यमानः—उपहस्यमानः। हँसी किया जा रहा हूँ। सब मुझ पर हँसते हैं। वि + डम्ब् + यक् (य) + शानच्। (५) नृपतौ—राजनि। नृणां मनुष्याणां पतिः नृपतिः। तत्पुरुष। (६) विपन्ने—उपरते। दिवंगत होने पर। विपन्ने—वि + पद् + क्त। 'रदाभ्यां निष्ठातो॰' से द् और त दोनों को न।

(७) शून्यस्य—रिक्तस्य। खाली, सूने।

(८) यहाँ पर 'निर्वेद' संचारीभाव है। सुमन्त्र की इस उक्ति से बहुत अधिक मिलता हुआ एक श्लोक 'प्रियदर्शिका' में कंचुकी का कथन है कि—

राज्ञो विपद् बन्धुवियोगदुःखं देशच्युतिर्दुर्गममार्गखेदः।
आस्वाद्यतेऽस्याः कटुनिष्फलायाः फलं मयैतच्चिरजीवितायाः॥

(प्रियदर्शिका १.४)

(६) इस श्लोक में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से उपजाति छन्द है ।

८७—भरतः—हा तात ! (उत्थाय) तात ! अभिवादनक्रममुपदेष्टुमिच्छामि मातॄणाम् ।

८८—सुमन्त्रः—बाढम् । इयं तत्रभवतो रामस्य जननी देवी कौसल्या ।

८९—भरतः—अम्ब ! अनपराद्धोऽहमभिवादये ।

९०—कौसल्या—जात ! निःसन्तापो भव । (जाद ! णिस्सन्दावो होहि ।)

९१—भरतः—(आत्मगतम् ।) आक्रुष्ट इवास्म्यनेन । (प्रकाशम् ।) अनुगृहीतोऽस्मि । ततस्ततः ।

९२—सुमन्त्रः—इयं तत्रभवतो लक्ष्मणस्य जननी देवी सुमित्रा ।

९३—भरतः—अम्ब ! लक्ष्मणेनातिसंधितोऽहमभिवादये ।

८७—भरत—हा तात ! (उठकर) तात, मैं चाहता हूँ कि आप मुझे बतावें कि माताओं को किस क्रम से अभिवादन करूँ ।

Bharata—Alas, father ! (Rising) Father, I wish to be advised as rsgards the order of bowing to my mothers.

८८—सुमन्त्र—बहुत अच्छा । ये हैं राजकुमार राम की माता देवी कौसल्या ।

Sumantra—Excellent. This is queen Kausalyā, the mother of prince Rāma.

८९—भरत—माता, निरपराध मैं आप को प्रणाम करता हूँ ।

Bharata—Mother, I, who an innoeent, bow to you

९०—कौसल्या—पुत्र, तुम सन्ताप-रहित होओ ।

Kausalyā—Child, be free from mental affliction.

६१—भरत—(स्वगत) इस (वचन) से ऐसा ज्ञात होता है मानों मुझे ताना (उपालम्भ) दिया गया है। (प्रकट) मैं आपका अनुगृहीत हूँ। तदनन्तर ?

Bharata—(To himself) It seems, I have been taunted by her with these words. (Loudly) I am obliged. Now and next ?

६२—सुमन्त्र—ये हैं राजकुमार लक्ष्मण की माता देवी सुमित्रा।

Sumantra—This is the mother of the respectable Lakṣmaṇa, queen Sumitrā.

६३—भरत—माता, लक्ष्मण के द्वारा (राम की सेवा का सारा श्रेय ले लेने के कारण) वंचित मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

Bharata—Mother I, Who was deceived by Lakṣmaṇa, salute you.

Notes

८७—(१) उपदेष्टुमिच्छामि—यह वाक्य व्याकरण की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है। भरत के कथन का भाव है कि माताओं को किस क्रम से अभिवादन करूँ, यह मुझे बताओ। अतः यहाँ पर वाक्य होना चाहिये—'अभिवादनक्रमं भवता उपदिष्टं श्रोतुम् इच्छामि।' मूल पाठ का शब्दार्थ होता है—'माताओं के अभिवादन का क्रम तुमको बताना चाहता हूँ'। यह कुछ आश्चर्य की बात है कि भरत अपनी माताओं को नहीं पहचान सके।

८८—अनपराद्धः—निरपराधः। निरपराध हूँ। अपराद्धः—अप+राध+क्त। भरत के कथन का भाव है कि कैकेयी ने जो कुछ भी किया है, उसमें मेरा कुछ हाथ नहीं है, अतः निरपराध हूँ।

९०—निःसन्तापः—मानसिक क्लेश रहित होओ।

९१—आक्रुष्टः—निन्दितः। अनेन आशीर्वचनेन निन्दित इवास्मि। इस आशीर्वाद के द्वारा मानों मुझे ताना दिया है या मेरी निन्दा की है। आ+क्रुश्+क्त।

९३—अतिसन्धित:—वञ्चितः। लक्ष्मण ने राम की सेवा का पूरा श्रेय लेकर, मुझे सेवा का अवसर न देकर धोखा दिया है। अतिसन्धा का अर्थ है वञ्चना (ठगना)। अतिसन्धा + इतच्। अति + सम् + धा + क्त प्रत्यय का रूप 'अतिसंहित' होगा, क्योंकि 'धा' को 'हि' हो जाएगा।

९४—सुमित्रा—जात! यशोभागी भव। (जाद! जसोभाई होहि।)

९५—भरतः—अम्ब! इदं प्रयतिष्ये। अनुगृहीतोऽस्मि। ततस्ततः।

९६—सुमन्त्रः—इयं ते जननी।

९७—भरतः—(सरोषमुत्थाय।) आः पापे!

मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शोभसे।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव निवेशिता ॥१७॥

९८—कैकेयी—जात! किं मया कृतम्? (जाद! किं मए किदं?)

९४—सुमित्रा—पुत्र, यशस्वी होओ।

Sumitrā—Son, be endowed with reputation.

९५—भरत—माता, मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा। मैं अनुगृहीत हूँ। इसके बाद!

Bharata—Mother. I shall strive to do so. I am obliged. Now next.

९६—सुमन्त्र—ये हैं आपकी माता।

Sumantra—This is your mother.

९७—अन्वय—मम मातुः च मातुः च मध्यस्था त्वं न शोभसे। गंगायमुनयोः मध्ये निवेशिता कुनदी इव।

भरत—(क्रोध में भरे हुए उठकर) आह, पापिनी, मेरी माता (कौसल्या) और माता (सुमित्रा) के बीच में विद्यमान तुम इसी प्रकार शोभित नहीं होती हो, जैसे गंगा और यमुना के बीच में प्रवेशित (रक्खी हुई) कोई तुच्छ नदी ॥१७॥

Bharata—(Rising up in anger.) Ah, wicked woman, you do not appear well standing between my mother (Kausalyā) and mother (Sumitrā), like a polluted river let in between the Ganga and the Yamnā. (17)

६८—कैकेयी—पुत्र, मैंने क्या किया ?

Kaikeyī—Son, what have I done ?

Notes

९४—(१) यशोभागी—यशःपात्रम् । यश के पात्र । यशसः भागी पात्रम् । तत्पुरुष । भागी —भज् + घञ् = भाग + इनि = भागिन् ।

९५—इदं प्रयतिष्ये—प्रयत्न करूँगा कि यशस्वी बनूँ अर्थात् राज्य का परित्याग करके राम का अनुगमन करने के द्वारा मैं भी यशस्वी होने का प्रयत्न करूँगा ।

९६—(१) सरोषमुत्थाय—कैकेयी का निर्देश आते ही वह क्रोध में आकर उठकर खड़ा हो गया ।

(२) पापे—पापिनि । ऐ पापिनी ! 'पापम्' पाप शब्द नपुंसकलिंग होता है, तो उसका अर्थ होता है पाप, कुकृत्य । परन्तु जब 'पापः' या 'पापी' पुंलिंग या स्त्रीलिंग होता है तो उसका अर्थ होता है—पाप करने वाला पुरुष या पापकर्त्री स्त्री ।

(३) मातुश्च —प्रथम 'माता' शब्द से कौसल्या का निर्देश है और द्वितीय से सुमित्रा का । भरत कौसल्या और सुमित्रा को अपनी माता मान रहा है और कैकेयी को कुमाता ।

(४) गंगायमुनयोः—गंगा च यमुना च गंगायमुने, तयोः । द्वन्द्व । गंगा और यमुना के बीच में आई हुई तुच्छ नदी के तुल्य तुम हो । जिस प्रकार तुच्छ नदी का जल अपेय होता है, उसी प्रकार तुम्हारे भाव बहुत घृणित हैं ।

(५) यहाँ पर अनुष्टुप् छन्द है।

९८—(१) किं मया०—अर्थात् मैंने कुछ नहीं किया है। मैं निरपराध हूँ।

९९—भरतः—किं कृतमिति वदसि ?

वयमयशसा, चीरेणार्यो, नृपो गृहमृत्युना,
प्रततरुदितैः कृत्स्नाऽयोध्या, मृगैः सह लक्ष्मणः।
दयिततनयाः शोकेनाम्बाः, स्नुषाऽध्वपरिश्रमै-
र्धिगिति वचसा चोग्रेऽणात्मा त्वया ननु योजितः ॥१८॥

९९—अन्वय—वयम् अयशसा योजिताः, आर्यः चीरेण (योजितः), नृपः गृहमृत्युना (योजितः), कृत्स्ना अयोध्या प्रततरुदितैः (योजिता), लक्ष्मणः मृगैः सह (योजितः), दयिततनयाः अम्बाः शोकेन (योजिताः), स्नुषा अध्वपरिश्रमैः (योजिता), त्वया आत्मा च उग्रेण धिक् इति वचसा ननु (योजितः) ।

भरत—कहती हो क्या किया ?

तुमने (इनमें से प्रत्येक को इन चीजों से) युक्त कर दिया है—मुझको अयश से, आर्य (राम) को वल्कल से, नृप (दशरथ) को घर पर मृत्यु से, सम्पूर्ण अयोध्या को निरन्तर रोदन से, लक्ष्मण को मृगों से, पुत्रवत्सल माताओं को शोक से, पुत्रवधू को मार्ग के परिश्रम से और आप को घोर धिक्कार के वचनों से (युक्त किया है) ॥१८॥

Bharata—You say—what have I done ?

Why, you have joined (with each other the following) me with infamy, noble brother (Rāma) with barkgarments, the king (Daśaratha) with death in the house, the whole of Ayodhyā with continued weepings, Lakṣmaṇa with the deer, the mothers, who loved their sons, with sorrow, your daughter-in-law with the fatigue of journey, and yourself with the fierce condemnation 'Oh fie'. (18)

Notes

९९—(१) वयमयशसा०—कैकेयी के दोषों का परिगणन करते हुए इस श्लोक में आठ दोषों का उल्लेख किया गया है। कैकेयी का यह कथन कि—'मैंने क्या किया है ?' उसका यह भरत द्वारा उत्तर है।

(२) योजिताः—श्लोक के आठों वाक्यों के साथ 'योजिताः' का ही सम्बन्ध है, अतः वाक्य के अनुसार लिंग और वचन का परिवर्तन हो जायगा, जैसा कि ऊपर 'अन्वय' में दिया गया है—वयं योजिताः, आर्यः योजितः, अयोध्या योजिता, इत्यादि।

(३) अयशसा—अकीर्त्या। जनता को मुझपर सन्देह है कि मैं मामा के घर जाते समय तुम्हें अपने लिए राज्य माँगने को कह गया था।

(४) गृहमृत्युना—गृहे मृत्युना। दशरथ का देहावसान नियमानुसार वन में वानप्रस्थ के रूप में न होकर घर में हुआ। यह कुल के लिये कलंक की बात है।

(५) प्रततरुदितैः—प्रततैः अनवरतैः रुदितैः। निरन्तर रोना। रुदित—रुद् + क्त।

(६) मृगैः सह०—लक्ष्मण को वन में मृगों का सहवासी बना दिया।

(७) दयिततनयाः—दयितः प्रियः तनयः पुत्रः यस्याः ताः। बहुव्रीहि। पुत्र-वत्सला माताएँ। यहाँ पर बहुवचन आदर अर्थ में है। 'अम्बा' शब्द से कौसल्या और सुमित्रा का निर्देश है।

(८) स्नुषाऽध्व०—स्नुषा पुत्रवधूः सीता, वनमार्गसंचरणखेदैः। स्नुषा अर्थात् पुत्रवधू सीता वन के मार्ग में चलने के परिश्रम से युक्त हुई है।

(९) धिगिति०—प्रत्येक व्यक्ति तुम्हें धिक्कार रहा है।

(१०) उग्रेण वचसा—मर्मभेदिना वचनेन। मर्मभेदी वचन से।

(११) आत्मा—अपने आप को। देखें पूर्वोक्त 'पात्यन्ते धिक्प्रलापाः' (३.७४)

(१२) इस श्लोक में हरिणी छन्द है। उसका लक्षण है।

नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।

(१३) इस श्लोक में तुल्ययोगिता अलंकार है। प्रस्तुत पदार्थों का एक क्रिया से सम्बन्ध है।

(१४) इस श्लोक का महावीरचरित के निम्नलिखित श्लोक से बहुत अधिक साम्य है।

पतिर्मृत्योर्वक्त्रं व्रजति वनमेतत् सुतयुगं
वधूटी रक्षोभ्यो बलिरिव वराकी प्रणिहिता।
निरालम्बो लोकः कुलमयशसानः परिवृतं
स्वसुर्मे दौरात्म्यं जगदविकलं विक्लवयति ॥ (४.५२)

१००—कौसल्या—जात ! सर्वसमुदाचारमध्यस्थः किं न वन्दसे मातरम् ? (जाद ! सव्वसमुदाआरमज्झत्थो किं ण वंदसि मादरं ?)

१०१—भरतः—मातरमिति। अम्ब ! त्वमेव मे माता। अम्ब ! अभिवादये।

१०२—कौसल्या—नहि नहि। इयं ते जननी। (णहि णहि। इअं दे जणणी।)

१०३—भरतः—आसीत् पुरा। न त्विदानीम्। पश्यतु भवती,

त्यक्त्वा स्नेहं शीलसङ्क्रान्तदोषैः
पुत्रास्तावन्नन्वपुत्राः क्रियन्ते।
लोकेऽपूर्वं स्थापयाम्येष धर्मं
भर्तृद्रोहादस्तु माताऽप्यमाता ॥१९॥

१००—कौसल्या—पुत्र, सारे शिष्टाचारों के पालन करने वाले तुम अपनी माता को प्रणाम क्यों नहीं करते हो ?

Kausalyā—Son, why do you, who observe all the rules of propriety not salute your mother ?

१०१—भरत—आप कहती हैं—अपनी माता को। माता, तुम्हीं मेरी माता हो। माता, आपको प्रणाम।

Bharata—To my mother you say, Mother. you alone are my mother. I salute you.

१०२—कौसल्या—नहीं नहीं, तुम्हारी वास्तविक जननी (उत्पन्नकर्त्री) ये हैं।

Kausalyā—No no, not that. Here is your natural mother.

१०३—अन्वय—ननु शीलसङ्क्रान्तदोषैः स्नेहं त्यक्त्वा पुत्राः तावत् अपुत्राः क्रियन्ते। एष: (अहम्) भर्तृद्रोहात् माता अपि अमाता अस्तु (इति) लोके अपूर्वं धर्मं स्थापयामि।

भरत—पहले थीं, अब नहीं हैं। आप देखें—

क्योंकि इसने (कैकेयी ने) अपने स्वभाव के कारण आए हुए दोषों से स्नेह को छोड़कर पुत्रों को भी अपुत्रवत् (पराया सा) कर दिया है, अतएव मैं संसार में एक अपूर्व धर्म (मर्यादा या विधि) की स्थापना करने जा रहा हूँ कि पति के (मरणकारी) द्रोह के कारण माता भी माता नहीं रह जाती (अर्थात् उसके साथ अमातृवत् व्यवहार करना चाहिये) ॥१९॥

Bharata—She was before, but not now. For you can see.

Having renounced (all) affection, she has treated her sons, as if they were no sons of hers, in consequence of (some) evil sentiments creeping into her temperament. I am, therefore, going to establish a new doctrine in this world, that even a mother on account of her hatred (causing the death) of her husband should be treated as no mother (19)

Notes

१००—सर्वसमुदाचार०—सर्वो यः समुदाचारः शिष्टाचारः तस्य मध्यस्थः पालकः। तत्पुरुष। सम्पूर्ण शिष्टाचार के नियमों के पालक। मध्यस्थ' शब्द का अर्थ है बीच में रहने वाला, निर्णायक। यहाँ पर इसका प्रयोग ज्ञाता, पालक या आदर्शरूप अर्थ में हुआ है। तुम सारे शिष्टाचारों के आदर्शरूप हो. अतः अपनी माता को प्रणाम करो।

१०१—त्वमेव०—भरत कैकेयी को माता कहना अस्वीकार करते हुए कौसल्या से कहते हैं कि तुम ही मेरी माता हो।

१०२ -(१) इयं ते जननी—कौसल्या ने जान बूझकर माता और जननी शब्दों के मौलिक अर्थ के अन्तर को ध्यान में रखकर 'इयं ते माता' न कहकर 'इयं ते जननी' कहा है। माता—मान्यते पूज्यते इति माता। 'मान् पूजायाम् (१०. उभयपदी) से तृच् प्रत्यय और न् का लोप। मान्+तृच् (तृ)। पूजा के योग्य, पूजनीय। इस अर्थ में भरत का कौसल्या को माता अर्थात् पूजनीय कहना उपयुक्त है, परन्तु कौसल्या ने 'जननी' कहकर यह निर्देश किया कि जनयित्री (जन्म देने वाली) तो कैकेयी ही है। जननी —जन्+ल्युट् (अन)+ङीप् (ई)।

१०३—(१) शीलसङ्क्रान्त०—शीलं स्वभावः तेन सङ्क्रान्तैः प्रविष्टैः दोषैः दुर्गुणैः। तत्पुरुष। स्वभाव के कारण अपने अन्दर आये हुए दोषों से। यह कथन कैकेयी के लिये है। 'शील' शब्द अपने स्वभाव या अपने भृत्यादि के स्वभाव का बोधक हो सकता है। सङ्क्रान्त—सन्+क्रम्+क्त। दोष—दुष्+घञ्।

(२) अपुत्राः०—अपने स्वभाव-दोष के कारण माता अपने पुत्रों से प्रेम करना छोड़ देती हैं और उसको अपुत्रवत् अर्थात् पराया सा समझ कर व्यवहार करती हैं। कैकेयी ने इसी प्रकार मेरे साथ पराया सा व्यवहार किया है। यदि मुझे पुत्र समझती तो इस प्रकार का कलङ्क मेरे सिर न आने देती।

(३)—अपूर्वं धर्मम्०—यहाँ पर अपूर्व का अर्थ है जो कि अब तक प्रचलित नहीं था। धर्म शब्द यहाँ पर मर्यादा, विधि या परम्परा अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यहाँ पर धर्म से सम्प्रदाय आदि की स्थापना का भाव नहीं है।

(४) भर्तृद्रोहात्०—भर्तुः द्रोहः तस्मात्। तत्पुरुष। पति से द्वेष करने के कारण जब कोई स्त्री अपने पति से इस प्रकार का द्रोह करती है कि वह उसके जीवन को समाप्त कर दे तो ऐसी अवस्था में पुत्रों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे उसे माता न समझें—और उसके साथ मातृवत् व्यवहार न करें। कैकेयी पर दशरथ की मृत्यु का पूरा उत्तरदायित्व है, अतः वह न

अब मेरी माता है और न मैं उसका पुत्र हूँ। भर्तृ—भृ+तृच्। द्रोह—द्रुह्+घञ्।

(५) इस श्लोक में शालिनी छन्द है। उसका लक्षण है—

मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः।

१०४—कैकेयी—जात! महाराजस्य सत्यवचनं रक्षन्त्या मया तथोक्तम्। (जाद! महाराअस्स सच्चवअणं रक्खन्तीए मए तह उत्तं।)

१०५—भरतः—किमिति किमिति?

१०६—कैकेयी—पुत्रको मे राजा भवत्विति। (पुत्तओ मे राआ होदु त्ति।)

१०७—भरतः—अथ स इदानीमार्योऽपि भवत्याः कः?

पितुर्मे नौरसः पुत्रो न क्रमेणाभिषिच्यते।
दयिता भ्रातरौ न स्युः प्रकृतीनां न रोचते ॥२०॥

१०४—कैकेयी—पुत्र, महाराज की सत्यभाषिता की रक्षा के लिए मैंने वैसा कहा था।

Kaikeyi—Son, I said so because I wanted to maintain the truthfulness of the promise of the great king.

१०५—भरत—क्या, क्या कहा?

Bharata—What, what did you say?

१०६—कैकेयी—यह कि मेरा पुत्र राजा हो।

KaiKeyi—That my son should be the king

१०७—अन्वय—(आर्यः) मे पितुः औरसः पुत्रः न (किम्), क्रमेण न अभिषिच्यते, भ्रातरः दयिताः न स्युः प्रकृतीनां न रोचते (किम्)।

भरत—अच्छा तो मुझे अब बताओ कि आर्य (राम) तुम्हारे क्या हैं?

क्या वे मेरे पिता के औरस (अपनी स्त्री से उत्पन्न) पुत्र नहीं हैं ? क्या उनका (आयु की ज्येष्ठता के) क्रम से अभिषेक नहीं हो रहा था ? क्या हम भाइयों में प्रेम नहीं है ? क्या वे प्रजा को रुचिकर नहीं थे ? ॥२०॥

Bharata—Well, now what was that noble brother (Rāma) to you ?

Was he not a legitimete son of my father ? Was he not being crowned in the due order of succession ? Would the brothers not have been loving towards one another ? Was he not liked by the subjects. (20)

Notes

१०४—सत्यवचनं०—दशरथस्य सत्यभाषित्वं यथार्थयन्त्या । मैं चाहती थी कि राजा ने जो प्रतिज्ञा की थी, उनकी वह प्रतिज्ञा सत्य हो और वे सत्यभाषी सिद्ध हों। उनके सत्यवादित्व की रक्षा के लिये मैंने ऐसा किया। यदि मैं विवाह के समय पर प्रतिज्ञात राज्य न माँगती, तो वे असत्यवादी सिद्ध होते। महापुरुष सत्य की रक्षा करते हैं। वाल्मीकि रामायण में इसी प्रकरण में कहा है—

आहुः सत्यं हि परमं धर्मं धर्मविदो जनाः ।
सत्यमाश्रित्य च मया त्वं धर्मं प्रति चोदितः। अयोध्या० १४.३.

१०७—(१) आर्योऽपि०—अर्थात् राम भी तो तुम्हारे पुत्र ही हैं, फिर तुमने हम दोनों में अन्तर क्यों किया ?

(२) औरसः—उरसा निर्मितः पुत्रः औरसः। उरस् + अण्। 'उरसोऽण् च' (पा० ४.४-९४) से अण् प्रत्यय। अपनी धर्मपत्नी से उत्पन्न पुत्र। दत्तक (गोद लिया हुआ) आदि पुत्र नहीं। विशेष विवरण के लिए देखें—मनु०६.११६ तथा याज्ञवल्क्य स्मृति २.१२० । इस श्लोक में ४ कारण दिए गए हैं, जिनके आधार पर कैकेयी को राम के अभिषेक में विघ्न नहीं डालना चाहिए था। प्रत्येक वाक्य के साथ 'किम्' जोड़ना चाहिये। 'क्या राम पिता के औरस पुत्र नहीं हैं?' अर्थात् हैं। यदि वे औरस पुत्र हैं, तो उनके अधिकार का अपहरण कैसे किया जा सकता है ?

(३) न क्रमेण०—रामः ज्येष्ठक्रमेण न अभिषिच्यते किम् ? क्या ज्येष्ठता के क्रम से राम का अभिषेक नहीं हो रहा था ? जो सबसे बड़ा भाई होगा, वह राजा होगा। राम सबसे बड़े थे, अतः उनका अभिषेक होना सर्वथा उचित था। अभिषिच्यते—अभि + सिच् + यक् + लट्।

(४) दयिताः०—(१) भ्रातरः वयं रामादयो बान्धवाः दयिताः प्रेमपूर्णाः न भवामः किम् ? क्या हम सब भाइयों में प्रेम नहीं है ? अर्थात् है। (२) यदि यहाँ पर 'तस्य' का अध्याहार (ऊपर से जोड़ना) करें तो इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि—'तस्य दयिताः रामस्य प्रियाः वयं भ्रातरः न भवामः किम्।' यदि राम का अभिषेक हो जाता तो क्या उनके प्रेम के पात्र हम सब भाई न होते ? अर्थात् राजा होने पर भी राम का प्रेम हम सब भाइयों पर उसी प्रकार रहता।

(५) प्रकृतीनां०—प्रकृतीनां अमात्यादीनां न प्रियं किम् ? राम का अभिषेक मन्त्रियों एवं प्रजा को क्या प्रिय नहीं था ? अर्थात् था। यदि प्रजा को उनका अभिषेक रुचिकर था, तो तुम्हें विघ्न डालने की क्या आवश्यकता थी ? सब की इच्छा के विरुद्ध कार्य करके तुमने बहुत ही निन्दनीय कार्य किया है।

(६) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

१०८—कैकेयी—जात ! शुल्कलुब्धा ननु प्रष्टव्या। (जाद ! सुक्कलुद्धा णगु पुच्छिदव्वा।)

१०९—भरतः—

वल्कलैर्हृतराज्यश्रीः पदातिः सह भार्यया।
वनवासं त्वयाऽऽज्ञप्तः शुल्कोऽप्येतदुदाहृतम् ॥२१॥

११०—कैकेयी—जात ! देशकाले निवेदयामि। (जाद ! देसकाले णिवेदेमि।)

१०८—कैकेयी—पुत्र, क्या विवाह शुल्क के लोभ वाली स्त्री से (इस प्रकार) प्रश्न करने चाहिएँ ?

Kaikeyī—Son, is a woman drawn away by the promise of the marriage-gift to be questioned (like this) ?

१०६—अन्वय—वल्कलैः (युक्तः) हृतराज्यश्रीः पदातिः भार्यया सह त्वया वनवासम् आज्ञप्तः, एतदपि शुल्के उदाहृतम् (किम्) ?

भरत—वल्कलों को धारण किए हुए, राज्यलक्ष्मी से वंचित, पैदल चलने वाला बनाकर राम को पत्नी के सहित जो तुमने वनवास की आज्ञा दी है, क्या यह भी विवाह-शुल्क-रूप में माँगा गया था ? ॥२१॥

Bharata—Deprived of royalty, Rāma was ordered by you to go to the forest with his wife, clad in bark-garments and walking on foot ; was this also expressly mentioned as part of the bridal gift (21)

११०—कैकेयी—पुत्र, कभी उचित स्थान और अवसर पर यह सब तुम्हें बताऊँगी ।

Kaikeyī—Son. I will tell you all this at the proper place and time.

Notes

१०८—शुल्कलुब्धा—शुल्कलोभिनी । शुल्क का अर्थ है कन्या या वर पक्ष की ओर से वर या कन्या को दहेज या उपहार रूप में प्रतिज्ञात धन आदि । कैकेयी अपनी लोभशीलता को स्वीकार करती है । उसका कथन है कि मैंने विवाह के अवसर पर प्राप्त राज्य की प्राप्ति के लोभ से ऐसे किया है, क्या उस पर तुम्हें प्रश्न करना चाहिये ? अर्थात् नहीं । लुब्ध—लुभ् + क्त । प्रष्टव्य—प्रच्छ् + तव्यत् ।

१०९—(१) वल्कलैः—वल्कलैः युक्तः । वल्कलों से युक्त । यहाँ पर 'युक्त' या 'सह' का अध्याहार करना चाहिए । (२) हृतराज्यश्रीः—हृता राज्यश्रीः यस्य सः । बहुव्रीहि । जिस के राज्य को छीन लिया गया है । हृत—हृ + क्त ।

(३) पदातिः—पदचारी । पैदल चलने वाला । पाद + अत् + इण् प्रत्यय 'अत्' धातु का अर्थ है निरन्तर चलना । पाद शब्द को 'पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु (पा० ६.३.५२) से 'पद' आदेश ।

(४) आज्ञप्तः—आदिष्टः। आदेश दिया, आज्ञा दी। आ + ज्ञप् + क्त।

(५) शुल्के०—भरत के कथन का भाव है कि राज्य तो तुमने माँगा था, यदि नहीं तो यह सब अनर्थ क्यों किया गया है ?

(६) उद्गाहृतम्—उक्तम्। क्या यह भी कहा गया था। उत् + आ + हृ + क्त।

(७) श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

११०—देशकाले०—देशयुक्तः कालः देशकालः, तस्मिन्, समुचिते देशे काले च। समुचित स्थान और अवसर पर मैं सारी बात बताऊँगी। देखो आगे अंक ६ वक्तव्य सं० ८० से ९१ तक।

१११—भरतः—

(क) अयशसि यदि लोभः कीर्तयित्वा किमस्मान्
किमु नृपफलतर्षः किं नरेन्द्रो न दद्यात्।
अथ तु नृपतिमातेत्येष शब्दस्तवेष्टो
वदतु भवति ! सत्यं किं तवार्यो न पुत्रः ॥२२॥

१११—(क) अन्वय—यदि अयशसि लोभः अस्मान् कीर्तयित्वा किम् ? नृपफलतर्षः किमु ? नरेन्द्रः किं न दद्यात् ? अथ तु नृपतिमाता इति एष शब्दः तव इष्टः, भवति सत्यं वदतु आर्यः तव पुत्रः न किम् ?

भरत—यदि तुम्हें अयश लेने का ही लोभ था तो मेरा नाम (इस बीच में) लेने की क्या आवश्यकता थी ? क्या तुम्हें राज्य के फल (ऐश्वर्य) की लालसा थी ? यदि ऐसा है तो क्या राजा तुम्हें (वह सब सुख) नहीं दे देते ? यदि तुम्हें ('राजमाता' यह शब्द सुनना) अभीष्ट था तो आप ही सच सच बताइए कि क्या आर्य (राम) तुम्हारे पुत्र नहीं हैं ? (२२)

Bharata—If you had an eager desire for infamy, where was the use of mentioning my name ? Was it a craving for enjoying the fruits (benefits) of royalty ? Then would not the king have allowed you these ? If again the title 'the mother of a king' was coveted by you, then, madam, tell the truth—was not my noble brother your son ? (22)

Notes

१११—(क) (१) अयशसि०—अकीर्तेः अर्जने यदि ते लोभः आसीत्। यदि तुम अपयश ही लेना चाहती थीं तो मेरा नाम तुमने बीच में क्यों लिया ? अर्थात् यह अयश मेरे सिर क्यों डाला ? यदि तुम्हें अयश ही लेना था तो कहतीं कि 'मुझे राज्य दे दो'। लोभ—लुभ्+घञ्। कीर्तयित्वा—कृत् (१०. उभयपदी)+णिच्+क्त्वा।

(२) नृपफलतर्षः—नृपस्य नृपत्वस्य राज्यप्राप्तेः, यत् फलम् अभिमत-वस्तुप्राप्तिरूपं तस्य तर्षः अभिलाषा किमु ? तत्पुरुष। नृपत्व के फल अर्थात् राज्यप्राप्ति के सुखों की अभिलाषा क्या तुम्हें है ? यहाँ पर 'नृप' नृपत्व अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'तर्ष' शब्द का अर्थ है—इच्छा, अभिलाषा।

'कामोऽभिलाषस्तर्षश्च'। इत्यमरः।

'तर्ष' शब्द का प्रयोग रामायणादि में ही मिलता है। बाद में इसका प्रयोग कम मिलता है।

रामदर्शनजस्तर्षो भरतस्येव तस्य च। अयोध्या ६६.३.

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात्। भागवत पुराण।

(३) किं नरेन्द्रः—यदि राज्यसुख ही चाहिए था, तब तो इस इच्छा को महाराज ही पूर्ण कर सकते थे।

(४) नृपतिमाता—नृपतेः राज्ञः माता। तत्पुरुष। यदि 'राजमाता' अपने आपको तुम कहवाना चाहती थीं तो राम भी तो तुम्हारे पुत्र ही हैं।

(५) भवति—यहाँ पर 'भवति' के दो अर्थ हो सकते हैं। (१) 'भवति' शब्द के सम्बोधन का रूप 'आप'। (२) 'भवति' भू धातु लट् का रूप। 'आर्यः तव पुत्रः न भवति किम् ?' राम क्या तुम्हारे पुत्र नहीं होते हैं ?

(६) इस श्लोक में मालिनी छन्द है। उसका लक्षण है—

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

(ख) कष्ट कृतं भवत्या,

त्वया राज्यैषिण्या नृपतिरसुभिर्नैव गणितः

सुतं ज्येष्ठं च त्वं व्रज वनमिति प्रेपितवती।

न शीर्णं यद् दृष्ट्वा जनकतनयां वल्कलवतीं-
महो धात्रा सृष्टं भवति ! हृदयं वज्रकठिनम् ॥२३॥

(ख) अन्वय—भवति ! राज्यैषिण्या त्वया नृपतिः असुभिः नैव गणितः। त्वं ज्येष्ठं सुतं च वनं व्रज इति प्रेषितवती। जनकतनयां वल्कलवतीं दृष्ट्वा यत् (तव) हृदयं न शीर्णम्, अहो धात्रा (तत्) वज्रकठिनं सृष्टम्।

तुमने बड़ा ही दुःखदायी काम किया है।

राज्य की लालसा से तुमने महाराज के प्राणों की कुछ भी चिन्ता नहीं की। तुमने अपने ज्येष्ठ पुत्र को 'वन में जाओ' यह कहकर (वन में) भेज दिया। जनकपुत्री सीता को वल्कल पहने हुए देखकर भी जो तुम्हारा हृदय नहीं फट गया, (इससे ज्ञात होता है कि) आह, परमात्मा ने तुम्हारा हृदय वज्र के तुल्य कठोर बनाया है ॥२२॥

A woeful deed was done by you.

Hankering after the kingdom you never cared even for the king in respect of his life. You sent into exile your eldest son bidding him to go to the forest, and that your heart which was not shattered on beholding Janaka's daughter clad in bark garments, was alas O lady, created as hard as adament by the creator. (23)

Notes

(ख) (१) राज्यैषिण्या—राज्यं कामयमानया : राज्य+इष्+णिनि+ङीप् = राज्यैषिणी तया। 'सुप्यजातौ णिनि:' से णिनि प्रत्यय और स्त्री-प्रत्यय ङीप्। राज्य की लालसा वाली तुमने।

(२) असुभि:—प्राणै:। 'वियुज्यमानः' इति शेष:। प्राण छूटते हुए राजा की भी तुमने कोई चिन्ता नहीं की। जिस प्रकार 'प्राण' शब्द के रूप बहुवचन में ही चलते हैं, उसी प्रकार 'असु' शब्द के भी।

(३) न गणित:—न अपेक्षित:, न चिन्तितः। चिन्ता नहीं की। गण्+णिच्+क्त।

(४) ज्येष्ठम्०—सर्वश्रेष्ठपुत्रम् । सबसे बड़े पुत्र को । ज्येष्ठ शब्द 'वृद्ध' या 'प्रशस्य' शब्द से इष्ठन् प्रत्यय करने पर बनता है । वृद्ध या प्रशस्य + इष्ठन् (इष्ठ) । ज्य च (पा० ५. ३. ६१) सूत्र से प्रशस्य को ज्य आदेश और 'वृद्धस्य च' (पा० ५. ३. ६२) से वृद्ध शब्द को ज्य आदेश । अतः श्रेष्ठ के दो अर्थ होते हैं (१) सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम, (२) सबसे बड़ा (भाई) । इसी शब्द का 'ईयसुन्' (ईयस्) प्रत्यय करने पर 'ज्यायन्' रूप बनता है । दो भाइयों में बड़ा भाई ।

(५) प्रेषितवती —त्वं निष्कासितवती । भेजा, निकाला । प्र इष् + क्तवतु + ङीप् ।

(६) शीर्णम् विदीर्णम् । फट गया, चूर हो गया । + शॄ + क्त ।

(७) वल्कलवतीम्—चीरधारिणीम् । वल्कल धारण करने वाली । वल्कल + मतुप् + ङीप् ।

(८) धात्रा सृष्टम्—विधात्रा निर्मितम् । परमात्मा ने बनाया है । तुम्हारा हृदय वज्र के तुल्य कठिन बनाया है । धातृ—धा + तृच् । सृष्ट—सृज + क्त ।

(९) इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है ।

११२—सुमन्त्रः—कुमार ! एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेकं पुरस्कृत्य भवन्तं प्रत्युद्गतौ विज्ञापयतः ।

गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः ।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः ॥२४॥

११३—भरतः—अनुगच्छन्तु मां प्रकृतयः ।

११४—सुमन्त्रः—अभिषेकं विसृज्य, क्व भवान् यास्यति ।

११२—अन्वय—यथा गोपहीनाः गावः अपालिताः विलयं यान्ति, एवं हि नृपतिहीनाः प्रजाः वै विलयं यान्ति ।

सुमन्त्र—कुमार, ये दोनों वसिष्ठ और वामदेव ऋषि प्रजावर्ग के साथ आपके राज्याभिषेक के लिये आपके पास आये हैं और निवेदन करते हैं कि—

जिस प्रकार गोप के बिना गायें असुरक्षित होने के कारण नष्ट हो जाती है, इसी प्रकार राजा के बिना प्रजा भी अवश्यमेव नष्ट हो जाती है ॥२४॥

Sumantra—Prince, these two sages Vasiṣtha and Vāmadeve, who have come accompanied by the subjects, to meet you, with reference to your coronation, respectfully say to you—

As cows without a cowherd meet with destruction being unprotected, so subjects having no king meet with ruin. (24)

११३—भरत—अच्छा तो प्रजावर्ग मेरे पीछे चले।

Bharata—Let the subject follow me.

११४—सुमन्त्र—राज्याभिषेक छोड़कर ! अच्छा तो आप कहाँ जायँगे ?

Sumantra—Leaving off the coronation ? (Then) where will your honour go ?

Notes

११२—(१) वसिष्ठ०—वसिष्ठ और वामदेव ऋषि हैं। वाल्मीकि रामायण में वसिष्ठ के साथ ही वामदेव का भी नाम आता है, अतः वामदेव भी इक्ष्वाकु कुल के कुलगुरु (पुरोहित) ज्ञात होते हैं। उत्तररामचरित में भी आता है।

विसृष्टश्च वामदेवाभिमन्त्रितो मेध्योऽश्वः। उत्तर० २. पृ० ५३

(२) प्रकृतिभिः—प्रकृति शब्द के दो अर्थ हैं—(१) प्रजा, (२) मन्त्रिवर्ग। यहाँ पर तथा अग्रिम वाक्य में दोनों अर्थ लिये जा सकते हैं।

(३) अभिषेकं० अभिषेकनिमित्तम्। 'अभिषेकं पुरस्कृत्य' के दो अर्थ हो सकते हैं—(१) अभिषेक के विचार को आगे रखकर अर्थात् अभिषेक के लिये। (२) अभिषेक के सामान को आगे सजा कर लिये हुए। अभिषेक—अभि+सिच्+घञ्। पुरस्कृत्य—पुरस्+कृ+क्त्वा (ल्यप्)। रामायण अयोध्याकांड (७९. १४.) में इसका वर्णन आया है कि—

ततः प्रभातसमये दिवसेऽथ चतुर्दशे।
समेत्य राजकर्तारो भरतं वाक्यमब्रुवन्॥

त्वमद्य भव नो राजा राजपुत्र महायशाः ।
आभिषेचनिकं सर्वमिदमादाय राघव ॥
प्रतिक्षते त्वां स्वजनः श्रेणयश्च नृपात्मज ॥

(४) भवन्तं प्रत्युद्गतौ - आप के स्वागतार्थ आये हुए। प्रति+उत्+गम् धातु का अर्थ होता है—अगवानी करना, स्वागतार्थ आगे जाकर मिलना।

(५) गोपहीनाः—गोपेन गोपालेन हीनाः रहिताः। ग्वाले के बिना। तत्पुरुष। गोप—गाः पातीति गोपः। गो+पा (रक्षा करना)+क (अ)। पा के आ का लोप। हीन—हा+क्त (त)। 'ओहाक् त्यागे' (छोड़ना)। त को न और आ को ई।

(६) विलयम्—विनाशम्। विनाश को। विलय—वि+ली+अच्। 'एरच्' से अच् (अ) प्रत्यय।

(७) अपालिताः—अरक्षिताः। असुरक्षित। अपालित—नञ्+पाल्+णिच्+क्त (त)।

(८) नृपतिहीनाः - नृपतिना राज्ञा हीनाः रहिताः। तत्पुरुष। राजा के बिना प्रजा भी इसी प्रकार नष्ट हो जाती है। जिस प्रकार गायों की रक्षा के लिए ग्वाले की आवश्यकता है, उसी प्रकार प्रजा या राज्य की रक्षा के लिए राजा की सत्ता आवश्यक है, अन्यथा प्रजा या राज्य सुरक्षित नहीं रह सकता। वाल्मीकि रामायण के इसी प्रकरण (अयोध्याकांड सर्ग ६७) में अराजक-राष्ट्र की अवनति और दुर्दशा का बहुत विस्तृत वर्णन दिया गया है। इस श्लोक का भाव रामायण के निम्नलिखित श्लोक से लिया गया है—

अगोपाला यथा गावस्तथा राष्ट्रमराजकम्। (अयोध्या० ६७. २६)

(९) वै—अव्यय है। इसका अर्थ है—निश्चय से, वस्तुतः। यह पाद-पूर्ति के लिए भी आता है।

(१०) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

११४—(१) अभिषेकं विसृज्य०---'अभिषेक' से 'यास्यति' तक एक वाक्य मानने पर इसका अर्थ होगा कि 'आप राज्याभिषेक छोड़ कर कहाँ जाएँगे'। इसको दो वाक्य समझना अधिक उपयुक्त है—(१) 'अभिषेकं'

विसृज्य ? क्या अभिषेक को छोड़ कर ? । क्या प्रजा आपका अभिषेक न करे और आपके साथ चले । (२) 'क्व भवान् यास्यति ?' यदि राज्याभिषेक को छोड़ कर प्रजा आपका अनुगमन करे तो बताइए कि आप कहाँ जाएँगे ? प्रजा को आपकी हार्दिक भावना तो ज्ञात हो। आगे के दो वाक्य (सं० ११५ और ११६) इसको दो वाक्य मानने की पुष्टि करते हैं, क्योंकि उनमें दो अलग बातें मानकर दोनों की पृथक् चर्चा की गई है ।

११५—भरतः—अभिषेकमिति । इहात्रभवत्यै प्रदीयताम् ।

११६—सुमन्त्रः—क्व भवान् यास्यति ?

११७—भरतः—

तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्तते लक्ष्मणप्रियः ।
नायोध्या तं विनाऽयोध्या साऽयोध्या यत्र राघवः ॥२५॥

(*निष्क्रान्ताः सर्वे ।*)

॥ तृतीयोऽङ्कः ॥

११५—भरत—आप अभिषेक को कहते हैं ? यह तो इनको (कैकेयी को) दीजिए (अर्थात् कैकेयी का राज्यभिषेक कीजिए) ।

Bharata—Coronation you say ? Let her ladyship here have it.

११६—सुमन्त्र—आप कहाँ जाएँगे ?

Sumantra—Where will you go ?

११७—अन्वय—तत्र यास्यामि यत्र असौ लक्ष्मणप्रियः वर्तते, तं विना अयोध्या अयोध्या न, सा अयोध्या यत्र राघवः (अस्ति) ।

भरत=मैं वहीं जाऊँगा, जहाँ पर वे लक्ष्मण-प्रेमी (राम) हैं । उनके बिना अयोध्या अयोध्या नहीं है, अयोध्या वही है जहाँ पर राम रहते हैं ॥२५॥

(*सब का प्रस्थान ।*)

तृतीय अंक समाप्त

Bharata—I shall go there, where that Rāma, to whom Lakṣmaṇa is dear, is living. Ayodhyā without him is no Ayodhyā and the real Ayodhya is there where Rāma is living. (25)

(*Exeunt omnes*)

End of Act III

Notes

११५—(१) अभिषेकमिति—यहाँ पर पूरा वाक्य इस रूप में समझना चाहिए—अभिषेकमिति वदसि चेत् तर्हि स अभिषेकः इह अत्रभवत्यै कैकेय्यै प्रदीयताम्। यदि अभिषेक की चर्चा करते हो तो वह अभिषेक कैकेयी का कर दो। मैं अभिषेक को स्वीकार करने के लिए उद्यत नहीं हूँ। यह वाक्य कैकेयी के ऊपर बहुत कठोर व्यंग्यरूप में कहा गया है।

११७—(१) लक्ष्मणप्रियः—लक्ष्मणः प्रियः यस्य सः। बहुव्रीहि। लक्ष्मण जिनको प्रिय हैं, ऐसे राम। यह विशेषण साभिप्राय रक्खा गया है। भरत के कथन का भाव यह है कि राम के प्रेम का सौभाग्य लक्ष्मण को प्राप्त हुआ है, मुझे नहीं। राम अब 'लक्ष्मणप्रिय' हैं, 'भरतप्रिय' नहीं। भरत की अभिलाषा है कि राम को सबसे अधिक प्रिय मैं होता। अतएव पीछे (३.६३) में कहा गया है—

'लक्ष्मणेनातिसन्धितोऽहमभिवादये'।

(२) सायोध्या०—अयोध्या वस्तुतः वही है, जहाँ राम निवास कर रहे हैं।

तृतीय अंक समाप्त

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशतश्चेट्यौ ।)

१—विजया—हला नन्दिनिके ! भण भण । अद्य कौसल्या-पुरोगैः सर्वैरन्तःपुरै प्रतिमागेहं द्रष्टुं गतैस्तत्र किल भर्तृदारको भरतो दृष्टः ? अहं च मन्दभागा द्वारे स्थिता । (हला णन्दिणिए ! भणेहि भणेहि । अज्ज कोसल्लापुरोगेहि सव्वेहि अंतेउरेहि पडिमागेहं दट्ठुं गदेहि तहिं किल भट्टिदारओ भरदो दिट्ठो । अहं च मन्दभाआ दुवारे ट्ठिदा ।)

२—नन्दिनिका—हला ! दृष्टोऽस्माभिः कौतूहलेन भर्तृदारको भरतः । (हला ! दिट्ठो अह्मेहि कोदूहलेण भट्टिदारओ भरदो ।)

३—विजया—भट्टिनी कुमारेण किं भणिता ? (भट्टिणी कुमारेण किं भणिदा ।)

चतुर्थ अङ्क

(दो चेटियों—दासियों—का प्रवेश)

१—विजया—सखी नन्दिनिका, बता बता । आज कौसल्या के साथ सारी अन्तःपुर की स्त्रियाँ प्रतिमागृह को जब देखने गई थीं, तब क्या वस्तुतः वहाँ उन्होंने राजकुमार भरत को देखा है ? मैं तो मन्दभागिनी यहाँ द्वार पर ही खड़ी रही (अर्थात् मैं द्वार की रक्षा का कार्य कर रही थी) ।

Act IV

(*Enter two maid-servants.*)

Vijayā—Friend Nandinikā, tell me, tell me. The prince Bharata was indeed this day seen by all the women of the harem

that had gone to see the statue-house, headed by Kausalyā. Unfortunate that I am, I had to keep watch at the door.

२—नन्दिनिका—सखी, हम लोगों ने तो (बड़ी) कुतूहलता से राजकुमार भरत को देखा है।

Nandinikā—Friend, Prince Bharata was seen by us all with (great) curiosity.

३—विजया—राजकुमार (भरत) ने रानी (कैकेयी) से क्या कहा ?

Vijayā—What did the prince say to our queen (Kaikeyi) ?

Notes

१—(१) चेटी—चेटी का अर्थ है दासी। विजया का प्रतिहारी (द्वारपालिका) के रूप में उल्लेख स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण और अभिषेक में भी आता है। यहाँ पर वह कैकेयी की दासी के रूप में उपस्थित होती है।

(२) भण भण—बता बता। इसका सम्बन्ध तृतीय वाक्य से है। 'भट्टिनी कुमारेण किं भणिता' अर्थात् बता कि भरत ने कैकेयी से क्या कहा ?

(३) कौसल्या०—कौसल्या पुरोगा अग्रगामिनी यासां तैः। बहुव्रीहि। कौसल्या जिनमें मुख्य है या कौसल्या जिनके आगे आगे चलने वाली है।

(४) अन्तःपुरैः—अन्तःपुरचरैः। रनवास की स्त्रियों ने।

(५) किल—निश्चये। वस्तुतः। किल अव्यय है।

(६) मन्दभागा—मन्दःभागः यस्याः सा। बहुव्रीहि। मन्द भाग्यवाली।

(७) द्वारे स्थिता—प्रतिहाररक्षणे स्थिता। द्वार की रक्षा के लिए रुकी हुई।

३—भट्टिनी—स्वामिनी। यहाँ पर कैकेयी से अभिप्राय है।

४—नन्दिनिका—किं भणितम्। अवलोकितुमपि नेच्छति कुमारः। (किं भणिदं। ओलोइदुं वि णेच्छदि कुमारो।)

५—विजया—अहो अत्याहितम् । राज्यलुब्धया भर्तृदारकस्य रामस्य राज्यविभ्रष्टं कुर्वत्यात्मनो वैधव्यमादिष्टम् । लोकोऽपि विनाशं गमितः । निर्घृणा खलु भट्टिणी । पापकं कृतम् । (अहो अच्चाहिदम् । रज्जलुद्धाए भट्टिदारअस्स रामस्स रज्जविब्भट्ठं करन्तीए अत्तणो वेहव्वं आदिट्ठं । लोवो वि विणासं गमिओ । णिग्घिणा हु भट्टिणी । पापअं किदं ।)

४—नन्दिनिका—क्या कहा ? राजकुमार उन्हें देखना तक नहीं चाहते ।

Nandinikā—'What did he say ?' He did not even wish to look at her.

५—विजया— ओह ! बड़ा अनर्थ हुआ । इस राज्यलुब्धा ने राजकुमार राम को राज्य-च्युत करके अपने आपको विधवा बना लिया और प्रजा का नाश कर दिया है । वस्तुतः यह रानी बहुत क्रूर है । इसने बड़ा पाप किया है ।

Vijayā—Oh the great misfortune ! Covetous of royalty and making Rāma lose the kingdom, she brought about her own widowhocd and led the people into ruin, cruel, indeed, is our mistress. A wicked deed was done.

Notes

४—किं भणितम्—नन्दिनिका ने विजया के कथन 'भट्टिनी कुमारेण किं भणिता' को दुहराया है, अतः 'किं भाणिता' पाठ रखना अधिक उपयुक्त है । स्वतन्त्र वाक्य होने पर 'किं तम्' पाठ ही ठीक होता । भणित—भण्+क्त । भरत का कैकेयी से बात करना तो दूर रहा, वह उसको देखना तक नहीं चाहता । अवलोकितुम्— अव+लोक्+तुमुन् (तुम्) ।

५—(१) अत्याहितम्—महती विपत् । बड़ा अनर्थ हुआ । विशेष व्याख्या के लिये देखें अङ्क १ वक्तव्य १७ का विवरण ।

(२) राज्यलुब्धया—राज्यस्य लुब्धा राजलुब्धा, तया । तत्पुरुष । राज्य-प्राप्त करने की लालसा वाली । लुब्ध—लुभ+क्त । (३) राज्यविभ्रष्टम्—राज्याद् विभ्रंशनम् । तत्पुरुष । राज्यविभ्रष्टं—राज्यविभ्रंशम् । राज्य से हटाना । विभ्रष्ट का प्रयोग विभ्रंश (हटाना) अर्थ में हुआ है । विशेष व्याख्या के लिए देखें अंक ३ वक्तव्य १० का विवरण ।

(४) वैधव्यम्—अनाथताम् । विधवापन को । वैधव्य—विधवाया भावः वैधव्यम् । विधवा+ष्यञ् ।

(५)आदिष्टम्—संपादितम् । किया, अपने आपको विधवा बना लिया ।

(६) लोकोऽपि०—प्रजा अपि । प्रजावर्ग को भी अनाथ बना दिया ।

(७) गमितः—प्रापितः । प्राप्त कराया । गम्+णिच्+क्त ।

(८) निर्घृणा—निर्दया । घृणा शब्द का अर्थ दया भी है । कैकेयी बड़ी दयाहीन है ।

(९) भट्टिनी—स्वामिनी । कैकेयी ।

(१०) पापकं कृतम्—बड़ा पाप किया ।

६—नन्दिनिका—हला ! शृणु । प्रकृतिभिरानीतमभिषेकं विसृज्य रामतपोवनं गतः कुमारः । (हला । सुणाहि । पइदीहि-आणीदं अभिसेअं विसज्जिअ रामतवोवणं गदो कुमारो ।)

७—विजया—(सविषादम् ।) हम् । एवं गतः कुमारः । नन्दिनिके ! एह्यावां भट्टिनीं पश्यावः । (हम् । एवं गदो कुमारो । णन्दिणिए ! एहि अह्मे भट्टिणिं पेक्खामो ।)

(*निष्क्रान्ते*)

प्रवेशकः ।

६—नन्दिनिका—सखी, सुनो । प्रजावर्ग के द्वारा लाए हुए राज्याभिषेक के सामान को छोड़कर राजकुमार (भरत) राम के तपोवन को चले गए ।

Nandinikā—Friend, listen. Having sent back the material of coronation brought by the citizens, the prince (Bharata) has gone to the penance grove of Rāma..

७—विजया—(खेदपूर्वक) आह, राजकुमार इस प्रकार चले गए। नन्दिनिका, आओ, हम दोनों चल कर रानी को देखें।

Vijayā—(With sorrow). The prince has thus gone. Nandinikā—Come, let us see our mistress.

(दोनों का प्रस्थान।)

प्रवेशक—समाप्त

(*Exeunt.*)

End of Pravesaka

Notes

६—(१) प्रकृतिभिः०—यहाँ पर प्रकृति शब्द के दोनों अर्थ हो सकते हैं—(१) प्रजावर्ग (२) मन्त्रिवर्ग। उनके द्वारा लाए हुए। भास ने 'प्रकृति' शब्द के प्रयोग अधिकतर 'प्रजा' अर्थ को लेकर किए हैं।

(२) अभिषेकम्—अभिषेकसम्भारम्। अभिषेक के सामान को। (३) विसृज्य—छोड़कर। यहाँ पर भाव है स्वीकार न करके।

(४) रामतपोवनम्—रामस्य तपोवनम्। तत्पुरुष। राम जिस वन में तपस्या करते हैं, या तपोमय जीवन व्यतीत करते हैं, उस वन में।

७—(१) हम्—यह आश्चर्यसूचक अव्यय है। (२) भट्टिनीम्—पूर्व स्थलों में (वक्तव्य ३ से ५) भट्टिनी शब्द से कैकेयी का निर्देश है। यहाँ पर भी कैकेयी को ही समझना चाहिए।

(३) प्रवेशक का लक्षण है—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥

दो अङ्कों के बीच में निम्न श्रेणी के पात्रों के द्वारा उपस्थित किया जाता है। उनकी भाषा प्राकृत होती है। भूत और भावी घटनाओं का इसके द्वारा

संकेत किया जाता है। नाटक में संक्षेप के लिए इसका उपयोग किया जाता है। विशेष व्याख्या के लिए देखें अङ्क ३ वक्तव्य १२ का विवरण।

प्रवेशक—समाप्त

(ततः प्रविशति भरतो रथेन सूतश्च)

८—भरतः—

स्वर्गं गते नरपतौ सुकृतानुयात्रे
पौराश्रुपातसलिलैरनुगम्यमानः ।
द्रष्टुं प्रयाम्यकृपणेषु तपोवनेषु
रामाभिधानमपरं जगतः शशाङ्कम् ॥१॥

८—अन्वय—सुकृतानुयात्रे नरपतौ स्वर्गं गते पौराश्रुपातसलिलैः अनुगम्यमानः (अहम्) अकृपणेषु तपोवनेषु रामाभिधानम् अपरं जगतः शशाङ्कं द्रष्टुं प्रयामि।

(तदनन्तर रथ में बैठे हुए भरत, सुमन्त्र और सारथि का प्रवेश)

भरत—अपने पुण्यों के साथ महाराज (दशरथ) के स्वर्ग चले जाने पर, नागरिकों के अश्रुपात के जल से अनुगत, मैं उदार तपोवनों में रामनामक संसार के द्वितीय चन्द्रमा को देखने के लिए जा रहा हूँ ॥१॥

(Then enter Bharata in a chariot, Sumantra and the charioteer.)

Bharata—The lord of men (Daśaratha) having gone to heaven, accompanied by his religious merits, I, followed by the tear-waters of the citizens, am going to see in the generous penance groves the second moon of the wotld bearing the name of Rāma.

Notes

८—(१) सुकृतानुयात्रे—सुकृतं पुण्यम् अनुयात्रम् अनुगामि यस्य तस्मिन्। बहुब्रीहि। पुण्य जिसके साथ गया है। अनु पश्चात् यात्रा गमनं

यस्य तत् अनुयात्रम्। बहुव्रीहि। जो पीछे-पीछे चलता है, अनुगामी, अनुचर। मनुष्य के साथ अन्त में धर्म ही जाता है, इस भाव को कई कवियों ने प्रस्तुत किया है—

(क) धर्मस्तमनुगच्छति।

(ख) परलोकमार्गे, कर्मानुगो गच्छति जीव एकः।

'अनुयात्र' शब्द पुनः अङ्क ४ वक्तव्य १०५ में आया है। रामायण में भी इसका प्रयोग मिलता है। (अयोध्या० ३६.२ और ३७.२)

सूत रत्नसुसम्पूर्णा चतुर्विधबला चमूः।
राघवस्यानुयात्रार्थं क्षिप्रं प्रतिविधीयताम् ॥ अयोध्या० ३६.२.

(२) पौराश्रुपात०—पौराणां पुरवासिनाम् अश्रुपातसलिलैः गलिताश्रुजलैः अनुगम्यमानः। तत्पुरुष। नागरिकों के अश्रुपात के जल के अनुगत। यहाँ पर इसका भाव यह है कि रोते हुए पुरवासी जिसके पीछे-पीछे चल रहे हैं, ऐसा भरत। पौर—पुर+अण्। पात—पत्+घञ्।

(३) अकृपणेषु—उदारेषु। यहाँ पर तपोवन का विशेषण 'उदार' बहुत साभिप्राय है। कवि इसके द्वारा व्यक्त करना चाहता है कि तपोवन उदार है। वहाँ ईर्ष्या द्वेष नहीं है, जैसा कि नगरों में है, विशेषतः अयोध्या में कैकेयी और मन्थरा आदि व्यक्तियों में जैसी अनुदारता है। वन की उदारता के वर्णन के लिए देखें—नागानन्द ४.२ और उत्तररामचरित २.१.

शय्या शाद्वलमासनं शुचिशिला सद्म द्रुमाणामधः।
शीतं निर्झरवारि पानमशनं कन्दाः सहाया मृगाः ॥
इत्यप्रार्थितलभ्यसर्वविभवे वने० ॥

(४) जगतः शशाङ्कम्—संसारमात्र को आह्लादित करने के कारण राम संसार में वस्तुतः [illegible] चन्द्रमा के तुल्य हैं।

(५) यहाँ पर राम में चन्द्रमा का आरोप करने के कारण रूपक अलंकार है। 'रूपकं रूपितारोपाद् विषये निरपह्नवे।' सा० दर्पण १०.२८

(६) इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

९—सुमन्त्रः—एष एष आयुष्मान् भरतः—

दैत्येन्द्रमानमथनस्य नृपस्य पुत्रो
यज्ञोपयुक्तविभवस्य नृपस्य पौत्रः ।
भ्राता पितुः प्रियकरस्य जगत्प्रियस्य
रामस्य रामसदृशेन पथा प्रयाति ॥२॥

१०—भरतः—भोस्तात !

११—सुमन्त्रः—कुमार ! अयमस्मि ।

९—अन्वय—दैत्येन्द्रमानमथनस्य नृपस्य पुत्रः यज्ञोपयुक्तविभवस्य नृपस्य पौत्रः, पितुः प्रियकरस्य जगत्प्रियस्य रामस्य भ्राता, रामसदृशेन पथा प्रयाति ।

सुमन्त्र—यह चिरंजीवी भरत—

दैत्यराजों के मान-मर्दन करने वाले महाराज (दशरथ) के पुत्र, यज्ञ में सम्पूर्ण ऐश्वर्य को लगा देने वाले महाराज (अज) के पौत्र, पिता के प्रिय-कर्ता (आज्ञाकारी), लोकप्रिय राम के भाई, राम के सदृश ही (आदर्श) मार्ग पर जा रहे हैं ॥२॥

Sumantra—This this long lived Bharata, son of the king (Daṣaratha) who completely humbled the pride of the lords of demons, the grandson ef the king (Aja) who spent his wealth in the performance of sacrifices, and the brother of Rāma, who did what was dear to his father and who is the darling of the world, is going by a path similar to that of (followed by) Rāma. (2)

१०—भरत—हे तात,

Bharata—O father.

११—सुमन्त्र—कुमार, यह हूँ ।

Sumantra—Prince, here I am.

Notes

९—(१) दैत्येन्द्र०—दैत्येन्द्राणां दानवेन्द्राणां मानस्य दर्पस्य मथनः संहारकः। तत्पुरुष। दानवराजों के भी दर्प नष्ट करने वाले दशरथ का पुत्र। मथतीति मथनः। 'मथ्' विलोडने (१ परस्मैपदी) से ल्युट् प्रत्यय कर्तृवाच्य में। मथ्+ल्युट् (अन)। मान—मन्+घञ्। दैत्य—दितेरपत्यं दैत्यः। दिति+ण्य प्रत्यय। 'दित्यदित्यादित्य०' से ण्य प्रत्यय पुत्र अर्थ में।

(२) यज्ञोपयुक्त०—यज्ञेषु उपयुक्तः विनियुक्तः विभवः ऐश्वर्यं येन तस्य बहुव्रीहि। जिसने यज्ञ में सारे ऐश्वर्य को लगा दिया है। यज्ञ—यज्+नञ (न) 'यजयाचयत०' सूत्र से नङ् (न) प्रत्यय। उपयुक्त—उप+युज्+क्त। विभव—वि+भू+अप् (अ)। 'ऋदोरप्' से अप् (अ) प्रत्यय। यह महाराज अज के लिये कहा गया है। भास ने अज के लिये पहले कहा है—

'नित्यावभृथस्नानप्रशान्तरजा अजः' (अंक ३ वक्तव्य ५१)

(३) पितुः प्रियकरस्य—पितुः आज्ञापालकस्य। पिता के प्रिय करने वाले अर्थात् आज्ञापालक।

(४) जगत्प्रियस्य—लोकप्रियस्य। लोकप्रिय। जगतः प्रियः, तस्य। तत्पुरुष। प्रिय—प्री+क (अ)। 'इगुपधज्ञा०' सूत्र से क प्रत्यय।

(५) रामसदृशेन०—राम के सदृश आदर्श मार्ग का अनुसरण भरत भी कर रहे हैं। राम ने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए राज्य छोड़ा, और अब भरत अन्याय से प्राप्त राज्य को छोड़ रहे हैं। न्याय के अनुसार राज्य का अधिकार राम को है, अतः राम को देना चाहते हैं।

(६) इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

१२ भरतः—क्व तत्रभवन् ममार्यो रामः। क्वासौ महाराजस्य प्रतिनिधिः। क्व सन्निदर्शनं सारवताम्। क्वासौ प्रत्यादेशो राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः। क तत् पात्रं यशसः। क्वासौ नरपतेः पुत्रः। क्वासौ सत्यमनुव्रतः।

मम मातुः प्रियं कर्तुं येन लक्ष्मीर्विसर्जिता।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि दैवतं परमं मम ॥३॥

१२—अन्वय—मम मातुः प्रियं कर्तुं येन लक्ष्मीः विसर्जिता, तं मम परमं दैवतं अहं द्रष्टुम् इच्छामि।

भरत—कहाँ हैं वे पूजनीय मेरे जेष्ठ भाई राम! कहाँ हैं वे महाराज के प्रतिनिधि? कहाँ हैं वे शूरों के उत्तम आदर्श! कहाँ हैं वे राज्यलुब्धा (कैकेयी) के तिरस्कर्ता! कहाँ हैं वे यश के पात्र! कहाँ हैं वे महाराज के (आदर्श) पुत्र! कहाँ हैं वे सत्यव्रत।

मेरी माता की इष्ट-सिद्धि के लिये जिन्होंने राज्य-लक्ष्मी का परित्याग कर दिया, मैं अपने उस अभीष्ट परम देव का दर्शन करना चाहता हूँ ॥३॥

Bharata—Where is his honour, my noble brother, *Rāma*? Where is that representative of the great king? Where is that excellent model of those possessed of strength? Where is that administerer of rebuke to (Kaikeyī) greedy of a kingdom? Where is that receptacle of fame, Where is that (worthy) son of the king? Where is he devoted to the vow of truth!

I wish to see him, who is the highest deity of mine and who renounced to satisfy the desire of my mother. (3)

Notes

१२—(१) क्व तत्रभवान्० —ये वाक्य भरत के राम-दर्शन की उत्सुकता और राम के प्रति आदर भाव आदि के सूचक हैं।

(२) प्रतिनिधिः०—दशरथ के प्रतिनिधि अर्थात् दशरथ के स्थानापन्न कार्यकर्ता। प्रतिनिधि का अर्थ प्रतिमूर्ति भी होता है। दशरथ की प्रतिमूर्ति। प्रतिनिधि शब्द सदृश अर्थ में भी आता है, जैसा कि 'रघुप्रतिनिधिः' (रघुवंश ५. ६३) की व्याख्या में मल्लिनाथ ने लिखा है 'रघुकल्पः' (रघु के सदृश)। (उक्तं च दण्डिना—सादृश्यवाचकप्रस्तावे—कल्पदेशीयदेश्यादि प्रख्यप्रतिनिधी अपि)। सदृश अर्थ मानने पर अर्थ होगा—जो दशरथ के सदृश हैं।

(३) सन्निदर्शनम् – उत्कृष्टमुदाहरणम्—उत्तम उदाहरण । निदर्शन—नि+दृश्+ल्युट् ।

(४) सारवताम्—सार: मनःस्थैर्यम्, अक्षोभ्यं धैर्यम्, तद्वताम् । सार का अर्थ है अटल धैर्य, मानसिक दृढ़ता । उसके धारणकर्ता ।

(५) प्रत्यादेशः—निराकृति: । निराकरण, खंडन, तिरस्कार । यहाँ पर तिरस्कर्ता ।

(६) यशस: पात्रम्—यश के आधार । पात्र नपुंसकलिङ्ग है, अत: तत् यशसः पात्रम्, प्रयोग हुआ है ।

(७) सत्यम् अनुव्रतः—अनुकूलं व्रतं कर्म यस्यासौ अनुव्रतः, सत्यस्य पालकः । सत्य के पालनकर्ता । रामायण और महाभारत में अनुव्रत का प्रयोग बहुत मिलता है ।

क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद् वैश्याः क्षत्रमनुव्रता: । रामा० बाल० ७. १६ ।

राममनुव्रता । रामा० अरण्यकांड ४७. ३४—३६ ।

(८) विसर्जिता—त्यक्ता । छोड़ दी । लक्ष्मी:—राज्यलक्ष्मीः, राज्यलक्ष्मी ।

(९) दैवतं परमम्० —राम मेरे सर्वोत्तम देव हैं । वे मेरे अभीष्ट एवं आराध्यदेव हैं ।

(१०) इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है ।

१३—सुमन्त्रः—कुमार ! एतस्मिन्नाश्रमपदे—

अत्र रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च महायशाः ।
सत्यं शीलं च भक्तिश्च येषु विग्रहवत् स्थिता ॥४॥

१४—भरतः—तेन हि स्थाप्यतां रथः ।

१५—सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (तथा करोति ।)

१६—भरतः—(रथादवतीर्य) सूत ! एकान्ते विश्रामयाश्वान् ।

१७—सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् । (निष्क्रान्तः)

१३—अन्वय—अत्र महायशाः रामः च सीता च लक्ष्मणः च (वसन्ति), येषु सत्यं शीलं च भक्तिः च विग्रहवत् स्थिता ।

सुमन्त्र—कुमार, इसी आश्रमभूमि में—

यहाँ महायशस्वी राम, सीता और लक्ष्मण (निवास करते हैं), जिनमें (क्रमशः) सत्य, शील और भक्ति मूर्तिमान् रूप में विद्यमान हैं ॥४॥

Sumantra—prince, in this region of the hermitage,

Here (live) Rāma, Sitā and Lakṣmaṇa of great fame, in whom dwell in a bodily form truthfulness, character and devotion (respectively). (4)

१४—भरत—अच्छा तो रथ रोक लो ।

Bharata—Then let the chariot be stopped.

१५—सूत—जैसी आपकी आज्ञा । (वैसा ही करता है ।)

Charioteer—As the long-lived one commands. (Does accordingly).

१६—भरत—(रथ से उतर कर) सारथि, एकांत में घोड़ों को आराम करने दो ।

Bharata—(Alighting from the chariot) charioteer, make the horses take rest in a secluded place.

१७—सूत—जैसी आपकी आज्ञा ।

(प्रस्थान)

Charioteer—As the long lived one commands. (Exit)

Notes

१३—(१) महायशाः—महत् यशः कीर्तिः यस्य सः । बहुव्रीहि । जिसका महान् यश है । 'आन्महतः०' सूत्र से महत् के त् को 'आ' । यद्यपि 'महायशः' का प्रयोग लक्ष्मण के बाद हुआ है, तथापि इसका सम्बन्ध तीनों से करना चाहिये । महायशस्वी राम, सीता और लक्ष्मण ।

(२) सत्यं०—'सत्यं शीलं च भक्तिश्च' का दो प्रकार से अर्थ हो सकता है—(१) यथासंख्य क्रम से अर्थात् क्रमशः, जैसे-राम में सत्य, सीता में शील

और लक्ष्मण में भक्ति सशरीर विद्यमान थे। (२) राम आदि तीनों में ये तीनों गुण सामूहिक रूप से विद्यमान थे, अर्थात् तीनों में तीनों गुण थे—तीनों सत्यवादी थे, सुशील थे और तीनों में भक्ति थी—राम की पिता के प्रति, सीता की पति के प्रति और लक्ष्मण की राम के प्रति।

(३) विग्रहवत्—मूर्तिमत्। सशरीर, ये तीनों गुण अपना मूर्तरूप धारण किए हुए उनमें विद्यमान थे। 'विग्रह' शब्द के दो अर्थ होते हैं—(१) युद्ध (२) शरीर।

विग्रहः समरे काये। इत्यमरः।

(४) अनुष्टुप् छन्द है।

१४—वाक्य १४ से १७ तक उसी रूप में हैं, जिस रूप में अंक ३ (वक्तव्य ३४ से ३७ तक) में हैं। इनका विवरण वहीं देखें।

१८—भरतः—भोस्तात! निवेद्यतां निवेद्यताम्।

१९—सुमन्त्रः—कुमार! किमिति निवेद्यते।

२०—भरतः—राज्यलुब्धायाः कैकेय्याः पुत्रो भरतः प्राप्त इति।

२१—सुमन्त्रः—कुमार! अलं गुरुजनापवादमभिधातुम्।

२२—भरतः—सुष्ठु, न न्याय्यं परदोषमभिधातुम्। तेन हि उच्यताम् 'इक्ष्वाकुकुलव्यंगभूतो भरतो दर्शनमभिलषतीति'।

२३—सुमन्त्रः—कुमार! नाहमेवं वक्तुं समर्थः। अथ पुनर्भरतः प्राप्त इति ब्रूयाम्।

१८—भरत—हे तात, निवेदन कीजिए, निवेदन कीजिए।

Bharata—O father, let it be announced, let it be announced.

१९—सुमन्त्र—कुमार, क्या निवेदन करूँ?

Sumantra—Prince. what is to be announced ?

२०—भरत—यह कि राज्यलुब्धा कैकेयी का पुत्र भरत आया है ।

Bharata—That Bharata, the son of Kaikeyī, hungry after a kingdom, has come.

२१—सुमन्त्र –कुमार, गुरुजनों की निन्दा का कथन मत कीजिए ।

Sumantra—Prince, enough of mentioning the blame attaching to an elderly person.

२२—भरत—ठीक है, दूसरे के दोष का उच्चारण करना उचित नहीं है । तो यह कहना कि –'इक्ष्वाकुकुलकलंक भरत आपका दर्शन करना चाहता है' ।

Bharata—Well said, it is not proper to speak of another's fault. Then say –Bharata who is a stain on the Ikṣvāku race, desires an interview.

२३—सुमन्त्र—कुमार, मैं इस प्रकार नहीं कह सकता हूँ । मैं केवल यही कह सकता हूँ कि—भरत आए हैं ।

Sumantra—Prince I am not able to speak in this way. I can simply say that Bharata has come.

Notes

२१— अलं०—गुरुजनापवादं गुरुजननिन्दाम् अभिधातुम् अलं न वक्तव्यम् । गुरुजनों की निन्दा नहीं करनी चाहिए । 'अलम् अभिधातुम्' यह प्रयोग पाणिनि के 'अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः०' इस नियम के अनुसार ठीक नहीं है । निषेध अर्थ में 'अलम्' होने पर धातु से क्त्वा प्रत्यय होना चाहिए । तुमुन् नहीं ।

२२—(१) न्याय्यम्—उचितम् । न्यायादनपेतं न्याय्यम् । 'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते (पा० ४. ४. ९२) सूत्र से यत् प्रत्यय । न्याय+यत् (य) । न्याय-संगत ।

(२) परदोषम्०—सुमन्त्र ने 'गुरुजन' की निन्दा का निषेध किया है, परन्तु भरत ने 'गुरुजन' न कहकर 'परदोषम्' कहा है अर्थात् दूसरे के दोष

का वर्णन नहीं करना चाहिए। इससे ज्ञात होता है कि भरत कैकेयी को 'गुरुजन' नहीं, अपितु 'परजन' समझता है।

(१) इक्ष्वाकु०—इक्ष्वाकुकुलकलङ्कभूतः। इक्ष्वाकुकुल के कलंकस्वरूप। 'न्यङ्ग' का अर्थ है—'निकृष्टमङ्गम्' नीच अंग, निकृष्ट। न्यंगभूतः का अर्थ—निकृष्टरूप, कलंकस्वरूप। न्यंग शब्द नि+अञ्च् धातु से बनता है। नीचे जाना अर्थ होता है। भरत आत्मग्लानि के कारण अपने आपको इक्ष्वाकुवंश का कलंकस्वरूप समझता है।

२४—भरतः—न न। नाम केवलमभिधीयमानमकृतप्रायश्चित्तमिव मे प्रतिभाति। किं ब्रह्मघ्नानामपि परेण निवेदनं क्रियते। तस्मात् तिष्ठतु तातः। अहमेव निवेदयिष्ये। भो भोः! निवेद्यतां तत्रभवते पितृवचनकराय राघवाय—

निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः।
भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति ॥५॥

२४—अन्वय—निर्घृणः च कृतघ्नः च प्राकृतः प्रियसाहसः भक्तिमान् कश्चित् आगतः, कथं तिष्ठतु, यातु इति।

भरत—नहीं नहीं। केवल नाम के उच्चारण से प्रायश्चित्त नहीं किया गया, ऐसा प्रतीत होता है। क्या ब्रह्मघातियों की भी सूचना दूसरों के द्वारा दी जाती है।? इसलिए तात, आप रहने दें। मैं स्वयं ही निवेदन करूँगा। हे महानुभावो, पिता की आज्ञा का पालन करने वाले पूजनीय राम को सूचित कर दीजिए कि—

एक निर्दय, कृतघ्न, साधारण व्यक्ति, साहसी, किन्तु भक्तिशाली (आपके दर्शनार्थ) आया है। वह क्या करे—रुके या चला जाय ॥५॥

Bharata—No, no. The mere name mentioned appears to me to be one that has undergone, no penitence. What? Are Brāhmaṇslayers announced by another? So father should desist. I myself will make the announcement. O you, let it be

announced to Rāghava (Rāma), who carried out the behest of his father,

That some one who is cruel, ungrateful, an ardinary man, and a lover of adventure, but full of devotion, has come (to see you) How should he act ; should he wait or depart? (5)

Notes

२४—(१) अकृतप्रायश्चित्तम्—अकृतं प्रायश्चित्तं यस्य तत् । बहुव्रीहि। जिसके विषय में प्रायश्चित्त नहीं किया गया है। राम के साथ कैकेयी ने जो अन्याय किया है, उसका प्रायश्चित्त होना चाहिए, अतएव मुझे अपने नाम के साथ प्रायश्चित्तसूचक कोई विशेषण लगाना चाहिए।

(२) ब्रह्मघ्नानाम्०--ब्रह्म ब्राह्मणं हन्तीति ब्रह्मघ्नः। ब्राह्मण की हत्या करने वाला। भरत अब अपने आपको एक ब्रह्मघाती के बराबर समझ रहे हैं। जिस प्रकार ब्रह्मघाती का नामोच्चारण आदि दूसरा नहीं करता, उसी प्रकार भरत भी अपना नाम निर्देश आदि स्वयं करते हैं।

(३) निर्घृणः—निर्दयः। निर्दय। नास्ति घृणा दया यस्य सः। बहुव्रीहि। (४) कृतघ्नः - कृतज्ञताहीनः। कृतं हन्तीति कृतघ्नः। किसी के किए हुए उपकार आदि को भुला देने वाला। (५) प्राकृतः—साधारणो जनः। साधारण व्यक्ति। प्राकृत शब्द का अर्थ मूर्ख, नीच भी होता है।

विवर्णः पामरो नीचः प्राकृतश्च पृथग्जनः। इत्यमरः।

(६) प्रियसाहसः—प्रियं साहसं यस्य सः। बहुव्रीहि। साहस-प्रिय, साहसी।

(७) भक्तिमान्—भक्तिशीलः। निर्दयता आदि दुर्गुणों से युक्त होने पर भी वह व्यक्ति आपका भक्त है। भक्ति के आधार पर अयोग्य होते हुए भी दर्शन चाहता है।

(८) कथं तिष्ठतु०—वह रुके या लौट जावे। पंचरात्र में भी ऐसा प्रयोग आया है है। 'किमुक्त्वा नापराद्धोऽहं कथं तिष्ठतु यात्विति'। पंचरात्र-२.५८.

(६) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ।

(ततः प्रविशति रामः सीतालक्ष्मणाभ्याम्)

२५—रामः—(आकर्ण्य) सौमित्रे ! किं शृणोषि । अयि विदेहराजपुत्रि ! त्वमपि शृणोषि ।

कस्यासौ सदृशतरः स्वरः पितुर्मे
गाम्भीर्यात् परिभवतीव मेघनादम् ।
यः कुर्वन् मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां
सस्नेहः श्रुतिपथमिष्टतः प्रविष्टः ॥६॥

२५—अन्वय—मे पितुः सदृशतरः कस्य असौ स्वरः गाम्भीर्यात् मेघनादं परिभवति इव । यः सस्नेहः मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां कुर्वन्—श्रुतिपथम् इष्टतः प्रविष्टः ।

(तदनन्तर राम का सीता और लक्ष्मण के साथ प्रवेश ।)

राम—(सुनकर, हर्ष के साथ) लक्ष्मण, क्या तुम सुन रहे हो ! जनकपुत्रि, तुम भी सुन रही हो ?

मेरे पिता के स्वर से बहुत अधिक मिलता हुआ यह किसका स्वर है, जो कि अपनी गम्भीरता से मेघों के गर्जन को भी तिरस्कृत सा कर रहा है, जो प्रेमपूर्ण है और हृदय में यह सन्देह उत्पन्न कर रहा है कि यह भाई का शब्द है, मेरे कानों में इष्ट वस्तु के रूप में प्रविष्ट हो रहा है ! ॥६॥

(Then enters Rāma with Sitā and Lakṣmaṇa).

Rama—(Listening and with joy). Lakṣmaṇa, do you hear ? O daughter of the king of Videha, do you also hear ?

Whose voice is that very closely resembling that of my father. which seems to surpass the thundering of a cloud on account of its depth ; and which full of affection, and begetting a surmise in my mind that it must be proceeding from my brother, is enteaing the cavity of my ears like a desired object. (6)

Notes

२५—(१) सदृशतरः—अत्यन्तसदृशः । पिता के स्वर से बहुत अधिक मिलता हुआ । यहाँ पर 'तरप्' प्रत्यय के द्वारा यह भी भाव हो सकता है कि—भरत का स्वर हम लोगों के स्वर की अपेक्षा पिता के स्वर से अधिक मिलता है । इस प्रकार की उक्ति 'मध्यम व्यायोग' में भी आई है—

जनयति च मनोज्वरं स्वरोऽयं,
बहुसदृशो हि धनञ्जयस्वरस्य । (मध्यम० २५)

(२) गाम्भीर्यात्—गम्भीरत्वात् । गम्भीरता से । गम्भीरस्य भावः गाम्भीर्यम्' । गम्भीर + ष्यञ । (३) मेघनादम्—मेघस्य घनस्य नादं गर्जितम् । तत्पुरुष । बादलों के गरजने को भी तुच्छ बना रहा था । नाद—नद् + घञ् ।

(४) बन्धुशङ्काम्०—बन्धुः अयं भवेत् इति सन्देहं जनयन् । यह मेरा भाई ज्ञात होता है, जिसका शब्द मुझे सुनाई पड़ा है । इसी प्रकार की उक्ति इसी अङ्क में और भी आई हैं—'बन्धुजनबहुमानमावहति' (४.२६) 'नायमबान्धवस्य स्वरसंयोगः' (४.२७)

(५) सस्नेहः—स्नेहसमन्वितः । प्रेमपूर्ण स्वर । स्नेह—स्निह् + घञ् । (६) श्रुतिपथम्—कर्णगोचरताम् । कानों में ।

(७) इष्टतः प्रविष्टः—इष्टत्वेन प्रविष्टः । इष्ट वस्तु के रूप में कानों में पड़ा है । इष्ट—इष् + क्त । प्रविष्ट—प्र + विश् + क्त ।

(८) इस श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द है । उसका लक्षण है—

त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ।

२६—लक्ष्मणः—आर्य ! ममापि खल्वेष स्वरसंयोगो बन्धुजनबहुमानमावहति । एष हि—

घनः स्पष्टो धीरः समदवृषभस्निग्धमधुरः
　　कलः कण्ठे वक्षस्यनुपहतसञ्चाररभसः ।
यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया
　　चतुर्णां वर्णानामभयमिव दातुं व्यवसितः ॥७॥

२६—अन्वय—(एष स्वरसंयोगः) घनः स्पष्टः धीरः समदवृषभस्निग्धमधुरः कलः यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया कण्ठे वक्षसि अनुपहतसञ्चाररभसः, चतुर्णां वर्णानाम् अभयं दातुं व्यवसित इव (अस्ति)।

लक्ष्मण—आर्य, मेरे हृदय में भी यह स्वर-संयोग (ध्वनि) बन्धुजनोचित अत्यधिक सम्मान के भाव को उत्पन्न कर रहा है।

क्योंकि यह (स्वरसंयोग) घन, स्पष्ट, गम्भीर, आनन्दोल्लासयुक्त साँड़ के शब्द के तुल्य सरस और मधुर, श्रुतिसुखद, यथायोग्य स्थानों से सुस्पष्ट वागिन्द्रिय के प्रयत्नों से नाना वर्णों के उच्चारण होने के कारण कण्ठ (गला) और वक्षःस्थल में अप्रतिहत प्रवाह-युक्त, चातुर्वर्ण्य को अभयदान देने के लिये दृढ़ संकल्प सा प्रतीत होता है ॥७॥

Lakṣmaṇa—Noble brother, even in my mind this combination of notes begets the high respect due to a relation.

For this (voice), deep, clear, grave, melodious and attractive like that of a bull in the flush of youth, sweet and with the force of its passage unobstructed in the throat and in the breast, its various syllables being uttered with a distinct vocal effort and having come in contact with their proper organs seem to be endeavouring to give protection to the four castes. (7)

Notes

२६—(१) स्वरसंयोगः—स्वराणां संयोगः, ध्वनिः। स्वरों का समन्वय। यहाँ पर भरत की ध्वनि से अभिप्राय है। स्वर—स्वृ + अप् (अ)। संयोग—सम् + युज् + घञ्।

(२) बन्धुजनबहु०—बन्धुजनोचितं बहुमानम्। भ्रातृजनोचित अत्यधिक सम्मान की भावना को। भरत के शब्द को सुनकर लक्ष्मण के हृदय में अत्यधिक आदर-भाव जागृत हुआ, जैसा कि किसी भाई के प्रति होना चाहिये। मान—मन् + घञ्।

(३) आवहति—जनयति। उत्पन्न करता है।

(४) घनः—सान्द्रः । भारी । भरत का शब्द बहुत दृढ़ता से युक्त था ।

(५) स्पष्टः स्फुटः, व्यक्ताक्षरः । स्पष्ट था, प्रत्येक अक्षर स्पष्ट सुनाई पड़ता था । स्पष्ट—स्पश् + क्त ।

(६) धीरः—गम्भीरः । गम्भीरता से युक्त ।

(७) समद०—समदः आनन्दोन्मत्तो यः वृषभः तस्य इव स्निग्धः सरसः मधुरः हृद्यश्च । तत्पुरुष । आनन्द-विभोर साँड़ के शब्द के सदृश सरस और मधुर । समदः—मदेन सहितः समदः । सहार्थ में बहुव्रीहि । समद का अर्थ है मत्त, किन्तु यहाँ युवावस्था के मद में मत्त अर्थ समझना चाहिये । स्निग्ध—स्निह् + क्त (त) ।

संगीत के सप्तस्वरों में ऋषभ स्वर की भी गणना है—

निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः ।
पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः ॥ इत्यमरः ॥

षड्ज आदि स्वरों के विषय में कहा गया है कि—

षड्जं रौति मयूरस्तु गावो नर्दन्ति चर्षभम् ।
अजाविकौ च गान्धारं क्रौञ्चो नदति मध्यमम् ॥

(८) कलः—मृदुः । श्रवण-सुखद । मधुर, श्रवणसुखद ध्वनि को 'कल' कहते हैं ।

ध्वनौ तु मधुरास्फुटे, कलः । इत्यमरः ।

(९) कण्ठे वक्षसि०—कण्ठे वक्षसि उरसि च अनुपहतः अस्खलितः सञ्चारस्य रभसः वेगो यस्य सः । बहुव्रीहि । शब्दों के स्पष्ट उच्चारण के लिये आवश्यक है कि कण्ठ और वक्षःस्थल में उनका प्रवाह रुद्ध न हो । अतएव पाणिनीयशिक्षा में कहा गया है—

व्याघ्री यथा हरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत् ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः ॥

(१०) यथास्थानं प्राप्य—यथोचितं स्थानं प्राप्य आसाद्य । प्रत्येक वर्ण यथायोग्य स्थान को प्राप्त होकर उच्चारण किये गये थे । पाणिनीयशिक्षा के अनुसार वर्णों के उच्चारण के आठ स्थान बताये गये हैं ।

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥१३॥

इसकी विस्तृत व्याख्या सिद्धान्तकौमुदी, संज्ञाप्रकरण में 'तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्' (पा० १. १. ६) की व्याख्या में द्रष्टव्य है। 'अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः' इत्यादि। कण्ठ्य, तालव्य, मूर्धन्य. दन्त्य आदि अक्षर कौन-कौन से हैं।

शब्द की उत्पत्ति का क्रम यह है कि शब्दोच्चारण का संकल्प होने पर प्राणवायु मूलाधार चक्र से उठकर वक्षस्थल में आती है और वहाँ से गले के मार्ग से बाहर आकर कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ इन पाँचों के संपर्क से पृथक्-पृथक् वर्ण के रूप में हो जाती है। पाणिनीयशिक्षा में इसका क्रम दिया गया है कि—

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया ।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥
मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम् ।।
सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः ।
वर्णान् जनयते ॥

(११) स्फुटकरण०—स्फुटं व्यक्तं करणं बाह्याभ्यन्तरलक्षणः प्रयत्नो येषां तानि स्फुटकरणानि नानाक्षराणि यस्मिन् सः, तस्य भावः तत्ता तया। बहुव्रीहि। जिसमें बाह्य और आभ्यन्तर प्रयत्न के द्वारा अनेक वर्ण स्पष्टतया उच्चरित हैं। 'करण' शब्द का अर्थ है—शब्दों के उच्चारण में प्रयत्न। ये दो प्रकार के होते हैं—(१) आभ्यन्तर (आन्तरिक) और (२) बाह्य (बाहरी)। प्रथम चार प्रकार का है—स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, विवृत और संवृत। बाह्य ११ प्रकार का है—विवार, संवार, श्वास, नाद आदि। विशेष परिचय के लिए देखें—सिद्धान्तकौमुदी (संज्ञाप्रकरण)।

करणं कारणे काये साधनेन्द्रियकर्मसु। इत्यजयः।

(१२) चतुर्णाम्०—चारों वर्ण ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र को अभयदान देने के लिये मानों दृढ़संकल्प हो, ऐसा यह स्वर है।

व्यवसित:—वि+अव+सो (सा)+क्त (त)। 'द्यतिस्यति०' से सा के आ को इ। यहाँ पर 'चतुर्णाम्' के द्वारा वाणी के चार भेद—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी की ओर भी संकेत माना जा सकता है।

परा वाङ् मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।
हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा॥

(१३) इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है।

२७—रामः—सर्वथा नायमबान्धवस्य स्वरसंयोगः। क्लेदयतीव मे हृदयम्। वत्स ! लक्ष्मण ! दृश्यतां तावत्।

२८—लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः। (परिक्रामति।)

२९—भरतः—अये, कथं न कश्चित् प्रतिवचनं प्रयच्छति। किंनु खलु विज्ञातोऽस्मि कैकेय्याः पुत्रो भरतः प्राप्त इति।

२७—राम—वस्तुतः यह ध्वनि हमारे किसी सम्बन्धी से अतिरिक्त व्यक्ति की नहीं है। यह मेरे हृदय को आर्द्र सी कर रही है। वत्स लक्ष्मण, देखो तो।

Rāma—By no means it can be the voice of one who is not a relative It wets my heart, as it were, (with affection). Dear Lakṣmaṇa, see what it is.

२८—लक्ष्मण—जैसी आपकी आज्ञा। (घूमता है)

Lakṣmaṇa—As my noble brother orders (walks forth).

२९—भरत—ओह, क्या बात है कि कोई प्रत्युत्तर नहीं दे रहा है। क्या उन्होंने जान लिया है कि—कैकेयी का पुत्र भरत आया है।

Bharata—Oh, how is it that no one gives a reply to me ? Can it be that I am known—that Bharata, the son of Kaikyī has come.

Notes

२७—(१) अबान्धवस्य—बान्धवभिन्नस्य। यह ध्वनि वस्तुतः किसी हमारे सम्बन्धी की ही है।

(२) क्लेदयति—आर्द्रयति। गीला कर रही है। यह ध्वनि प्रेम भाव परिपूर्ण है, अतः मेरे हृदय को प्रेम-भाव से आर्द्र कर रही है।

२९—(१) प्रतिवचनम्। प्रत्युत्तरम्। प्रत्युत्तर। वचन—वच्+ल्युट्।

(२) विज्ञातोऽस्मि—क्या आश्रमवासियों ने मुझे पहचान लिया है कि यह कैकेयी का पुत्र भरत है, अतएव जान बूझ कर उत्तर नहीं दे रहे हैं।

भरत को तुरन्त उत्तर न मिलने के कारण सन्देह हुआ कि सम्भवतः लोगों को मुझसे बात करने में भी घृणा अनुभव होती है, अतः कोई मुझे उत्तर नहीं दे रहा है।

(३) कैकेय्याः पुत्रः—यहाँ 'कैकेय्याः पुत्रः' (कैकेयी का पुत्र) यह विशेषण साभिप्राय है। कैकेयी का पुत्र है, अतएव उसे कोई उत्तर नहीं दे रहा है।

३०—लक्ष्मणः—(विलोक्य।) अये अयमार्यो रामः। न न। रूपसादृश्यम्।

मुखमनुपमं त्वार्यास्याभं शशाङ्कमनोहरं
मम पितृसमं पीनं वक्षः सुरारिशरक्षतम्।
द्युतिपरिवृतस्तेजोराशिर्जगत्प्रियदर्शनो
नरपतिरयं देवेन्द्रो वा स्वयं मधुसूदनः ॥८॥

(सुमन्त्रं दृष्ट्वा।) अये तातः।

३०—अन्वय—(अस्य) मुखं तु अनुपमम् आर्यास्याभं शशाङ्कमनोहरं पीनं वक्षः सुरारिशरक्षतं मम पितृसमम्। द्युतिपरिवृतः तेजोराशिः जगत्प्रियदर्शनः, अयं नरपतिः देवेन्द्रः स्वयं मधुसूदनः वा (किम्)।

लक्ष्मण—(देखकर) ओहो, ये तो आर्य राम हैं! नहीं, नहीं, यह तो (दोनों में) केवल रूप की समानता है।

आर्य (राम) के मुख के तुल्य सुन्दर, चन्द्रमा के तुल्य मनोहर, इनका अनुपम मुख है। इनका विशाल वक्षःस्थल दैत्यों के बाणों से विद्ध मेरे पिता

(दशरथ) के वक्षःस्थल के तुल्य है। ज्योति से परिवृत (घिरे हुए), तेजोमय, संसार के लिए सुन्दर दर्शनीय क्या ये कोई राजा हैं, या देवराज इन्द्र हैं, या साक्षात् मधुसूदन (विष्णु) ही हैं ॥८॥

(सुमन्त्र को देखकर) ओहो, ये तात (सुमन्त्र) हैं ।

Lakṣmaṇa—(Looking). Oh, this is the revered Rāma No, no; it is simply the similarity of form.

His peerless face, charming like the moon, has the beauty of my elder brother's face; his stout chest resembles that of my father, scarred with the arrows of the demons; surrounded by splendour, a treasure of lustre and of a sight pleasing to the world, is he a king, or the lord of gods, or Madhusudana (*i.e.* Viṣṇu) himself ? (8)

(Seeing Sumantra). Ah; here is father (Sumantra).

Notes

३०—(१) अयमार्यो०—लक्ष्मण ने आकृति-साम्य के कारण भरत को राम समझा, अतः आगे कहा कि—नहीं नहीं, रूप-साम्य के कारण यह मुझसे धोखा हुआ ।

(२) आर्यास्याभम्—आर्यस्य रामस्यम् आस्यस्य मुखस्य आभा इव आभा शोभा यस्य तत् । बहुव्रीहि । राम के मुख के तुल्य शोभा वाला मुख । 'आस्य' शब्द का अर्थ है मुख ।

(३) शशांकमनोहरम्—चन्द्रवत् रमणीयम् । चन्द्रमा के तुल्य मनोहर । पहले 'अनुपम' लिखकर 'शशांकमनोहर' लिखिना उचित नहीं प्रतीत होता है । 'वदतो व्याघात' दोष है अर्थात् अपने कथन का स्वयं खण्डन करना ।

(४) सुरारि०—सुरारीणां दानवानां शरैः बाणैः क्षतं विद्धम् । तत्पुरुष । राक्षसों के बाणों से क्षत मेरे पिता के वक्षःस्थल के तुल्य वक्षःस्थल वाला । 'सुरारिशरक्षतम्' पिता (दशरथ) का विशेषण है । अतः यहाँ पर 'सुरारिशर-क्षतपितृवक्षःसमम्' होना चाहिए ।

(५) द्युतिपरिवृतः—द्युत्या दीप्तया परिवृतः । तत्पुरुष । तेज से घिरा हुआ ।

(६) तेजोराशिः—तेजसः राशिः कोशः। तत्पुरुष। तेज का निधि। यहाँ पर 'तेजः' का अर्थ प्रभाव भी लिया जा सकता है, शक्तिशाली। 'तेजः प्रभावे दीप्तौ च' इत्यमरः। 'तेजस्' शब्द का पारिभाषिक अर्थ भरत मुनि ने दिया है कि—

अधिक्षेपावमानादेः प्रयुक्तस्य परेण यत्।
प्राणात्ययेऽप्यसहनं तत्तेजः समुदाहृतम्॥

(७) जगत्प्रियदर्शनः—जगतः प्रियदर्शनः। तत्पुरुष। संसार भर को मुग्ध करने वाला। संसार को जिसका दर्शन प्रिय है।

(८) नरपतिः—क्या ये कोई राजा हैं?

(९) देवेन्द्रः—देवानाम् इन्द्रः स्वामी। देवताओं के स्वामी इन्द्र। क्या ये इन्द्र हैं?

(१०) मधुसूदनः—मधोः मधुनामकस्य राक्षसस्य सूदनः नाशकः। तत्पुरुष। मधु नाम के राक्षस के मारने वाले क्या ये साक्षात् विष्णु हैं? विष्णु ने मधु नाम के राक्षस को मारा था।

(११) यहाँ पर सन्देह अलंकार है। उसका लक्षण है—

सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः तिभोप्रित्थतः।

(१२) इस श्लोक में हरिणी छन्द है।

३१—सुमन्त्रः—अये कुमारो लक्ष्मणः।

३२—भरतः—एवं, गुरुरयम्। आर्य! अभिवादये।

३३—लक्ष्मणः—एह्येहि। आयुष्मान् भव। (सुमन्त्रं वीक्ष्य।) तात! कोऽत्रभवान्।

३४—सुमन्त्र—कुमार!

रघोश्चतुर्थोऽयमजात् तृतीयः
पितुः प्रकाशस्य तव द्वितीयः।
यस्यानुजस्त्वं स्वकुलस्य केतो—
स्तस्यानुजोऽयं भरतः कुमारः॥९॥

३१—सुमन्त्र—ओह, राजकुमार लक्ष्मण !

Sumantra—Oh, prince Lakṣmaṇa !

३२—भरत—अच्छा, ये मेरे बड़े भाई (लक्ष्मण) हैं। आर्य, आपको प्रणाम्।

Bharata -Oh, I see. He is my elder brothe (Lakṣmaṇa) Noble brother, I bow to you.

३३—लक्ष्मण—आओ आओ। चिरञ्जीवी होओ। (सुमन्त्र को देखकर) तात, ये कौन हैं ?

Lakṣmaṇa—Come, come. Be long-lived. (Looking at Sumantra) father, who is his Honour ?

३४—अन्वय—अयं रघोः चतुर्थः, अजात् तृतीयः, तव प्रकाशस्य पितुः द्वितीयः, स्वकुलस्य केतोः यस्य त्वम् अनुजः, तस्य अनुजः अयं कुमारः भरतः (अस्ति)।

सुमन्त्र—कुमार,

ये (वंश-परम्परा के अनुसार) रघु से चतुर्थ, अज के तृतीय और तुम्हारे सुविख्यात पिता के द्वितीय (अर्थात् पुत्र) हैं। अपने कुल के आदर्श जिस (राम) के तुम अनुज हो, उसी के अनुज ये राजकुमार भरत हैं ॥९॥

Sumantra—Prince,

He is fourth (in descent) from Raghu and third from Aja and the second (*i. e.* son) of your renowned father ; this is prince Bharata, the younger of him (*i. e.* Rāma), who is the honour of his family and whose younger brother you also are. (9)

Notes

३४—रघोः चतुर्थः०—भरत वंशानुक्रम के अनुसार रघु से चतुर्थ अर्थात् रघु के प्रपौत्र, अज के पौत्र और दशरथ के पुत्र हैं।

(२) प्रकाशस्य—विख्यातस्य दशरथस्य। यहाँ पर 'तव प्रकाशस्य पितुः, ऐसा अन्वय करना चाहिए। 'प्रकाशस्य' का सम्बन्ध पिता से है। तुम्हारे

विख्यात पिता के दूसरे हैं। यहाँ पर 'द्वितीय' शब्द का अर्थ 'पुत्र' लेना चाहिए, तभी श्लोक की रचना ठीक हो सकती है। अन्यथा 'पितुः' को पंचमी का रूप मानना पड़ेगा और उस स्थिति में 'प्रकाश' में भी पंचमी होने से 'प्रकाशात्' प्रयोग होना चाहिए था। 'प्रकाशस्य' को लक्ष्मण का विशेषण मानकर 'विख्यात तुम्हारे (लक्ष्मण के) पिता से दूसरे' अर्थ मानना उचित नहीं है। क्योंकि 'विख्यात' विशेषण दशरथ के साथ ही जुड़ना उचित प्रतीत होता है।

(३) स्वकुलस्य केतोः—स्ववंशस्य ध्वजभूतस्य। अपने वंश के ध्वजा-स्वरूप अर्थात् सर्वोत्तम, आदर्श।

(४) यहाँ पर इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से उपजाति छन्द है।

३५—लक्ष्मणः—एह्येहीक्ष्वाकुकुमार ! वत्स ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव।

असुरसमरदक्षैर्वज्रसंघृष्टचापै-
रनुपमबलवीर्यैः स्वैः कुलैस्तुल्यवीर्यः।
रघुरिव स नरेन्द्रो यज्ञविश्रान्तकोशो
भव जगति गुणानां भाजनं भ्राजितानाम् ॥१०॥

३५—अन्वय—असुरसमरदक्षैः वज्रसंघृष्टचापैः अनुपमबलवीर्यैः स्वैः कुलैः तुल्यवीर्यः, सः यज्ञविश्रान्तकोशः नरेन्द्रः रघुः इव जगति भ्राजितानां भाजनं भव॥

लक्ष्मण—आओ आओ, इक्ष्वाकुवंश के राजकुमार! वत्स, स्वस्ति, आयुष्मान् होओ।

असुरों के साथ संग्राम में कुशल, वज्र के प्रतिस्पर्धी धनुषों के धारणकर्ता, असाधारण बल और शक्ति से सम्पन्न, अपने पूर्वजों के तुल्य पराक्रम वाले तुम, यज्ञ में समस्त कोश को लगा देने वाले उस विख्यात महाराज रघु के तुल्य, संसार में दीप्यमान गुणों के पात्र होओ॥१०॥

Lakṣmaṇa—Come, come, prince of the Ikṣvaku race, Dear brother hail to yon ; be long-lived.

In this world may you be the receptable of brilliant qualities like that renowned king Raghu, whose treasure was exhausted in the performance of sacrifices,—you, whose prowess is on a par with that of the warriors of your race, who were skilled in fighting with demons, whose bows vied with the thunderbolt of (Indra) and whose strength and prowess were incomparable (10)

Notes

३५—(१) असुर०—असुरैः दैत्यैः सह समरे युद्धे दक्षैः कुशलैः। राक्षसों के साथ युद्ध करने में कुशल ।

(२) वज्रसंघृष्ट०—(१) वज्रेण पविना संघृष्टं जातस्पर्धं चापं धनुर्येषां तैः। बहुव्रीहि । इन्द्र के वज्र के साथ (राक्षसों के विनाश में) प्रतिस्पर्धा करने वाले धनुष जिनके पास हैं। (२) इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि वज्रेण संघृष्टं जातघर्षणं चापं येषां तैः। बहुव्रीहि। इन्द्र के वज्र के साथ जिसके धनुष रगड़ खाते थे, अर्थात् तुम्हारे पूर्वज इन्द्र के सहयोगी के रूप में उसकी ओर से युद्ध करते थे, अतः साथ-साथ युद्ध करने के कारण इन्द्र के वज्र और उनके धनुषों में रगड़ होती रहती थी। संघृष्ट—सम्+घृष्+क्त। कालिदास ने भी प्रतिस्पर्धा अर्थ में इसका प्रयोग किया है—

स प्रयोगनिपुणैः प्रयोक्तृभिः संजघर्ष सह मित्रसन्निधौ। रघुवंश १९.३६

(३) अनुपम०—अनुपमं बलं वीर्यं च येषां तैः। बहुव्रीहि। अनुपम बल और पराक्रम वाले। बल—शारीरिक शक्ति और वीर्य—पराक्रम। वीरे साधुः, वीरस्य भावो वा वीर्यम्। वीर+यत् (य)।

उत्साहोऽध्यवसायः स्यात् स वीर्यमतिशक्तिभाक्। इत्यमरः।

(४) स्वैः कुलैः—स्ववंश्यैः अपने वंशजों या पूर्वजों के तुल्य पराक्रमी।

(५) तुल्यवीर्यः—तुल्यं वीर्यं पराक्रमः यस्य सः। बहुव्रीहि। समान पराक्रमी।

(६) यज्ञ०—यज्ञे विश्वजिद्यज्ञे विश्रान्तः नियुक्तः कोशः धनसंचयः येन सः। बहुव्रीहि। जिसने विश्वजित् यज्ञ में अपना सारा कोश लगा दिया था। कालिदास ने भी रघुवंश में इसका वर्णन किया है कि—

तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं
निःशेषविश्राणितकोशजातम्। रघुवंश ५. १

(७) भाजनम्—भाजन शब्द का नपुंसकलिंग में ही प्रयोग होता है, अतएव भरत के लिए पुंलिङ्ग प्रयोग न होकर नपुंसकलिङ्ग ही प्रयोग हुआ है –'गुणानां भाजनं भव'। भाजन का अर्थ है आश्रय या पात्र।

(८) भ्राजितानाम्—दीप्तिमताम्। दीप्यमान अर्थात् प्रशंसनीय गुणों के पात्र हो।

(९) इस श्लोक में मालिनी छन्द है।

३६—भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि।

३७—लक्ष्मणः—कुमार! इह तिष्ठ। त्वदागमनमार्याय निवेदयामि।

३८—भरतः—आर्य! अचिरमिदानीमभिवादयितुमिच्छामि। शीघ्रं निवेद्यताम्।

३९—लक्ष्मणः—बाढम्। (उपेत्य।) जयत्वार्यः। आर्य!

अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातृवत्सलः।
संक्रान्तं यत्र ते रूपमादर्श इव तिष्ठति ॥११॥

४०—रामः—वत्स लक्ष्मण! किमेवं भरतः प्राप्तः।

४१—लक्ष्मण—आर्य! अथ किम्।

४२—रामः—मैथिलि! भरतावलोकनार्थं विशालीक्रियतां ते चक्षुः।

४३—सीता—आर्यपुत्र ! किं भरत आगतः ? (अय्यउत्त ! किं भरदो आअदो ।)

३६—भरत—मैं आपका अनुगृहीत हूँ ।

Bharata—I am thankful to you.

३७—लक्ष्मण—कुमार, यहाँ रुको । मैं तुम्हारे आगमन की सूचना आर्य को दे दूँ ।

Lakṣmaṇa—Prince, wait here. I will inform my elder brother of your coming.

३८—भरत—आर्य, मैं उनको अतिशीघ्र अभिवादन करना चाहता हूँ । अतः उन्हें शीघ्र सूचना दे दीजिये ।

Bharata—Noble brother, I am impatient to bow to him , inform him quickly then.

३९—अन्वय—अयं ते दयितः भ्रातृवत्सलः भरतः भ्राता, यत्र ते रूपम् आदर्शे इव संक्रान्तं तिष्ठति ।

लक्ष्मण—बहुत अच्छा । (राम के पास जाकर) आर्य की जय हो । आर्य,

भाई के (अर्थात् आपके) प्रति अनुरक्त, आपके प्रिय भाई भरत आये हैं, जिनमें आपका रूप इसी प्रकार प्रतिबिम्बित हो रहा है, जिस प्रकार दर्पण में ॥११॥

Lakṣmṇa—Very well. (Approaching Rāma.) Victory to my elder brother ! Noble brother,

Here is your beloved brother, Bharata, affectionate towards his brother (*i.e.* you), in whom stands reflected your form as in a mirror. (11)

४०—राम—वत्स लक्ष्मण, तो क्या वस्तुतः भरत आये हैं ?

Rāma—Dear Lakmaṇa, has Bharata thus come (then) ?

४१—लक्ष्मण—आर्य, और क्या (अर्थात् हाँ) ।

Lakṣmaṇa—Noble brother, just so.

४२—राम—मैथिलि, भरत को देखने के लिये अपनी आँखें विशाल कर लो।

Rāma—Maithili, widen your eyes for seeing Bharata.

४३—सीता—आर्यपुत्र, क्या भरत आये हैं ?

Sita—My lord, has Bharata come ?

Notes

३९—(१) भ्रातृवत्सलः—भ्रातरि रामे वत्सलः अनुरक्तः। तत्पुरुष। भाई राम में अनुरक्त।

(२) संक्रान्तम्—प्रतिफलितम्। प्रतिबिम्बित होकर। सम्+क्रम्+क्त।

(३) आदर्शे इव—दर्पणे इव। जिस प्रकार शीशे में।

(४) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

४२—विशालीक्रियतां ते चक्षुः—यह वाक्य पुनः अंक ७ वक्तव्य २५ में आया है। इसी प्रकार का वाक्य पहले आ चुका है—'विशालतरमुत्सङ्गं कुरु' (१.४८)। अपनी आँखों को फैलाकर रक्खो, अर्थात् अच्छी तरह आँखें खोल कर भरत को इच्छा-पूर्ति तक देखना।

४४—रामः—मैथिलि ! अथ किम्।

अद्य खल्ववगच्छामि पित्रा मे दुष्करं कृतम्।
कीदृशस्तनयस्नेहो भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः ॥१२॥

४५—लक्ष्मणः—आर्य ! किं प्रविशतु कुमारः ?

४६—रामः—वत्स ! लक्ष्मण ! इदमपि तावदात्माभिप्रायमनुवर्तयितुमिच्छसि। गच्छ सत्कृत्य शीघ्रं प्रवेश्यतां कुमारः।

४७—लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः।

४४—अन्वय—अद्य खलु अवगच्छामि, मे पित्रा दुष्करं कृतम्, तनयस्नेहः कीदृशः, अयं भ्रातृस्नेहः ईदृशः।

राम—मैथिलि, हाँ।

आज मैं वस्तुतः अनुभव कर रहा हूँ कि पिता (दशरथ) ने कितना कठिन कष्ट उठाया होगा, क्योंकि पिता का पुत्र के प्रति स्नेह कैसा उग्र होता होगा, जब कि भाई (भरत) का प्रेम भाई के लिए इस प्रकार का है ॥१२॥

Rāma—Yes, Maithilī.

Today indeed I come to realise what unbearable pain must have been borne by my father. For, if the affection, felt by a brother (Bharata) for his brother, is of such a nature, then how intense must have been the affection, felt by a father for his son. (12)

४५—लक्ष्मण—आर्य, क्या कुमार भीतर आवें ?

Lakṣmaṇa—Noble brother, should the prince enter ?

४६—राम—वत्स लक्ष्मण, क्या तुम अपनी इस इच्छा के लिए भी (मुझपर) निर्भर रहना चाहते हो ? जाओ, सत्कार करके शीघ्र ही भरत को अन्दर ले आवो।

Rāma—Dear Lakṣmaṇa, do you wish to make even this your intention depend upon my approval ? Go and at once bring in the prince with all the due respect.

४७—लक्ष्मण—जैसी आज्ञा।

Lakṣmaṇa—As my noble brother commands.

Notes

४४—(१) अवगच्छामि—जानामि । जान रहा हूँ, अनुभव कर रहा हूँ।

(२) पित्रा मे०—मेरे पिता ने कितना कठिन कष्ट उठाया होगा। दुष्कर करना अर्थात् असह्य दुःख को सहने का काम किया होगा। पुत्र-स्नेह के कारण ही उन्होंने हमारे वियोग में प्राण दे दिए। दुष्कर—दुस+कृ+खल् (अ) 'ईषद्दुःसुषु०' सूत्र से खल् प्रत्यय। कालिदास ने भी कहा है कि—

चक्रवाकयारटति दुष्करमहं करोमीति। शाकुन्तल ४ पृ० १०७.

(३) तनयस्नेहः—पुत्रस्नेहः। पुत्र-प्रेम कितना उग्र होता होगा जब कि भ्रातृ-प्रेम इतना अधिक उग्र रूप धारण कर रहा है कि भरत भाई से मिलने के लिए इतने अधिक उत्सुक हो रहे हैं।

(४) अनुष्टुप् छन्द है।

४६—आत्माभिप्रायम्०—राम के कथन का भाव यह है कि क्या तुम अपनी इस इच्छा के लिए भी मेरी स्वीकृति पर निर्भर हो? अर्थात् तुम्हें मुझसे बिना पूछे ही भरत को अन्दर लाना चाहिए था। 'आत्माभिप्रायम्' का अर्थ है—तुम अपने अभिप्राय को 'अर्थात् इच्छा को अनुवर्तयितुमिच्छसि' का अर्थ है—'अनुसरण कराना चाहते हो' अर्थात् मेरी आज्ञा या स्वीकृति के अनुसार ही करना चाहते हो। 'आत्माभिप्रायम्' का अर्थ 'मदभिप्रायानुसारि' अर्थात् राम की इच्छा के अनुकूल, करना ठीक नहीं है। 'आत्मन्' शब्द लक्ष्मण के लिए है।

४८—रामः—अथवा तिष्ठ त्वम्।

इयं स्वयं गच्छतु मानहेतो-
र्मातेव भावं तनये निवेश्य।
तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा
हर्षास्रमासारमिवोत्सृजन्ती ॥१३॥

४९—सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति। (उत्थाय परिक्रम्य भरतमवलोक्य।) हं ततस्तां वेलामिदानीं निष्क्रान्त आर्यपुत्रः। नहि नहि। रूपसादृश्यम्। (जं अय्यउत्तो आणवेदि।) (हं तदो तं वेलं दाणि णिक्कन्तो अय्यउत्तो। णहि णहि। रूवसदिस्सं।)

५०—सुमन्त्रः—अये वधूः।

४८—अन्वय—मानहेतोः माता तनये इव भावं निवेश्य तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा हर्षास्रम् आसारम् इव उत्सृजन्ती इयं स्वयं गच्छतु।

राम—अथवा तुम ठहरो।

(भरत के) सन्मान के लिए, माता जिस प्रकार पुत्र के लिए, उसी प्रकार (भरत के प्रति) भाव को लिए हुए, हिम-पूर्ण कमल-पत्र के तुल्य नेत्र वाली, आनन्दाश्रुओं को धारा-प्रवाह रूप में बरसाती हुई, यह (सीता) स्वयं जावे॥ १३॥

Rāma—Or, you wait here.

Let this (Sitā) herself go (to honour him (*i.e.* Bharata) ; entertaining the same feeling towards him as a mother has for her son, dropping tears of joy like a shower, with her eyes like the petals of a lotus of dew drops (13)

४९—सीता—जैसी आपकी आज्ञा। (उठकर, घूमकर और भरत को देखकर) ओह, आर्यपुत्र उस समय वहाँ थे, अभी यहाँ कैसे पहुँच गए! नहीं, नहीं। यह केवल रूप-साम्य है।

Sita—As my husband commands. (Getting up, walking forth and seeing Bharata). How being there at that time has my husband come out now! No. no. It is simply the similarity of form.

५०—सुमन्त्र—ओह, वहू हैं!

Sumantra—Oh, our daughter-in-law!

Notes

४८—(१) इयम्—सीता। सीता की ओर निर्देश है।

(२) मानहेतोः—भरतसन्मानार्थम्। भरत के सन्मान के लिए। यहाँ भाव यह है कि भरत के प्रति विशेष सन्मान प्रकट करना उचित है, अतः सीता जावे।

(३) मातेव०—माता जिस प्रकार पुत्र के प्रति प्रेम करती है, उसी प्रकार सीता भरत के प्रति प्रेम भाव को रखकर जावे। सीता भरत पर पुत्रवत् प्रेम करे, क्योंकि बड़े भाई की पत्नी माता के तुल्य मानी जाती है। निवेश्य—नि + विश् + णिच् + ल्यप्।

(४) तुषार०—'तुषारेण हिमेन पूर्णे उत्पलपत्रे कमलदले इव नेत्रे यस्याः सा'। बहुव्रीहि। हिम की बूँदों से युक्त कमलपत्र के तुल्य नेत्रों वाली। भवभूति ने उत्तररामचरित में हिमयुक्त पद्म की शोभा का वर्णन किया है कि—

वाष्पवर्षेण नीतं वो जगन्मङ्गलमाननम्।
अवश्यायावसिक्तस्य पुण्डरीकस्य चारुताम्। उत्तर० ६. २९

(५) हर्षास्रम्— आनन्दाश्रु। हर्ष के आँसू। आसारम्—धारासम्पातम्। धारा के रूप में वर्षा को आसार कहते हैं। 'धारासम्पात आसारः' इत्यमरः। भरत को देखने पर सीता की आँखों से आनन्द के आँसू धारा-प्रवाह के रूप में गिरने लगेंगे।

(६) उपेन्द्रवज्रा छन्द है।

४९—ततस्ताम्०—'हम्' विस्मयसूचक अव्यय। भरत को देखकर सीता को राम का भ्रम हुआ। सीता के कथन का भाव है कि जिस समय मैं कुटी से निकली, वे कुटी में थे, और अभी निकल कर यहाँ कैसे पहुँच गए। पूर्ण वाक्य इस प्रकार होगा—ततः उटजात्, तां वेलां यस्यामहं निष्क्रान्ता तस्यां वेलायां तत्र स्थितः आर्यपुत्रः, कथमिदानीं निष्क्रान्तः निष्क्रम्य इह स्थितः।

५१—भरतः—अये इयमत्रभवती जनकराजपुत्री।

इदं तत् स्त्रीमयं तेजो जातं क्षेत्रोदराद्धलात्।
जनकस्य नृपेन्द्रस्य तपसः सन्निदर्शनम्॥१४॥

आर्ये! अभिवादये। भरतोऽहमस्मि।

५२—सीता—(आत्मगतम्।) नहि रूपमेव। स्वरयोगोऽपि स एव। (प्रकाशम्।) वत्स! चिरं जीव। (णहि रूवं एव्व। सरजोओ वि सो एव्व।) (वच्छ! चिरं जीव।)

५३—भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि।

५४—सीता—एहि वत्स !, भ्रातृमनोरथं पूरय। (एहि वच्छ ! भादुमणोरहं पूरेहि।)

५५—सुमन्त्रः—प्रविशतु कुमारः।

५६—भरतः—तात ! इदानीं किं करिष्यसि।

५१—अन्वय—हलात् क्षेत्रोदरात् जातम् इदं तत् स्त्रीमयं तेजः, (यत्) नृपेन्द्रस्य जनकस्य तपसः सन्निदर्शनम्।

भरत—ओहो, ये तो पूजनीया जनक-पुत्री हैं।

यह वह स्त्री-मूर्तिधारी तेज है, जो कि हल जोतते समय पृथ्वी के गर्भ में से निकला था। महाराज जनक की तपस्या का यह उत्कृष्ट उदाहरण है ॥१४॥

आर्ये, प्रणाम। मैं भरत हूँ।

Bharata—Oh, here is that respectable daughter of king Janaka.

This is the lustre in a female form which has arisen out of the womb of the earth, (furrowed) by a plough, and which is the worthy proof of the penance of Janaka, the lord of kings. (14)

Noble lady, I salute you. I am Bharata.

५२—सीता—(स्वगत) रूप ही नहीं, अपितु स्वर भी वही (राम का सा) है। (ऊँचे स्वर से) वत्स, चिरंजीवी होओ।

Sītā—(To herself). Not only his form, but also the tone of voice is the same (as that of Rāma). (Aloud). My dear, be long-lived.

५३—भरत—मैं आपका अनुगृहीत हूँ।

Bharata—I am blessed.

५४—सीता—वत्स, आओ। अपने भाई के मनोरथ को पूर्ण करो।

Sītā—Come in, my dear. Fulfil the desire of your brother

५५—सुमन्त्र—कुमार, आप प्रवेश करें।

Sumantra—The prince should enter.

५६—भरत—तात, आप इस समय क्या करेंगे ?

Bharata—What will father do now ?

Notes

५१—(१) स्त्रीमयं तेजः—स्त्रीरूपधारी यह तेज है। कालिदास ने भी कहा है—

स्त्रीसंस्थानमप्सरस्तीर्थमारादुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम । शाकुन्तल ५.३०.

(२) क्षेत्रोदरात्—हलात् हलकृष्टात् भूमिमध्यात् उत्पन्नम्। वाल्मीकि रामायण में सीता की उत्पत्ति हल जोतते समय भूमि से बताई गई है।

अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः।
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता ॥

रामायण० बाल० ६६.१३.

(३) तपसः०—सन्निदर्शनं सदुदाहरणम्। सीता जनक की तपस्या का उत्तमप्रमाण हैं। (४) अनुष्टुप् छन्द है।

५६—(१) तात इदानीम्०—सुमन्त्र के इस कथन से कि भरत ही प्रवेश करें, भरत ने अनुमान किया कि सुमन्त्र उनके साथ नहीं जाना चाहते अतः प्रश्न किया कि 'आप क्या करेंगे ? यदि भरत और सुमन्त्र दोनों साथ प्रवेश करते तो भरत और राम का भ्रातृभावपूर्ण मेल उतना समुचित रूप में नहीं होता, क्योंकि सुमन्त्र को देखते ही राम को पिता की मृत्यु का ध्यान आ जाता।

५७—सुमन्त्रः—

अहं पश्चात् प्रवेक्ष्यामि स्वर्गं याते नराधिपे।
विदितार्थस्य रामस्य ममैतत् पूर्वदर्शनम् ॥१५॥

५८—भरतः—एवमस्तु। (राममुपगम्य।) आर्य ! अभिवादये भरतोऽहमस्मि।

५७—अन्वय—अहं पश्चात् प्रवेक्ष्यामि (यतोहि) नराधिपे स्वर्गं याते विदितार्थस्य रामस्य मम एतत् पूर्वदर्शनम् (अस्ति)।

सुमन्त्र—मैं बाद में प्रवेश करूँगा, क्योंकि महाराज (दशरथ) के दिवंगत होने के बाद इस (दशरथ की मृत्युरूपी) समाचार से अवगत राम से मेरी यह पहली भेंट होगी ॥१५॥

Sumantra—I will enter afterwards ; for since the demise of the king (Daśaratha), this is my first time to see Rāma who is aware of the fact. (15)

५८—भरत—ऐसा ही सही। राम के पास जाकर) आर्य, प्रणाम। मैं भरत हूँ।

Bharata—Let it be so. (Approaching Rāma.) Noble brother, I salute you. I am Bharata.

Notes

५७—(१) अहं पश्चात्०—सुमन्त्र ने भरत से कहा कि मैं आपके जाने के पश्चात् अन्दर जाऊँगा। सुमन्त्र क्यों बाद में राम के पास जाना चाहता है, यह उसने अपने वक्तव्य में स्पष्ट किया है। सुमन्त्र का कथन है कि राम महाराज दशरथ के स्वर्गवास का समाचार पहले से जानते हैं। महाराज के स्वर्गवास के बाद मैं आज पहली बार उनसे मिल रहा हूँ, अतः मुझे बाद में ही मिलना चाहिए। सुमन्त्र के कथन का भाव यह है कि सुमन्त्र को देखते ही राम को पिता का स्मरण आ जाएगा और वे भाई भरत से प्रेमपूर्वक मिलना भूलकर पिता की स्मृति में उदासीन और दुःखित होजाएँगे। यहाँ पर यह विचारणीय है कि राम को पिता के स्वर्गवास का समाचार कब मिला और किसने सुनाया ? बाल्मीकि रामायण के अनुसार भी राम को सर्वप्रथम पिता के स्वर्गवास का समाचार भरत से भेंट के समय ही मिला था। भास ने अब तक कहीं उल्लेख नहीं किया कि उन्हें यह समाचार ज्ञात हुआ। संभवत: भास ने नाटकीय दृष्टि से पुनरावृत्ति को दूर करने के लिये संक्षेप में यह कहकर विस्तार समाप्त किया कि राम को यह समाचार ज्ञात था। भास ने जो इस अंक में वर्णन किया है, उससे भी यही ज्ञात होता है कि 'राम को पिता के स्वर्गवास का समाचार ज्ञात है' ऐसा भास ने मान लिया

है। सुमन्त्र का जो विचार था कि उनको देखते ही राम को पिता का स्मरण आ जाएगा, इसकी पुष्टि अग्रिम १७ वें श्लोक से होती है।

(२) प्रवेक्ष्यामि—प्रवेशं करिष्यामि। प्रवेश करूँगा। प्र+विश्+लृट्।

(३) विदितार्थस्य०—विदितसमाचारस्य। जिसको पिता के निधन का समाचार ज्ञात है।

(४) अनुष्टुप् छन्द है।

५९—रामः—(सहर्षम्) एह्येहि इक्ष्वाकुकुमार! स्वस्ति। आयुष्मान् भव।

वक्षः प्रसारय कपाटपुटप्रमाण-
मालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं
प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ॥१६॥

६०—भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि।

६१—सुमन्त्रः—(उपेत्य) जयत्वायुष्मान्।

५९—अन्वय—कपाटपुटप्रमाणं वक्षः प्रसारय, सुविपुलेन भुजद्वयेन माम् आलिङ्ग। शरदिन्दुकल्पम् इदम् आननम् उन्नामय। व्यसनदग्धम् इदं शरीरं प्रह्लादय।

राम—(सहर्ष) आओ आओ इक्ष्वाकु कुमार। स्वस्ति, चिरंजीवी होओ।

किवाड़ के (दोनों) भागों के बराबर विशाल प्रमाण-युक्त अपनी छाती को फैलाओ। अपनी सुविशाल दोनों भुजाओं से मुझसे गले मिलो। शरत्कालीन चन्द्रमा के सदृश अपने इस मुख को उठाओ। विपत्तियों से जले हुए मेरे इस शरीर को आह्लादित करो ॥१६॥

Rāma—(With joy). Come, come, prince of the Ikṣvaku line. Hail to you be long-lived.

Stretch out your chest of the measure of the closed panels of a door , clasp me with your very extensive arms. Raise your face resembling the moon of autumn. Gladden this my body burnt by calamities (16)

(६० —भरत— मैं आपका अनुगृहीत हूँ।

Bharata—I am beholden to you.

(६१)—सुमन्त्र—(समीप जाकर) आयुष्मान् की जय हो !

Sumantra—(Approaching).May the long-lived one prosper !

Notes

५९—(१) इक्ष्वाकु कुमार—इक्ष्वाकुवंशज राजकुमार।

(२) कपाटपुटप्रमाणम्—कपाटपुटं सम्मिलितकपाटद्वयं प्रमाणं यस्य तत्। बहुव्रीहि। बन्द दोनों किवाड़ों के बराबर चौड़ाई वाले। 'पुट' शब्द का अर्थ है—गहरा स्थान, गड्ढा, मिली हुई कोई वस्तु आदि। यहाँ पर मिले हुए किवाड़ों के बराबर चौड़ाई वाला वक्षःस्थल अर्थ है। कालिदास ने भी कहा है—

कपाटवक्षाः परिणद्धकन्धरः। रघुवंश ३.३४.

(३) सुविपुलेन—विशालेन। बहुत विस्तृत।

(४) उन्नामय—उत्थापय। उठाओ। उत् + नम् + णिच् + लोट्।

(५) शरदिन्दुकल्पम्—ईषदसमाप्तः शरदिन्दुः शरच्चन्द्रः तद्वत्। शरत्कालीन चन्द्रमा के तुल्य। 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' से 'कुछ कम' अर्थ में कल्प, देश्य और देशीय प्रत्यय होते हैं।

(६) व्यसनदग्धम्—विपत्तिपीडितम्। 'व्यसन' शब्द का अर्थ है आपत्ति-विपत्ति, उससे जले हुए मेरे शरीर को आह्लादित करो। व्यसन—वि + अस् + ल्युट्। दग्ध—दह् + क्त।

(७) इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

६२—रामः—हा तात !

गत्वा पूर्वं स्वसैन्यैरभिसरिसमये खं समानैर्विमानै-
र्विख्यातो यो विमर्दे स स इति बहुशः सासुराणां सुराणाम् ।
स श्रीमांस्त्यक्तदेहो दयितमपि विना स्नेहवन्तं भवन्तं
स्वर्गस्थः साम्प्रतं किं रमयति पितृभिः स्वैर्नरेन्द्रैर्नरेन्द्रः ॥१७॥

६२—अन्वय—यः पूर्वं सासुराणां सुराणां विमर्दे अभिसरिसमये समानैः विमानैः स्वसैन्यैः खं गत्वा स स इति बहुशः विख्यातः, स श्रीमान् त्यक्तदेहः नरेन्द्रः दयितं स्नेहवन्तं भवन्तं विना अपि स्वर्गस्थः साम्प्रतं पितृभिः स्वैः नरेन्द्रैः रमयति (आत्मानम्) किम् ॥

राम—हा तात !

जो पहले देवासुर-संग्राम में (देवों के) सहायतार्थ प्रयाण के समय अपनी सेना के साथ देवों के विमानों के सदृश विमानों से स्वर्ग में जाकर 'वे हैं', 'वे हैं' इस प्रकार बहुत अधिक निर्दिष्ट किए जाते थे, क्या वे श्रीमान् महाराज (दशरथ) शरीर त्याग करने के बाद प्रिय और अनुरक्त आपके बिना भी स्वर्ग में इस समय अपने पूर्वज पितृगण महाराजों के साथ सुखोपभोग करते होंगे ? (अर्थात् नहीं) ॥१७॥

Rāma – Alas, father,

He, who formerly on the occasion of rendering assistance (to the gods) having gone to heaven with his forces borne in aerial vehicles like those of the gods, was often pointed out with the words ' there is he, there is he ', in the close fight between the demons and the gods—is that illustrious king (Daśaratha), leaving his body, without you although loved by him and affectionate towards him, now abiding in heaven revelling himself in the company of the kings his own forefathers ? (17)

Notes

६२—(१) हा तात!—यहाँ पर 'तात' शब्द सुमन्त्र के लिए ही समझना चाहिए। दशरथ के लिए नहीं, क्योंकि श्लोक का तृतीय चरण सुमन्त्र को संबोधित करता है। (भवन्तं विना० इत्यादि)

(२) स्वसैन्यैः—अपनी सेना के साथ। सेनया समवैति, सेना+ष्य, सैन्य

(३) अभिसरिसमये—सुरसाहाय्यार्थं गमन काले। देवों के सहायतार्थ प्रयाण के समय। 'अभिसरि' शब्द का अर्थ है—सहायतार्थ जाना। विशेष व्याख्या के लिए देखें अंक ३ वक्तव्य ४६ का विवरण।

(४) समानैः—देवसमानैः विमानैः। देवताओं के तुल्य विमानों से। कालिदास ने रघुवंश (५.२७) में लिखा है कि रघु का रथ आकाश में विमान के सदृश चलता था। भास ने आगे भी कहा है कि—

'तुल्यं सुरैः समुपयान्ति विमानवासम्' (अंक ५.१०)

(५) विख्यातः—निर्दिष्टः। देवों के द्वारा अनेक बार निर्दिष्ट। वि+चक्ष्+क्त। 'चक्षिङः ख्याञ्' (पा० २.४.५४) से चक्ष् को ख्या आदेश।

(६) विमर्दे—युद्धे। वि+मृद्+घञ्। युद्ध में।

(७) सासुराणां सुराणाम्—सासुराणाम् असुरैः सहितानां देवानाम्। राक्षसों के सहित देवों के युद्ध में। यहाँ पर यमक अलंकार है।

(८) त्यक्तदेहः—त्यक्तशरीरः। त्यक्तः देहो येन सः। बहुव्रीहि। शरीर त्याग करके।

(९) किं रमयति—यहाँ पर 'आत्मानम्' और जोड़ना चाहिए। क्या वे अपने पूर्वज पितरों के साथ आनन्द करते हैं? या 'रमते' के स्थान पर रमयति प्रयोग समझना चाहिए।

(१०) स्वैः नरेन्द्रैः—अपने पूर्वज पितर महाराजों के साथ।

(११) इस श्लोक में स्रग्धरा छन्द है। उसका लक्षण है—

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।

६३—सुमन्त्रः—(सशोकम् ।)

नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं भरतविषादमनाथतां कुलस्य ।
बहुविधमनुभूय दुष्प्रसह्यं गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥१८॥

६४—सीता—रुदन्तमार्यपुत्रं पुनरपि रोदयति तातः ।
(रोदन्तं अय्यउत्तं पुणो वि रोदाव्वोअदि तादो ।)

६३—अन्वय—नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं भरतविषादं कुलस्य अनाथतां बहुविधं दुष्प्रसह्यम् अनुभूय मे आयुषा गुणे बहु अपराद्धम् इव ।

सुमन्त्र——(शोक से)

महाराज (दशरथ) का देहावसान, आपका वनवास, भरत का दुःख और कुल की अनाथता, इन अनेक प्रकार की अतिदुःसह विपत्तियों को अनुभव करके मेरी (दीर्घ) आयु ने (दीर्घजीवन के) गुणों के प्रति बहुत बड़ा अपराध सा किया है ॥१८॥

Sumantra—(Sorrowfully.)

The king's death, your exile, Bharata's sorrow, and the helpless condition of the family—having thus experienced unbearable miseries of more than one kind my (long) life has, as it were, been guilty in what is an advantage to it. (18)

६४—सीता—रोते हुए आर्यपुत्र को तात और भी रुला रहे हैं ।

Sitā—Father is making my weeping husband weep again.

Notes

६३—(१) नरपतिनिधनम्—नरपतेः दशरथस्य निधनं मरणम् । तत्पुरुष । दशरथ के देहावसान को । क्रम की दृष्टि से 'भवत्प्रवासम्' के बाद यह चाहिए, क्योंकि राम के वनवास के बाद दशरथ का देहावसान हुआ है ।

(२) भवत्प्रवासम्—भवतः रामस्य प्रवासम् । तत्पुरुष । आपके वनवास को । प्रवास—प्र + वस् + घञ् ।

(३) भरतविषादम्—भरतस्य विषादं दुःखम् । तत्पुरुष । भरत के दुःख को । विषाद—वि+सद्+घञ् । पिता की मृत्यु और राम के वन-वास से दुःख ।

(४) अनाथतां कुलस्य - वंशस्य निराश्रयताम् । दशरथ की मृत्यु के कारण परिवार अनाथ हो गया है ।

(५) बहुविधमनुभूय—अनेक प्रकारकं दुःखम् अनुभूय । अनेक प्रकार के दुःखों का अनुभव करके । अनुभूय—अनु+भू+क्त्वा (ल्यप्) ।

(६) दुष्प्रसह्यम्—अतिदुःसहं दुःखजातम् । अतिदुःसह विपत्तियों को । यहाँ पर 'दुष्प्रसह्य' संज्ञा के तुल्य प्रयुक्त हुआ है और और इसका अर्थ है—दुःसह आपत्तियों को । दुष्प्रसह्य—दुर्+प्र+सह्+यत् । 'पोरदुपधात्' (पा० ३.१.६८) से यत् (य) प्रत्यय ।

(७) गुणे इव०—दीर्घजीवन गुण है, परन्तु इन विपत्तियों ने मेरे इस गुण को दुर्गुण बना दिया है । इन विपत्तियों को देखकर जीने की अपेक्षा मेरा अविलम्ब मर जाना अच्छा है । दीर्घ जीवन ने मेरे जीवन को बहुत बड़ा अपराधी बना दिया है । अप+राध् के साथ जिसके प्रति अपराध किया जाय उसमें सप्तमी होती है । अतः 'गुणे' में सप्तमी है । कालिदास ने भी ऐसा प्रयोग किया है—

कस्मिन्नपि पूजार्हे अपराद्धा शकुन्तला । शाकुन्तल अंक ४

यह श्लोक कुछ थोड़े परिवर्तन के साथ पुनः अंक ६ वक्तव्य ३२ में आया है । 'काव्यप्रकाश' (१०) में अर्थान्तरन्यास के उदाहरणों में इस श्लोक से बहुत मिलता हुआ एक श्लोक आया है—

अहो हि मे बह्वपराद्धमायुषा यदप्रियं वाच्यमिदं मयेदृशम् ।
त एव धन्याः सुहृदः पराभवं जगत्यदृष्ट्वैव हि ये क्षयं गताः ॥

(८) इस श्लोक में पुष्पिताग्रा छन्द है ।

६५—रामः—मैथिलि ! एष पर्यवस्थापयाम्यात्मानम् । वत्स ! लक्ष्मण ! आपस्तावत् ।

६६—लक्ष्मण—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

६७—भरतः—आर्य ! न खलु न्याय्यम् । क्रमेण शुश्रूषयिष्ये । अहमेव यास्यामि । (कलशं गृहीत्वा निष्क्रम्य प्रविश्य ।) इमा आपः ।

६८—रामः—(आचम्य ।) मैथिलि ! विशीर्यते खलु लक्ष्मणस्य व्यापारः ।

६९—सीता—आर्यपुत्र ! नन्वेतेनापि शुश्रूषयितव्यः । (अय्यउत्त ! णं एदिणा पि सुस्सूसइदव्वो ।)

७०—रामः—सुष्ठु खल्विह लक्ष्मणः शुश्रूषयतु । तत्रस्थो मां भरतः शुश्रूषयतु ।

६५—राम—मैथिलि, अच्छा मैं अपने आपको सँभालता हूँ । वत्स लक्ष्मण, जल तो लाना ।

Rāma—Maithilī, here I compose myself. Dear Lakṣmaṇa, just bring me water.

६६—लक्ष्मण—जैसी आपकी आज्ञा ।

Lakṣmaṇa—As my noble brother commands.

६७—भरत—आर्य, यह उचित नहीं है । (उत्पत्ति के) क्रम से मैं आपकी सेवा करूँगा । मैं ही जाऊँगा । (कलश लेकर बाहर जाकर और प्रविष्ट होकर) यह जल है ।

Bharata—Noble brother, this is not at all just. I will serve you according to the order (of birth).I shall myself go. (Taking the jar, going out and entering.) Here is water.

६८—राम—(आचमन करके) मैथिलि, लक्ष्मण का काम वस्तुतः समाप्त हो रहा है ।

Rāma—(Sipping the water.) Maithilī, Lakṣmaṇa's business is, indeed, obstructed.

६९—सीता—आर्यपुत्र, क्यों ? ये (भरत) भी आपकी सेवा करें ।

Sitā—Husband, why ? You are to be served by this (Bharata) also.

७०—राम—अच्छा तो यहाँ लक्ष्मण सेवा करें और वहाँ (अयोध्या) में रहते हुए भरत मेरी सेवा करें ।

Rāma—It is surely proper that Lakṣmaṇa should serve me here, let Bharata, staying there (in Ayodhyā) serve me.

Notes

६५—(१) पर्यवस्थापयामि—प्रकृतौ आरोपयामि, शोकं निगृह्णामि इत्यर्थः । अपने शोक को रोकता हूँ । पर्यवस्थापन का अर्थ है—स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त होना । परि+अव+स्था+णिच्+लट् ।

(२) आपस्तावत्—यह पहले अंक २६० में आ चुका है ।

६७—(१) आर्य—यह राम के लिए है ।

(२) क्रमेण शुश्रूषयिष्ये—पूर्वापरक्रमेण सेवां करिष्यामि । यहाँ पर क्रम का भाव यह है कि सबसे छोटे को पहले सेवा करनी चाहिये । भास के वर्णन से ज्ञात होता है कि भास भरत को लक्ष्मण से छोटा मानते हैं । अतएव भरत ने लक्ष्मण को देखकर कहा था—'एवं गुरुरम' (४. ३२) । कालिदास ने भी रघुवंश में इसका अनुसरण किया है—

व्युत्क्रम्य लक्ष्मणमुभौ भरतो ववन्दे । रघुवंश १३.७२

परन्तु वाल्मीकि रामायण और पद्मपुराण के अनुसार भरत बड़े हैं और लक्ष्मण छोटे ।

अन्येद्युः पाञ्चजन्यात्मा कैकेय्यां भरतोऽभवत् ।
तदन्येद्युः सुमित्रायामनन्तात्मा च लक्ष्मणः ॥

(३) शुश्रूषयिष्ये—श्रु+सन्+णिच्+लृट् । पाणिनीय व्याकरण के अनुसार यह प्रयोग ठीक नहीं है । श्रु धातु से सन् प्रत्यय करने पर 'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः' (पा० १.३.५७) से आत्मनेपद होता है । अतः 'शुश्रूषयिष्ये' रूप होना चाहिए । परन्तु भास ने सन्प्रत्यय करके चुरादिगणी धातु के तुल्य

इससे णिच् प्रत्यय करके उभयपदी अर्थात् परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों में रूप माने हैं। देखें वक्तव्य नं० ७० में परस्मैपदी प्रयोग। कालिदास का प्रयोग ठीक है—'शुश्रूषस्व गुरून्०' (शाकुन्तल ४.१७)

७१—भरतः–प्रसीदत्वार्यः।

इह स्थास्यामि देहेन तत्र स्थास्यामि कर्मणा।
नाम्नैव भवतो राज्यं कृतरक्षं भविष्यति ॥१९॥

७२—रामः—वत्स, कैकेयीमातः! मा मैवम्।

पितुर्नियोगादहमागतो वनं
न वत्स! दर्पान्न भयान्न विभ्रमात्।
कुलं च नः सत्यधनं ब्रवीमि ते
कथं भवान् नीचपथे प्रवर्तते ॥२०॥

७१—**अन्वय**—इह देहेन स्थास्यामि, तत्र कर्मणा स्थास्यामि। भवतः नाम्ना एव राज्यं कृतरक्षं भविष्यति।

भरत—आप मुझ पर (ऐसा करने की) कृपा करें। मैं शरीर से यहाँ रहूँगा, वहाँ (अयोध्या में) मैं (राज्य की सुरक्षारूपी) अपने कार्यों के द्वारा रहूँगा। आपके नाम मात्र से ही राज्य की सुरक्षा हो जाएगी ॥१९॥

Bharata—My noble brother be pleased (to allow this). Here I will stay in body; there (in Ayodhyā by my work of administration). The kingdom will be protected by (the influence of) your name. (19)

७२—**अन्वय**—वत्स! अहं पितुः नियोगात् वनम् आगतः, न दर्पात् न भयात् न विभ्रमात्। नः कुलं च सत्यधनं (इति) ते ब्रवीमि, भवान् कथं नीचपथे प्रवर्तते।

राम—वत्स कैकेयीनन्दन, नहीं, नहीं ऐसा मत कहो।

बत्स, मैं पिता की आज्ञा से वन में आया हूँ, न तो अभिमान के कारण, न भय से और न चित्त-विक्षेप के कारण। तुम्हें यह ज्ञात होना चाहिए कि

हमारा वंश सत्य-निष्ठ (सत्यव्रती) है। फिर आप क्यों इस नीचों के मार्ग पर चल रहे हैं ॥२०॥

Rāma—Dear child, son of Kaikayi, say not so, say not so.

I have come to the forest at the bidding of my father, and not, dear brother, through pride, or fear or through delusion. And our family. I tell you, regards truth as its treasure. How do you take to the path followed by the low? (20)

Notes

७१—(१) देहेन०—राम ने इससे पूर्व वाक्य में कहा था कि लक्ष्मण वन में साथ रह कर सेवा करे और भरत अयोध्या में रह कर पिता के आज्ञानुसार राज्य-पालन द्वारा मेरी सेवा करे। भरत ने उसके उत्तर में एक सुझाव प्रस्तुत किया कि—मैं शरीर से तो यहाँ रहकर आपकी सेवा करूँगा और अयोध्या में अपने स्थानापन्न मन्त्रियों आदि को नियुक्त कर राज्य-संचालन का प्रबन्ध पूरा कर दूँगा। इस प्रकार दोनों कार्य पूर्ण हो जाएँगे! भास ने बालचरित में भी ऐसा कहा है—

हृदयेनेव तत्राङ्गैर्द्विधाभूतेव गच्छति।

यथा नभसि तोये च चन्द्रलेखा द्विधाकृता ॥ बालचरित १.१३.

(२) भवतः नाम्ना एव—भरत का भाव यह है कि मैं राज्य की रक्षा के लिए मन्त्रियों को नियुक्त कर दूँगा और वे आपकी ओर से राज्य का प्रबन्ध करें। राज्य आपका ही माना जाएगा। दूसरा भाव यह भी है कि राम के नाम का इतना प्रताप है कि राज्य स्वयं सुरक्षित रहेगा।

(३) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

७२—(१) पितुर्नियोगात्०—पितुराज्ञया। पिता की आज्ञा से वन में आया हूँ।

(२) न दर्पात्०—न तो मैं दुरभिमान के कारण ही यहाँ आया हूँ, न

मुझे किसी का भय है और न अज्ञानवश ही आया हूँ। मुझे अपने कर्तव्यों का ज्ञान है।

(३) कुलं च नः०—हमारा कुल अर्थात् रघुकुल सत्य को ही सर्वस्व मानता आया है, अतः तुम्हें भी सत्य का पालन करना चाहिये। पिता ने तुम्हें राज्य दिया है, अतः तुम उसका पालन करो। उसको छोड़ कर यहाँ रहना उचित नहीं है। पिता की आज्ञा का पालन न करना नीचों के द्वारा सेवित मार्ग है।

(४) इस श्लोक में वंशस्थ छन्द है।

७३—सुमन्त्रः—अथेदानीमभिषेकोदकं क्व तिष्ठतु।

७४—रामः—यत्र मे मात्राभिहितं तत्रैव तावत् तिष्ठतु।

७५—भरतः—प्रसीदत्वार्यः। आर्य ! अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम्।

अपि सुगुण ! ममापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः
स खलु निभृतधीमांस्ते पिता मे पिता च।
सुपुरुष ! पुरुषाणां मातृदोषो न दोषो
वरद ! भरतमार्तं पश्य तावद् यथावत् ॥२१॥

७३—सुमन्त्र—अब यह अभिषेक का जल कहाँ रहे (अर्थात् किस पर छोड़ा जाय ?

Sumantra—Now where should the water for the coronation lie ?

७४—राम—जहाँ मेरी माता ने कहा है, वहीं यह रहे (अर्थात् उसी पर छोड़ा जाय)।

Rāma—Let it be just there, where my mother said it should.

७५—अन्वय—सुगुण ! त्वत्प्रसूतिः मम अपि प्रसूतिः अपि ?, निभृ-

तधीमान् स खलु ते पिता मे च पिता। सुपुरुष ! मातृदोषः पुरुषाणां न दोषः, वरद ! आर्तं भरतं यथावत् पश्य तावत्।

भरत—आर्य, मुझ पर कृपा कीजिये। आर्य, अब चोट पर प्रहार न कीजिए (कटे पर नमक मत छिड़किए)।

हे गुणिवर ! क्या आपका वंश मेरा भी वंश नहीं है ? वे अतिश्रेष्ठ बुद्धिमान् (महाराज) आपके और मेरे पिता थे। हे सत्पुरुष ! माता के दोष से पुरुष (पुत्र) दोषी नहीं होता। हे वरद, इस दुःखित भरत को यथोचितरूप से तो देखिये ॥२१॥

Bharata—Be pleased, my noble brother. Noble brother, you should not strike at the wound now.

O you possessed of excellent virtues, is not your race my race also ? And surely that eminently talented (king) is your father and my father as well. Good man, the fault of a mother does not attach itself to men. O granter of a boon, do look at Bharata, who is distressed, in the proper light. (21)

Notes

७३—अभिषेकोदकम्—सुमन्त्र ने जब यह देखा कि दोनों भाइयों में से कोई भी राज्य स्वीकार करने के लिए उद्यत नहीं है, तब उसने निश्चय के लिए प्रश्न पूछा कि अभिषेक किसका किया जाय ?

७४—यत्र मे माता०—अर्थात् माता ने जिसके लिए आदेश दिया है, उसी का अभिषेक किया जाय, क्योंकि माता की आज्ञा भी टाली नहीं जा सकती।

७५—(१) अलमिदानीम्०—हिन्दी लोकोक्ति में इसका भाव है—जले पर नमक न छिड़कें। कैकेयी के कथन के कारण भरत अपने आप को क्षत-विक्षत अनुभव कर रहे थे, अतः राम के इस कथन से उन्हें बहुत पीड़ा हुई।

(२) अपि—यहाँ पर प्रश्नार्थक अव्यय समझना चाहिए, 'न किम्' इस अर्थ में। क्या आपका और मेरा कुल एक ही नहीं है ?

(३) त्वत्प्रसूतिः—प्रसूयते अनया इति प्रसूति—प्रभवः, उत्पत्तिस्थानम्। तत्र प्रसूतिः वंशः। आपका 'प्रसूति' अर्थात् वंश। प्रसूति—प्र+सू+क्तिन्।

(४) निभृतधीमान्—नितरां भृता निभृता स्थिरा निश्चला श्रेष्ठा वा धीः बुद्धिः अस्यास्तीति। अतिनिश्चल या अतिश्रेष्ठ बुद्धि वाले पिता दशरथ।

(५) मातृदोषः—मातृकृतापराधः। माता का दोष पुत्र को नहीं लगता है। यदि पुत्र में वस्तुतः कोई त्रुटि नहीं है तो माता के दोष से दोषी नहीं होगा।

(६) आर्तम्०—मुझ दुःखित भरत को उचितरूप से देखिए अर्थात् मेरी दयनीय दशा देख कर मुझ पर दयादृष्टि कीजिए।

(७) इस श्लोक में मालिनी छन्द है।

७६—सीता—आर्यपुत्र ! अतिकरुणं मन्त्रयते भरतः। किमिदानीमार्यपुत्रेण चिन्त्यते। (अय्यउत्त ! अदिकरुणं मन्तेअइ भरदो। किं दाणिं अय्यउत्तेण चिन्तीअदि।)

७७—(क) रामः—मैथिलि !

तं चिन्तयामि नृपतिं सुरलोकयातं
येनायमात्मजविशिष्टगुणो न दृष्टः।
ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य लोके
धिग् भो विधेर्यदि बलं पुरुषोत्तमेषु ॥२२॥

७६— सीता—आर्यपुत्र, भरत अति करुणापूर्वक बात कह रहे हैं। आर्यपुत्र अब क्या सोच रहे हैं ?

Sīta—Husband, Bharata is speaking very piteously. What is my husband thinking about now ?

७७—(क) अन्वय—सुरलोकयातं नृपतिं चिन्तयामि, येन अयम् आत्मज विशिष्टगुणः न दृष्टः। लोके इदंविधं गुणनिधिं (पुत्रम्) समवाप्य, पुरुषोत्तमेषु यदि विधेः बलं, भो धिक्।

राम—मैथिलि,

मैं उस दिवंगत महाराज का स्मरण कर रहा हूँ, जिसने अपने पुत्र (भरत) के इस अनुपम गुण (भ्रातृप्रेम आदि) को नहीं देखा। संसार में इस प्रकार के गुण-निधि (पुत्र) को प्राप्त करने पर भी यदि पुरुषोत्तमों पर (अर्थात् महाराज दशरथ जैसे पर) भाग्य का प्रभाव अटल है। कि वे काल-कवलित हुए) तो ऐसे भाग्य को धिक्कार है ॥२२॥

Rāma—Maithili.

I am thinking of that king, gone to heaven, by whom this excellent quality of his son (Bharata) was not seen. Oh, it is pity, if the power of fate is able to exercise its evil influence in the case of the best of persons even when they have secured in this world such a son (as Bharata), who is a store of a good qualities. (22).

Notes

७६—अतिकरुणम्०—अपनी स्वाभाविक हार्दिक कोमलता के कारण सीता ने भरत की दयनीय दशा का अनुभव किया और समुचित दयाभाव प्रदर्शित करने के लिए राम को संकेत किया। पहले भी सीता लक्ष्मण के विषय में अपनी कोमलता प्रकट कर चुकी हैं। 'दयतां खलु आर्यपुत्रः। तप्यते सौमित्रिः।' (१.१४२)

७७—(१) चिन्तयामि—यह 'किं चिन्त्यते०' आदि सीता के प्रश्न का उत्तर है। चिन्त्यते का उत्तर 'चिन्तयामि' से दिया है। वस्तुतः दोनों स्थानों पर 'चिन्त्' धातु के अर्थ में अन्तर है, सीता ने पूछा था—क्या सोच रहे हैं? राम ने उत्तर दिया है—'मैं पिता का स्मरण कर रहा हूँ।'

(२) सुरलोकयातम्०—देवलोकगतं, दिवंगतम्। दिवंगत, मृत।

(३) आत्मजविशिष्ट०—आत्मजस्य विशिष्टः गुणः भ्रातृप्रेमादिरूपः। षष्ठी तत्पुरुष। पुत्र का यह विशिष्टगुण। यहाँ पर कर्मधारय समास भी संभव है—आत्मजः चासौ विशिष्टगुणः। विशिष्टगुणयुक्त पुत्र। यहाँ पर 'आत्मजेषु विशिष्टगुणः' सप्तमी तत्पुरुष समास जैसा कि गणपतिशास्त्री आदि ने किया है, अधिक उपयुक्त नहीं है, क्योंकि सर्वश्रेष्ठ-पुत्र कहने पर लक्ष्मण को बुरा अनुभव हो सकता था। रामायण के अनुसार भी दशरथ भरत को अत्यधिक गुणी एवं धर्मात्मा मानते थे—

न कथं चिद् ऋते रामाद् भरतो राज्यमावसेत्।
रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्॥ अयोध्या० १२.६१.

(४) न दृष्टः—इसका भाव है कि इस समय भरत को न देख सके।

(५) विधेर्यदि०—यदि भरत जैसे पुत्र को प्राप्त करने पर भी महाराज दशरथ पर भाग्य अपना बल दिखा सकता है—तो उसे धिक्कार है। पुरुषेषु उत्तमः—पुरुषोत्तमः, सर्वश्रेष्ठ पुरुष। पहले भी ऐसा भाव आ चुका है—

अहो बलवान् मृत्युरेतामपि रक्षामतिक्रान्तः। (३.५०)

(६) इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है

(ख) वत्स कैकेयीमातः!

यत्सत्यं परितोषितोऽस्मि भवता निष्कल्मषात्मा भवां-
स्त्वद्वाक्यस्यवशानुगोऽस्मि भवतः ख्यातैर्गुणैर्निर्जितः।
किन्त्वेतन्नृपतेर्वचस्तदनृतं कर्तुं न युक्तं त्वया
किञ्चोत्पाद्य भवद्विधं भवतु ते मिथ्याभिधायी पिता॥२३॥

(ख) अन्वय—यत् सत्यं भवता परितोषितः अस्मि। भवान् निष्कल्मषात्मा, भवतः ख्यातैः गुणैः निर्जितः त्वद्वाक्यस्य वशानुगः अस्मि। किन्तु एतत् नृपतेः वचः, तत् त्वया अनृतं कर्तुं न युक्तम्। किञ्च भवद्विधम् उत्पाद्य, ते पिता मिथ्याभिधायी भवतु॥

वत्स कैकेयी-नन्दन,

वस्तुतः मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम्हारी अन्तरात्मा निष्पाप है, तुम्हारे विख्यात

गुणों से विजित मैं तुम्हारे कथनानुसार चलने को उद्यत हूँ। किन्तु (भरत राजा होवे) यह महाराज का कथन है, और उसको असत्य सिद्ध करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। और क्या तुम्हारे जैसे (सुयोग्य) पुत्र को उत्पन्न करके तुम्हारे पिता मिथ्यावादी बनें ? ॥२३॥

Child, son of Kaikeyi.

Truly I am pleased with you ; you have a guiltless mind ; I am prepared to do whatever you propose, for I am subdued by your well known virtues; but here is the kings behest and it does not behave you to make it vain. Moreover, having generated a son of your type should your father be the utterer of a falsehood ? (23)

Notes

(ख)—(१) परितोषितोऽस्मि—सन्तोषं नीतोऽस्मि। प्रसन्न किया गया हूँ। परितोषित—परि+तुष्—णिच्+क्त। तुमने मुझे प्रसन्न कर लिया है।

(२) निष्कल्मषात्मा०—निष्कल्मषः निष्पापः आत्मा यस्य सः। बहुव्रीहि। तुम्हारी आत्मा पापरहित है। राम ने इस कथन के द्वारा भरत के इस सन्देह को दूर किया है कि वह दोषी है, जैसा कि भरत ने 'अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम्' में निर्देश किया था। राम भरत को निष्पाप समझते हैं।

(३) त्वद्वाक्यस्य—त्वत्कथनस्य। तुम्हारे कथन का।

(४) वशानुगः—वशवर्ती। कथनानुसार चलने वाला।

(५) ख्यातैः गुणैः—प्रसिद्धैः गुणैः। तुम्हारे सर्वत्र विख्यात गुणों से

(६) निर्जितः— विजितः, पराजितः। जीता गया या हारा हुआ। निर्+जि+क्त।

(७) एतत् नृपतेः वचः—'भरत ही राजा हों' इस महाराज के वचन को। रामायण में भी इसी प्रकार का भाव आया है कि—

भवानपि तथेत्येव पितरं सत्यवादिनम्।
कर्तुमर्हसि राजेन्द्र क्षिप्रमेवाभिषिञ्चनात्॥ रामा० अयोध्या० १०७. ६.

राम का कथन है कि तुम महाराज के कथन को स्वीकार करके अभिषेक की स्वीकृति दो।

(८) किञ्चोत्पाद्य—तुम्हारे जैसे पुत्ररत्न को उत्पन्न करके क्या पिता मिथ्यावादी सिद्ध हों? अर्थात् कभी नहीं। यहाँ पर 'किम्' प्रश्नवाचक है। 'ते पिता मिथ्याभिधायी भवतु किम्?'। (नैव भवतु इत्यर्थः)। उत्पाद्य—उत्+पत्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) उत्पन्न करके। मिथ्याभिधायी—मिथ्या असत्यम् अभिधातुं वक्तुं शीलं यस्य सः। मिथ्या+अभि+धा+णिनिः। 'सुप्यजातौ०' से णिनि प्रत्यय।

(९) इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

७८—भरतः—

याबद् भविष्यति भवन्नियमावसानं
तावद् भवेयमिह ते नृप! पादमूले।

७९—रामः—

मैवं, नृपः स्वसुकृतैरनुयातु सिद्धिं
मे शापितो, न परिरक्षसि चेत् स्वराज्यम् ॥२४॥

८०—भरतः—हन्त अनुत्तरमभिहितम्। भवतु समयतस्ते राज्यं परिपालयामि।

८१—रामः—वत्स! कः समयः।

८२—भरतः—मम हस्ते निक्षिप्तं तव राज्यं चतुर्दशवर्षान्ते प्रतिग्रहीतुमिच्छामि।

८३—रामः—एवमस्तु।

७८—अन्वय—यावत् भवन्नियमावसानं भविष्यति तावत् नृप! इह ते पादमूले भवेयम्।

भरत—जब तक आपके (चौदह वर्ष वन-वासरूपी) नियम की समाप्ति न हो तब तक हे नृप, आपके चरणों में रहूँ।

Bharata—Until your vow (of fourteen years) comes to an end—king, at your feet till then I will reside here.

७६—अन्वय—मा एवं, नृपः स्वसुकृतैः सिद्धिम् अनुयातु। स्वराज्यं न परिरक्षसि चेत्, मे शापतिः (असि)।

राम—ऐसा मत करो, महाराज अपने पुण्यों से (स्वर्ग में) सिद्धि प्राप्त करें। तुम्हें मेरे प्राणों की शपथ है, यदि तुम अपने राज्य की रक्षा न करो ॥२४॥

Rāma—Act not so; let the king attain his goal (in heaven) by his own good deeds. I conjure you with my life if you will not protect your kingdom. (24)

८०—भरत—हाय, आपने ऐसी बात कह दी है कि मुझे निरुत्तर कर दिया है। अच्छा एक समय (शर्त) पर आप के राज्य का पालन करूँगा।

Bharat—Alas, you have spoken in a way which leaves no room for a reply. Well, I will protect kingdom on a condition..

८१—राम—वत्स, वह क्या समय (शर्त) है?

Rāma—Dear one, what is that condition?

८२—भरत—मेरे हाथ में धरोहर के रूप में रक्खे हुए अपने राज्य को चौदह वर्ष बाद आप पुनः ग्रहण करेंगे।

Bharata—I desire you to take back your kingdom, deposited in my hands, at the end of fourteen years.

८३—राम—एवमस्तु। (ऐसा ही हो)।

Rāma—Let it be so.

Notes

७८—यावत्०—'यावत्' का अर्थ यहाँ पर है—'जब तक नहीं'। भवतः चतुर्दशवर्षवनवासरूपस्य नियमस्य अवसानं समाप्तिः। तत्पुरुष। जब तक आपके चौदह वर्ष वनवास की प्रतिज्ञा की पूर्ति नहीं हो जाती, तब तक

मैं आपके चरणों में रहूँगा। 'नृप' संबोधन से भरत सूचित करते हैं कि आप ही राजा हैं।

७९—(१) मैवम्०—मा एवं ब्रूहि कुरु वा। ऐसा मत करो या ऐसा मत कहो कि राज्य छोड़ कर यहाँ रहूँगा।

(२) स्वसुकृतैः—स्वपुण्यैः। महाराज अपने सत्यवादिता के पुण्य से सिद्धि को प्राप्त करें। यदि तुम राज्य स्वीकार नहीं करते तो वे मिथ्यावादी सिद्ध होंगे और उन्हें वह सिद्धि प्राप्त नहीं होगी, अतः मैं अपने प्राणों की शपथ देता हूँ कि तुम अवश्यमेव राज्य की रक्षा करो। अतः रामायण में भी कहा है—

तस्मात् त्राहि नरश्रेष्ठ पितरं नरकात् प्रभो। अयोध्या० १०७ १४.

(३) मे शापितः०—व्याकरण का नियम है कि 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' (पा० ८. १. १८) अर्थात् ते, मे, त्वा, मा आदि आदेश पाद के प्रारम्भ में नहीं होते। यहाँ पर 'मे' यह चतुर्थ पाद के प्रारम्भ में है, अतः व्याकरण के अनुसार यह प्रयोग ठीक नहीं है। पाद के बीच में कहीं भी इसे रख सकते हैं, पर पाद के प्रारम्भ में नहीं। 'मे' को 'विभक्तिप्रतिरूप अव्यय' मानने पर इसका अर्थ होगा—'मया हेतुना' मेरी शपथ है कि।

(४) स्वराज्यम्—स्वस्य राज्यम्। तत्पुरुष। अपने राज्य को।

(५) इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

८०—(१) अनुत्तरम्०—नास्ति उत्तर यस्मिन् कर्मणि तत्। जिसका कोई उत्तर नहीं हो सकता है, ऐसा आपका कथन है।

(२) समयतः—समयपूर्वकम्। समय शब्द का अर्थ शर्त भी है। यहाँ पर शर्त अर्थ है। एक शर्त पर राज्य-पालन कर सकता हूँ। 'समय' के अर्थ हैं—

समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः। इत्यमरः।

८२—(१) निक्षिप्तम्—निक्षेपरूपेण स्थापितम्। धरोहर के रूप में रक्खे हुए। नि+क्षिप्+क्त। निक्षेप का अर्थ है—धरोहर।

(२) प्रतिग्रहीतुम् इच्छामि—भास का यह प्रयोग व्याकरण की दृष्टि

से ठीक नहीं है । इस रूप को मानने पर अर्थ होगा कि 'मैं चौदह वर्ष बाद राज्य को फिर से लूँगा।' परन्तु भास जो यहाँ पर कहते हैं, वह यह है कि राम चौदह वर्ष बाद राज्य को पुनः स्वीकार कर लें । अतः यहाँ पर 'प्रतिग्राहयितुम् इच्छामि' प्रयोग होना उचित है अन्यथा वाक्य का अर्थ ठीक नहीं हो सकता । इसी प्रकार पहले भी एक प्रयोग आ चुका है—

तात ! अभिवादन क्रममुपदेष्टुमिच्छामि ॥३.८॥

८३—एवमस्तु—राम भरत की माँग को स्वीकार करते हैं कि अच्छा ऐसा ही होगा ।

८४—भरतः—आर्य ! श्रुतम् । आर्ये ! श्रुतम् । तात ! श्रुतम् ।

८५—सर्वे—वयमपि श्रोतारः ।

८६—भरतः—आर्य ! अन्यमपि वरं हर्तुमिच्छामि ।

८७—रामः—वत्स ! किमिच्छसि । किमहं ददामि । किमहमनुष्ठास्यामि ।

८८—भरतः—

पादोपभुक्ते तव पादुके मे
एते प्रयच्छ प्रणताय मूर्ध्ना ।
यावद् भवानेष्यति कार्यसिद्धिं
तावद् भविष्याम्यनयोर्विधेयः ॥२५॥

८४—भरत—आर्य (लक्ष्मण), आपने यह सुना ? आर्या (सीता), आपने सुना ? तात (सुमन्त्र), आपने सुना ?

Bharata—Noble brother (Lakṣmaṇa), have you heard this ; revered Sītā, have you heard this ; father, have you heard this ?

८५—सब—हाँ, हम सबने भी यह सुना है ।

All—we all have heard it

८६—भरत—आर्य, मैं एक दूसरा वर भी आपसे लेना चाहता हूँ।

Bharata—Noble brother, I wish to seek another boon also.

८७—राम—वत्स, क्या चाहते हो? क्या दूँ? क्या तुम्हारे लिए करूँ?

Rāma—Dear one, what is it that you wish for; what shall I give you; what shall I do for you?

८८—अन्वय—तव पादोपभुक्ते एते पादुके मूर्ध्ना प्रणताय मे प्रयच्छ। यावत् भवान् कार्यसिद्धिम् एष्यति, तावत् अनयोः विधेयः भविष्यामि।

भरत—मुझ शिरोवनत को अपने चरणों द्वारा उपभुक्त ये दोनों पादुकाएँ दीजिए। जब तक आप अपने कार्य की सिद्धि को प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक मैं इनका आज्ञाकारी रहूँगा ॥२५॥

Bharata—Give these two sandals used for your feet to me, who have bowed to you with my head. I will act in obedience to these until you achieve your object. (25)

Notes

८४—आर्य०—'आर्य' शब्द यहाँ पर लक्ष्मण के लिए है। और 'तात' सुमन्त्र के लिए। 'श्रुतम्' का अर्थ यहाँ पर यह है कि आप लोगों ने राम के कथन को सुन लिया है, आप इस बात के साक्षी हैं कि वे पुनः राज्य स्वीकार करेंगे।

८६—वरं हर्तुम्०—वर लेना अर्थात् वर मांगना चाहता हूँ। 'हृ' धातु मांगने अर्थ में यहाँ प्रयुक्त हुई है।

८८—(१) पादोपभुक्ते—पादाभ्यां चरणाभ्याम् उपभुक्ते। तत्पुरुष। पैरों के द्वारा उपयोग में लाई गई, अपनी पादुकाएँ (खड़ाऊँ) मुझे दीजिए। उपभुक्त—उप+भुज्+क्त (त)।

(२) मूर्ध्ना प्रणताय—शिरसा प्रणमते। शिर झुकाकर प्रणाम करते हुए। प्रणत—प्र+नम्+क्त (त)। 'अनुदात्तोपदेश०' सूत्र से म् का लोप।

(३) यावद् भवान्०—जब तक आपके कार्य की सिद्धि नहीं हो जाएगी अर्थात् जब तक आपके प्रतिज्ञा-पालनरूपी वनवास के चौदह वर्ष नहीं बीत जाएंगे तब तक। यावत् का अर्थ यहाँ है—जब तक नहीं। 'यावद् भवान् न एष्यति' पूर्ण वाक्य होगा। इसी प्रकार 'यावद् भविष्यति भवन्नियमावसानम्' (४.७८) में भी 'जबतक नहीं' अर्थ 'यावत्' का है।

(४) विधेयः—वशवर्ती। आज्ञाकारी। विधेय का अर्थ आज्ञाकारी, नौकर आदि है। वाल्मीकि रामायण में पादुका को राजगद्दी पर रखकर उसके अधीन होकर भरत के राज्य करने का वर्णन इस प्रकार आता है—

अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेमभूषिते।
एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः॥ अयोध्या० ११२. २१.
चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम्।
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन।
तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परन्तप॥

(५) इस श्लोक में इन्द्रवज्रा छन्द है।

८९—रामः—(स्वगतम्।) हन्त भोः!

सुचिरेणापि कालेन यशः किञ्चिन्मयार्जितम्।
अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य सञ्चितम् ॥२६॥

९०—सीता—आर्यपुत्र! ननु दीयते खलु प्रथमयाचनं भरताय। (अय्यउत्त! णं दीयदि खु पुडमजाअणं भरदस्स।)

९१—रामः—तथास्तु। वत्स! गृह्यताम्। (पादुके अर्पयति।)

९२—भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। (गृहीत्वा) आर्य! अत्राभिषेकोदकमावर्जयितुमिच्छामि।

९३—रामः—तात! यदिष्टं भरतस्य तत् सर्वं क्रियताम्।

९४—सुमन्त्रः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्।

८६—अन्वय—मया सुचिरेण अपि कालेन किञ्चित् यशः अर्जितम् । भरतेन अचिरेण एव कालेन अद्य (सुमहत् यशः) सञ्चितम् ॥

राम—(स्वगत) ओह ! क्या ही प्रसन्नता की बात है !

मैंने बहुत अधिक समय में थोड़ा सा यश संचित किया था, परन्तु भरत ने बहुत ही थोड़े समय में आज (इतना अधिक यश) एकत्र कर लिया है ॥२६॥

Rāma—(To himself.) Oh ! What a joy !

I obtained slight fame after a long time, while Bharata has earned that (eminently) today just in a short time. (26)

६०—सीता—आर्यपुत्र, आशा है आप भरत की याचना को स्वीकार करेंगे ।

Sitā—Husband, I hope Bharata's first wish will be granted to him.

६१—राम—तथास्तु । वत्स, यह लो । (दोनों पादुकाएँ देते हैं ।)

Rāma—Let it be so. Dear one, take these. (He gives the sandals)

६२—भरत—मैं आपका अनुगृहीत हूँ । (पादुकाएँ लेकर) आर्य, इन पर अभिषेक का जल डलवाना चाहता हूँ ।

Bharata—I am obliged to you. (Taking them) Noble brother, I wish to have the coronation-water poured on these.

६३—राम—तात, भरत को जो कुछ रुचिकर हो, वह सब कुछ कीजिए ।

Rāma—Father, do all that is desired by Bharata.

६४—सुमन्त्र—जैसी आप की आज्ञा ।

Sumantra—As the long-lived one commands.

Notes

८९—(१) हन्त—यहाँ पर हर्षसूचक अव्यय है । हन्त के अर्थ हैं—हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः । इत्यमरः ।

(२) सुचिरेण कालेन—भूयसा कालेन। बहुत अधिक समय में मैंने बहुत थोड़ा यश इकट्ठा किया है।

(३) अर्जितम्—सगृहीतम्। इकट्ठा किया। अर्ज + क्त।

(४) अचिरेण कालेन—अल्पीयसा कालेन। बहुत कम समय में।

(५) संचितम्—उपार्जितम्। एकत्र कर लिया। यहाँ पर कर्म का निर्देश नहीं है कि क्या संग्रह कर लिया। भास ने पाठक के ऊपर छोड़ दिया है कि वह समझे। यहाँ पर 'सुमहत् यशः' (बहुत अधिक यश) का अध्याहार किया जाएगा। इस प्रकार दोनों का अन्तर स्पष्ट होगा कि—राम ने बहुत दिनों में बहुत थोड़ा यश प्राप्त किया और भरत ने बहुत थोड़े समय में बहुत अधिक यश प्राप्त कर लिया।

(६) अनुष्टुप् छन्द है।

९०—प्रथमयाचनम्—भरत की प्रथम बात समय (शर्त) थी, यह उसकी याचना (मांग) है, वर-याचना है। अतः सीता ने प्रथमयाचन कहा है।

९२—(१) अत्राभिषेक०—पादुकाओं पर अभिषेक का जल डलवाना चाहता हूँ।

(२) आवर्जयितुम्—पातयितुम्। डलवाना। आ + वृज् + णिच् + तुमुन्। रामायण में भी कहा है—

ततस्तु भरतः श्रीमानभिषिच्यार्यपादुके ॥
तदधीनस्तदा राज्यं कारयामास सर्वदा ॥ अयोध्या० ११५. २३.

९५—भरतः—(आत्मगतम्) हन्त भोः !

श्रद्धेयः स्वजनस्य पौररुचितो लोकस्य दृष्टिक्षमः
स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य दयितः शीलान्वितोऽहं सुतः।
भ्रातॄणां गुणशालिनां बहुमतः कीर्तेर्महद् भाजनं
संवादेषु कथाश्रयो गुणवतां लब्धप्रियाणां प्रियः ॥ २७ ॥

६५—अन्वय—अहं स्वजनस्य श्रद्धेयः, पौररुचितः लोकस्य दृष्टिक्षमः; स्वर्गस्थस्य नराधिपस्य दयितः शीलान्वितः सुतः, गुणशालिनां भ्रातॄणां बहुमतः', कीर्तेः महत् भाजनम्, गुणवतां संवादेषु कथाश्रयः, लब्धप्रियाणां प्रियः ।

भरत—(स्वगत) ओह क्या ही प्रसन्नता की बात है !

मैं अब अपने संबन्धियों की श्रद्धा का पात्र हो गया हूँ । पुरवासियों का प्रिय, जनता के द्वारा देखने के योग्य, दिवंगत महाराज का सुशील और प्रेमास्पद पुत्र, गुणशाली भाइयों के द्वारा सम्माननीय, कीर्ति का महान् आधार, गुणवानों के वार्तालाप में वर्णन का विषय और पूर्णमनोरथ व्यक्तियों का प्रिय हो गया हूँ ।। २७ ।।

Bharata—(To himself) What joy, Oh !

I have become one worthy of the confidence of my relatives ; liked by the citizens ; fit to be looked at by the people ; a beloved son of the king living in heaven, being endowed with noble character ; highly esteemed by my brothers, conspicuous by their merits ; a mighty abode of renown ; the subject of talk in the conversations of the meritorious and dear to those who have gained their wishes. (27)

Notes

९५—(१) श्रद्धेयः—श्रद्धास्पदम् विश्वासपात्रं वा । श्रद्धा के योग्य या विश्वासपात्र । भरत ने अपने कथन का पालन किया और अन्तिम समय तक राज्य को स्वीकार करने के लिए उद्यत नहीं था, अतः सभी संबन्धियों के लिए श्रद्धेय हो गया था । श्रद्धेय—श्रत्=सत्य+धा+यत् (य) । श्रद्धातुं योग्यः श्रद्धेयः ।

(२) स्वजनस्य—स्वसंबन्धिनाम् । अपने संबन्धियों का ।

(३) पौररुचितः—पौराणां रुचितः प्रियः । तत्पुरुष । नगरवासियों का प्रिय ।

(४) लोकस्य दृष्टिक्षमः—जनानां दर्शनयोग्यः । जनता के द्वारा

दर्शन के योग्य। अब जनता उसकी ओर घृणा या सन्देह की दृष्टि से नहीं देखेगी, क्योंकि उसने अपने कर्तव्य का उचित रूप से पालन किया है। दृष्टि का अर्थ यहाँ पर है—दर्शन, देखना। 'क्षम' का अर्थ है योग्य, समर्थ।

(५) स्वर्गस्थस्य—दिवंगतस्य। दिवंगत पिता का स्वर्गस्थ—स्वर्ग+स्था+क।

(६) शीलान्वितः— शीलेन अन्वितः युक्तः, सुशील। शीलसम्पन्न।

(७) गुणशालिनाम्—गुणवताम्। गुणवान्।

(८) बहुमतः—परं मान्यः। भाइयों के द्वारा परम आदरणीय। मत—मन्+क्त।

(९) कीर्तेः०—'भाजनम्' नपुंसकलिंग एकवचन ही प्रयुक्त होता है, अतः भरत के लिए भी 'महत् भाजनम्' प्रयोग हुआ है। कीर्ति—कृ+क्तिन् प्रत्यय।

(१०) गुणवतां संवादेषु—गुणिनां संभाषणेषु। गुणवानों के कथा प्रसंग में।

(११) कथाश्रयः—वाग्विषयभूतः। चर्चा का विषय। विद्वज्जन वार्तालाप में मेरी चर्चा करेंगे।

(१२) लब्धप्रियाणां—लब्धं प्रियं अभिकाङ्क्षितं वस्तु रामस्य राज्य-प्राप्ति-रूपं यैः तेषां सुमन्त्रादीनां प्रियः। बहुव्रीहि। जिनको राम की राज्य-प्राप्ति रूपी इष्ट वस्तु प्राप्त होगई है, ऐसे सुमन्त्र आदि का तथा जनता मात्र का प्रिय।

(१३) इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

९६—रामः—वत्स! कैकेयीमातः! राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम्। तस्मादद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः।

९७—सीता—हम्, अद्यैव गमिष्यति कुमारो भरतः। (हं, अज्ज एव्व गमिस्सदि कुमारो भरदो।)

९८—रामः—अलमतिस्नेहेन। अद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः।

९९—भरतः—आर्य ! अद्यैवाहं गमिष्यामि ।

आशावन्तः पुरे पौराः स्थास्यन्ति त्वद्दिदृक्षया ।

तेषां प्रीतिं करिष्यामि त्वत्प्रसादस्य दर्शनात् ॥ २८ ॥

६६—राम—वत्स कैकेयी-नन्दन, राज्य की वस्तुतः क्षणभर भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अतः आज ही तुम अभ्युदय के लिए लौट जाओ।

Rāma—Dear one, son of Kaikeyi, a kingdom, to tell the truth, ought not to be neglected even for a short time. Therefore, the prince should return this very day for a prosperous career.

६७—सीता—आह, क्या आज ही राजकुमार भरत चले जायँगे !

Sitā—Ah, will the prince Bharata go just today !

६८—राम—अधिक स्नेह प्रदर्शित मत करो। आज ही अभ्युदय के लिए कुमार को लौट जाने दो।

Rāma—Enough of excessive affection. Let the prince return this very day for a prospereous career.

६९—अन्वय—पौराः पुरे त्वद्दिदृक्षया आशावन्तः स्थास्यन्ति। तेषां त्वत्प्रसादस्य दर्शनात् प्रीतिं करिष्यामि।

भरत—आर्य, आज ही मैं जाऊँगा।

नागरिक जन नगर (अयोध्या) में आप के दर्शनों की इच्छा से आशा लगाए हुए प्रतीक्षा कर रहे होंगे। मैं उन्हें आप के (पादुकारूपी) प्रसाद को दिखाकर सन्तुष्ट करूँगा ॥ २८ ।

Bharata—Noble brother, I will go just today.

Full of hope, the citizens must have been waiting in the city (Ayodhya) with a desire to see you. I shall give comfort to them by showing this your favour (the sandals). (28)

Notes

९६—(१) राज्य नाम०—राज्य की क्षण भर भी उपेक्षा नहीं करनी

चाहिए, अर्थात् राज्य के प्रबन्ध में किसी प्रकार की भी असावधानी नहीं होनी चाहिए। भास की यह सूक्ति बहुत सत्य है एवं उसकी राजनीतिज्ञता की परिचायिका है।

(२) विजयाय—अभ्युदयाय। विजय का अर्थ यहाँ पर है—अभ्युदय, उत्कर्ष या समुन्नति। अपने जीवन को अभ्युदयशील बनाने के लिए जाओ।

९७—अत्रैव०—सीता ने स्त्रीजनोचित प्रेम के भाव से चाहा कि भरत कुछ दिन रुक कर तब लौटें। भरत का तुरन्त लौटना रुचिकर नहीं है।

९८—अलमति०—राम का भाव है कि इस समय अधिक प्रेम-प्रदर्शन का समय नहीं है। भरत का अयोध्या तुरन्त लौट जाना आवश्यक है।

९९—(१) आशावन्तः—आशायुक्ताः—आशा लिए हुए होंगे कि राम आते होंगे।

(२) पुरे पौराः—नगरे अयोध्यायां नागरिकाः। अयोध्या में नगरवासी।

(३) स्थास्यन्ति—स्थिताः भवेयुः। होंगे। प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

(४) त्वद्दिदृक्षया—तव दर्शनेच्छया। आपके दर्शन की अभिलाषा से। दिदृक्षा—दृश् + सन् (स) = दिदृक्ष + अ + टाप्। 'अ प्रत्ययात्' (पा० ३. ३. १०२) से अ प्रत्यय और तत्पश्चात् टाप् (आ)।

(५)—त्वत्प्रसादस्य०—आपके पादुकारूपी प्रसाद (अनुग्रह) को दिखा कर लोगों को सन्तुष्ट करूँगा, अर्थात् राम ने चौदह वर्ष बाद राज्य करना स्वीकार किया है और उसके प्रतीक-स्वरूप ये पादुकाएँ दी हैं, जिनके द्वारा राज्य-संचालन किया जाएगा।

(६) अनुष्टुप् छन्द है।

१००—सुमन्त्रः—आयुष्मन्! मयेदानीं किं कर्तव्यम्।

१०१—रामः—तात! महाराजवत् परिपालयतां कुमारः।

१०२—सुमन्त्रः—यदि जीवामि तावत् प्रयतिष्ये।

१०३—रामः—वत्स कैकेयीमातः ! आरुह्यतां ममाग्रतो रथः ।

१०४—भरतः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (रथमारोहतः ।)

१०५—रामः—मैथिलि ! इतस्तावत् । वत्स ! लक्ष्मण ! इतस्तावत् । आश्रमपदद्वारमात्रमपि भरतस्यानुयात्रं भविष्यामः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

चतुर्थोऽङ्कः ।

१००—सुमन्त्र—आयुष्मन्, मैं अब क्या करूँ ?

Sumant ra—Long-lived one, what shall I do now ?

१०१—राम—तात, महाराज की तरह राजकुमार (भरत) की सर्वथा रक्षा करें ।

Rāma—Father, protect in every way the prince, as you did the king.

१०२—सुमन्त्र—यदि मैं जीवित रहा तो प्रयत्न करूँगा (कि ऐसा ही करूँ) ।

Sumantra—If I live I shall endeavour (to do so).

१०३—राम—वत्स कैकेयीनन्दन, मेरे सन्मुख रथ पर चढ़ो ।

Rāma—Dear son of Kaikeyi, ascend the chariot in my presence.

१०४—भरत—जैसी आपकी आज्ञा । (दोनों रथ पर चढ़ते हैं ।)

Bharata—Just as my noble brother tells me. (The two ascend the chariot)

१०५—राम—मैथिलि, इधर आना । वत्स लक्ष्मण, इधर तो आना । आश्रम के द्वार तक भरत के पीछे चलेंगे ।

(सबका निष्क्रमण)

चतुर्थ अंक समाप्त ।

Rāma—Maithili, just come here. Dear Lakṣmaṇa, just here. We shall follow Bharata just as far as the door of the hermitage.

(Exeunt omnes)

End of Act IV

Notes

१००—मयेदानीम॰—अर्थात् मुझे भविष्य में क्या करने की आज्ञा है ?

१०१—महाराजवत्—इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(१) जिस प्रकार महाराज ने भरत की रक्षा की है, उसी प्रकार तुम भी इनकी रक्षा करना। (२) जिस प्रकार तुमने महाराज की रक्षा की अर्थात् सेवा-शुश्रूषा की, उसी प्रकार भरत की सेवा-शुश्रूषा करना।

१०२—तावत्—इसके भी दो अर्थ हो सकते हैं—(१) यदि जीवामि तावत्—यदि जीता रहा तो, प्रयत्न करूँगा अर्थात् बहुत कम समय जीवित रहने की आशा है। (२) तावत्=तब तक या पूर्णतया। जब तक जीवित रहूँगा तब तक प्रयत्न करूँगा।

१०४—(आरोहतः—यहाँ पर भरत और सुमन्त्र से भाव है। यहाँ पर सारथि (सूत) अन्य व्यक्ति है, वह बाद में चढ़ा होगा।)

१०५—(१) आश्रमपद०—'मात्र' शब्द प्रमाण अर्थ में है। 'प्रमाणे द्वयसच्॰' सूत्र से प्रमाण अर्थ में मात्रच् (मात्र) प्रत्यय। आश्रमपद अर्थात् आश्रमस्थल के द्वार पर्यन्त। मध्यमव्यायोग में भी ऐसा प्रयोग आया है—

तत्रभवन्तं केशवदासमाश्रमपदद्वारमात्रमपि संभावयिष्यामः ॥

(२) अनुयात्रम्—अनुगन्तारः। पीछे चलने वाले। विशेष व्याख्या के लिये देखें (अंक ४ वक्तव्य ८ पर विवरण)।

चतुर्थ अंक समाप्त

अथ पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सीता तापसी च)

१–सीता–आर्ये ! उपहारसुमनआकीर्णः संमार्जित आश्रमः । आश्रमपदविभवेनानुष्ठितो देवसमुदाचारः । तद् यावदार्यपुत्रो नागच्छति तावदिमान् बालवृक्षानुदकप्रदानेनानुक्रोशयिष्यामि । (अय्ये ! उवहारसुमणाइण्णो सम्मज्जिदो अस्समो । अस्समपदविभवेण अणुट्ठिओ देवसमुदाआरो । ता जाव अय्यउत्तो ण आअच्छदि दाव इमाणं बालरुक्खाणं उदअप्पदाणेण अणुक्कोसइस्सं ।)

२–तापसी–अविघ्नमस्य भवतु । (अविग्घं से होदु)

पञ्चम अंक

(तदनन्तर सीता और तापसी का प्रवेश ।)

१—सीता—आर्ये, मैंने निर्माल्य (पूजा में उपयुक्त) (सूखे) फूलों से व्याप्त इस आश्रम को झाड़ू से स्वच्छ कर दिया है । आश्रम-सुलभ वस्तुओं (फल-फूल आदि) से देवपूजा का कार्य सम्पन्न कर दिया है । जब तक आर्यपुत्र नहीं आते हैं, तब तक इन छोटे-छोटे पेड़ों को जल देकर अनुगृहीत करती हूँ ।

Act V

(Then enter Sitā and a female ascetic)

Sitā—Noble lady, I have swept clean the hermitage scattered over with the (stale) flowers of worship and the usual worship of the deities has been performed with the materials available in the hermitage; so now, as long as my husband does not come. I will favour these young trees by supplying water to them.

२—तापसी—तुम्हारे इस (कार्य) में कोई विघ्न न हो।

Female Ascetic—May this (action) of yours be without any obstacle.

Notes

१—(१) उपहारसुमन०—इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(१) उपहारभूताः सुमनसः ताभिराकीर्णः व्याप्तः, निर्माल्यकुसुमाकीर्णः। जिन फूलों का पूजा में उपयोग हो गया है, अतएव पुराने या सूखे हुए निर्माल्य (पूजोपयुक्त) फूलों से व्याप्त आश्रम की मैंने झाड़ू से सफाई कर दी और इधर उधर पड़े हुए उन फूलों को हटा दिया है। (२) उपहारार्थं पूजार्थं सुमनसः उपहारसुमनसः ताभिराकीर्णः व्याप्तः। पूजा के काम में आने वाले फूलों (के वृक्षों) से व्याप्त आश्रम की स्वच्छता कर दी है। चारों ओर आश्रम में फल वाले वृक्ष हैं। उपहार—उप+हृ+घञ्। 'सुमनस्' शब्द स्त्रीलिंग है। 'स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम्।' इत्यमरः। आकीर्ण—आ+कॄ+क्त। 'सुमन आकीर्णः' में सन्धि नहीं होगी, क्योंकि बीचमें 'स्' का लोप हुआ है।

(२) सम्मार्जित—शोधितः। स्वच्छ कर दिया है। सम्+मृज्+णिच+क्त।

(३) आश्रमपद०—आश्रमपदस्य विभवेन पुष्पफलाद्युपकरणजातेन। तत्पुरुष। आश्रम की सम्पत्ति अर्थात् फलफूल आदि साधनों से।

(४) देवसमुदाचारः—देवपूजनम्। देवताओं की पूजा। समुदाचार का अर्थ है समुचित आचार अर्थात् समुचित व्यवहार। समुदाचार—सम्+उत्+आ+चर्+घञ्।

(५) अनुक्रोशयिष्यामि—अनुग्रहीष्यामि। अनुगृहीत करूँगा। अनु+क्रुश्+णिच्, का अर्थ दया करना है, अत एव अनुगृहीत करना भाव हो गया है।

२—अविघ्नम्—विघ्नस्य अभावः। विघ्नों का अभाव। अव्ययीभाव-समास। नञ् के अर्थ हैं—

तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता ।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः ॥

इन 'नञ्' के ६ अर्थों में से 'अविघ्न' में अभाव अर्थ है । यहाँ पर 'अविघ्न' शब्द सीता के अपहरण रूपी विघ्न की ओर संकेत करता है ।

(*ततः प्रविशति रामः*)

३-(क) रामः(सशोकम् ।)

त्यक्त्वा तां गुरुणा मया च रहितां रम्यामयोध्यां पुरी-
मुद्यम्यापि ममाभिषेकमखिलं मत्सन्निधावागतः ।
रक्षार्थं भरतः पुनर्गुणनिधिस्तत्रैव सम्प्रेषितः
कष्टं भो ! नृपतेर्धुरं सुमहतीमेकः समुत्कर्षति ॥१॥

३—(क) अन्वय—गुरुणा मया च रहितां तां रम्याम् अयोध्यापुरीं त्यक्त्वा मम अखिलम् अभिषेकम् उद्यम्य मत्सन्निधौ आगतः अपि गुणनिधिः भरतः पुनः रक्षार्थं तत्रैव सम्प्रेषितः (सन्), भोः ! एकः सुमहतीं नृपतेः धुरं समुत्कर्षति (इति) कष्टम् ।

(*तदनन्तर राम का प्रवेश*)

राम—(शोक के साथ)

पिता और मुझसे रहित उस रम्य अयोध्या नगरी को छोड़कर, मेरे अभिषेक के लिए सम्पूर्ण सामग्री संगृहीत करके वह गुणनिधि भरत मेरे समीप आया भी था, परन्तु मैंने फिर उसको राज्य की रक्षा के लिए वहीं भेज दिया । ओह, बड़े कष्ट की बात है कि वह महाराज के अतिमहान् भार को अकेला ही उठा रहा है ॥१॥

(*Then enters Rāma*)

Rāma—(Sorrowfully).

Leaving that delightful city of Ayodhyā, bereft of father and myself and making full preparations for my coronation, Bharata came to me; but that depository of virtues was sent

back to the very place for the purpose of protection. Oh, pity ! Alone he bears the very heavy yoke of the king. (1)

Notes

३—(क) १. गुरुणा—पिता दशरथ और मुझसे रहित सुन्दर अयोध्या को छोड़कर भरत आया था। अयोध्या की सुन्दरता का वर्णन रामायण (बालकांड ५.६—२३) में विस्तार से प्राप्त होता है। भट्टिकाव्य में भी इसका विस्तृत वर्णन है—

महेन्द्रलोकप्रतिमां समृद्धया।
अध्यास्त सर्वर्तुसुखामयोध्यामध्यासितां ब्रह्मभिरिद्धबोधैः० इत्यादि।

(२) उद्यम्य—उपसंगृह्य। मेरे अभिषेक का सारा सामान एकत्र करके।

(३) रक्षार्थम्—राज्यरक्षार्थम्। राज्य की रक्षा के लिए।

(४) सुमहतीं धुरम—राज्य की महती धुरा को अर्थात् राज्य-संचालन के अतिदुष्कर कार्य को अकेला ही भरत कर रहा है। राज्य का भार अति-कठिनता से उठाया जा सकता है। इसका वर्णन अन्य कवियों ने भी किया है—

(क) अविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः। शाकुन्तल. ५.४
(ख) औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा,

क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेनम्॥ शाकुन्तल ५.६

(ग) राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम्।

मुद्राराक्षस. ३. ४.

(५) इस अंक में सीता-हरण का वर्णन है। सीताहरण वनवास के तेरहवें वर्ष में हुआ है। पद्मपुराण, पातालखंड, अध्याय ३६ में इसका वर्णन है कि—

अथ त्रयोदशे वर्षे अक्षवट्यां महामुने।
रामो विरूपयामास शूर्पणखां निशाचरीम्।
वने विचरतस्तस्य जानक्या सहितस्य च॥ २३॥

आगतो राक्षसस्तां वै हर्तुं पापविपाकतः ।
ततो मायाश्रिताऽरण्यां मुहूर्ते वृन्दसंज्ञके ॥ २४ ॥
राघवाभ्यां विना सीतां जहार दशकन्धरः ॥

राम उस समय भरत का स्मरण कर रहे हैं और उस पर कार्यभार की अधिकता का अनुभव करके दुःखित होते हैं ।

(६) इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

(ख) (विमृश्य) ईदृशमेवैतत् । यावदिदानीमीदृशशोक-विनोदनार्थमवस्था-कुटुम्बिनीं मैथिलीं पश्यामि । तत् क्व नु खलु गता वैदेही । (परिक्रम्यावलोक्य ।) अये इमानि खलु प्रत्यग्रा-भिषिक्तानि वृक्षमूलानि अदूरगतां मैथिलीं सूचयन्ति । तथाहि ।

भ्रमति सलिलं वृक्षावर्ते सफेनमवस्थितं
तृषितपतिता नैते क्लिष्टं पिबन्ति जलं खगाः ।
स्थलमभिपतन्त्यार्द्राः कीटा बिले जलपूरिते
नववलयिनो वृक्षा मूले जलक्षयरेखया ॥ २ ॥

(ख) अन्वय—वृक्षावर्ते सफेनम् अवस्थितं सलिलं भ्रमति । तृषित-पतिताः एते खगाः क्लिष्टं जलं न पिबन्ति । बिले जलपूरिते आर्द्राः कीटाः स्थलम् अभिपतन्ति । वृक्षाः मूले जलक्षयरेखया नववलयिनः (सन्ति) ।

(सोचकर) वस्तुतः यह ऐसा ही होना है । अच्छा, इस समय इस प्रकार के शोक को दूर करने के लिए सर्वावस्था-सहचारिणी सीता को देखता हूँ । सीता कहाँ गई ? (घूमकर और देखकर) ओह, ये अभी अभी सींचे हुए वृक्षों के मूल इस बात की सूचना दे रहे हैं कि सीता दूर नहीं गई है । क्योंकि—

वृक्षों के आलवालों (थावलों) में फेन-युक्त जल चक्कर खा रहा है । प्यास के कारण समीप पहुँचे हुए पक्षी मलिन होने के कारण जल को नहीं पी रहे हैं (या पक्षी बिना कठिनाई के अर्थात् सुगमतापूर्वक जल पी रहे

हैं)। बिलों में जल भर जाने के कारण गीले कीट (चींटी आदि) सूखे स्थल पर आ रहे हैं। वृक्षों की जड़ों में जल के सूखने से पड़ी हुई रेखाओं से नये घेरे बन गए हैं ।।२।।

Thinking.) Such is this course of things! I will then just see Maithili, my companion in all the states of life, for beguiling sorrow of this kind. But where, indeed, has Sitā gone? (Walking on and seeing.) Oh, these fresh watered roots of trees do, indeed, indicate that Maithili has not gone far away. For,

The water lying in the basins of trees is whirling about with foam on it. These birds that have down being thirsty do not drink the water as it is turbid (or, are drinking the water without difficulty), the insects, wet owing to their holes being filled with water are getting on dry land; and the trees have fresh circles (of mud) at their roots on account of the line of water being dried up. (2)

Notes

ख—(१) ईदृशमेव०—इसका भाव है कि भवितव्यता ही बलवती है।

(२) अवस्थाकुटुम्बिनीम्—सर्वावस्थासहायाम्। सब अवस्थाओं में साथ देने वाली। यहाँ पर 'अवस्था' शब्द 'दुरवस्था' के अर्थ में है अर्थात् विपत्ति में भी साथ न छोड़ने वाली। कुटुम्बिनी का अर्थ है भार्या, पत्नी।

कुटुम्बिनी तु गृहिणी पुरन्ध्री मातृकेति सा। इति वैजयन्ती

(३) प्रत्यग्राभिषिक्तानि—सद्यः सिक्तानि। अभी सींचे हुए। प्रत्यग्र का अर्थ है नवीन, अभिनव, सद्यः। प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नवः। इत्यमरः।

(४) वृक्षावर्ते—वृक्षालवाले। वृक्षों के आलवालों (थावलों) में।

आवर्त का अर्थ है भंवर। 'आवर्तोऽम्भसां भ्रमः' इत्यमरः। यहाँ पर गौण अर्थ आलवाल है।

आवर्त—आ+वृत्+घञ् (अ)। जो चक्कर काटता हो, यहाँ पर घेरे वाला।

(५) सफेनम्०—पानी पर फेन उठ रहे हैं। अवस्थित—अव+स्था+क्त।

(६) तृषितपतिताः—तृषिताश्च ते पतिताः। कर्मधारय। प्यास से युक्त जल के पास पहुँचे हुए। तृषा का अर्थ है प्यास, उससे युक्त। तृषा+इतच् (इत)। तृषा संजात, अस्य। 'तदस्य संजातं०' से इतच् प्रत्यय। पतित—पत्+क्त। गिरे हुए। यहाँ पर प्राप्त, पहुँचे हुए अर्थ है।

(७) खगाः—पक्षिणः। पक्षी। खे गच्छन्तीति खगाः, जो आकाश में विचरण करते हैं। ख+गम्+ड (अ), अम् का लोप। खग की तरह ही अन्य शब्द बनते हैं—विहग (आकाशगामी, पक्षी,) नग, अग (अचल, पर्वत)।

(८) क्लिष्टं जलं न पिबन्ति—इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(१) क्लिष्टं नवतया मलिनं जलं न पिबन्ति। क्लिष्ट का अर्थ है मलिन, मैला। पानी अभी डाला गया है, अतः मैला है, इसलिए पक्षी उसे नहीं पी रहे हैं। जल साफ होने पर वे उसे पीएँगे। क्लिष्ट का मलिन के अर्थ में प्रयोग रामायण और स्वप्नवासवदत्तम् आदि मे मिलता है—

क्लिष्टेनोत्तमवाससा। रामायण सुन्दर० १५.२१.

न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं०। स्वप्नवासव० ५.४.

(२) क्लिष्टं न जलं पिबन्ति—'क्लिष्टम्' को क्रियाविशेषण माना जा सकता है—और उसका अर्थ होगा—क्लेशेन, क्लेश से। न क्लिष्टं का अर्थ होगा—बिना किसी प्रकार के कष्ट के अर्थात् अनायास ही पक्षी जल पी रहे हैं। पक्षियों के द्वारा इस प्रकार जल पीने का वर्णन अन्य कवियों ने भी किया है। यथा—

विश्वासाय विहङ्गानामालवालाम्बुपायिनाम् । रघुवंश १.५१.
विन्दूत्क्षेपान् पिपासुः परिपतति शिखी भ्रान्तिमद् वारियन्त्रम् ।
मालविकाग्नि० २.१२.

(९) स्थलम्०—आर्द्राः क्लिन्नाः कीठाः । जल से भीगे हुए कीड़े अर्थात् चींटी आदि । स्थलम् अभिपतन्ति—इसके भी दो अर्थ हो सकते हैं—(१) स्थल का अर्थ है सूखी हुई भूमि, जल से बाहर चींटी आदि सूखे स्थल पर आ रही हैं । (२) स्थल का एक अर्थ—ऊँची भूमि भी है । तदनुसार अर्थ होगा कि भीगे हुए कीट ऊँचे स्थान पर, जहाँ पानी का प्रभाव नहीं है, पहुँच रहे हैं । स्थल का उच्च स्थान अर्थ में भास ने स्वयं भी अन्यत्र प्रयोग किया है—

निम्नस्थलोत्पादको हि कालः । प्रतिमा० ७. १७.

(१०) नववलयिनः—नववलयधारिणः । नए घेरे से युक्त । आलवाल का जल ज्यों-ज्यों सूखता जा रहा था, त्यों-त्यों सूखे हुए स्थान में नए घेरे बनते जा रहे थे; जैसा कि वर्षा ऋतु में प्रायः देखने को मिलता है । वलय का अर्थ है घेरा, चक्कर, परिधि । नववलय + इनि (इन्) । 'अत इनिठनौ' से इनि प्रत्यय ।

(११) इस श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार है ।

(१२) इस श्लोक में हरिणी छन्द है । उसका लक्षण है—

नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ॥

(ग) (विलोक्य ।) अये इयं वैदेही ।भोः ! कष्टम् ।
योऽस्याः करःश्राम्यतिदर्पणेऽपि
स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः ।
कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं
समं लताभिः कठिनीकरोति ॥३॥
(उपेत्य ।) मैथिलि ! अपि तपो वर्धते ।

४—सीता—हम्, आर्यपुत्रः। जयत्वार्यपुत्रः। (हं, अय्यउत्तो। जेदु अय्यउत्तो।)

५—रामः - मैथिलि ! यदि ते नास्ति धर्मविघ्नः आस्यताम्।

६—सीता—यदार्यपुत्रं आज्ञापयति। (जं अय्यउत्तो आणवेदि।) (उपविशति।)

७—रामः—मैथिलि ! प्रतिवचनार्थिनीमिव त्वां पश्यामि। किमिदम्।

(ग) अन्वय—यः अस्याः करः दर्पणे अपि श्राम्यति, स कलशं वहन्त्याः खेदं न एति। कष्टम्, वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं लताभिः समं कठिनीकरोति।

(देखकर) ओह, ये तो सीता हैं। आह, बड़े दुःख की बात है !

इसका जो हाथ दर्पण उठाने में भी थक जाता था, (आज) (जलपूर्ण) कलश उठाने में भी नहीं थक रहा है। दुःख की बात है कि वन (वन्य-जीवन) स्त्रियों की सुकुमारता को लताओं के (सौकुमार्य के) साथ ही कठोर बना देता है ॥३॥

(पास जाकर) मैथिली, तपस्या ठीक तो चल रही है ?

(Looking on) Ah ! Here is Sītā. Oh, alas !

That hand of her, which used to be fatigued even by holding of a mirror, does not (now) feel exhausted as she is carrying a jar of water. Alas ! a forest (forest-life) hardens a woman's delicacy along with (as it does) creepers. (3)

(Approaching.) Maithilī, are your religious observances going on well ?

४—सीता—ओह, आर्यपुत्र ! आर्यपुत्र की जय हो।

Sitā—Oh, my husband ! Prosperity to my husband.

५—राम—मैथिली, यदि तुम्हारे धार्मिक कार्य में विघ्न न हो तो बैठो।

Rāma—Maithilī, if there will be no obstacle in your devotional work, sit down.

६—सीता—जैसी आप की आज्ञा। (बैठती है।)

Sītā—As my husband commands. (Sits down.)

७—राम—मैथिली, मैं देखता हूँ कि तुम कुछ (मुझसे) पूछना सी चाहती हो। क्या बात है ?

Rāma—Maithilī, I see you as if you want to ask something. What is it ?

Notes

ग—(१) श्राम्यति दर्पणेऽपि—यः करः दर्पणधारणेऽपि श्रमं प्राप्नोति स्म, स एव करः घटं वहन्त्याः श्रमं न प्राप्नोति। जो सीता का हाथ दर्पण उठाने में भी थक जाता था, वह आज जलपूर्ण घट उठाने में भी नहीं थकता है। यहाँ पर दोनों पंक्तियों में विभक्ति एक समान न होने से विरोध अच्छे रूप में प्रकट नहीं होता है। 'दर्पणे' की समता में 'कलशवहने' रक्खा जाता, या 'कलशं वहन्त्या' के तुल्य ही 'दर्पणं वहन्त्या' रक्खा जाता तो अच्छा विरोध प्रकट होता।

(२) कष्टं वनं स्त्रीजन०—यहाँ पर 'कष्टम्' के दो अर्थ हो सकते हैं—(१) कष्टम् दुःख की बात है कि, (२) कष्टम् वन का विशेषण मानने पर 'कष्टप्रद वन'। वन शब्द वन्य-जीवन का बोधक है वह जिस प्रकार लताओं की सुकुमारता को हटा कर उन्हें कठोर बना देता है, उसी प्रकार स्त्री-जन को भी कठोर बना देता है।

(३) अपि तपः०—यहाँ पर तप का अर्थ है तपोवन का धार्मिक क्रिया-कलाप।

५—धर्मविघ्नः—धर्मक्रियाविघ्नः। धार्मिक कार्यों में विघ्न।

७—प्रतिवचनार्थिनी—इसका शब्दार्थ है—प्रत्युत्तर चाहने वाली। यहाँ पर कोई प्रश्न नहीं पूछा गया है, जिसका प्रत्युत्तर सीता चाहती। अतः यहाँ पर इसका अर्थ है 'कि तुम मुझसे कुछ प्रश्न पूछना चाहती हो'। नए

किसी वर्णन को प्रारम्भ करने की यह पद्धति भास की अपनी विशेषता है। राम सीता से पिता के श्राद्ध का प्रसंग उपस्थित करना चाहते हैं।

८—सीता—शोकशून्यहृदयस्येवार्यपुत्रस्य मुखरागः। किमेतत्। (सोअसुण्णहिअअस्स विअ अय्यउत्तस्स मुहराओ। किं एदं।)

९—रामः—मैथिलि! स्थाने खलु कृता चिन्ता।

कृतान्तशल्याभिहते शरीरे
तथैव तावद्धृदयव्रणो मे।
नानाफलाः शोकशराभिघाता-
स्तत्रैव तत्रैव पुनः पतन्ति ॥४॥

१०—सीता—आर्यपुत्रस्य क इव सन्तापः। (अय्यउत्तस्स कोविअ संदावो।)

८—सीता—आर्यपुत्र के मुख की कान्ति शोक के कारण शून्य-हृदय व्यक्ति के (मुख की कान्ति के) तुल्य है। क्या बात है?

Sītā—The expression of my husband's face is like that of one vacant-minded through sorrow. What is this?

९—अन्वय—कृतान्तशल्याभिहते शरीरे मे हृदयव्रणः तथैव तावत्। नानाफलाः शोकशराभिघाताः तत्रैव तत्रैव पुनः पतन्ति।

राम—मैथिली (तुमने) उचित अवसर पर यह अपनी चिन्ता प्रकट की है। (अथवा उचित अवसर पर मैंने यह चिन्ता की है।)

यम के बाणों से विद्ध इस शरीर में मेरे हृदय के घाव अभी तक उसी प्रकार (हरे) हैं, फिर भी नाना प्रकार के परिणामों वाले शोक रूपी बाणों के प्रहार उन पर ही बार-बार हो रहे हैं ॥४॥

Rāma—Maithilī, rightly, indeed, have you evinced your anxiety (or, have I been anxious).

My body being struck by the arrow-head of Death, the wound of my heart is just as (green as) before, and strokes of the arrow of sorrow having various points fall on the same place over and over again. (4)

१०—सीता—आर्यपुत्र को किस प्रकार की चिन्ता है ?

Sita—What is the nature of my husband's anxiety.

Notes

८—(१) शोकशून्य०—शोकेन शून्यं विचारहीनं हृदयं यस्य । बहुव्रीहि । शोक के कारण जिसका हृदय शून्य है अर्थात् विचारहीन हो रहा है । शोक—शुच् + घञ् । (२) मुखरागः—आननवर्णः । मुख की कान्ति या शोभा । मुखस्य रागः । तत्पुरुष । राग—रञ्ज् + घञ् । 'घञि च भावकरणयोः' (पा० ६. ४. २७) में रञ्ज् के न का लोप और 'चजोः कुः०' में ज् को ग् ।

९—(१) स्थाने खलु०—इस वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं । (१) 'चिन्ता' का सम्बन्ध सीता में करने पर—'तुम्हारी यह चिन्ता उचित है ।' (२) चिन्ता का सम्बन्ध राम से करने पर—मैंने उचित समय पर चिन्ता की है । यहाँ पर प्रथम अर्थ अधिक उपयुक्त है । 'स्थाने' का अर्थ है—उचित अवसर पर या समुचित ।

(२) कृतान्त०—कृतान्तस्य यमस्य शल्यैः शल्यवत् पीडाकरैरुपतापैः अभिहते विद्धे शरीरे । तत्पुरुष । मृत्यु या दुर्भाग्य के बाणों के तुल्य दुःखदायी कष्टों से पीड़ित शरीर में । 'कृतान्त' का अर्थ है यम, यहाँ पर दुर्भाग्य ।

(३) हृदयव्रणः—हृदयशोकरूपः व्रणः । हार्दिक शोक रूपी घाव । पिता की मृत्यु का दुःख ।

(४) तथैव—उसी प्रकार है अर्थात् अभी तक दुःख ताजा ही है ।

(५) नानाफलाः—यहाँ पर फल शब्द के दो अर्थ होने के कारण दो अर्थ हो सकते हैं—(१) फल=परिणाम, नाना प्रकार के परिणामों वाले, शोकरूपी बाण के घाव मुझ पर बार-बार पड़ रहे हैं । नाना प्रकार के दुष्परिणाम अर्थात् वनवास, पिता की मृत्यु, सीता को वनवास के कष्ट आदि । (२) फल शब्द बाण के आगे लगे हुए लोहे (फलके) को भी कहते हैं ।

बाण का विशेषण होने पर अर्थ होगा—नाना प्रकार के अग्रभाग वाले अर्थात् अनेक प्रकार से दुःख देने वाले शोकरूपी बाण।

(६) इस श्लोक में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मेल से उपजाति छन्द है।

११—रामः—श्वस्तत्रभवतस्तातस्यानुसंवत्सरश्राद्धविधिः। कल्पविशेषेण निवपनक्रियामिच्छन्ति पितरः। तत् कथं निर्वर्तयिष्यामीत्येतच्चिन्त्यते। अथवा—

गच्छन्ति तुष्टिं खलु येन केन
त एव जानन्ति हि तां दशां मे।
इच्छामि पूजां च तथापि कर्तुं
तातस्य रामस्य च सानुरूपाम् ॥५॥

११—अन्वय—(ते) येन केन तुष्टिं गच्छन्ति खलु। ते हि तां मे दशां जानन्ति एव। तथापि तातस्य रामस्य च सानुरूपां पूजां कर्तुम् इच्छामि च ॥

राम—कल पूजनीय पिता का वार्षिक श्राद्ध करना है। पितृगण चाहते हैं कि विशेष विधिपूर्वक उनकी श्राद्ध-क्रिया सम्पन्न की जाय। उसे मैं किस प्रकार पूर्ण कर सकूँगा? यही सोच रहा हूँ अथवा—

मैं जो कुछ भी उपहार रूप में दूँगा, उससे वे सन्तुष्ट हो जाएँगे, क्योंकि वे मेरी इस अवस्था को जानते ही हैं। फिर भी मैं अपने पिता और अपने अनुकूल पूजा (वार्षिक श्राद्ध) करना चाहता हूँ ॥५॥

Rāma—Tomorrow must be performed the annual śrāddha of my revered father. And the manes desire that the offering of oblations to them should be done in a special style. How am I to perform that?—this is what I have been thinking of. Or rather.

They will be satisfied with whatsoever things I shall offer to them. For they themselves know my present state. Still

I wish to worship (perform the ceremony) in a style befitting father and Rāma. (5)

Notes

११—(१) श्वस्तत्रभवतः०—कल पिता का वार्षिक-श्राद्ध है। पहले उल्लेख किया जा चुका है कि दशरथ की मृत्यु चैत्र पूर्णिमा को हुई थी। किन्तु सीता-हरण माघ-कृष्णा-अष्टमी को हुआ है। जैसा कि अंक ५. ३ की व्याख्या में लिखा जा चुका है। (माघसिताष्टम्यां सीतां जहार दशकन्धरः।) 'राम' कृत रामायण की तिलक व्याख्या के अनुसार सीता-हरण फाल्गुन में अष्टमी के दिन हुआ है। (तस्माद् द्वादशसमाप्त्युत्तरं त्रयोदशे किंचित् व्यतीते फाल्गुनाष्टम्यां रावणकृतसीतापहारः। (तिलक व्याख्या, युद्धकाण्ड सर्ग १०८)। परन्तु विचारणीय यह है कि वार्षिक श्राद्ध चैत्र पूर्णिमा को होना चाहिए और जिस दिन यह राम और सीता की बात हो रही है, उस दिन रावण सीता का हरण करता है, अतः इस हिसाब से दशरथ का श्राद्ध माघ-कृष्णा-नवमी को हो रहा था। अतः यहाँ पर यही समझना चाहिये कि भास ने नाटकीय क्रिया-कलाप को ध्यान में रखते हुए घटनाओं के वास्तविक समय की ओर उतना ध्यान नहीं दिया है, अन्यथा दशरथ का वार्षिक श्राद्ध और सीता-हरण एक ही तिथि के अन्तर से न रक्खे जाते, दोनों में पर्याप्त अन्तर है।

(२) अनुसंवत्सर०—संवत्सरे संवत्सरे भवम् अनुसंवत्सरं प्रतिसांवत्सरिकम्। प्रत्येक वर्ष होने वाले, अर्थात् वार्षिक श्राद्ध की क्रिया।

(३) कल्पविशेषेण—अनुष्ठानविशेषेण। विशेष विधि-विधान पूर्वक।

(४) निवपनक्रियाम्—श्राद्धक्रियाम्। निवपन का अर्थ है मृत-पितरों को पिण्ड आदि देना।

(५) गच्छन्ति येन केन०—येन केन प्रकारेण तुष्टिं गच्छेयुः। पितरों को जो कुछ भी दिया जायगा, उससे वे सन्तुष्ट हो जाएँगे। वे सामान्य उपहार को भी स्वीकार कर लेंगे।

(६) त एव०—'एव' का सम्बन्ध 'जानन्ति' से है। वे हमारी अवस्था जानते ही हैं।

(७) ताम्—'एताम्' (इस) के अर्थ में आया है ।

(८) सानुरूपाम्०—दोनों के अनुकूल अर्थात् अपनी और अपने पिता की प्रतिष्ठा के अनुकूल ही श्राद्ध होना चाहिये । पूजा शब्द श्राद्धक्रिया के लिये है ।

(९) इस श्लोक में उपजाति छन्द है ।

१२—सीता—आर्यपुत्र ! निर्वर्तयिष्यति श्राद्धं भरतः ऋद्धया, अवस्थानुरूपं फलोदकेनाप्यार्यपुत्रः । एतत् तातस्य बहुमततरं भविष्यति । (अय्यउत्त ! णिव्वत्तइस्सदि सद्धं भरदो रिद्धीए अवत्थाणुरूवं फलोदएण वि अय्यउत्तो । एदं तादस्स बहुमदअरं भविस्सदि ।)

१३—रामः—मैथिलि !

फलानि दृष्ट्वा दर्भेषु स्वहस्तरचितानि नः ।
स्मारितो वनवासं च तातस्तत्रापि रोदिति ॥९॥

१२—सीता—आर्यपुत्र, भरत वैभव के साथ श्राद्ध करेंगे, आर्यपुत्र अपनी अवस्था के अनुरूप फल और जलादि से श्राद्ध करें । यही तात को बहुत अधिक मान्य होगा ।

Sitā—Husband, Bharata will perform the śrāddha in a rich stlyle ; my husbaud should perform it offering fruits, water etc. as suited to his condition. It will be more highly appreciated by, the father.

१३—अन्वय—दर्भेषु स्वहस्तरचितानि फलानि दृष्ट्वा तातः नः वनवासं च स्मारितः, तत्रापि रोदिति ।

राम मैथिली,

कुशों पर अपने हाथ से रक्खे हुए फलों को देखकर पिता हमारे वनवास के स्मरण आ जाने के कारण वहाँ (स्वर्ग में) भी रो पड़ेंगे ॥९॥

Rāma—Maithilī,

Seeing the fruits arranged on the Kuśa grass with my own hands, father, being reminded of our residence in a forest, will weep even there. (6)

Notes

१२—(१) ऋद्धया—महार्घवस्तुभिः। बहुमूल्य वस्तुओं से। अर्थात् भरत अयोध्या में पूर्ण राजकीय समारोह के साथ पिता का श्राद्ध करेंगे।

(२) अवस्थानुरूपम्—यहाँ पर भी अवस्था शब्द विपत्ति की अवस्था के अर्थ में है। तदनुरूप श्राद्ध आप यहाँ कीजिएगा।

(३) फलोदकेन—फलं च उदकं च तेषां समाहारः, फलोदकं तेन। समाहार द्वन्द्व। फल और जल आदि से।

(४) बहुमततरम्—अत्यधिकं सम्मतम्। बहुत अधिक प्रिय।

१३—(१) स्वहस्तरचितानि—स्वकरविन्यस्तानि। अपने हाथों से लगाये हुए या रक्खे हुए फलों को कुशों पर रक्खे हुए देखकर पिता को हमारे वनवास का स्मरण आ जाएगा। अन्यथा श्राद्ध के फल आदि सोने चाँदी के बर्तनों में होते और स्वयं न रखकर नौकरों से रखवाए गए हुए होते।

(२) स्मारितः—स्मरणं प्रापितः। स्मरण दिलाया हुआ, अर्थात् स्मरण आने पर। स्मृ+णिच्+क्त।

(३) तत्रापि—स्वर्गेऽपि। स्वर्ग में भी पिता रो पड़ेंगे।

(४) यह श्लोक करुण रस का सुन्दर उदाहरण है। वाल्मीकि-रामायण में भी यह भाव प्राप्त होता है—

ऐङ्गुदं बदरैर्मिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे।
न्यस्य रामः स दुःखार्तो रुदन् वचनमब्रवीत्॥
इदं भुङ्क्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम्।
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः॥

अयोध्या० १०३. २९—३०

(५) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

(*ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो रावणः*)

१४—(क) रावणः एष भोः !

नियतमनियतात्मा रूपमेतद् गृहीत्वा
खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा ।
स्वरपदपरिहीणां हव्यधारामिवाहं
जनकनृपसुतां तां हर्तुकामः प्रयामि ॥ ७ ॥

१४—(क) अन्वय—अनियतात्मा एतद् रूपं गृहीत्वा नियतं खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा अहं तां जनकनृपसुतां स्वरपदपरिहीणां हव्यधाराम् इव हर्तुकामः प्रयामि ।

(*तदनन्तर संन्यासी के वेष में रावण का प्रवेश*)

रावण—अरे यह—

अजितेन्द्रिय मैं, इस (संन्यासी के) वेष को धारण करके, खर (राक्षस) के वध के कारण मुझसे वैर करने वाले जितेन्द्रिय राम को ठग कर, स्वर और पद से च्युत (अर्थात् अशुद्ध स्वर और पद वाले मन्त्र के उच्चारण के साथ दी हुई) आहुति की तरह, उस जनकराज की पुत्री (सीता) को हरण करने की इच्छा से जा रहा हूँ ।।७।।

(Then enters Rāvaṇa in the disguise of an ascetic.)

Rāvaṇa—Oh, this—

I, with soul uncontrolled, have started, having assumed this disguise, with the object of carrying off the daughter of King Janaka, like the stream of an oblation offered (to fire) without the utterance of proper accent and syllables, after having deceived the self controlled Rāma, who has roused my enmity by his slaying of Khara. (7)

Notes

१४—(क) (१) नियतमनियतात्मा—नियतं वशिनम् , अनियतात्मा अवशीकृतान्तःकरणः। अनियतः आत्मा यस्य सः । बहुव्रीहि । जिते-

न्द्रिय राम को मैं अजितेन्द्रिय (रावण)। यहाँ राम और रावण में अन्तर दिखाया गया है। रावण अपने आप को अजितेन्द्रिय (पापवृत्ति) कहता है और राम को जितेन्द्रिय। मैं सीता को हरण करने जा रहा हूँ। इसमें उसकी पाप-भावना स्पष्ट है। यदि यह मानें कि रावण स्वयं अपनी निन्दा नहीं कर सकता तो इसका अर्थ यह किया जा सकता है कि—'नियतम्'—अर्थात् अवश्यमेव, अनियतात्मा अर्थात् जिसके निश्चय या क्रोध को रोका नहीं जा सकता है, ऐसा मैं। नियत—नि+यम्+क्त (त)।

(२) एतद् रूपम्०—इस संन्यासी के वेष को धारण करके। गृहीत्वा—ग्रह्+क्त्वा।

(३) खरवध०—खरस्य वधेन कृतं वैरं येन तम्। बहुव्रीहि। खर नामक राक्षस को मारने के कारण जिसने मेरे साथ शत्रुता उत्पन्न कर ली है। खर रावण का सौतेला भाई था। शूर्पणखा का भाई था। दण्डकारण्य में रावण की जो सेना थी, उसका वह सेनापति था। राम ने उसको मारा था।

(४) स्वरपदपरिहीणाम्—मन्त्राक्षरोच्चारपूर्वमदीयमानाम्। यहाँ पर स्वर का अर्थ है—उदात्त अनुदात्त या स्वरित। पद का अर्थ है—सुबन्त या तिङन्त पद। परिहीण—अर्थात् दोषयुक्त, अशुद्ध। वैदिक नियम यह है कि आहुति डालते समय मन्त्र के उच्चारण में स्वर की या व्याकरण की कोई अशुद्धि होगी तो वह आहुति अभीष्ट देवता को नहीं पहुँचेगी। वह राक्षसों का भाग हो जाएगी। पतञ्जलि ने महाभाष्य में कहा है—

(क) मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥
(आह्निक १)

(ख) मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यच्छ्राद्धं परिविष्यते।
त्रिभिर्वर्णैर्नरश्रेष्ठ तं भागं रक्षसां विदुः॥ महाभारत, अनुशासन० (२३.६.)। इसी भाव का पुनः वर्णन (अंक ५. वक्तव्य ६३ पर) आया है—
हरामि रुदतीं बालाममन्त्रोक्तामिवाहुतिम्।

५—हर्तुकामः—हरण करने का इच्छुक। 'तुं काममनसोरपि' से तुम् के म का लोप।

६—इस श्लोक में मालिनी छन्द है।

(ख) (परिक्रम्याधो विलोक्य ।) इदं रामस्याश्रमपद-द्वारम् । यावदवतरामि । (अवतरति ।) यावदहमप्यतिथि-समुदाचारमनुष्ठास्यामि । अहमतिथिः । कोऽत्र भोः ?

(ख) (घूमकर और नीचे की ओर देखकर)। यह राम के आश्रम का द्वार है। अच्छा, यहाँ उतरता हूँ। (उतरता है)। अच्छा, मैं भी अतिथिजनोचित व्यवहार करूँगा। मैं अतिथि हूँ, यहाँ पर कौन है ?

(Walking forth and looking about). Here is the entrance to Rāma's hermitage. I will just alight. (Alights.) Now I will adopt the course proper for a guest. I am a guest. Who is there ?

Notes

(ख) (१)—यावदहमपि०—'अतिथिसमुदाचार' का अर्थ है अतिथि के तुल्य व्यवहार। रावण के कथन का भाव यह है कि मैं एक अतिथि के रूप में राम की कुटी पर पहुँचता हूँ। मैं राम को यह ज्ञात नहीं होने दूँगा कि मैं रावण हूँ।

इसी वाक्य से मिलता हुआ वाक्य आगे भी आया है—

यावदहमपि ब्राह्मणसमुदाचारमनुष्ठास्यामि। (५.१६)

१५—रामः—(श्रुत्वा) स्वागतमतिथये ।

१६—रावणः—साधु विशेषितं खलु रूपं स्वरेण ।

१७—रामः—(विलोक्य) अये भगवान् । भगवन् ! अभिवादये ।

१८—रावणः—स्वस्ति ।

१९—रामः—भगवन् ! एतदासनमास्यताम् ।

२०—रावणः—(आत्मगतम्) कथमाज्ञप्त इवास्म्यनेन। (प्रकाशम् ।) बाढम् । (उपविशति ।)

२१—रामः—मैथिलि ! पाद्यमानय भगवते।

२२—सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति।(निष्क्रम्य प्रविश्य।) इमा आपः। (जं अय्यउत्तो आणवेदि ।) (इमा आवो।)

२३—रामः—शुश्रूषय भगवन्तम् ।

२४—सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (जं अय्यउत्तो आणवेदि ।)

१५—राम—(सुनकर) अतिथि का स्वागत है।

Rāma—(Listening.) Welcome to the guest.

१६—रावण—मेरा यह वेष मेरे स्वर में और अधिक सुपुष्ट हो गया है।

Rāvaṇa—My form (disguise), indeed, is well strengthened by my voice.

१७—राम—(देख कर) ओह भगवान् हैं। भगवन् ! प्रणाम।

Rāma—(Seeing) Oh, his reverence ! Revered Sir, I bow to you.

१८—रावण—स्वस्ति (कल्याण हो)।

Rāvaṇa—My blessing to you.

१९—राम—भगवन् ! यह आसन है, विराजिए।

Rāma—Holy sir, here is a seat ; do sit down.

२०—रावण—(स्वगत) क्या बात है, ऐसा ज्ञात होता है, मानों इसने मुझे आज्ञा दी है ? (प्रकट) बहुत अच्छा। बैठता है ।)

Rāvaṇa—(To himself) How now, I am as if ordered by him ? (Aloud.) Very well. (Sits down.)

२१—राम—मैथिली, महात्मा के लिए पैर धोने के लिए जल लाओ।

Rāma—Maithilī, bring water for his reverence to wash his feet with.

२२—सीता—जैसी आप की आज्ञा। (बाहर जाकर और लौटकर) यह जल है।

Sitā—As my husband commands. (Going out and coming back.) Here is water.

२३—राम—(इससे) महात्मा की सेवा करो (अर्थात् उसके पैर धोओ।)

Rāma—Wait upon his reverence (with it).

२४—सीता—जैसी आप की आज्ञा।

Sitā—As my husband commands.

Notes

१६—विशेषित खलु०—इस वाक्य का संबन्ध राम और रावण दोनों के साथ हो सकता है। (क) राम के साथ संबन्ध होने पर इसका अर्थ होगा—'राम के सुन्दर रूप की उसके सुन्दर स्वर ने और भी अधिक विशेषता कर दी है।' राम कुटी में थे, अतः रावण ने उन्हें अभी तक देखा नहीं था, इसलिए यहाँ पर रावण के साथ इस वाक्य का संबन्ध अधिक उपयुक्त है। (ख) रावण के साथ इसका अर्थ होगा—'साधु अर्थात् बहुत प्रसन्नता की बात है कि मेरे इस कृत्रिम वेष को मेरे स्वर ने पुष्ट कर दिया है'। रावण को भय था कि कहीं उसकी आवाज पहचान न ली जाए, परन्तु राम उसकी आवाज को पहचान न सके। अतः उसे प्रसन्नता हुई कि मेरे नकली वेष को मेरी आवाज ने पुष्ट कर दिया है कि मैं एक अतिथि संन्यासी हूँ।

२०—आज्ञप्त इव०—राम ने अपने वाक्य में 'आसनम् अलंक्रियताम्' आदि प्रयोग नहीं किया है कि कृपया आसन को अलंकृत कीजिए, अतः रावण कहता है कि इसके कथन से आज्ञा का सा भाव प्रकट हो रहा है।

२१—पाद्यम्०—पादार्थमुदकम्। पैर धोने के लिए जल। 'पाद्यं पादाय वारिणि'। इत्यमरः। मनु का कथन है—

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके ।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ मनु० ३.६६.

२५—रावणः—(मायाप्रकाशनपर्याकुलो भूत्वा ।) भवतु भवतु ।

इयमेका पृथिव्यां हि मानुषीणामरुन्धती ।
यस्या भर्तेति नारीभिः सत्कृतः कथ्यते भवान् ॥ ८ ॥

२६—रामः तेन हि आनय, अहमेव शुश्रूषयिष्ये ।

२७—रावणः—अयि छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि । वाचानुवृत्तिः खल्वतिथिसत्कारः । पूजितोऽस्मि । आस्यताम् ।

२८—रामः—बाढम् । (उपविशति ।)

२५—अन्वय—इयं हि पृथिव्यां मानुषीणाम् एका अरुन्धती । यस्याः भर्ता इति भवान् नारीभिः सत्कृतः कथ्यते ।

रावण—(अपने कृत्रिम वेष का भेद खुलने के भय से भयभीत होकर) रहने दो, रहने दो ।

क्योंकि यह अकेली ही पृथिवी पर मानवी स्त्रियों में अरुन्धती है, जिसके पति के रूप में आप का सत्कारपूर्वक स्त्रियाँ गुणगान करती हैं ॥८॥

Rāvaṇa—(Being agitated at the thought of his disguise being exposed.) Hold, hold.

For, she alone is, on earth, Arundhati among females, of whom yon are mentioned with due honour as the husband (8).

२६—राम—अच्छा तो लाओ (जल), मैं ही शुश्रूषा करूँगा ।

Rāma—Well, then bring (the water). I myself will serve him.

२७—रावण—ओह, मैं छाया (अर्थात् सीता) का निषेध करके शरीर (अर्थात् राम) का उल्लंघन (तिरस्कार या अपमान) नहीं करूँगा । मधुर वचन से स्वागत ही वस्तुतः अतिथि-सत्कार है । मेरा सत्कार हो गया । बैठिए ।

Rāvaṇa—Oh, I will not voilate the body (i. e. Rāma) after having avoided its shadow (i. e Sitā). Waiting upon with sweet words, indeed, constitutes a guest's reception. I am honoured. Please sit down.

२८—राम—बहुत अच्छा। (बैठते हैं।)

Rāma—Very well. (Sits down).

Notes

२५—(१) मायाप्रकाशन०—रावण को यह भय है कि यदि सीता पैर धोएँगी तो उनके हाथ के स्पर्श से उसकी काम-भावना जागृत हो जायगी एवं रोमांच आदि हो जाएँगे, इससे उसका भेद खुल जायगा कि वह वस्तुतः एक महात्मा अतिथि नहीं है, अपितु रावण है। अतः वह सेवा के लिए निषेध करता है।

(२) मानुषीणाम् अरुन्धती—मानवीनां मध्ये अरुन्धती। सीता पार्थिव स्त्रियों में अरुन्धती के तुल्य है। अरुन्धती सप्तर्षियों में से अन्यतम वसिष्ठ की पत्नी है। अरुन्धती कर्दम प्रजापति की ६ पुत्रियों में एक थी। उसकी माता का नाम देवहूति है। पतिव्रता स्त्रियों में सर्वोत्तम वही मानी जाती है। अतएव विवाह के अवसर पर अरुन्धती-दर्शन कन्या को कराया जाता है। कालिदास ने अरुन्धती की उपमा अग्नि की पत्नी स्वाहा से दी है—

अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम्। रघुवंश। १.५६.

(३) यस्या भर्तेति०—आप सीता के पति हैं अतएव स्त्रियाँ आपका आदरपूर्वक गुणगान करती हैं। कथ्यते—वर्ण्यते, वर्णन किए जाते हैं।

(४) अनुष्टुप् छन्द है।

२६—आनय—आनय जलम्। जल मुझे दो, मैं सेवा करूँगा।

२७—(१) छायां परिहृत्य०—रावण का भाव यह कि जब वह राम की छाया के तुल्य सीता को प्रशस्त समझकर उनसे पैर नहीं छुआ सकता है तो छाया के आधार शरीररूपी राम से कैसे पैर छुआ सकता है। छाया की अपेक्षा शरीर के प्रति अधिक आदरभाव दिखाना चाहिए, इसी प्रकार सीता की अपेक्षा राम के प्रति।

(२) वाचानुवृत्तिः—अतिसत्कारयुक्तया गिरा भाषणम् । मधुर वाणी से स्वागत करना, सत्कारपूर्वक भाषण करना, यही वस्तुतः अतिथि-सत्कार है । शाकुन्तल में भी कहा है—भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम् । शाकुन्तल० १. पृ० २७.

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता । मनुस्मृति ३.१०१.

२९—रावणः—(आत्मगतम् ।) यावदहमपि ब्राह्मणसमुदाचारमनुष्ठास्यामि । (प्रकाशम् ।) भोः ! काश्यपगोत्रोऽस्मि । साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च ।

२९—रावण—(स्वगत) अच्छा तो मैं भी ब्राह्मण के तुल्य व्यवहार करूँगा । (प्रकट) श्रीमन् , मेरा गोत्र काश्यप है । मैंने साङ्गोपाङ्ग वेद, मानवीय धर्मशास्त्र (मनुस्मृति), महेश्वर-रचित योगशास्त्र, बृहस्पति-प्रणीत अर्थशास्त्र, मेधातिथि (गौतम) का न्यायशास्त्र और प्रचेतस् (वरुण) का श्राद्धकल्प (श्राद्ध-पद्धति), इनका अध्ययन किया है ।

Rāvaṇa—(To himself.) Now in the first place I, too, will follow the usual practice of a Brāhmaṇa. (Aloud.) Oh, I belong to the Kāśyapa race. I have studied the Veda with all its accessory and sub-accessory works, as also the religious code of law of Manu, the yoga philosophy of Maheśvara, the political science by Bṛhaspati, the logic of Medhātithi, and the ritual of the Srāddha by Prachetas.

Notes

२९—(१) ब्राह्मणसमु०—रावण ने पहले अतिथि का स्वरूप बनाया, अब वह अपने आपको ब्राह्मणरूप में प्रस्तुत करता है ।

(२) साङ्गोपाङ्गं वेदम्०—अङ्गों और उपाङ्गों के साथ वेद मैंने पढ़ा है । (क) वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद । (ख)

'अङ्ग' उनको कहते हैं, जिनकी सहायता से वेदों का अर्थ ठीक समझा जा सकता है। ये ६ हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष् और छन्द।

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चितिः।
ज्योतिषामयनं चैव षडङ्गो वेद उच्यते ॥

(ग) उपाङ्ग चार हैं—पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र।

(३) मानवीयं धर्म०—मनु का धर्मशास्त्र अर्थात् मनुस्मृति। देखो मनु० १.५८.

(४) माहेश्वरम्०—महेश्वर-रचित योगदर्शन। महेश्वर अर्थात् शिव को सर्वप्रथम महायोगी और योगशास्त्र का रचयिता माना जाता है। पतञ्जलि का योगदर्शन उसके बाद का है।

(५) बार्हस्पत्यम्०—बृहस्पतिना प्रणीतं बार्हस्पत्यम्। बृहस्पति-रचित अर्थशास्त्र। महाभारत शान्तिपर्व में अध्याय ५९ में वर्णन आता है कि सर्व-प्रथम नीति-शास्त्र ब्रह्मा ने बनाया था, उसको शिव ने संक्षिप्त किया। उन्होंने इन्द्र को दिया। इन्द्र ने पुनः संक्षिप्त किया और तदनन्तर बृहस्पति ने संक्षिप्त किया। इस प्रकार दस सहस्र अध्यायों वाला ग्रन्थ अन्त में तीन हजार अध्यायों का रह गया।

प्रजानामायुषो ह्रासं विज्ञाय भगवान् शिवः।
संचिक्षेप ततः शास्त्रं महास्त्रं ब्रह्मणा कृतम् ॥८१॥
वैशालाक्षमिति प्रोक्तं तदिन्द्रः प्रत्यपद्यत।
दशाध्यायसहस्राणि सुब्रह्मण्यो महातपाः ॥८२॥
भगवानपि तच्छास्त्रं संचिक्षेप पुरन्दरः।
सहस्रैः पञ्चभिस्तात यदुक्तं बाहुदन्तकम् ॥८३॥
अध्यायानां सहस्रैस्तु त्रिभिरेव बृहस्पतिः।
संचिक्षेपेश्वरो बुद्ध्या बार्हस्पत्यं तदुच्यते ॥८४॥

(६) मेधातिथेः०—मनु के टीकाकार मेधातिथि न्यायशास्त्रकार नहीं हैं। महाभारत शान्तिपर्व में मेधातिथि और गौतम दोनों ही एक व्यक्ति के नाम आते हैं। अतः यहाँ पर गौतम मेधातिथि ही अर्थ समझना चाहिए।

मेधातिथिर्महाप्राज्ञो गौतमस्तपसि स्थितः। शान्तिपर्व २६६.४५. इसमें से गौतम गोत्रनाम माना गया है और मेधातिथि वैयक्तिक नाम। न्याय शास्त्र अर्थात् न्यायदर्शन।

(७) प्राचेतसम्०—'प्रचेतस्' वरुण का नाम है। वरुण-रचित श्राद्ध कल्प अर्थात् जिसमें श्राद्ध की पूरी प्रक्रिया दी गई है।

३०—रामः—कथं कथं श्राद्धकल्पमिति।

३१—रावणः—सर्वाः श्रुतीरतिक्रम्य श्राद्धकल्पे स्पृहा दर्शिता। किमेतत्।

३२—रामः—भगवन्! अष्टायां पितृमत्तायामागम इदानीमेषः।

३३—रावणः—अलं परिहृत्य। पृच्छतु भवान्।

३४—रामः—भगवन्! निवपनक्रियाकाले केन पितॄंस्तर्पयामि।

३५—रावणः—सर्वं श्रद्धया दत्तं श्राद्धम्।

३६—रामः—भगवन्! अनादरतः परित्यक्तं भवति। विशेषार्थं पृच्छामि।

३०—राम—क्या (कहा)? क्या (कहा)? श्राद्धकल्प?

Rāma—What? What? Did you say the ritual of the Śrāddha?

३१—रावण—अन्य सब शास्त्रों को छोड़कर आपने श्राद्धकल्प में विशेष उत्सुकता प्रकट की है। क्या बात है?

Rāvaṇa—You have evinced a desire to know about the Śrāddha ritual to the exclusion of the other sciences. How is this?

३२—राम—भगवन्, पितृहीन होने के कारण मेरे लिए अब इसी शास्त्र का ज्ञान अपेक्षित है।

Rāma—Venerable sir, since I have lost my father, this is the proper branch of knowledge for me to know now.

३३—रावण—इसको मत छोड़िए। आप (इसके विषय में अच्छी तरह) पूछिए।

Rāvaṇa—Enough of avoiding. You may (freely) ask (about it).

३४—राम—भगवन् , (श्राद्ध में) पिण्डदान के समय किस (वस्तु) से पितरों को तृप्त करूँ।

Rāma—Venerable one, at the time of presenting oblations (at a śrāddha) with what (materials) should I gratify the manes?

३५—रावण—जो कुछ भी श्रद्धापूर्वक दिया जाय, वह श्राद्ध कहा जाता है।

Rāvaṇa—Any thing offered in faith constitutes a śrāddha.

३६—राम—भगवन् , यदि अनादरपूर्वक (अर्थात् अश्रद्धा से) दिया जाता है, तो (पितृगण) उसका त्याग कर देते हैं। अतएव मैं विशेष (वस्तु) के लिए पूछ रहा हूँ।

Rāma—Holy sir, if offered without regard it is rejected. So I ask the particular things to be offered.

Notes

३१—(१) श्रुती०—श्रुति शब्द का पारिभाषिक अर्थ वेद या वैदिक साहित्य है। यहाँ पर शास्त्रों के अर्थ में है और पूर्वोक्त सभी शास्त्रों को निर्देश करता है।

(२) अतिक्रम्य—त्यक्त्वा। सब शास्त्रों को छोड़कर। अति+क्रम्+क्त्वा (ल्यप्)

३२—(१) भ्रष्टायां पितृ०—पिता अस्य अस्तीति पितृमान् , तस्य भावः तत्ता, तस्यां भ्रष्टायां विनष्टायाम्। पिता के विनाश के कारण।

(२) आगम इदानीम्०—यहाँ पर आगम के दो अर्थ हो सकते हैं—(क) शास्त्र, इस अर्थ में यहाँ 'इष्यते' और जोड़ना चाहिए। इस समय इसी शास्त्र का ज्ञान अपेक्षित है। (ख) आगम अर्थात् ज्ञान, इस समय श्राद्धविषयक ज्ञान ही प्राप्त करना चाहता हूँ।

३३—प्रश्न परि०—कोई संकोच न करें, जो कुछ पूछना हो पूछिए।

३५—श्रद्धया दत्तम्०—'श्राद्ध' शब्द का निर्वचनात्मक अर्थ है—श्रद्धा अस्मिन अस्तीति श्राद्धम्। प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः' (पा० ५.२.१०१) से ण प्रत्यय। श्रद्धा+ण=श्राद्ध। श्रद्धा-युक्त कर्म। जो श्रद्धापूर्वक किया जाय वह श्राद्ध है। रावण ने श्राद्ध की मौलिक व्याख्या की है कि श्राद्ध में श्रद्धा का महत्व है। श्रद्धापूर्वक जो कुछ भी पितरों को दिया जायगा, वह श्राद्ध-कार्य को सम्पन्न कर देगा। शास्त्रीय पद्धति से इस कार्य के करने को श्राद्ध कहते हैं—

पितृदानं निवापः स्यात् श्राद्धं तत्कर्म शास्त्रतः। इत्यमरः।

३६—अनादरतः०—यहाँ पर 'अनादरतः' की दो प्रकार से व्याख्या हो सकती है—(क) यदि अनादर पूर्वक अर्थात् पितरों को अश्रद्धापूर्वक दिया जाएगा तो वे उसका त्याग कर देंगे, स्वीकार नहीं करेंगे। अतएव मैं विशेष चीजें जानना चाहता हूँ, जो उनको अर्पित की जाएँ। (ख) यदि केवल श्रद्धा का ही आश्रय लेकर 'अनादरतः' अर्थात् शास्त्रीय पद्धति का अनादर करके श्राद्ध किया जाएगा तो उसको पितर स्वीकार नहीं करेंगे, अतः विशेष विधि बताइए।

३७—रावणः—श्रूयताम्। विरूढेषु दर्भाः, ओषधीषु तिलाः, कलायं शाकेषु, मत्स्येषु महाशफरः, पक्षिषु वार्ध्राणसः, पशुषु गौः खड्गो वा, इत्येते मानुषाणां विहिताः।

३८—रामः—भगवन्! वाशब्देनावगतमन्यदप्यस्तीति।

३९—रावणः—अस्ति प्रभावसम्पाद्यम्।

३७—रावण—सुनिए। घासों में कुश, ओषधियों में तिल, शाकों में

कलाय, मछलियों में महाशफर, पक्षियों में वार्धाणस, पशुओं में गाय या गेंडा, ये मनुष्यों के लिये कहे गए हैं।

Rāvaṇa—Hear then. Of things that grow, the Kuśa grass; of herb-productions, sesamum; of vegetables, the Kalāya; of fishes the large Saphara; of birds Vārdhrāṇasa; and of beasts, a cow or a rhinocerous:—these are prescribed in the case of human beings.

३८—राम—भगवन्, 'वा' शब्द से मुझे ज्ञात होता है कि कुछ और भी शेष हैं।

Rāma—Venerable sir, from the word 'वा' ('or') I gather that there is something else too.

३९—रावण—है तो, परन्तु वह विशेष शक्ति के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

Rāvaṇa—There is, that can be obtained by special prowess.

Notes

३७—(१) विरूढेषु—तृणजातिषु। तृणों में। विशिष्टं रोहन्तीति विरूढाः। वि+रुह्+क्त। क्षीरस्वामी ने अमरकोष २.१३६ में शाक की व्याख्या में यह श्लोक उद्धृत किया है—

मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डविरूढकाः।
त्वक्पुष्पं कवकं चेति शाकं दशविधं स्मृतम्॥

इनमें से विरूढ की व्याख्या में कहा है कि—

वयं तु क्षेत्रोद्गतस्य फलमूलादेः सेकान्नवोद्भिन्नानङ्कुरान् विरूढान् मन्यामहे॥

(२) दर्भाः—कुशाः। कुश। 'अस्त्री कुशं कुशो दर्भः पवित्रम्' इत्यमरः।

(३] ओषधीषु—ओषधियों में। ओषधी का पारिभाषिक अर्थ है—'ओषध्यः फलपाकान्ताः'। इत्यमरः। फल के पकने के बाद ही जो वृक्ष या पौधे सूख जाते हैं, उनको ओषधि कहते हैं। ओषधि में अतएव अन्नों

की भी गणना आ जाती है। ओषधि की व्युत्पत्ति है—ओषः पाकः धीयते अस्याम् इति। ओष+धा+कि।

(४) कलायम्—इसका विशेष प्रचलित नाम 'काल' या 'कालशाक' है। मल्लिनाथ ने शिशुपालवध (१३.२१) में उद्धृत किया है कि—'कलायः स्यात् काले'। इति वैजयन्ती। मनु ने पितरों को दी जाने वाली चीजों में कालशाक की भी गणना की है।

कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु।
आनन्त्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः॥ मनु० ३. २७२.

महाभारत में भी 'कालशाक' नाम आता है। टीकाकार का कथन है कि भाषा (बोलचाल) में उसे 'चुका' कहते हैं।

कालशाकं च लोहं चाप्यानन्त्यं छाग उच्यते। महा० अनुशासन० ८८.१०.

कालशाकं 'चुका' इति भाषायां प्रसिद्धम्।

प्रसिद्ध वैद्यराज चरक ऋषि ने चरकसंहिता में 'कालशाक' के गुण लिखे हैं—

कालशाकं तु कटुकं दीपनं गरशोफजित्।
लघूष्णं वातुलं रुक्षं कालाख्यं शाकमुच्यते॥ चरक० २७.५८.

चक्रदत्त ने अपनी टीका में लिखा है कि 'कालशाकं कालिया इति ख्यातम्'। इसका प्रचलित नाम 'कालिया' है। राजनिघण्टु (२३.१२) में भी 'कालशाक' का वर्णन आया है।

श्री परांजपे का कथन है कि 'यह शाक आज कल भी दक्षिण के कोनकन (konkan) जिले में 'कवला' नाम से प्रचलित है और यह श्राद्ध के भोजन में उपयुक्त होता है।'

(५) महाशफरः—बड़ी शफर मछली। शफरी—सौरी मछली।

(६) वार्ध्राणसः—वार्ध्रीणसः और वाध्रीणसः भी इसको लिखा जाता है। इसके कई अर्थ हैं—गेंडा, लम्बे कान वाला जंगली बकरा, वृद्ध सफेद बकरा आदि।

वार्ध्राणसो गण्डोत्साहः कोकस्त्वीहामृगो वृकः। इति वैजयन्ती।

वार्ध्रीणसः वृद्धः श्वेतच्छागः। इति विज्ञानेश्वरः।

भास ने वार्ध्राणस की गणना पक्षियों में की है, अतः यहाँ पर उक्त अर्थ नहीं लिये जा सकते। पक्षीरूप में इसका वर्णन कालिका पुराण और मार्कण्डेयपुराण में मिलता है और इसकी पहचान बताई है कि—

नीलग्रीवो रक्तशीर्षः कृष्णपादः सितच्छदः।
वार्ध्राणसः स्यात् पक्षीशो मम विष्णोरतिप्रियः ॥ कालिका० अ० ६६.
रक्तपादो रक्तशिरा रक्तचञ्चुर्विहङ्गमः।
कृष्णवर्णेन च तथा पक्षी वार्ध्राणसो मतः ॥ मार्कण्डेय० श्राद्धकल्प।

ग्रीवा नीली, शिर लाल, पैर काले, पंख श्वेत, इस प्रकार का वाध्राणस पक्षी होता है। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार अन्तर है।

(७) गौः—गाय के लिए है।
(८) खड्गः—गेंडा।

३८—वा शब्दात्०—'वा' शब्द के प्रयोग से ज्ञात होता है कि और भी कुछ चीजे हैं। 'अवगतम्' ज्ञात होता है। अव+गम्+क्त। 'वा यह अव्यय 'अनुक्तसमुच्चय' अर्थ में भी आता है, अर्थात् जो चीज नहीं कही गई है, उसका भी संग्रह कर लेना।

वा स्याद् विकल्पोपमयोरेवार्थे च समुच्चये। इति विश्वः।
गर्हासमुच्चयप्रश्नशंकासंभावनास्वपि।
उपमायां विकल्पे वा। इत्यमरः।

भास ने इस प्रश्न के द्वारा काञ्चनपार्श्व मृगों की चर्चा कराई है और अन्त में मारीच का सुवर्ण मृग के रूप में उपस्थित होना बताया है।

४०—रामः—भगवन्! एष एव मे निश्चयः।
उभयस्यास्ति सान्निध्यं यद्येतत् साधयिष्यति।
धनुर्वा तपसि श्रान्ते श्रान्ते धनुषि वा तपः ॥९॥

४१—रावणः—सन्ति। हिमवति प्रतिवसन्ति।

४२—रामः—हिमवतीति। ततस्ततः।

४३—रावणः—हिमवतः सप्तमे शृङ्गे प्रत्यक्षस्थाणुशिरः-

पतितगङ्गाम्बुपायिनो वैदूर्यश्यामपृष्ठाः पवनसमजवाः काञ्चन-पार्श्वा नाम मृगाः, यैर्वैखानसवालखिल्यनैमिशीयादयो महर्षयश्चिन्तितमात्रोपस्थितविपन्नैः श्राद्धान्यभिवर्धयन्ति ।

तैस्तर्पिताः सुतफलं पितरो लभन्ते
हित्वा जरां खमुपयान्ति हि दीप्यमानाः ।
तुल्यं सुरैः समुपयान्ति विमानवास—
मावर्तिभिश्च विषयैर्न बलाद्ध्रियन्ते ॥१०॥

४०—अन्वय—उभयस्य सान्निध्यम् अस्ति, यदि एतत् साधयिष्यति । तपसि श्रान्ते धनुः वा, धनुषि श्रान्ते तपः वा ।

राम—भगवन्, यह ही (प्राप्त करने का) मेरा निश्चय है ।

मेरे पास दोनों ही (साधन) विद्यमान हैं, यदि इनके द्वारा उसको प्राप्त किया जा सके । यदि तपस्या (की शक्ति) असफल रही तो धनुष है और यदि धनुष असफल रहा तो तपस्या है ॥६॥

Rāma—Venerable sir, this itself (to obtain) is my resolve. Both the things (means) are at my command, if these can secure that. If the (power of) penance does not prevail there is the bow ; if the bow fails, there is penance.

४१—रावण—वे (चीजें) हैं तो, पर वे हिमालय पर्वत पर रहते हैं ।

Rāvaṇa—There are (such objects). They reside on the Himālaya mountain.

४२—राम—हिमालय पर्वत पर ? अच्छा आगे कहिए ।

Rāma—On the Himālaya mountain ? Well, proceed further.

४३—अन्वय—तैः तर्पिताः पितरः सुतफलं लभन्ते, जरां हित्वा दीप्यमानाः खम् उपयान्ति हि । सुरैः तुल्यं विमानवासं समुपयान्ति । आवर्तिभिः विषयैः च बलात् न ह्रियन्ते ।

रावण—हिमालय के सातवें शिखर पर, साक्षात् शिव के शिर से गिरती हुई गंगा के जल का पान करने वाले, वैदूर्य-मणि के तुल्य श्यामपृष्ठ (काली

पीठ वाले), वायु के तुल्य गतिशील, कांचनपार्श्व (सुनहरा बगल वाले) मृग रहते हैं । वैखानस, वालखिल्य और नैमिशीय आदि महर्षि संकल्प मात्र से उपस्थित और मृत इन मृगों से अपने श्राद्धों को सम्पन्न करते हैं ।

इन (कांचनमृगों) से तृप्त किए हुए पितर पुत्र-जन्म का फल प्राप्त करते हैं, और अजर (वृद्धावस्था से रहित) होकर, तेज से सम्पन्न (प्रशस्ततर) स्वर्ग को जाते हैं। वहाँ पर वे देवताओं के सदृश ही विमानों में निवास प्राप्त करते हैं तथा आवागमन के बन्धन में डालने वाले विषयों के द्वारा व बलात् वश में नहीं किए जाते ॥१०॥

Rāvaṇa—There dwell on the seventh peak of the Himālaya deer, named Kānchanaparsvas (golden-flanked) that drink the water of the Gangā directly falling from the head of Śiva, and that have back dark blue like Vaidūrya jewels (Lapis Lazuli), and whose speed is like the wind ; the great sages, such as the Vaikhānasas, Valakhilyas, Naimishiyas and others offer Srādhdas with (the flesh of) these, presenting themselves and dying the moment they are thought of.

Gratified with these the manes acquire the fruit of begetting sons ; and being free from old age ascend, resplendent, to (a higher) heaven ; there they obtain a residence in aerial cars along with the gods and are not forcibly drawn away by the objects of senses leading to birth and rebirth. (10).

Notes

४०—(१) एष एव०—यही मेरा निश्चय है कि जो वस्तु विशेष पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त की जा सके, उससे ही पितरों को सन्तुष्ट करूँ ।

(२) उभयस्य—द्विप्रकारकस्य, तपोबलस्य क्षात्रतेजसश्च । दोनों प्रकार के ही साधन मेरे पास हैं, अर्थात् तपोबल या ब्राह्मतेज तथा क्षात्रतेज, जिससे सभी कुछ साध्य है ।

(३) सान्निध्यम्—सामीप्यम् । समीपता । सन्निधि+ष्यञ् । सन्निधेः भावः ।

(४) एतत्—धनुश्च तपश्च इत्येतदुभयम्। धनुष और तप ये दोनों ही यदि उसे प्राप्त कर सकते हैं तो।

(५) धनुर्वा०—भाव यह है कि यदि तपोबल की पहुँच से परे की चीज होगी तो धनुष से प्राप्त करूँगा और धनुष की शक्ति से परे की चीज होगी तो तपोबल से प्राप्त करूँगा। 'तपः' का अर्थ तपोबल है, तपोबल की शक्ति अपरिमेय है, उससे सब कुछ साध्य है। दो 'वा' का प्रयोग इसी प्रकार है, जिस प्रकार दो 'च' का प्रयोग होगा। जैसे कालिदास ने प्रयोग किया है—

स वा शम्भोस्त्वदीया वा मूर्तिर्जलमयी मम। कुमारसंभव २.६०

इसी भाव से मिलती हुई सूक्तियाँ हैं :—

(क) अग्रतश्चतुरो वेदान् पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि॥

(ख) क्रोधस्य ज्वलितुं धगित्यवसरश्चापेन शापेन वा। उत्तररामः ४.२५। आन्त—अम्+क्त।

(६) अनुष्टुप् छन्द है।

४३—(१) हिमवतः०—हिमालय की सातवीं चोटी पर। हिमवत्—हिमालय।

(२) प्रत्यक्ष०—प्रत्यक्षः साक्षात् वर्तमानः यः स्थाणुः शिवः तस्य शिरसा मूर्ध्ना पतितं गङ्गाजलं पातुं शीलं येषां ते। तत्पुरुष। सामने विद्यमान शिव के शिर से गिरती हुई गंगा के जल को पीने वाले। पायिनः—पा+णिनि, 'सुप्यजातौ णिनिः०' से णिनि ताच्छील्य अर्थात् स्वभाव अर्थ में। स्थाणु—शिव का नाम है, क्योंकि वे सर्वदा एक ही रूप से स्थित रहते हैं।

नित्यमव्यय एव तिष्ठतीति स्थाणुः। स्थाणुवन्निश्चलः तिष्ठतीति वा।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः। श्वेताश्वतर उप०।

(३) वैदूर्य०—वैदूर्यमणि के तुल्य श्यामवर्ण के पीठ वाले। वैदूर्य को 'लहसुनिया' हिन्दी में कहा जाता है। विदूरात् प्रभवति वैदूर्यः मणिः। विदूर+ञ्य। 'विदूराञ्ञ्यः' (पा० ४. ३. ८४) से ञ्य प्रत्यय। 'विदूर' नामक स्थान से उत्पन्न होने वाली मणि। वैदूर्यम् इव श्यामं पृष्ठं येषां ते। बहुव्रीहि।

(४) पवनसमजवाः—पवनेन समः जवः वेगः येषां ते । बहुव्रीहि । वायु के तुल्य वेग वाले ।

(५) काञ्चनपार्श्वाः—जिनके पार्श्व अर्थात् बगल काञ्चनवर्ण (स्वर्णिम) हैं । उन मृगों का नाम ही 'काञ्चनपार्श्व' है ।

(६) वैखानसाः—महर्षियों की एक श्रेणी है। रामायण, अरण्यकांड में अन्य ऋषियों के साथ वैखानसों और वालखिल्यों का भी नाम आता है, जो कि शरभंग ऋषि के अपने आपको अग्नि में बलि देकर स्वर्ग चले जाने पर राम के पास आए थे ।

शरभङ्गे दिवं प्राप्ते मुनिसंघः समागताः ।
वैखानसा बालखिल्याः संप्रक्षाला मरीचिपाः ॥

अरण्य० ६. २.

इस श्लोक पर टीकाकार ने श्रुति उद्धृत की है कि जो प्रजापति के नख (नाखून) से उत्पन्न हुए वे वैखानस और जो बालों से वे बालखिल्य ।

प्रजापतेर्नखलोमजाः । ये नखास्ते वैखानसाः, ये बालास्ते बालखिल्या इति श्रुतेः ।

रामायण अरण्यकांड में ही अन्यत्र उनको ब्रह्मा का पुत्र होने के कारण 'आज' कहा गया है । (अजो ब्रह्मा तत्पुत्रैरयोनिजैः प्रसिद्धैः)

आजैर्वैखानसैर्माषैर्वालखिल्यैर्मरीचिपैः । आरण्य० ३५. १५.

ये ब्रह्मा के पुत्र हैं, अतः इन्हें श्राद्ध की आवश्यकता नहीं है । इसलिए यहाँ पर इनका अर्थ न लेकर वैखानस से 'वानप्रस्थ' अर्थ लेना चाहिए। हरदत्तने न्यायदर्शन (अध्याय ३ सूत्र २) की व्याख्या में कहा है कि—

वैखानसो वानप्रस्थः । विखनसा प्रोक्तेन मार्गेण वर्तन्त इति ।
तेन हि स आश्रमः प्राधान्येन प्रतिपादितः ।

'विखनस्' नाम के ऋषि के द्वारा बताए मार्ग पर चलने के कारण इन्हें वैखानस कहते हैं । वैखानस का अर्थ है वानप्रस्थ या वानप्रस्थी ।

वैखानसो वनेवासी वानप्रस्थश्च तापसः । इति वैजयन्ती ।

(७) वालखिल्याः—बालखिल्य ऋषि अंगुष्ठमात्र (अर्थात् अंगूठे के बराबर) आकार के माने जाते हैं। इनकी संख्या साठ हजार है, और माना जाता है कि ये सूर्य के रथ के आगे आगे चलते हैं।

वालखिल्याः सहस्राणि षष्टिर्ब्रह्मर्षयो मताः।

पुरतोऽभिमुखं यान्ति स्तुवन्ति स्तुतिभिर्विभुम् ॥ भागवत० १२. २६.

महाभारत आदिपर्व अध्याय ३० में विस्तारपूर्वक यह बताया गया है कि किस प्रकार ये प्रारम्भ में समुद्र के किनारे रहते थे और फिर हिमालय पर तपस्या के लिए पहुँच गए।

ये ऋषि भी ब्रह्मा के पुत्र थे। अतः इनको श्राद्ध की आवश्यकता नहीं थी, इसलिए यहाँ वानप्रस्थों की ही एक अन्य श्रेणी इन्हें समझना चाहिए। बृहत्पराशरसंहिता में वानप्रस्थों के चार भेद बताए गए हैं, उनमें वैखानस और बालखिल्य दोनों हैं। वल्कलधारी, नित्ययज्ञकर्ता एवं आत्मज्ञों को बालखिल्य वानप्रस्थ कहते हैं।

वानप्रस्थश्चतुर्भेदो वैखानस उदुम्बरः।
बालखिल्यो वनेवासी तल्लक्षणमथोच्यते ॥
वनस्थो वालखिल्यो यो वसेद् वल्कलचीवरम्।
अग्निकार्यकृदात्मज्ञो दुर्जातसंचितं त्यजेत् ॥ बृहत्पराशर०।

यह शब्द वालखिल्य और बालखिल्य दोनों रूपों में लिखा जाता है।

(८) नैमिशीयाः—सुप्रसिद्ध नैमिषारण्य में रहने वाले ऋषि, मुनि। नैमिश और नैमिष दोनों रूपों में यह लिखा जाता है। नैमिषारण्य नाम इसलिये पड़ा क्योंकि निमिष (क्षण) भर में राक्षसों की सेना नष्ट कर दी गई थी।

उवाच निमिषेणेदं निहतं दानवं बलम्।
अरण्येऽस्मिंस्ततस्त्वेतन्निमिषारण्यसंज्ञितम्। वराहपुराण।

इसी प्रकार 'नैमिश' नाम की व्याख्या वायुपुराण में मिलती है—

प्रययुस्तस्य चक्रस्य तत्र नेमिर्व्यशीर्यत।
तद्वनं तेन विख्यातं नैमिशं मुनिपूजितम् ॥ वायुपुराण।

(९) चिन्तित०—चिन्तितमात्रा उपस्थिताश्च ते विपन्नाश्च मृताश्च तैः। कर्मधारय। संकल्प (सोचने) मात्र से ही उपस्थित और मृत। विपन्न—वि+पद्+क्त। ऋषि उनको मारते नहीं थे, अपि तु वे मृग स्वयं उनके विचार-मात्र से मर जाते थे। उनके मांस से वे श्राद्ध करते थे।

(१०) तर्पिताः—तृप्तिं प्रापिताः। तृप्त किए गए। तृप+णिच्+क्त।

(११) सुतफलम्०—पुत्रप्राप्तिफलम्, पुत्रप्राप्ति के फल को प्राप्त करते हैं।

(१२) हित्वा जराम्—वृद्धावस्थां त्यक्त्वा। वृद्धावस्था से रहित होकर। हित्वा—हा+त्वा। 'जहातेश्च क्त्वि' से हा को हि। यहाँ पर पितरों के भी वृद्धावस्था को छोड़ने का भाव यह समझना चाहिए कि वे भी अपने पुण्यों के क्षीण होने पर मर्त्यलोक में आते हैं, उनका यह अन्तिम समय ही वृद्धावस्था है, उसमें वे फिर मुक्त हो जाते हैं। मुंडक उपनिषद् में आया है कि—

नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति। मुंडक० ११०।

(१३) खमुपयान्ति—यहाँ पर 'ख' से भाव देवलोक समझना चाहिए, अर्थात् वे पितृलोक से देवलोक को जाते हैं।

(१४) दीप्यमानाः—भ्राजमानाः। तेजोमय। दीप+यक+शानच्।

(१५) आवर्तिभिः—भ्रमकारिभिः। जन्म और मृत्युरूपी परिवर्तन को करने वाले। आ+वृत्+णिनि=आवर्तिन्।

(१६) विषयैः—विषय वासनाओं से। विषिण्वन्ति बध्नन्ति पुरुषम्, इन्द्रियाणि वा इति विषयाः। वि+सि+अच्। पुरुषों को फँसा लेते हैं, अपने अधीन कर लेते हैं, अतः इन्हें विषय कहते हैं।

(१७) ह्रियन्ते—वशीक्रियन्ते। वे विषयों के वश में नहीं होते। श्लोक में 'ह्रियन्ते' का ही सन्धि होकर म्रियन्ते रूप समझना चाहिए, म्रियन्ते का नहीं।

(१८) इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

४४—रामः—मैथिलि !

आपृच्छ पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमांश्च।
विन्ध्यं वनं, तव सखीर्दयिता लताश्च।

वत्स्यामि तेषु हिमवद्गिरिकाननेषु
दीप्तैरिवौषधिवनैरुपरञ्जितेषु ॥११॥

४५—सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (जं अय्यउत्तो आणवेदि ।)

४६—रावणः—कौसल्यामातः! अलमतिमनोरथेन । न ते मानुषैर्दृश्यन्ते ।

४७—रामः—भगवन्! किं हिमवति प्रतिवसन्ति ।

४८—रावणः—अथ किम् ।

४४—अन्वय—पुत्रकृतकान् हरिणान् द्रुमान् च, विंध्यं वनं, तव दयिताः सखीः लताः च आपृच्छ्य, दीप्तैः इव ओषधिवनैः उपरञ्जितेषु तेषु हिमवद्गिरिकाननेषु वत्स्यामि ।

राम—मैथिली,

अपने पुत्रवत् लालित हरिणों और वृक्षों से, विन्ध्य-वन से, अपनी प्रियसखी लताओं से बिदाई लो । प्रकाशमान सी ओषधियों के वन से प्रकाशित हिमालय पर्वत के उन वनों में निवास करूँगा ॥११॥

Rāma—Maithilī,

Take leave of these antelopes and trees treated by you as your sons, and of the Vindhya forest and your dear friends, the creepers. I will dwell in those wild forests of the Himālaya mountain, illuminated with woods of herbs burning, as it were, with splendour. (11)

४५—सीता—जैसी आपकी आज्ञा ।

Sītā—As my husband commands.

४६—रावण—कौसल्या-नन्दन, अधिक मनोरथ मत बढ़ाओ । वे मनुष्यों को दृष्टिगोचर नहीं होते ।

Rāvaṇa—Son of Kausalyā, away with a high-flown desire. They cannot be seen by human beings.

४७—राम—भगवन्, क्या वे हिमालय पर रहते हैं ?

Rāma—Holy sir, do they dwell on the Himālaya mountain ?

४८—रावण—और क्या (अर्थात् हाँ)।

Rāvaṇa—Just so.

Notes

४४—(१) आपृच्छ—आमन्त्रयस्व। पूछ लो। बिदाई ले लो। यहाँ पर 'आङि नुप्रच्छ्योः' इस नियम से आ + प्रच्छ् आत्मनेपदी होता है, अतः 'आपृच्छस्व' प्रयोग उचित है। जैसे कि भास ने तृतीय अंक (वक्तव्य ६२ और ६७) में किया है—'तेन हि आपृच्छे भवन्तम्'।

(२) पुत्रकृतकान्—पुत्रवत् लालितान्। पुत्रवत् पाले पोसे हुए। पुत्रः कृतः पुत्रकृतः, 'सुप्सुपा' से समास। स एव पुत्रकृतकः। स्वार्थ में 'क' प्रत्यय। अथवा 'मयूरव्यंसकादयश्च' (पा० २.१.७२) से समास, कृतः पुत्रः पुत्रकृतः, स एव पुत्रकृतकः। कालिदास ने भी इसका प्रयोग किया है—

श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति, सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते।

शाकुन्तल ४.१४.

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन। रघुवंश २·३६·

(३) विन्ध्यं वनम्—राम वस्तुतः दंडकवन में थे, परन्तु वह विन्ध्य-वन का भी एक भाग है। जैसा कि बाण ने कादाम्बरी में कहा है कि—(कादम्बरी पृ० ४०) 'अस्ति मध्यदेशालङ्कारभूता विन्ध्याटवी नाम। तस्यां च दंडकारण्यान्तःपाति०' दंडक वन की उत्तरी सीमा नर्मदा है और दक्षिणी सीमा गोदावरी। विन्ध्याचल उत्तरी सीमा पर है।

(४) सखी:०—मृग पुत्रवत् हैं और लताएँ अतिप्रिय सखी के तुल्य हैं।

(५) हिमवद्०—हिमवतः गिरेः काननेषु। तत्पुरुष। हिमालय पर्वत के वनों में।

(६) दीप्तैरिव०—हिमालय पर्वत के विषय में कहा जाता है कि उस पर ऐसी जड़ी बूटियाँ हैं, जो रात्रि में चमकती हैं, अतः प्रकाश रात्रि में भ रहता है।

भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः । कुमारसंभव १·१० ।

यस्मिन्नज्वालिषू रात्रौ महौषध्यः सहस्रशः । भट्टि० १५·१०६ ।

यहाँ पर 'ओषधिवनैः०' के स्थान पर 'काञ्चनमृगयुतैः' विशेषण अधिक उपयुक्त था ।

(७) उपरञ्जितेषु—प्रकाशितेषु । प्रकाशयुक्त । उप+रञ्ज्+क्त ।

(८) यहाँ पर वसन्ततिलका छन्द है ।

४९—राम: तेन हि पश्यतु भवान् ।

सौवर्णान् वा मृगांस्तान् मे हिमवान् दर्शयिष्यति ।

भिन्नो मद्बाणवेगेन क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति ॥१२॥

५०—रावणः—(स्वगतम् ।) अहो असह्यः खल्वस्यावलेपः ।

५१—रामः—(दिशो विलोक्य ।) अये विद्युत्सम्पात इव दृश्यते ।

५२—रावणः—(प्रकाशम् ।) कौसल्यामातः ! इहस्थमेव भवन्तं पूजयति हिमवान् । एष काञ्चनपार्श्वः ।

५३—रामः—भगवतो वृद्धिरेषा ।

५४—सीता—दिष्टयाऽऽर्यपुत्रो वर्धते । (दिट्ठिआ अय्यउत्तो वड्ढइ ।)

४९—**अन्वय**—हिमवान् वा मे सौवर्णान् तान् मृगान् दर्शयिष्यति, वा मद्बाणवेगेन भिन्नः क्रौञ्चत्वं गमिष्यति ।

राम—अच्छा तो आप देखें कि—

हिमालय या तो उन काञ्चनमृगों को स्वयं मेरे सामने उपस्थित कर देगा, या मेरे बाणों के वेग से विद्ध होकर क्रौञ्च पर्वत की दशा को प्राप्त करेगा ॥ १२ ॥

Rāma—Then, mark your reverence,

The mountain Himālaya will expose them to my view, or pierced with the force of my shafts will fare like krauñcha (12)

५०—**रावण**—(स्वगत) ओह, इसका गर्व वस्तुत: असह्य है।

Rāvaṇa—(To himself.) Oh, unbearable, indeed, is his vanity.

५१—**राम**—(दिशाओं की ओर देखकर) ओह, बिजली की चमक सी दीख रही है।

Rāma—(Looking in the directions.) Oh, it seems there is a flash of lightning.

५२—**रावण**—(प्रकट) कौसल्यानन्दन, यहीं पर विद्यमान तुम्हारी हिमालय पूजा कर रहा है। यह है काञ्चनपार्श्व (मृग)।

Rāuaṇa—(Alaud.) Son of Kausalyā, Himalāya honours you just staying here. Here is a Kaṇchanapārsva.

५३—**राम**—यह आप की ही महिमा है।

Rāma—Theis good fortune is due to your reverence.

५४—**सीता**—आर्यपुत्र भाग्यशाली हैं।

Sītā—Fortune smiles on my husband.

Notes

४९—(१) सौवर्णान्—सुवर्णप्रभायुक्तान्। स्वर्णिम मृगों को यदि हिमालय स्वयं नहीं दिखाएगा तो उसकी गति क्रौञ्च पर्वत के सदृश ही होगी।

(२) हिमवान्—हिमालयः। हिमालय के दो रूप माने जाते हैं। एक स्थावर और दूसरा दिव्य। दिव्यरूप में वह सब कुछ चेतनवत् करता है। प्रथम भाग में दिव्यरूप की ओर निर्देश है और द्वितीय भाग में उसके पार्थिव स्थूलरूप की ओर। कालिदास ने भी उसके दो रूपों का वर्णन किया है।

जंगमं प्रेष्यभावे वः स्थावरं चरणाङ्कितम्।
विभक्तानुग्रहं मन्ये द्विरूपमपि ते वपुः॥ कुमारसंभव ६.५८.

(३) मद्बाण०—मदीयशरवेगेन । मेरे बाण के वेग से विद्ध । भिन्न—भिद्+क्त ।

(४) क्रौञ्चत्वम्—क्रौञ्च पर्वत की दशा को । यहाँ अन्तर्गत कथा यह है कि शिव से परशुराम और कार्त्तिकेय धनुर्विद्या सीखते थे । दोनों में कौन अधिक निपुण है, इसके परीक्षण के लिए दोनों ने क्रौञ्च पर्वत पर बाण छोड़े, जिससे उसमें छेद हो गया । क्रौञ्च पर्वत हिमालय का एक भाग है । पुराणों के अनुसार वह हिमालय का पौत्र और मैनाक का पुत्र है । क्रौंच पर्वत में छेद के कारण ही कार्त्तिकेय को क्रौंचदारण भी कहते हैं । कालिदास ने भी इसकी चर्चा की है—

हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत् क्रौञ्चरन्ध्रम् ।। मेघदूत १·६० ।

(५) अनुष्टुप् छन्द है ।

५१—(१) दिशो विलोक्य—यहाँ पर 'प्रकाशं दृष्ट्वा दिशो विलोक्य' निर्देश रक्खा जाय तो अच्छा है, अन्यथा बिना कारण दिशाओं की ओर देखना ठीक ज्ञात नहीं होता ।

(२) विद्युत्सम्पात०—यह रावण की माया है कि राम को प्रकाश एवं तदनन्तर मारीच मृगरूप में दिखाई दिया । रावण ने मारीच को निर्देश किया होगा कि वह उसके कुटी में प्रवेश के कुछ समय बाद दिखाई पड़े ।

५५—रामः—न न ।

तातस्यैतानि भाग्यानि यदि स्वयमिहागतः ।
अर्हत्येष हि पूजायां लक्ष्मणं ब्रूहि मैथिलि ! ॥१३॥

५६—सीता—आर्यपुत्र ! ननु तीर्थयात्रात उपावर्तमानं कुलपतिं प्रत्युद्गच्छेति सन्दिष्टः सौमित्रिः । (अय्यउत्त ! णं तित्थअत्तादो उवावत्तमाणं कुलवदिं पच्चुग्गच्छेहित्ति सन्दिट्ठो सोमित्ती ।)

५७—रामः—तेन हि अहमेव यास्यामि ।

५८—सीता—आर्यपुत्र! अहं किं करिष्यामि । (अय्य-उत्त! अहं किं करिस्सं ।)

५९—रामः—शुश्रूषयस्व भगवन्तम् ।

६०—सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (जं अय्यउत्तो आणवेदि ।)

(निष्क्रान्तो रामः ।)

५५—अन्वय—यदि स्वयम् इह आगतः, एतानि तातस्य भाग्यानि । हि एष पूजायाम् अर्हति, मैथिलि ! लक्ष्मणं ब्रूहि ।

राम—नहीं, नहीं,

यदि यह (मृग) स्वयं यहाँ आ गया है तो यह पिता का ही अहोभाग्य है; क्योंकि यह (पिता की) पूजा (अर्थात् श्राद्ध) में (उपयुक्त होने के) योग्य है । हे मैथिलि, तुम लक्ष्मण को इसे लाने के लिए कह दो ॥१३॥

Rāma—No, no.

If this (antelope) has come spontaneously it is father's good fortune, for, it is to be used in the (obsequial) worship of the father. Maithili, tell Lakṣmaṇa to fetch this here. (13)

५६—सीता—आर्यपुत्र, आपने लक्ष्मण को आदेश दिया था कि 'तीर्थ-यात्रा से लौट कर आते हुए कुलपति के स्वागतार्थ जाओ' ।

Sītā—Husband, you have deputed Lakṣmaṇa saying—Go to receive the patriarch returning from his visit to the sacred places.

५७—राम—तब तो मैं ही जाऊँगा ।

Rāma—Then I shall go myself.

५८—सीता—आर्यपुत्र, मैं क्या करूँगी ?

Sītā—Husband, What shall I do?

५९—राम—महाराज की शुश्रूषा करना ।

Rāma—Be in attendance on his holiness.

६०—सीता—जैसी आपकी आज्ञा ।

(*राम का प्रस्थान*)

Sita—As my husband commands.

(*Exit Rāma*)

Notes

५५—(१) न न०—राम के कथन का भाव यह है कि यह मेरा अहोभाग्य नहीं है अपितु पिता का अहोभाग्य है कि यह मृग स्वयं आ गया ।

(२) अर्हति०—इसका अर्थ इस प्रकार करना चाहिए कि 'हि एषः पूजायां श्राद्धकर्मणि उपयोगम् अर्हति' यह मृग पूजा के लिए अर्थात् श्राद्ध कर्म में उपयोग के योग्य है, अतः हे मैथिलि, लक्ष्मण को इसे लाने के लिए भेज दो । यहाँ पर 'उपयोगम्' का अध्याहार करना चाहिए । श्री काले ने इसका अर्थ किया है—एषः मृगः पूजाम् अर्हति, पूजायां पूजार्थे लक्ष्मणं ब्रूहि ।' 'यह मृग पूजा के योग्य है, इसकी पूजा के लिए लक्ष्मण को भेज दो ।' श्लोक के पढ़ने से यह अर्थ नहीं निकलता । यह क्लिष्ट कल्पना ही ज्ञात होती है । मृग को पूजा अभिप्रेत अर्थ भी नहीं है । उपर्युक्त रूप से अर्थ स्पष्ट हो जाता है ।

(३) अनुष्टुप् छन्द है ।

५६—(१) उपावर्तमानम्—निवर्तमानम् । लौट कर आते हुए । उप+आ+वृत्+शानच् ।

(२) प्रत्युद्गच्छ—स्वागतार्थं गच्छ । स्वागतार्थ जाओ । प्रत्युद्गमन का अर्थ है अगवानी करना । आगे जाकर स्वागत करना ।

(३) कुलपतिम्—तपोवासिमुनिमुख्यम् । तपस्वियों में सर्वप्रमुख । कुलपति यह पारिभाषिक शब्द है । कुलपति उसको कहते हैं जो दस हजार मुनियों का अन्नदान आदि से पोषण करता है और उनको शिक्षा देता है ।

मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात् ।
अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः ॥ मनुस्मृति ।

यहाँ पर कुलपति का नाम-निर्देश नहीं है, परन्तु रामायण से ज्ञात होता है कि यहाँ पर 'अत्रि' ऋषि कुलपति थे।

एते ते तापसा देवि दृश्यन्ते तनुमध्यमे।
अत्रिः कुलपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरोपमः॥ युद्धकांड १२३.४७.

(४) सन्दिष्टः०—आदिष्टः लक्ष्मणः। लक्ष्मण को आपने आदेश दिया है। यहाँ पर रामायण की कथा से अन्तर है। रामायण (अरण्यकांड अध्याय ४१) के अनुसार राम ने जब मारीच को बाण से मारा तो उसने राम के स्वर में चिल्लाना प्रारम्भ किया और जब सीता ने यह सुना तो उन्होंने लक्ष्मण को राम की रक्षा के लिए भेजा। यहाँ पर भास ने नाटकीय कुशलता प्रस्तुत की है। लक्ष्मण को कुलपति के स्वागतार्थ भेज दिया है और राम को मृग लाने के लिए भेज कर असहाय सीता का हरण प्रस्तुत किया है। राम रावण को सन्मुख उपस्थित होने पर भी न पहचान सके और न उसकी दुर्भावना को भाँप ही सके। एक अज्ञात अतिथि के कथन पर पूर्ण विश्वास करके सीता को एकाकी छोड़ कर मृगवधार्थ चले गए।

६१—रावणः—अये अयमर्घ्यमादायोपसर्पति राघवः। एष इदानीं पूजामनवेक्ष्य धावन्तं मृगं दृष्ट्वा धनुरारोपयति राघवः।

अहो बलमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो जवः।
राम इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत्॥१४॥

एष मृगः एकप्लुतातिक्रान्तशरविषयो वनगहनं प्रविष्टः।

६२—सीता—(आत्मगतम्।) आर्यपुत्रविरहिताया भयं मेऽत्रोत्पद्यते।

(अय्यउत्तविरहिदाए भअं मे एत्थ उप्पज्जइ।)

६१—अन्वय—अहो बलम्, अहो वीर्यम्, अहो सत्त्वम्, अहो जवः, रामः इति अल्पैः अक्षरैः इदं जगत् व्याप्तम् (इति) स्थाने।

रावण—ओह, ये राम अभी तो अर्घ्य लेकर मेरे पास आ रहे थे, और

अभी (मेरी) पूजा की उपेक्षा करके दौड़ते हुए मृग को देखकर राम अपने धनुष को चढ़ा रहे हैं।

ओह, क्या ही उसका बल है, ओह क्या ही उसकी शक्ति है, ओह क्या ही उसका पराक्रम है, ओह क्या ही उसका वेग है ! यह उचित ही है कि 'राम' नाम के इन दो अक्षरों से सारा संसार व्याप्त हो रहा है ॥१४॥

यह मृग तो एक छलाँग में ही बाण की पहुँच को लाँघ कर घने वन में प्रविष्ट हो गया।

Rāvaṇa—Oh, this Rāma was just coming to me with materials of worship And now, neglecting that worship, Rāma is stringing his bow, seeing the antelope running away.

Oh, his physical strength, oh his prowess, oh his mettle, oh his speed ! It is but meet that the whole world is pervaded by the two short syllables Rāma. (14)

Here has the deer, passing with one bound beyond the range of his arrow, entered the dense forest.

६२—सीता—(स्वगत) आर्यपुत्र से रहित मुझको यहाँ कुछ भय सा लग रहा है।

Sita—(To herself) Separated from my husband, I feel afraid here.

Notes

६१—(१) अर्घ्यमादाय०—ये राम अर्घ्य लेकर मेरे पास आ रहे थे। 'माम् उपसर्पति स्म' ऐसा भाव समझना चाहिए। यहाँ पर कुछ लोगों ने यह अर्थ किया है कि 'राम अर्घ्य लेकर मृग की ओर जा रहे हैं'। मृग की पूजा के लिए राम का जाना अर्थ लेना यहाँ पर उपयुक्त नहीं है, क्योंकि मृग की पूजा यहाँ पर अभिप्रेत नहीं है, अपितु उसको जीवित या मृत रूप में पकड़ना अभिप्रेत है, अतएव राम धनुष बाण के साथ गए हैं।

(२) पूजामनवेक्ष्य०—अब मेरी पूजा की ओर ध्यान न देकर मृग को भागता देखकर धनुष चढ़ा रहे हैं। अनवेक्ष्य—नञ्+अव+ईक्ष्+क्त्वा (ल्यप्)। उपेक्षा करके। धावन्तम्—धाव्+शतृ+अम्।

(३) अहो—आश्चर्यसूचक अव्यय है।

(४) बलम्—शारीरिक बल। वीर्य—शक्ति या पुरुषार्थ। सत्त्व—पराक्रम, मानसिक दृढ़ता धीरता आदि। जव—वेग, तीव्रता।

(५) राम इति०—'राम' इन कुछ अक्षरों ने। यहाँ पर अक्षर शब्द स्वरों और व्यंजनों के लिए है, इसलिए राम में र्, आ, म्, अ चार अक्षर मान कर अक्षरैः में बहुवचन है, नहीं तो द्विवचन होना चाहिए था। साधारणतया 'राम' को दो ही अक्षर माना जाता है। स्थाने=युक्तम्। 'स्थाने' अव्यय है, युक्त अर्थ में आता है। राम का नाम सर्वत्र व्याप्त है, यह ठीक ही है। नागेश ने लघुमंजूषा (पृ० ३६) में कहा है कि—

रामेति द्व्यक्षरं नाम मानभङ्गः पिनाकिनः। लघुमंजूषा।

(६) अनुष्टुप् छन्द है।

(७) एकप्लुता०—एकेन प्लुतेन उत्प्लुत्या अतिक्रान्तः लङ्घितः शरविषयो बाणगोचरता येन सः, वनगहनं दुर्गमवनं प्रविष्टः। एक छलाँग में बाण की पहुँच को लाँघकर गहन वन में घुस गया। एकप्लुत० में बहुव्रीहि। गहन का वन अर्थ भी है, यहाँ घना अर्थ है।

६३—रावणः—(आत्मगतम्।)

मायया पहृते रामे सीतामेकां तपोवनात्।
हरामि रुदतीं बालाममन्त्रोक्तामिवाहुतिम् ॥१५॥

६४—सीता—यावदुटजं प्रविशामि। (गन्तुमीहते।) (जाव उडजं पविसामि।)

६५—रावणः—(स्वरूपं गृहीत्वा।) सीते! तिष्ठ तिष्ठ।

६६—सीता—(सभयम्।) हं क इदानीमयम्। (हं को दाणि अअं।)

६३—अन्वय—मायया रामे अपहृते, एकां रुदतीं बालां सीतां तपोवनात् अमन्त्रोक्ताम् आहुतिम् इव हरामि।

रावण—(स्वगत)

मैंने माया से राम को दूर हटा दिया है, अब अकेली, रोती हुई, बाला सीता को इस तपोवन से, मन्त्रोच्चारण से शून्य आहुति के तुल्य, हरण करता हूँ ॥१५।

Rāvaṇa—(To himself.)

Now Rāma being lured away by a ruse I will carry away this young weeping Sītā, left here alone, from, this penance-grove, like an oblation offered without the recitation of Mantras. (15)

६४—सीता—अच्छा तो कुटी में जाती हूँ। (अन्दर जाना चाहती है।)

Sītā—I will enter the hut now. (Wishes to go in)

६५—रावण—(अपने वास्तविक रूप को धारण करके) सीता, रुको, रुको।

Rāvaṇa—(Assuming his real form). Sītā, stay, stay.

६६—सीता—(भयभीत होकर) ओह, अब यह कौन है ?

Sītā—(With fear) Ha, who can this person be now ?

Notes

६३—(१) अपहृते—दूरदेशं नीते सति। दूर स्थान को ले जाने पर। यहाँ पर राम का सीता की तरह अपहरण अर्थ नहीं है। अप+हृ+क्त=अपहृत।

(२) मायया—यहाँ पर माया का अर्थ है चाल या धोखा। काञ्चन-मृगरूपी माया के द्वारा।

(३) बालाम्—अल्पवयस्काम्। यहाँ पर बाला का अर्थ है अल्पवयस्का, कम आयु की। कुमारी अर्थ नहीं है।

(४) अमन्त्रोक्ताम्•—बिना मन्त्रों के उच्चारण के अग्नि में दी हुई आहुति को जिस प्रकार राक्षस ले लेते हैं, उसी प्रकार अकेली सीता का मैं हरण कर रहा हूँ। अशुद्ध मन्त्रपाठ के साथ या बिना मन्त्रपाठ के दी गई

आहुति राक्षसों का भाग होती है। पाणिनीयशिक्षा (५२) एवं महाभाष्य (आन्हिक १, नवान्हिक) में इसके विषय में कहा गया है कि—

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥

महाभारत और वसिष्ठसंहिता में कहा गया है कि ऐसी आहुति राक्षसों की होती है।

(क) तिलैर्विरहितं श्राद्धं कृतं क्रोधवशेन च।
यातुधानाः पिशाचाश्च प्रविलुम्पन्ति तद्धविः। महाभारत, अनु० ६०.२२.
(ख) उत्क्षेपणं भूमिगतं विकिरेल्लेपसोदकम्।
अनुप्रेतेषु विसृजेदप्रजानामनायुषाम् ॥
उभयोः शाखयोर्मुक्तं पितृभ्योऽन्नं निवेदितम् ॥
तदन्तरं प्रतीक्षन्ते ह्यसुरा दुष्टचेतसः ॥ वसिष्ठसंहिता ११.
विशेष व्याख्या के लिए देखें अंक ५ वक्तव्य १४ पर विवरण।

(५) उक्त—वच+क्त। आहुति—आ+हु+क्तिन्।
(६) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

६४—यावदुटजं०—इससे ज्ञात होता है कि राम और सीता रावण के सत्कारार्थ बाहर आकर बैठे थे।

६७—रावणः—किं न जानीषे।

युद्धे येन सुराः सदानवगणाः शक्रादयो निर्जिता
दृष्ट्वा शूर्पणखाविरूपकरणं श्रुत्वा हतौ भ्रातरौ।
दर्पाद् दुर्मतिमप्रमेयबलिनं रामं विलोभ्य च्छलैः
स त्वां हर्तुमना विशालनयने! प्राप्तोऽस्म्यहं रावणः ॥१६॥

६७—अन्वय—हे विशालनयने! येन शक्रादयः सुराः सदानवगणाः युद्धे निर्जिताः, सः अहं रावणः, शूर्पणखाविरूपकरणं दृष्ट्वा, भ्रातरौ हतौ श्रुत्वा, दर्पात् दुर्मतिम् अप्रमेयबलिनं रामं छलैः विलोभ्य, त्वां हर्तुमनाः प्राप्तः अस्मि।

रावण—क्या तुम जानती नहीं ?

हे विशाललोचने, मैं वह रावण हूँ, जिसने इन्द्र आदि देवताओं को और राक्षसों के समूहों को युद्ध में परास्त किया है। शूर्पणखा का कुरूप बनाया जाना (अर्थात् नाक-काटा जाना) देखकर और दोनों भाइयों (खर-दूषण) का वध सुनकर, दुरभिमान के कारण दुष्टबुद्धि (दुष्कर्मकर्ता) और अपने आपको असीम बलशाली मानने वाले राम को अपने छलों (माया) से ठग कर आज तुमको हरण करने की इच्छा से आया हूँ ॥१६॥

Rāvaṇa—Do you not know ?

I am that Rāvaṇa, who conquered, in battle, the gods, Indra and others, together with the hosts of demons, and who have come here, on seeing deformation of Sūrpaṇakhā, and hearing of the slaughter of my two brothers (Khara and Dūṣana) with a desire to carry you off, oh large eyed one, after having enticed away with tricks Rāma, who, through pride, has been acting wickedly and considers himself as possessed of measureless strength. (16)

Notes

६७—(१) सदानवगणाः—दानवानां दैत्यानां गणैः सङ्घैः सहिताः सदानवगणाः। सहार्थ में बहुव्रीहि। राक्षसों के समूह के साथ। दानव—दनोरपत्यम्। दनु + अण्। दनु के पुत्र।

(२) शक्रादयः—इन्द्रादयः। इन्द्र आदि देवों को मैंने पराजित किया है। निर्जिताः—पराजिताः। हरा दिए हैं। निर + जि + क्त। रामायण में भी रावण के द्वारा देवों आदि के हराने का वर्णन रावण के मुख से ही वर्णित आया है—

> येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुरमानुषाः।
> अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः॥ अरण्य० ४७.२६.

(३) शूर्पणखा०—शूर्पणखायाः विरूपकरणम्। तत्पुरुष। शूर्पणखा की नाक काटने के द्वारा विरूप किए जाने को देखकर। शूर्पणखा रावण की

छोटी बहन थी। दृष्ट्वा—दृश्+क्त्वा। शूर्पणखा—शूर्पाणीव नखानि यस्याः सा। बहुव्रीहि। सूप की तरह नाखूनों वाली। शूर्पणख-शब्द से 'नखमुखात्संज्ञायाम्' (पा० ४.१.५८) नियमानुसार ङीप् (ई) प्रत्यय स्त्रीलिंग--बोधक न होकर 'टाप्' (आ) प्रत्यय ही हुआ है। करण—कृ+ल्युट् (अन)।

(४) श्रुत्वा हतौ०—दोनों भाइयों अर्थात् खर और दूषण को मारा गया सुनकर। श्रुत्वा—श्रु+क्त्वा। हत—हन्+क्त। 'अनुदात्तोपदेश०' से न् का लोप।

(५) दर्पात् दुर्मतिम्—दुरभिमानात् बुद्धिहीनम्। दुरभिमान के कारण जिसकी बुद्धि ठीक नहीं रही है अर्थात् जो सभी दुष्कृत्य कर रहा है, ऐसे राम को! दर्प—दृप्+घञ्। दुर्मति—दुर्+मन्+क्तिन्। मन् के न् का लोप।

(६) अप्रमेयबलिनम्—अतुलबलवन्तम्। राम घमण्ड के कारण अपने आपको अतुल-पराक्रमी समझता है। यह रावण ने राम के प्रति घृणा की भावना से कहा है।

अप्रमेय—नञ्+प्र+मा+यत् (य)। ० बलिन्—०बल+इनि।

(७) विलोभ्य छलैः—छल से दूर हटाकर। राम इतना भोला है कि मेरे कहने पर उसने मान लिया कि सुवर्ण-मृग होता है। विलोभ्य—वि+लुभ्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्)।

(८) हर्तुमनाः—हर्तुकामः। हरण करने की इच्छा से। 'तुं काममनसोरपि' से तुम् के म का लोप।

(९) इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

६८—सीता—हं रावणो नाम। (प्रतिष्ठते।) (हं लावणो णाम।)

६९—रावणः—आः! रावणस्य चक्षुर्विषयमागता क्व यास्यसि।

७०—सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व। सौमित्रे ! परित्रायस्व परित्रायस्व। (अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि। सोमित्ती ! परित्ताआहि परित्ताआहि।)

७१—रावणः—सीते ! श्रूयतां मत्पराक्रमः।

भग्नः शक्रः कम्पितो वित्तनाथः
क्रुष्टः सोमो मर्दितः सूर्यपुत्रः।
धिग् भोः स्वर्गं भीतदेवैर्निविष्टं
धन्या भूमिर्वर्तते यत्र सीता ॥१७॥

७२—सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व। सौमित्रे ! परित्रायस्व परित्रायस्व माम्। (अय्यउत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि। सोमित्ती ! परित्ताआहि परित्ताआहि मं।)

६८—सीता—ओह, रावण ! (चल पड़ती है।)

Sītā—Oh, it is Rāvṇa ? (Starts to go)

६९—रावण—आह, रावण की आँखों के सामने आई हुई कहाँ जाएगी !

Rāvaṇa—Ah, whither can you go, come within the range of Rāvaṇa's eyes ?

७०—सीता—आर्यपुत्र, बचाइए, बचाइए। लक्ष्मण, बचाओ, बचाओ।

Sītā—Husband, save me, save me. Lakṣmaṇa, save me, save me.

७१—अन्वय—शक्रः भग्नः, वित्तनाथः कम्पितः, सोमः क्रुष्टः, सूर्यपुत्रः मर्दितः, भोः ! भीतदेवैः निविष्टं स्वर्गं धिक्, भूमिः धन्या यत्र सीता वर्तते ॥

रावण—सीता, मेरा पराक्रम सुनो।

मैंने इन्द्र को परास्त किया है, कुबेर को (अपने भय से) कँपा दिया है, सोम (चन्द्रमा) को खींच लिया है (अर्थात् नीचे गिरा दिया है), यम

का मर्दन कर दिया है। ओह ऐसे कायर देवताओं से अधिष्ठित स्वर्ग को धिक्कार है; पृथ्वी ही धन्य है जहाँ सीता का वास है ॥१७॥

Rāvaṇa—Oh, Sitā, hear my prowess.

Indra was overpowered and the lord of wealth (Kubera) was made to quake (with fear) ; the moon was dragged and Sūrya's son (yama) was crushed by me. Oh fie upon heaven, that is inhabited by the timid gods ; blessed is earth where dwells Sit. (17)

७२—सीता—आर्यपुत्र, मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो। लक्ष्मण, मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो।

Sitā—Protect me, my husband, protect me. Lakṣmaṇa, protect me, protect me.

Notes

६९—चक्षुर्विषयम्०—दृष्टिगोचरं प्राप्ता। रावण की दृष्टि के सम्मुख आकर।

७१—(१) भग्नः शक्रः—इन्द्रः पराजितः। इन्द्र को परास्त कर दिया है। भग्न—भंज्+क्त।

(२) वित्तनाथः०—धनपति कुबेर को कँपा दिया है। कुबेर उत्तर दिशा का दिक्पाल है। यह रावण का सौतेला भाई माना जाता है। रावण ने युद्ध करके इसको लंका से निकाल दिया था, और इसका 'पुष्पक' नामक विमान छीन लिया था। आवश्यकतानुसार इससे धन भी बलात् लेता था।

(३) सोमः कृष्टः—सोम का अर्थ है चन्द्रमा, उनको नीचे गिरा दिया है। रावण ने चन्द्रमा पर आक्रमण किया था, इसका वर्णन रामायण उत्तरकांड (प्रक्षिप्तसर्ग ४, श्लोक २६, अध्याय २३ के बाद) में आया है। गणपतिशास्त्री ने सोम का अर्थ ब्रह्मा किया है, परन्तु यह अर्थ ठीक नहीं है, क्योंकि ब्रह्मा से ही उसको शक्ति प्राप्त हुई थी। (रामायण उत्तर कांड प्रक्षिप्त सर्ग ४, और रघुवंश १०.४२)

(४) मर्दितः सूर्यपुत्रः—सूर्य का पुत्र यम है। उसका मर्दन कर दिया है। मर्दित—मृद्+णिच्+क्त।

(५) भीतदेवैः०—भीरु स्वभाव वाले देवों से अधिष्ठित स्वर्ग को धिक्कार है। नि + विष् + क्त = निविष्ट।

(६) इस श्लोक में शालिनी छन्द है।

७३—रावण :—

रामं वा शरणमुपेहि लक्ष्मणं वा
स्वर्गस्थं दशरथमेव वा नरेन्द्रम्।
किं मे स्यात् कुपुरुषसंश्रितैर्वचोभि-
र्न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ॥१८॥

७४—सीता—आर्यपुत्र! परित्रायस्व परित्रायस्व। सौमित्रे! परित्रायस्व परित्रायस्व माम्। (अय्यउत्त! परित्ताआहि परित्ताआहि। सोमित्ती! परित्ताआहि परित्ताआहि मं।)

७५—रावणः—

विलपसि किमिदं विशालनेत्रे!
विगणय मां च यथा तवार्यपुत्रम्।
विपुलबलयुतो ममैष योद्धुं
ससुरगणोऽप्यसमर्थ एव रामः ॥ १९ ॥

७३—अन्वय—रामं वा शरणम् उपेहि, लक्ष्मणं वा, स्वर्गस्थं दशरथं नरेन्द्रम् एव वा। कुपुरुषसंश्रितैः वचोभिः मे किं स्यात्, व्याघ्रं मृगशिशवः न प्रधर्षयन्ति।

रावण—तुम चाहे राम की शरण लो या लक्ष्मण की, या स्वर्गवासी राजा दशरथ की हीं शरण लो। इन कायर पुरुषों से सम्बद्ध तुम्हारी पुकार से मेरा क्या बिगड़ सकता है? व्याघ्र को मृगों के बच्चे नहीं दबा सकते हैं। (१८)

Rāvaṇa—Seek the protection of Rāma or of Lakṣmaṇa, or of Daśaratha himself, the king now living in heaven.

What harm can there be to me by these appeals (of yours) addressed to these weak persons? Young ones of the deer cannot brave a tiger. (18)

७४—सीता—आर्यपुत्र, मेरी रक्षा करो। लक्ष्मण, मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो।

Sītā—Protect me, husband, protect me. Lakṣmaṇa, protect me, protect me.

७५—अन्वय—विशालनेत्रे ! किमिदं विलपसि, मां च तव आर्यपुत्रं यथा विगणय, विपुलबलयुतः ससुरगणः अपि एष रामः मम योद्धुम् असमर्थ एव।

रावण—विशाललोचने, तुम रो रही हो, यह क्या बात है ? मुझे तुम अपने पति के सदृश ही समझो। विशेष-शक्ति-सम्पन्न यह (तुम्हारा) राम देवताओं के समूह के सहित होने पर भी मेरे साथ युद्ध करने में असमर्थ है ॥ १६ ॥

Rāvaṇa—You lament, what is this, O lerge-eyed one; regard me as you regard your husband. Although possessed of enormous strength and helped by the multitude of gods, this (your) Rāma is quite unable to fight with me. (19)

Notes

७३—(१) शरणमुपेहि—रक्षितारं गच्छ। शरण का अर्थ है आश्रय, आश्रय लेना, रक्षा में रहना। शरण—शॄ+ल्युट्।

(२) कुपुरुष०—कुत्सितपुरुषसम्बद्धैः। ऐसे कायर पुरुषों से सम्बद्ध। राम आदि तुच्छ व्यक्ति हैं। मेरी कुछ हानि नहीं कर सकते। कुपुरुष—कुत्सितः पुरुषः। संश्रित—सम्+श्रि+क्त।

(३) वचोभिः—वचनैः। रक्षा के लिए पुकारों से।

(४) न व्याघ्रम्०—यह सूक्ति है। सिंह को मृगों के बच्चे नहीं डरा सकते हैं।

(५) इस श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द है।

७५—(१) विगणय माम्०—मां तव स्वकीयं आर्यपुत्रं भर्तारं यथा इव विगणय जानीहि। मुझे अपने पति के तुल्य ही समझो, अर्थात् राम के तुल्य मुझे ही अपना रक्षक एवं सर्वस्व अब समझो। विगणय—विशेषेण गणय, विशेष रूप से समझो।

(२) विपुलबल०—विपुलेन महता बलेन शक्त्या सैन्येन युतः वा युक्तः। तत्पुरुष। (क) बहुत अधिक शक्ति-सम्पन्न, या (ख) बहुत बड़ी सेना के साथ भी। दोनों अर्थ हो सकते हैं।

(३) ससुरगणः०—सुराणां देवानां गणैः समूहैः सहितः। सह अर्थ में बहुव्रीहि। देवताओं के समूहों के साथ भी। यदि सारे देवता सहायता करें, तो भी राम मुझसे युद्ध करने की शक्ति नहीं रखते हैं। योद्धुम्—युध् +तुमुन् (तुम्)।

(४) इस श्लोक में पुष्पिताग्रा छन्द है।

७६—सीता—(सरोषम्।) शप्तोऽसि (सत्तो सि।)

७७—रावणः—ह ह ह! अहो पतिव्रतायास्तेजः।

योऽहमुत्पतितो वेगान्न दग्धः सूर्यरश्मिभिः।
अस्याः परिमितैर्दग्धः शप्तोऽसीत्येभिरक्षरैः ॥२०॥

७८—सीता—आर्यपुत्र! परित्रायस्व परित्रायस्व (अय्यउत्त! परित्ताआहि परित्ताआहि।)

७९—रावणः—(सीतां गृहीत्वा। (भो भोः! जनस्थाननिवासिनस्तपस्विनः! शृण्वन्तु भवन्तः।

बलादेष दशग्रीवः सीतामादाय गच्छति।
क्षात्रधर्मे यदि स्निग्धः कुर्याद् रामः पराक्रमम् ॥२१॥

७६—सीता—(क्रोध से) तुम्हें शाप देती हूँ।

Sītā—(Angrily). You are cursed.

७७—अन्वय—वेगात् उत्पतितः यः अहं सूर्यरश्मिभिः न दग्धः, (सोऽहम्) अस्याः 'शप्तोऽसि' इति एभिः परिमितैः अक्षरैः दग्धः।

रावण—ह ह ह ! धन्य हो पतिव्रता का तेज !

जो मैं वेग से आकाश में उड़ते समय (प्रखर) सूर्य की किरणों से नहीं जला, वह मैं इसके 'शप्तोऽसि' (तुम्हें शाप देती हूँ) इन कतिपय अक्षरों से जल गया ? ॥२०॥

Rāvaṇa—Ha, ha, ha ! How great is the power of this chaste woman !

I, who, soaring high with velocity, was not burnt by the (immense) rays of the sun, am being burnt by her petty words, 'you are cursed !' (20)

७८—**सीता**—आर्यपुत्र, रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

Sītā—Husband, save me, save me.

७९—**अन्वय**—एष दशग्रीवः बलात् सीताम् आदाय गच्छति। यदि रामः क्षात्रधर्मे स्निग्धः (तर्हि) पराक्रमं कुर्यात् ॥

रावण—(सीता को पकड़ कर) हे जनस्थाननिवासी तपस्वियो, आप लोग सुनिए सुनिए।

यह रावण बलपूर्वक सीता को हरण करके ले जा रहा है। यदि राम को क्षात्रधर्म के प्रति स्नेह हो तो वह अपना पराक्रम दिखावे ॥ २१ ॥

Rāvaṇa—(Seizing Sītā). Oh you ascetics that dwell in Janasthāna ! Hear me, do hear me your honours.

Here is the ten-necked (Rāvaṇa) going away having forcibly taken Sītā with him : if Rāma has any regard for the duties of Ksatryahood, let him display his prowess. (21)

Notes

७७—(१) ह ह ह—उपहाससूचक अव्यक्तानुकरण।

(२) अहो पतिव्रतायाः०—रावण ने सीता के शाप देने की हँसी उड़ाई है कि क्या ही यह पतिव्रता का तेज है। आगे श्लोक में भी शाप की हँसी की गई है।

(३) न दग्धः—न प्रज्वलितः। नहीं जला। जो सूर्य की प्रखर किरणों से नहीं जल सका, वह भला इन शाप के अक्षरों से जल जाएगा, अर्थात्

कदापि नहीं। दग्ध—दह् + क्त। परिमित—परि + मा + क्त। शप्त—शप् + क्त।

(४) अनुष्टुप् छन्द है।

(५) 'अभिषेक' (अंक २) में भी भास ने वक्तव्य ७६, ७७ का गद्यांश कह कर लिखा है कि—

देवाः सेन्द्रादयो भग्ना दानवाश्च मया रणे।
सोऽहं मोहं गतोऽप्यद्य सीतायास्त्रिभिरक्षरैः ॥१८॥

७९—(१) 'अभिषेक' (अंक ३) में भी रावण की गर्वोक्ति है कि—

अभिभूतो मया राम दारापहरणादसि।
यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा दीयतां मे रणो महान् ॥२२॥

(२) दशग्रीव (दस ग्रीवाओं वाला, रावण) सीता को लेकर जा रहा है। राम को क्षात्रियधर्म में प्रेम हो तो वे अपना पराक्रम दिखावें। स्निग्ध—स्निह + क्त। यहाँ पर अनुष्टुप् छन्द है।

८०—सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व परित्रायस्व। (अय्य उत्त ! परित्ताआहि परित्ताआहि।)

८१—रावणः—(परिक्रामन् विलोक्य) अये ! स्वपक्षपवनोत्क्षेपक्षुभितवनषण्डश्चण्डचञ्चुरभिधावत्येष जटायुः। आः। तिष्ठेदानीम्।

मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिंशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः।
रुधिरैरार्द्रगात्रं त्वां नयामि यमसादनम् ॥२२॥

(*निष्क्रान्तौ।*)

८०—सीता—आर्यपुत्र, रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

Sitā—Husband, save me, save me.

८१—अन्वय—मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिंशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः रुधिरैः आर्द्रगात्रं त्वां यमसादनं नयामि।

रावण—(घूमकर और देखकर) ओह, अपने पंखों की हवा के वेग से वन के वृक्षों को क्षुब्ध करने वाला, भयंकर चोंचयुक्त यह जटायु मेरी ओर दौड़ा आ रहा है। आह, अच्छा ठहर तो—

मेरे हाथ से निकाली हुई तलवार से काटे हुए पंखों के घावों से गिरते खून से आर्द्र-शरीर तुझको यमलोक भेजता हूँ ॥२२॥

(दोनों का प्रस्थान ।)

पंचम अंक समाप्त

Rāvaṇa—(Moving about and seeing) Oh, here is Jaṭāyu, with his formidable beak rushing towards me, having thrown into agitation the trees of the forest shaken up with the wind of his wings. Ah, wait here now.

I will despatch you to the abode of Yama, with your limbs wet with profuse blood dropping from the wounds caused by your wings being severed with the sword drawn by my hand. (22)

(Exeunt Both.)

End of Act V.

Notes

८१—(१) स्वपक्ष॰—स्वपक्षयोः पवनेन वायुना यः उत्क्षेप उपरिक्षेपणम्, तेन क्षुभिताः सञ्चालिताः वनषण्डाः वृक्षसमूहाः येन । बहुव्रीहि । अपने पंखों की हवा के चक्कर से जिसने वन के वृक्षों को क्षुब्ध कर दिया है। उत्क्षेप—उत्+क्षिप्+घञ् । क्षुभित—क्षुभ्+क्त । 'पवनोत्क्षेप' का अर्थ है हवा का वेगपूर्वक चक्कर खाते हुए उठना । 'षण्ड' शब्द समूह वाचक है।

(२) चण्डचञ्चुः—चण्डा भीषणा चञ्चुः यस्य सः । बहुव्रीहि । भीषण चोंच वाला ।

(३) जटायुः—जटायु श्येनी और अरुण का पुत्र था तथा सम्पाति का छोटा भाई था। पक्षि-राज था। वह दशरथ का परम मित्र था। जब

दशरथ ने अकाल के कारणभूत शनि पर चढ़ाई की थी, तब शनि के प्रकोप से वे रथ से नीचे गिर पड़े थे, उस समय जटायु ने उनकी रक्षा की थी। यहाँ पर सीता की रक्षा के लिये रावण से भयंकर युद्ध करता हुआ दिवंगत होता है।

(४) मद्भुजा०—मम भुजेन बाहुना आकृष्टः यः निस्त्रिंशः खड्गः तेन कृत्तयोः छिन्नयोः पक्षयोः यत् क्षतं व्रणस्तस्मात् च्युतैः गलितैः। तत्पुरुष। मेरे हाथ से खींची हुई तलवार से छिन्न पंखों की चोट से निकलते हुए खून से गीले तुमको यमलोक भेजता हूँ। आकृष्ट—आ+कृष्+क्त। निस्त्रिंश—निर्गतः त्रिंशतः अंगुलिभ्यः। लम्बी तलवार।

(५) यमसादनम्—यमगृहम्। यमलोक। 'सादन' शब्द 'सदन' (गृह) के अर्थ में आया है। महाभारत में भी 'यमसादन' प्रयोग आता है—

मीमसेनोऽपि संक्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः।
दुर्जयं भिन्नमर्माणमनयद् यमसादनम्॥ महाभारत द्रोण० १३३.४२.

पंचम अङ्क समाप्त

अथ षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो वृद्धतापसौ।)

१—उभौ—परित्रायतां परित्रायतां भवन्तः।

२—प्रथमः—

इयं हि नीलोत्पलदामवर्चसा
मृणालशुक्लोज्ज्वलदंष्ट्रहासिना।
निशाचरेन्द्रेण निशार्धचारिणा
मृगीव सीता परिभूय नीयते॥१॥

षष्ठ अंक

(दो वृद्ध तपस्वियों का प्रवेश)

१—**दोनों**—आप लोग बचाइए, बचाइए (सीता को रावण से)।

Act VI

(*Then enter two old hermits.*)

Both—O you, save, save (Sitā from Rāvaṇa)

२—**अन्वय**—नीलोत्पलदामवर्चसा मृणालशुक्लोज्ज्वलदंष्ट्रहासिना निशासञ्चारिणा निशाचरेन्द्रेण इयं हि सीता मृगी इव परिभूय नीयते।

पहला—नीलकमल की माला के तुल्य वर्णवाले, मृणाल (कमलनाल) के तुल्य श्वेत और उज्ज्वल दन्तपंक्ति-युक्त हास्यवाले, निशाचारी राक्षसेन्द्र (रावण) के द्वारा यह सीता (निशाचारी सिंह के द्वारा) मृगी की तरह बलात् ले जाई जा रही है ॥१॥

First—

Here is this Sitā, overpowered and carried away by the lord of night rangers (Rāvaṇa) like a female dear by one stalking about at midnight (a tiger), having the complexion of a garland of blue lotuses and with the splendour of his jaws, white and bright like a lotus stalk. (1)

Notes

१—**वृद्धतापसौ**—यहाँ पर सीता की रक्षा के लिए अन्य व्यक्तियों को बुलाने के निमित्त वृद्ध तपस्वियों का प्रवेश दिखाया गया है। युवा तपस्वियों के स्थान पर वृद्ध तपस्वी इसलिए रक्खे गए हैं कि वे रावण से सीता की रक्षा में असमर्थ थे। यहाँ पर आश्रमवासी तपस्वियों को रक्षार्थ बुलाया गया है।

२—(१) नीलोत्पल०—नीलोत्पलं कुवलयं तस्य दाम माला तद्वत् श्यामं वर्चः अङ्गकान्तिः यस्य तेन। बहुव्रीहि। नीले कमल की माला के तुल्य वर्ण वाले। 'वर्चस्' शब्द का अर्थ है तेज, शारीरिक शोभा या शरीर का रूप-रंग। यहाँ पर अन्तिम अर्थ है।

(२) मृणाल०—मृणालवत् बिसवत् शुक्लाः शुभ्राः उज्ज्वलाः श्वेताः च दंष्ट्रा यस्मिन् कर्मणि तथा हसितुं शीलं यस्य तेन । कमल के नाल के तुल्य स्वच्छ और श्वेत कान्ति वाले दाँत से हँसने वाला । हासिना—हस् + णिनि + टा । 'सुप्यजातौ०' से णिनि प्रत्यय । इसका अन्वय सिंह की ओर भी हो सकता है—मृणाल के तुल्य स्वच्छ और उज्ज्वल जिसकी दाढ़ों की कान्ति है ।

(३) निशाचरेन्द्रेण—रावणेन । राक्षसों के स्वामी रावण के द्वारा ।

(४) निशार्धचारिणा—रात्रिमध्यपर्यटकेन । अर्धरात्रि में भ्रमण करने वाले । इसका अन्वय रावण और सिंह दोनों की ओर हो सकता है । (क) रावण के साथ—आधी रात में घूमने वाले । (ख) सिंह के साथ—आधी रात में शिकार के लिए घूमने वाले । श्लोक में सिंह शब्द नहीं है, परन्तु उसका अध्याहार करना चाहिए । यह विशेषण रूप में है ।

(५) मृगीव सीता०—सीता हरिणी के तुल्य निर्बल और असहाय है । रावण सिंह के तुल्य है, जो कि उसे बलात्कारपूर्वक ले जा रहा है । परिभूय—तिरस्कृत्य, हराकर, बलात् अपने वश में करके । परि + भू + क्त्वा (ल्यप्) ।

(६) इस श्लोक में वंशस्थ छन्द है । उपमा अलंकार है ।

३—द्वितीयः—एषा खलु तत्रभवती वैदेही,

विचेष्टमानेव भुजङ्गमाङ्गना
विधूयमानेव च पुष्पिता लता ।
प्रसह्य पापेन दशाननेन सा
तपोवनात् सिद्धिरिवापनीयते ॥२॥

४—उभौ—परित्रायतां परित्रायतां भवन्तः !

५—प्रथमः—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये वचनसमकाल एव दशरथस्यानृण्यं कर्तुं 'मयि स्थिते क्व यास्यसीति' रावणमाहूयान्तरिक्षमुत्पतितो जटायुः ।

६—द्वितीयः—एष रोषादुद्वृत्तनयनः प्रतिनिवृत्तो रावणः।

७—प्रथमः—एष रावणः।

८—द्वितीयः—एष जटायुः।

९—उभौ—हन्तैतदन्तरिक्षे प्रवृत्तं युद्धम्।

३—अन्वय—विचेष्टमाना भुजङ्गमाङ्गना इव, विधूयमाना पुष्पिता लता इव च, प्रसह्य पापेन दशाननेन सा तपोवनात् सिद्धिः इव अपनीयते।

दूसरा—यह पूजनीया सीता,

छटपटाती हुई सर्पिणी की तरह, हिलाई जाती हुई पुष्पित लता के तुल्य, बलात् पापी रावण के द्वारा तपोवन से (तपस्वियों की तपस्या की) सिद्धि के तुल्य ले जाई जा रही है ॥२॥

Second—Here, ineded, is her ladyship Sita,

Struggling like a Female serpent, and tossed about like a creeper full of flowers, being forcibly carried away from the penanceforest, as though she were the fruition (of the penance of ascetics) by the wicked Rāvaṇa (2)

४—दोनों—आप लोग बचाइए, बचाइए।

Both—Save, save, your honours.

५—पहला—(ऊपर की ओर देखकर) अरे, हमारी पुकार के साथ ही दशरथ के (उपकार रूपी) ऋण से उऋण होने के लिए 'मेरे रहते हुए तू कहाँ जाएगा' इस प्रकार रावण को ललकार कर जटायु आकाश में उड़ा है।

First—(Looking upwords) Oh, quite simultaneously with our appeal. Jaṭāyu has flown up into the sky to discharge his debt of gratitude to Daśaratha, having challenged Rāvaṇa with the words—'Whither can you go while I am here'.

६—दूसरा—यह देखो क्रोध से आँखें चढ़ाए हुए रावण लौटा है।

Second—Here has Rāvaṇa turned back, with his eyes rolling through wrath.

७—पहला—यह है रावण।

First—Here is Rāvaṇa.

८—दूसरा—यह है जटायु (उसके सामने)।

Second—Here is Jātayu (facing him)

६—दोनों—ओह, यह तो आकाश में युद्ध प्रारम्भ हो गया।

Both—Oh ! A fight has begun in the sky.

३—(१) विचेष्टमानेव०—प्रतीकाराय प्रयासं कुर्वती सर्पिणी इव। प्रतीकार के लिए चेष्टा करती हुई सर्पिणी की तरह। विचेष्टमाना—वि+चेष्ट+शानच्। भुजंगमांगना—सर्पिणी। अंगना शब्द स्त्रीत्व-बोधक है। सर्पिणी की उपमा से स्पष्ट है कि सीता ने अपने बचाव के लिए सभी प्रयत्न किए। अपने चरित्र की उत्कृष्टता के कारण रावण के वश में सहसा नहीं आ सकी। रामायण में भी यह भाव आया है—

तामकामां स कामार्तः पन्नगेन्द्रवधूमिव।

विचेष्टमानामादाय उत्पपाताथ रावणः—॥ रामा० अरण्य० ४६. २२.

(२) विधूयमानेव०—कम्प्यमाना सजातपुष्पा लता इव। हिलाई जाती हुई सुपुष्पित लता के तुल्य। इस उपमा से सीता की कोमलता व्यक्त होती है और उसकी अस्तव्यस्तता तथा अलंकारों आदि के गिरने का भाव प्रकट होता है। विधूयमाना—वि+धू+यक्+शानच्। पुष्पित—पुष्प+इतच्। 'तदस्य संजातं०' से इतच्।

(३) प्रसह्य पापेन—बलात् पापकारिणा रावणेन। बलात्कार पूर्वक पापी रावण के द्वारा। प्रसह्य—प्र+सह्+क्त्वा (ल्यप्)। पापेन—पापम् अस्यास्तीति पापः। पाप+अच् (अ)। 'अर्श आदिभ्योऽच्' (पा० ५. २. १२७) से अच् प्रत्यय। 'पापम्' नपुंसक लिंग का अर्थ होता है, पाप, बुरा काम। परन्तु 'पापः' पुंलिंग का अर्थ होता है पापी, पाप करने वाला।

(४) दशाननेन—रावणेन। रावण के द्वारा। दश आननानि यस्य सः। दश मुँह जिसके हैं, ऐसा रावण।

(५) तपोवनात्०—तपोवनात् तपः फलमिव अपह्रियते। इस तपोवन से आश्रमवासी तपस्वियों की तपस्या के फलभूत सिद्धि के तुल्य सीता को रावण ले जा रहा है। इससे ज्ञात होता है कि आश्रमवासी सीता को किस प्रकार आदरपूर्वक देखते थे। वे उसे अपने आश्रम की बहुमूल्य सम्पत्ति समझते थे, और उसकी रक्षा करना अपना धर्म समझते थे। सिद्धि—सिध् + क्तिन् (ति) भवभूति ने भी सीता के विषय में इसी प्रकार की पावनता का भाव व्यक्त किया है—

(क) विद्यां वागिव यामसूत भवती। उत्तर राम० ४.५.

(ख) विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति।

शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतः। उत्तर राम० ४. ११.

(६) इस श्लोक में सीता का कई उपमानों से सम्बन्ध होने के कारण मालोपमा अलंकार है। उसका लक्षण है—

मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते।

(७) इस श्लोक में वंशस्थ छन्द है।

५—(१) वचन०—कथनतुल्यकाल एव। पुकारने के तत्क्षण ही। ज्योंही हमने पुकारा त्यों ही।

(२) दशरथस्य०—दशरथ के उपकार रूपी ऋण से उऋण होने के लिए। आनृण्यम्—अविद्यमानम् ऋणम् अस्य सोऽनृणः, तस्य भावः आनृण्यम्। नञ् + ऋण = अनृण + ष्यञ्। ऋण-रहितता।

(३) आहूय—आह्वानं कृत्वा। ललकार कर। आहूय—आ + ह्वे + क्त्वा (ल्यप्)।

(४) अन्तरिक्षम्०—जटायु आकाश में उड़ा है। अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश। यह अन्तरिक्ष और अन्तरीक्ष दोनों रूप में लिखा जाता है। इसकी व्युत्पत्ति है—(१) अन्तः द्यावापृथिव्योर्मध्ये ईक्ष्यते इति। अन्तर् + ईक्ष + घञ् (कर्मणि)। द्युलोक और पृथिवी के मध्य में दीखने वाला। (२) अन्तः ऋक्षाणि अस्य सः। 'पृषोदरादि' में होने से ऋ के स्थान पर इ या ई। अन्तर् + ऋक्ष। ऋक्ष का अर्थ है तारे, जहाँ पर मध्य भाग में तारे हैं। (३) निरुक्त में इसकी कई व्युत्पत्ति दी हैं, जैसे—(क) अन्तरा द्यावापृथिव्योः

धान्तम् अवस्थितं भवति। (ख) अन्तरा इमे द्यावापृथिव्यौ व्ययति निवसति आदि।

९—रोषादुद्वृत्त०—क्रोधात् उद्भ्रान्तचक्षुः। क्रोध से जिसकी आँखें चढ़ी हुई हैं। उद्वृत्तं नयनं यस्य सः। बहुव्रीहि। रोष—रुष्+घञ्। उद्वृत्त—उद्+वृत्+क्त। नयन—नी+ल्युट् (अन)।

१०—प्रथमः—काश्यप! काश्यप! पश्य, क्रव्यादीश्वरस्य सामर्थ्यम्।

पक्षाभ्यां परिभूय वीर्यविषयं द्वन्द्वं प्रतिव्यूहते
तुण्डाभ्यां सुनिघृष्टतीक्ष्णमचलः संवेष्टनं चेष्टते।
तीक्ष्णैरायसकण्टकैरिव नखैर्भीमान्तरं वक्षसो
वज्राग्रैरिव दार्यमाणविषमाच्छैलाच्छिला पाट्यते ॥३॥

१०—अन्वय—पक्षाभ्यां परिभूय (रावणम्) वीर्यविषयं द्वन्द्वं प्रतिव्यूहते। अचलः तुण्डाभ्यां सुनिघृष्टतीक्ष्णं संवेष्टनं चेष्टते। आयसकण्टकैः इव तीक्ष्णैः नखैः वक्षसः भीमान्तरं वज्राग्रैः दार्यमाणविषमात् शैलात् शिला इव पाट्यते।

पहला—काश्यप काश्यप, देखो गृध्रराज (जटायु) का सामर्थ्य।

अपने पंखों से (रावण पर) प्रहार करके, पराक्रम-साध्य (अर्थात् भयंकर) द्वन्द्व युद्ध कर रहा है। अचल-रूप से विद्यमान वह अपने अति-दृढ़ और सुतीक्ष्ण प्रहारों से चोंचों में उसे पकड़ने की चेष्टा कर रहा है। लोहे के काँटों के सदृश सुतीक्ष्ण अपने नाखूनों से रावण के वक्षःस्थल के सुदृढ़ मध्यभाग को उसी प्रकार फाड़ रहा है, जिस प्रकार वज्र के अग्रभाग से विषम रूप से फाड़ी जाती हुई पर्वत की शिला हो ॥३॥

First—Kaśyapa, O Kasyapa, behold the might of the lord of carrion-eaters (vultures.)

Assailing (Rāvaṇa) with his wings, he engaged him in a fierce dual; remaining firm he is trying to seize him in his beak with hard and sharp scratches, and now is the formidable expanse of his chest torn off with his claws sharp

like iron nails, as is the rock of a mountain rugged on account of its being cleft with the points of the thunder bolt. (3)

Notes

१०—(१) क्रव्यादीश्वरस्य—गृध्रराजस्य जटायोः। गृध्रों के राजा जटायु की। क्रव्याद् शब्द के अर्थ हैं—सिंह आदि, राक्षस और गृध्र। यहाँ पर अन्तिम अर्थ है। 'क्रव्य' का अर्थ है कच्चा मांस, उसको खाने वाला क्रव्याद्। क्रव्य+अद्+विट्। 'क्रव्ये च' (पा० ३.२.६९) सूत्र से विट् प्रत्यय। वि प्रत्यय का पूरा लोप हो जाता है, कुछ शेष नहीं रहता है। 'क्रव्याद' शब्द अकारान्त व्याकरण के अनुसार ठीक नहीं है।

(२) परिभूय—प्रहृत्य। रावण पर प्रहार करके।

(३) वीर्यविषयं०—वीर्यविषभूतम्। पराक्रम के द्वारा साध्य द्वन्द्व युद्ध कर रहा है। प्रतिव्यूहते—प्रतियुध्यते। रावण से प्रतियुद्ध कर रहा है। युद्ध के लिए विशेष शक्ति चाहिए।

(४) तुण्डाभ्याम्—चञ्चुदलाभ्याम्। दोनों चोंचों से।

(५) सुनिघृष्ट०—सुनिघृष्टं च तत् तीक्ष्णं च। कर्मधारय। बहुत अधिक घिसी होने से दृढ़ और सुतीक्ष्ण। 'संवेष्टनं चेष्टते' का शब्दार्थ है घेर लेना चाहता है, अर्थात् रावण को पकड़ लेना चाहता है।

(६) आयसकण्टकैः०—लौहमयैः कण्टकैरिव। लोहे के बने हुए काँटों के तुल्य तेज नाखूनों से रावण की छाती फाड़ रहा था। जटायु अपने तीनों साधनों अर्थात् पंख, चोंच और नाखूनों से युद्ध कर रहा था। इन दो पंक्तियों का पूरा भाव इस प्रकार समझना चाहिए—वज्राग्रैः दार्यमाणविषमात् शैलात् शिला इव नखैः दार्यमाणविषमात् रावणस्य वक्षसः भीमान्तरं पाट्यते। वज्र के अग्रभाग से फाड़े जाने के कारण बीभत्स पर्वत से शिला के तुल्य नाखूनों से फाड़ने के कारण बीभत्स रावण के वक्षःस्थल से विशाल मध्य-भाग फाड़ा जा रहा था। भीमान्तरम्—भीमो विस्तारः। विशाल मध्यभाग। दार्यमाणविषमात्—दार्यमाणश्चासौ विषमः, तस्मात्। विषमरूप से फाड़ा जाता हुआ या फाड़ा जाने के कारण विषम अर्थात् देखने में बीभत्स। दार्यमाण—दृ+णिच्+यक्+शानच्।

(७) इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

११—द्वितीयः—हन्त ! संक्रुद्धेन रावणेनासिना क्रव्यादीश्वरः स दक्षिणांसदेशे हतः ।

१२—उभौ—हा धिक् । पतितोऽत्र भवान् जटायुः ।

१३—प्रथमः—भोः कष्टम् । एष खलु तत्रभवान् जटायुः ।

कृत्वा स्ववीर्यसदृशं परमं प्रयत्नं
क्रीडामयूरमिव शत्रुमचिन्तयित्वा ।
दीप्तं निशाचरपतेरवधूय तेजो
नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इवावसन्नः ॥४॥

१४—उभौ—स्वर्ग्योऽयमस्तु ।

१५—प्रथमः—काश्यप ! आगम्यताम् । इमं वृत्तान्तं तत्रभवते राघवाय निवेदयिष्यावः ।

१६—द्वितीयः—बाढम् । प्रथमः कल्पः ।

(*निष्क्रान्तौ*)

विष्कम्भकः ।

११—दूसरा—हाय, अतिक्रुद्ध रावण ने तलवार द्वारा गृध्रराज के दाहिने कन्धे पर प्रहार किया है ।

Second—Alas, the lord of vultures is struck on the region of his right shoulder by the enraged Rāvaṇa.

१२—दोनों—हाय धिक्कार है । आदरणीय जटायु गिर गए ।

Both—Oh, fie ! the noble Jaṭāyu has fallen down.

१३—अन्वय—स्ववीर्यसदृशं परमं प्रयत्नं कृत्वा, क्रीडामयूरम् इव शत्रुम् अचिन्तयित्वा, निशाचरपतेः दीप्तं तेजः अवधूय, नागेन्द्रभग्नवनवृक्षः इव अवसन्नः ।

पहला—बड़े दुःख की बात है। यह आदरणीय जटायु,

अपने पराक्रम के अनुरूप घोर प्रयत्न करके, क्रीडार्थ (उपयुक्त) मोर के तुल्य शत्रु को कुछ न समझ कर, राक्षसराज (रावण) के प्रदीप्त तेज की उपेक्षा करके, गजराज के द्वारा तोड़े हुए वनवृक्ष के तुल्य नाश को प्राप्त हुआ है ॥४॥

First—Oh, pity ! Here, indeed, has the noble Jatāyu Having made a supreme effort as befitting his valour, disregarding his enemy as tough he were a peacock for sport and treating with little concern the blazing valour of the lord of demons, perished like a forest tree shattered by a lordly elephant. (4)

१४ – दोनों—ये स्वर्ग प्राप्त करें।

Both—May he go to heaven.

१५—पहला—काश्यप, आओ। हम दोनों यह वृत्तान्त पूज्य राम को बतायें।

First—Kasyapa, come away. We shall communicate this incident to his honour, Rāma.

१६—दूसरा—बहुत अच्छा। उत्तम विचार है।

(दोनों का प्रस्थान)

विष्कम्भक समाप्त

Second—Very well. It is a fine idea.

(Exeunt Both)

End of Viskambhaka.

Notes

११—हन्त—खेदसूचक अव्यय। दक्षिणांसदेशे—दक्षिणस्कन्धप्रदेशे। दाहिने कन्धे पर रावण ने तलवार मारी है। क्रुद्ध—क्रुध् + क्त। हत—हन् + क्त।

१२—हा धिक्—रावण को धिक्कार है कि उसने इस प्रकार तलवार का वार किया है।

१३—(१) स्ववीर्यसदृशम्—स्वपराक्रमस्य तुल्यम्। अपने पराक्रम के तुल्य प्रयत्न करके।

(२) क्रीडामयूरम्०—वास्तविक मोर नहीं, अपितु खिलौने के रूप में विद्यमान मोर की तरह रावण को कुछ न समझ कर। गृद्ध के लिए वास्तविक मोर भी कुछ नहीं है, फिर वह खिलौना हो तो कहना ही क्या। इसी प्रकार रावण भी उसके लिए खिलौना था।

(३) दीप्तम्०—रावण के बल-वीर्य को तिरस्कृत करके। अवधूय—तिरस्कृत्य।

(४) नागेन्द्र०—गजेन्द्रभज्यमानवनतरुरिव नाशं गतः। गजेन्द्र के द्वारा तोड़े हुए वन-वृक्ष के तुल्य नष्ट हो गया। भग्न—भंज्+क्त। अवसन्न—अव+सद्+क्त। मध्यमव्यायोग में भी आया है कि—कथमिह गजराजदन्तभग्नस्तरुरिव यास्यसि पुष्पितो विनाशम्। मध्यम० २४.

१६—प्रथमः कल्पः—उत्तमः विचारः। उत्तम विचार है। यह प्रयोग स्वप्नवासवदत्तम् (अंक ४), मध्यमव्यायोग (अंक १), पंचरात्र, अविमारक और बालचरित में भी भास ने किया है।

विष्कम्भक समाप्त

(*ततः प्रविशति काञ्चुकीयः*)

१७—काञ्चुकीयः—क इह भोः! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते।

(*प्रविश्य*)

१८—प्रतिहारी—आर्य! अहं विजया। किं क्रियताम्।
(अय्य! अहं विजया किं करीअदु।)

१९—काञ्चुकीयः—विजये! निवेद्यतां निवेद्यतां भरतकुमाराय—"एष खलु रामदर्शनार्थं जनस्थानं प्रस्थितः प्रतिनिवृत्तस्तत्रभवान् सुमन्त्र" इति।

२०—प्रतिहारी—आर्य ! अपि कृतार्थस्तातसुमन्त्र आगतः ।
(अय्य ! अवि किदत्थो तादसुमन्तो आअदो ।)

२१—काञ्चुकीयः । भवति ! न जाने ।

हृदयस्थितशोकाग्निशोषिताननमागतम् ।
दृष्ट्वैवाकुलमासीन्मे सुमन्त्रमधुना मनः ॥५॥

(तदनन्तर कञ्चुकी का प्रवेश ।) ।

१७—कंचुकी—यहाँ कांचननिर्मित मुख्य द्वार पर कौन व्यक्ति नियुक्त है !

(Then enters the Chamberlain)

Chamberloin—Who is here, ho, keeping watch at the door of the gold-arched outer-gate ?

(प्रविष्ट होकर)

१८—प्रतिहारी—आर्य, मैं विजया (यहाँ पर नियुक्त) हूँ। क्या आज्ञा है ?

(Entering)

Qratihāri—Noble one, I, Vijayā, (am keeping the watch here). What is to be done ?

१९—कंचुकी—विजये, राजकुमार भरत को तुरन्त सूचित कर दो कि—राम के दर्शनार्थ जनस्थान को गए हुए तात सुमन्त्र यहाँ लौट आए हैं।

Chamberlain.—Vijayā, do tell prince Bharata that the respectable Sumantra, who had gone to Janasthāna to see Rāma, has come back.

२०—प्रतिहारी—आर्य, क्या तात सुमन्त्र अपना कार्य पूरा करके लौटे हैं ?

Pratihāri—Noble one, has father Sumantra returned with his mission accomplished ?

२१—अन्वय—हृदयस्थितशोकाग्निशोषिताननम् आगतं सुमन्त्रं दृष्ट्वा एव मे मनः आकुलम् आसीत् ।

कंचुकी—श्रीमति, मुझे ज्ञात नहीं है।

हृदय में विद्यमान शोकरूपी अग्नि से शोषित-वदन, आए हुए सुमन्त्र को देखते ही मेरा मन इस समय व्याकुल हो गया है ॥५॥

Chamberlain—Lady, I don't know.

Just as I saw Sumantra now come back with his face parched by the fire of grief burning in his heart, my mind was filled with anguish. (5)

Notes

१७—काञ्चन०—सुवर्णनिर्मितं बहिर्द्वारम्। सोने के बने हुए मुख्य द्वार पर। 'अशून्यं कुरुते' अर्थात् विद्यमान है, पहरा दे रहा है। तोरण के दो अर्थ हैं—(१) बन्दनवार (२) मुख्य द्वार। यहाँ पर अन्तिम अर्थ है। यह वाक्य स्वप्नवासवदत्तम (अङ्क ६) और अभिषेक (अंक ३ और ५) में भी आया है।

१९—(१) जनस्थान—मनुष्यों का निवास-स्थान। यहाँ पर वह वन का नाम है। यह दंडकवन का एक भाग है, जहाँ पर ऋषि आदि रहते थे। रावण तथा अन्य राक्षस शाप के डर से वहाँ जाने का साहस नहीं करते थे। यह नासिक के पास माना जाता है। रामायण में इसका वर्णन है—

ततः प्रभृति काकुत्स्थ दण्डकारण्यमुच्यते।

तपस्विनः स्थिता यत्र जनस्थानमतोऽभवत् ॥ रामा० उत्तर० ८१.२०

(२) प्रस्थितः—गतः। जनस्थान को गये हुए सुमन्त्र लौट कर आये हैं। प्र+स्था+क्त।

२०—कृतार्थः—कृतकार्यः। राम के दर्शन करने रूपी कार्य को करके सफल-मनोरथ।

२१—(१) हृदय०—हृदयस्थितः यः शोकाग्निः तेन शोषितम् आननं मुखं यस्य तम्। बहुव्रीहि। हृदय में जलती हुई शोकरूपी अग्नि से जिसका मुँह सुखा दिया गया है। शोक—शुच्+घञ्। शोषित—शुष्+णिच्+क्त।

(२) आकुलम्०—शोकाकुल सुमन्त्र को देखकर मेरा भी मन अत्यन्त व्याकुल हो गया है।

(३) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

२२—प्रतिहारी—आर्य ! एतच्छ्रुत्वा पर्याकुलमिव मे हृदयम्। (अय्य ! एदं सुणिअ पय्याउलं विअ मे हिअअं।)

२३—काञ्चुकीयः—भवति ! किमिदानीं स्थिता। शीघ्रं निवेद्यताम्।

२४—प्रतिहारी—आर्य ! इयं निवेदयामि। (निष्क्रान्ता।) (अय्य ! इअं णिवेदेमि।)

२५—काञ्चुकीयः—(विलोक्य।) अये ! अयमत्र भवान् भरतकुमारः सुमन्त्रागमनजनितकुतूहलहृदयश्चीरवल्कलवसनश्चित्रजटापुञ्जपिञ्जरितोत्तमाङ्ग इत एवाभिवर्तते। य एषः—

प्रख्यातसद्गुणगणः प्रतिपक्षकाल-
स्तिग्मांशुवंशतिलकस्त्रिदशेन्द्रकल्पः।
आज्ञावशादखिलभूपरिरक्षणस्थः
श्रीमानुदारकलभेभसमानयानः ॥६॥

२२—प्रतिहारी—आर्य, यह सुनकर मेरा हृदय तो व्याकुल सा हो गया है।

Pratihāri—Noble one, on hearing this my mind, as it were perturbed.

२३—कंचुकी—श्रीमती, अब (यहाँ) क्यों खड़ी हो ? शीघ्र इसकी सूचना दे दो।

Chamberlain—Lady, why do you wait (here) ? Quickly convey (the message).

२४—प्रतिहारी—आर्य, अभी सूचना पहुँचाती हूँ।

(प्रस्थान)

Pratihāri—Noble one, here I convey it. (Exit)

अन्वय—प्रख्यातसद्गुणगणः प्रतिपक्षकालः तिग्मांशुवंशतिलकः त्रिदशेन्द्रकल्पः आज्ञावशात् अखिलभूपरिरक्षणस्थः श्रीमान् उदारकलभेभसमानयानः।

कंचुकी—(देखकर) आह, ये माननीय राजकुमार भरत सुमन्त्र के आगमन से उत्पन्न कुतूहलता से पूर्ण हृदय-युक्त, चीर-वल्कल-धारी, विभिन्न प्रकार की जटाओं के समूह से भूरे शिर वाले इधर ही आ रहे हैं।

ये (भरत) हैं, जिनके उत्तम गुण-समूह सर्वत्र विख्यात हैं, जो शत्रुओं के लिए काल (यम) हैं, सूर्य-वंश के तिलक हैं, इन्द्र के समान हैं, (राम की) आज्ञा के कारण सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा में तत्पर हैं, ऐश्वर्यशाली हैं तथा मनोहर हाथी के बच्चे के सदृश गति वाले हैं ॥६॥

Chamberlain—(Looking on)—Ah, here is his honour prince Bharata, clad in bark-garments and with his head tawny with the mass of his variously matted hair, coming this very way, heart being filled with curiosity at the arrival of Sumantra.

He whose numerous excellent virtues are well-known, who is the god of death to his enemies, who is the ornament of the solar race, who is almost equal to the lord of gods, who, in obedience to the order (of Rāma) has taken up the duty of protecting the whole world, who is majestic and whose gait resembles that of a stately young elephant. (6)

Notes

२५—(१) सुमन्त्रागमन०—सुमन्त्रस्य आगमनेन जनितम् उत्पादितं कुतूहलम् उत्कण्ठातिशयो यस्मिन् तथा हृदयं यस्य। बहुव्रीहि। सुमन्त्र के आगमन ने उत्पन्न कर दी है कुतूहलता जिसमें ऐसे हृदय वाले। आगमन आ+गम्+ल्युट् (अन) ! जनित—जन+णिच्+क्त। यहाँ पर भरत को सुमन्त्र के आने की सूचना प्रतिहारी ने दे दी है। तदनन्तर भरत की अवस्था का वर्णन है।

(२) चीरवल्कल०—चीरवल्कले वसने यस्य सः। बहुव्रीहि। चीर और वल्कल जिसके वस्त्र हैं। भरत वन में राम से मिलकर जब अयोध्या लौटकर आए, तब से लेकर राम के अयोध्या आने तक वे भी वल्कल ही धारण करते रहे और जटाधारी बने रहे।

(३) चित्रजटा०—चित्राणां नानाप्रकारकाणां जटानां पुञ्जेन समूहेन पिञ्जरितं पीतरक्ततां नीतम् उत्तमांगं शिरो यस्य सः। बहुव्रीहि। नाना प्रकार की जटाओं के समूह से भूरे रंग का जिसका शिर हो गया है, ऐसे भरत। पिञ्जरित—पिञ्जर + इतच् (इत)। भूरे रंग का उत्तमांग—शिर। भरत की वे जटाएँ तेरह वर्ष की हो चुकी थीं, इसलिए वे इस प्रकार से विचित्र दीखती थीं।

(४) प्रख्यात०—प्रख्यातः जगद्विदितः सद्गुणगणः शौर्यादिगुणसमुदायो यस्य सः। बहुव्रीहि। जिसके श्रेष्ठ गुणसमूह संसार में विख्यात हैं। प्रख्यातः—प्र + ख्या + क्त।

(५) प्रतिपक्ष०—प्रतिपक्षाणां शत्रूणां कालः संहर्ता। तत्पुरुष। शत्रुओं का संहारक।

(६) तिग्मांशु०—तिग्माः तीक्ष्णाः अंशवो यस्य स तिग्मांशुः सूर्यः, तस्य वंशस्य तिलकः भूषणम्। तत्पुरुष। सूर्यवंश के तिलक स्वरूप। तिग्म का अर्थ है तीक्ष्ण, अतएव तिग्मांशु का अर्थ है सूर्य, तीक्ष्ण किरणों वाला।

तिग्मं तीक्ष्णं खरम्। इत्यमरः।

(७) त्रिदशेन्द्रकल्पः—त्रिदशाः देवाः, तेषामिन्द्रः अधिपतिः इन्द्रः, ईषदसमाप्तः त्रिदशेन्द्रः त्रिदशेन्द्रकल्पः। 'त्रिदश' का अर्थ है देवता। उनके स्वामी इन्द्र से कुछ न्यून। तृतीया यौवनाख्या दशा येषां ते, अथवा तिस्रः जन्मसत्ताविनाशाख्या दशा येषां ते त्रिदशाः। 'संख्ययाऽव्ययासन्ना०' (पा० २. २. २५) से बहुव्रीहि समास।

अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः। इत्यमरः।

कुछ न्यून अर्थ में कल्पप् (कल्प) प्रत्यय होता है। 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' (पा० ५. ३. ६७)। ईषदूनः त्रिदशेन्द्रः त्रिदशेन्द्रकल्पः।

(८) आज्ञावशात्०—रामस्य आज्ञानुरोधात् । राम की आज्ञा के अनुरोध से ।

(९) अखिलभू०—अखिला या भूः तस्याः परिरक्षणे तिष्ठति इति अखिलभूपरिरक्षणस्थः । तत्पुरुष । समस्त पृथ्वी के रक्षण में दत्तचित्त ।

(१०) उदारकलभेन०—उदारः यः कलभेनः त्रिंशद्वर्षः हस्ती तेन समानं यानं गतिर्यस्य सः । बहुव्रीहि । मनोहर तीस वर्ष के हाथी के तुल्य जिसकी चाल है । उदार का अर्थ यहाँ पर है दर्शनीय । कलभेभः—कलभः चासौ इभश्च कर्मधारय । कलभ का अर्थ है हाथी का बच्चा । इभ=हाथी । कलभः करिशावकः । इत्यमरः । तीस वर्ष के हाथी को भी कलभ कहते हैं । हाथी के बच्चे के, आयु के अनुसार, पारिभाषिक नाम ये हैं—

पञ्चवर्षो गजो बालः पोतस्तु दशवर्षकः ।
त्रिंशद्वर्षस्तु कलभो विक्को विंशतिवर्षकः ॥ इति वैजयन्ती ।

(११) इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है ।

(*ततः प्रविशति भरतः प्रतिहारी च*)

२६—भरतः—विजये ! एवमुपगतस्तत्रभवान् सुमन्त्रः ।

गत्वा तु पूर्वमयमार्यनिरीक्षणार्थं
लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते ।
दृष्ट्वा किमागत इहात्रभवान् सुमन्त्रो
रामं प्रजानयनबुद्धिमनोऽभिरामम् ॥७॥

२७—काञ्चुकीयः—(उपगम्य ।) जयतु कुमारः ।

२८—भरतः—अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते तत्रभवान् सुमन्त्रः ।

२९—काञ्चुकीयः—असौ काञ्चनतोरणद्वारे ।

३०—भरतः—तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

३१—काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति कुमारः । (निष्क्रान्तौ ।)

२६—अन्वय—लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते आर्यनिरीक्षणार्थम्,

अयं पूर्वं गत्वा तु, अत्रभवान् सुमन्त्रः प्रजानयनबुद्धिमनोऽभिरामं रामं दृष्ट्वा इह आगतः किम् ।

(*तदनन्तर भरत और प्रतिहारी का प्रवेश*)

भरत—विजया, क्या इस प्रकार आदरणीय सुमन्त्र लौट आए हैं ?

(आर्य राम के) प्रसाद (अर्थात् पदुका) और शपथ (अर्थात् वाग्दान कि राज्य पुनः स्वीकार करूँगा) को प्राप्त करके मेरे (अयोध्या) लौट आने पर, आर्य के दर्शनार्थ ये प्रथम (वन में) जाकर, प्रजावर्ग के नेत्र, बुद्धि और मन के लिए अभीष्ट श्री राम को देखकर क्या माननीय सुमन्त्र यहाँ (अयोध्या में) आ गए हैं ? ॥७॥

(*Then enter Bharata and Pratihāri*)

Bharata—O Vijayā, his honour Sumantra has thus returned then ?

Having gone first to see my elder brother after I had returned having obtained his favour and promise, has his honour Sumantra returned after seeing Rāma charming to the eyes, thoughts and the mind of the subjects ? (7)

२७—**कंचुकी**—(समीप जाकर) कुमार की जय हो !

Chamberlain—(Having approached.) Prosperity to the prince !

२८—**भरत**—अच्छा तो माननीय सुमन्त्र (प्रासाद के) किस भाग में हैं ?

Bharata—Now in what part (of the palace) is his honour, Sumantra ?

२९—**कंचुकी**—वे स्वर्ण-निर्मित मुख्य-द्वार पर हैं।

Chamberlain—Here at the entrance to the door of the goldarch gate.

३०—**भरत**—तो उन्हें शीघ्र अन्दर बुला लाओ।

Bharata—Then let him be ushered in quickly.

३१—कंचुकी—जैसी राजकुमार की आज्ञा।

(दोनों अर्थात् कंचुकी और प्रतिहारी का प्रस्थान)

Chamberlain—As the prince commands.

(Exeunt Both)

Notes

२६—(१) गत्वा तु०—यहाँ पर द्वितीय पंक्ति का अर्थ पहले लगाया जाएगा, क्योंकि पहले राम के पास भरत गए थे और उनसे प्रसाद (अर्थात् खड़ाऊँ) और शपथ (अर्थात् पुनः राज्यस्वीकार करने का वचनदान) प्राप्त करके लौटे थे, तदनन्तर लगभग १३ वर्ष बाद सुमन्त्र राम का कुशल-समाचार जानने के लिए गए थे। लब्धप्रसाद०—लब्धः प्रसादः शपथः च येन तस्मिन्। बहुव्रीहि। लब्ध—लभ्+क्त। प्रसाद—प्र+सद्+घञ्। सन्निवृत्ते—लौटने पर। सम्+नि+वृत्+क्त। आर्यनिरीक्षणार्थम्—राम के देखने के लिए गए हुए सुमन्त्र क्या लौट आए हैं!

(२) प्रजानयन०—प्रजानां नयनयोः बुद्धेः मनसश्च अभिरामं रामम्। प्रजा के नेत्र, बुद्धि और मन को रुचिकर। तत्पुरुष। बुद्धि को प्रिय लगने का भाव है कि प्रजा बुद्धि द्वारा राम की विशेषताओं की परीक्षा करके तब उनको आदरास्पद समझती थी, अन्ध-विश्वास और अन्ध-भक्ति के द्वारा नहीं।

(३) इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

(ततः प्रविशति सुमन्त्रः प्रतिहारी च)

३२—सुमन्त्रः—(सशोकम्।) कष्टं भोः! कष्टम्।

नरपतिनिधनं मयानुभूतं
नृपतिसुतव्यसनं मयैव दृष्टम्।
श्रुत इह स च मैथिलीप्रणाशो
गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे॥ ८॥

३३—प्रतिहारी—(सुमन्त्रमुद्दिश्य।) एत्वेत्वार्यः। एष भर्ता। उपसर्पत्वार्यः।

(एदु एदु अय्यो। एसो भट्टा। उपसप्पदु अय्यो।)

३४—सुमन्त्रः—(उपसृत्य ।) जयतु कुमारः ।

३५—भरतः—-तात ! अपि दृष्टस्त्वया लोकाविष्कृतपितृस्नेहः । अपि दृष्टं द्विधाभूतमरुन्धतीचारित्रम् । अपि दृष्टं त्वया निष्कारणावहितवनवासं सौभ्रात्रम् ।

(सुमन्त्रः सचिन्तस्तिष्ठति)

३२—अन्वय—मया नरपतिनिधनम् अनुभूतम्, नृपतिसुतव्यसनं मयैव दृष्टम् इह स च मैथिलीप्रणाशः अतः, मे आयुषा गुणे बहु अपराद्धम् इव ।

(तदनन्तर सुमन्त्र और प्रतिहारी का प्रवेश)

सुमन्त्र—(शोकपूर्वक) ओह, बड़े दुःख की बात है !

मैंने महाराज का स्वर्गवास देखा, राजकुमार राम की विपत्ति भी मैंने देखी है और अब मैंने सीता-हरण सुना है । मेरी (दीर्घ) आयु ने अपने गुणों के प्रति बहुत अपराध सा किया है ॥ ८ ॥

(Then enter Sumantra and Pratihāri.)

Sumantra—(Sorrowfully)—Alas, Oh, alas !

I witnessed the king's death; I also saw the calamity that overtook the King's son Rāma ; and now I have heard of the disappearance of the princess of Mithilā ; my (long life has been greatly guilty, as it were, as regards what is its merit. (8)

३३—प्रतिहारी—(सुमन्त्र को लक्ष्य करके) आप आइए, आइए । ये हैं स्वामी । आप उनके पास पहुँचिए ।

Pratihāri—(Addressing Sumantra—May the noble one cme in. Here is our master. Your honour should approach him

३४—सुमन्त्र—(समीप जाकर) राजकुमार की जय हो ।

Sumantra—(Approaching) Victory to the prince !

३५—भरत—तात, क्या आपने संसार को पितृ-भक्ति (का आदर्श) दिखाने वाले (राम) को देखा है ? क्या आपने दो भागों में विभक्त

अरुन्धती के पुण्य-चरित्र (अर्थात् सीता) को देखा है ? क्या आपने अकारण ही वनवास को स्वीकार करने वाले भ्रातृ-प्रेम (अर्थात् लक्ष्मण) को देखा है ?

(सुमन्त्र चिन्तायुक्त खड़े रहते हैं ।)

Bharata—Father, did you see him (i. e. Rāma) who showed to the world what affection for the father was ? Did you see virtuous life of Arundhati divided two-fold (Sītā) ? Did you see fraternal affection that has causelessly accepted a forest-residence (Laksmaṇa) ?

(*Sumantra remains pensive*)

Notes

३२—(१) नरपति०—राज्ञो दशरथस्य मरणं प्रत्यक्षीकृतम् । महाराज दशरथ का स्वर्गवास देखा । 'अनुभूतम्' प्रत्यक्ष देखा अर्थ में है । अनु +भू+ क्त ।

(२ नृपति०—नृपतिसुतस्य रामस्य व्यसनं दुःखं मया दृष्टम् । राम का वनवास रूपी दुःख मैंने देखा ।

(३) अत इह०—यहाँ पर 'इह' का अर्थ 'अधुना' (अब) या 'अस्मिन् युषि' (इस जीवन में) लेना चाहिए, क्योंकि सुमन्त्र ने सीता-हरण जनस्थान में सुना था ।

(४) इस श्लोक में पुष्पिताग्रा छन्द है ।

३५—(१) लोकाविष्कृत०—लोके आविष्कृतः प्रदर्शितः पितरि स्नेहः भक्तिः येन सः । बहुव्रीहि । यह राम के लिए है । जिसने संसार को पितृभक्ति का आदर्श दिखाया है कि पुत्र को किस प्रकार पिता की प्रत्येक आज्ञा माननी चाहिए ।

(२) द्विधाभूतम्०—द्विप्रकारेण स्थितम् अरुन्धत्याः चारित्रमिव पातिव्रत्यमिव स्थितम् । वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती संसार की पतिव्रता स्त्रियों में सर्वोत्तम आदर्श हैं उनका सुचरित्र ही मानो जिसने दो भागों में विभक्त कर लिया है । अर्थात् अब अरुन्धती का पातिव्रत्य अरुन्धती और

सीता इन दो में विद्यमान है। भाव यह है कि सीता पातिव्रत्य धर्म में अरुन्धती की प्रतिमूर्ति हैं। इसी प्रकार का भाव पहले आ चुका है कि—

इयमेका पृथिव्यां हि मानुषीणामरुन्धती। अंक १.२५.

चारित्रम्—चरित्रमेव चारित्रम्। चरित्र+अण्। स्वार्थ में अण्।

(३) निष्कारण०—निष्कारणमेव अवहितः स्वीकृतः वनवासो येन तम्। बहुव्रीहि। बिना कारण के ही भ्रातृ-प्रेम के कारण वनवास को स्वीकार करने वाले। यह लक्ष्मण के लिए है।

(४) सौभ्रात्रम्—सुभ्रातृत्वम्। भ्रातृ-प्रेम की प्रतिमूर्ति। सुभ्रातुः भावः सौभ्रात्रम्। सुभ्रातृ+अण्। 'इगन्ताच्च लघुपूर्वात्' (पा० ५.१ १३१) से अण् प्रत्यय। भाव यह है कि लक्ष्मण भ्रातृप्रेम की प्रतिमूर्ति हैं। यहाँ पर भावोत्कर्ष के लिए राम, सीता, लक्ष्मण का नाम निर्देश न करके भरत ने राम को पितृ-भक्ति के आदर्श, सीता को अरुन्धती की प्रतिमूर्ति और लक्ष्मण को भ्रातृ-प्रेम की मूर्ति के रूप में निर्दिष्ट किया है।

(५) सचिन्तः—चिन्तया युक्तः। चिन्ता से युक्त। सुमन्त्र ने भरत को कुछ उत्तर नहीं दिया और वे चिन्तायुक्त की स्थिति में खड़े रहे।

३६—प्रतिहारी—भर्तृदारकः खल्वार्यं पृच्छति। (भट्टिदारओ क्खु अय्यं पुच्छदि।)

३७—सुमन्त्रः—भवति! किं माम्?

३८—भरतः—(स्वगतम्।) अतिमहान् खल्वायासः। सन्तापाद् भ्रष्टहृदयः। (प्रकाशम्।) अपि मार्गात् प्रतिनिवृत्तस्तत्रभवान्।

३९—सुमन्त्रः—कुमार! त्वन्नियोगाद् रामदर्शनार्थं जनस्थानं प्रस्थितः कथमहमन्तरा प्रतिनिवर्तिष्ये।

४०—भरतः—किन्नु खलु क्रोधेन वा लज्जया वात्मानं न दर्शयन्ति।

४१—सुमन्त्रः—कुमार !

कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् ।
मया दृष्टं तु तच्छून्यं तैर्विहीनं तपोवनम् ॥९॥

३६—प्रतिहारी—राजकुमार आप से ही पूछ रहे हैं ।

Pratihārī—The prince, indeed, is asking you, noble one.

३७—सुमन्त्र—श्रीमती, क्या मुझसे ?

Sumantra—Lady, is he asking me

३८—भरत—(स्वगत) इन्हें बहुत अधिक दुःख है । शोक के कारण अव्यवस्थित चित्त हो रहे हैं । (प्रकट) क्या श्रीमान् मार्ग के मध्य से ही लौट आए हैं ?

Bharata— To himself.) Great, indeed, is his torment ; he is absent minded through affliction (Aloud) Has your honour returned from the middle of your journey ?

३९—सुमन्त्र—कुमार, मैं आपके आदेश से राम के दर्शनार्थ जनस्थान को जाकर बीच से ही कैसे लौट आता !

Sumantra—Prince, set out for Janasthāna to see Rāma at your bidding, how can I come back from the middle of the way ?

४०—भरत—क्या वस्तुतः उन्होंने क्रोध या लज्जा के कारण अपने दर्शन नहीं दिए !

Bharata—Was it, indeed, through anger or shame that they did not show themselves to you ?

४१—अन्वय—विनीतानां कुतः क्रोधः, कृतचेतसां वा (कुतः) लज्जा । मया तु तैः विहीनं शून्यं तत् तपोवनं दृष्टम् ॥

सुमन्त्र—कुमार

संयमी-जनों में क्रोध कहाँ ! संस्कृत चित्तवालों में लज्जा कहाँ ! मैंने तो उनसे रहित, उस तपोवन को सूना ही पाया ॥९॥

Sumantra—Prince.

How can there be anger on the part of those who are well trained, or shame on the part of those whose mind is pure? I, however, saw the penance-grove vacant, devoid of them. (9)

Notes

३८—(१) आयासः—खेदः। दुःख या शोक। आ+यस्+घञ्।

(२) सन्तापाद्०—शोकाद् अव्यवस्थितचित्तः। शोक के कारण अव्यवस्थित चित्त, अर्थात् विक्षिप्त-चित्त के सदृश हैं। सन्ताप—सम्+तप्+घञ्। भ्रष्टहृदयः—भ्रष्टम् अस्थिरं हृदयं चित्तं यस्य सः। बहुव्रीहि। भ्रष्ट—भ्रंश्+क्त।

(३) मार्गात्—मार्गमध्यात्। रास्ते के बीच से ही।

३९—(१) अन्तरा—मार्गस्य मध्यात्। मार्ग के बीच से ही।

४१—(१) कुतः०—विनीतानां संयमिनां कुतः क्रोधः। जो व्यक्ति संयमी हैं, जिन्होंने क्रोध आदि का निग्रह किया है, उन्हें क्रोध कहाँ? विनीत—वि+नी+क्त।

(२) कृतचेतसाम्—कृतं संस्कृतं चेतः येषां तेषाम्। बहुव्रीहि। जिनका चित्त सुसंस्कृत है अर्थात् जो पवित्रात्मा हैं, उन्हें लज्जा कहाँ? अर्थात् वे ऐसा काम ही नहीं करते, जिसके लिए उन्हें कभी लज्जित होना पड़े।

(३) तच्छून्यम्०—राम आदि के न रहने से वह वन सूना सा दीख रहा था।

(४) अनुष्टुप् छन्द है।

४२—भरतः—अथ क्व गता इति श्रुताः।

४३—सुमन्त्रः—अस्ति किल किष्किन्धा नाम वनौकसां निवासः। तत्र गता इति श्रुताः।

४४—भरतः—हन्त! अविज्ञातपुरुषविशेषाः खलु वानराः। दुःखिताः प्रतिवसन्ति।

४५—सुमन्त्रः—कुमार ! तिर्यग्योनयोऽप्युपकृतमवगच्छन्ति ।

४६—भरतः—तात ! कथमिव ।

४७—सुमन्त्रः—

सुग्रीवो भ्रंशितो राज्याद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन वालिना ।
हृतदारो वसञ्छैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः ॥१०॥

४२—भरत—अच्छा तो वे कहाँ गए हैं, कुछ सुना है ?

Bharata—Did you hear as to whether they have gone ?

४३—सुमन्त्र—किष्किन्धा नामक एक वनवासी वानरों का निवास स्थान है । वहाँ गए हैं, ऐसा सुना है ।

Sumantra—There is a residence of the forest-dwelling monkeys, called Kiskindhā. It was heard that they went to that place.

४४—भरत—ओह, वानरों को पुरुष-विशेषों का ज्ञान नहीं होता । अतएव वे वहाँ कष्ट से रहते होंगे ।

Bharata—Alas ! Menkeys indeed, do not know the difference between men and men. So they must be living there uncomfortably.

४५—सुमन्त्र—कुमार, पशु-पक्षी भी उपकार जानते हैं ।

Sumantra—Prince, even lower animals know an obligation conferred (how to be grateful).

४६—भरत—तात, कैसे ?

Bharata—Father, what do you mean ?

४७—अन्वय—ज्येष्ठेन भ्रात्रा वालिना राज्याद् भ्रंशितः हृतदारः सुग्रीवः शैले वसन् तुल्यदुःखेन मोक्षितः ।

सुमन्त्र—पर्वत पर निवास करने वाले सुग्रीव को उसके ज्येष्ठ भाई वालि ने राज्य-च्युत कर दिया था और उसकी स्त्री का अपहरण कर लिया था । (सुग्रीव के) समान-दुःख-युक्त (राम) ने उस (सुग्रीव) को (राज्य और पत्नी के दुःख से) मुक्त कर दिया है ॥१०॥

Sumantra—Sugrīva, who was residing on the mountain, deprived of his kingdom, and bereft of his wife by Vāli, his elder brother, was relieved by the simliarly-afflicted (Rāma).(01)

Notes

४३—वनौकसाम्—वनम् ओकः गृहं येषां ते, वनौकसः, तेषाम् । वन ही जिनका घर है अर्थात् वन-वासी । जब यह संज्ञारूप में प्रयुक्त होता है तो इसका योगरूढ अर्थ 'बन्दर' होता है । यहाँ पर भी 'वानर' ही अर्थ है ।

मर्कटो वानरः कीशो वनौकाः । इत्यमरः ।

इसका विशेषणरूप में प्रयोग कालिदास ने भी किया है—

वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः । शाकुन्तल. ४.५

४५—अविज्ञात०—अविज्ञातः पुरुषाणां विशेषः यैस्ते । बहुव्रीहि । जो विशिष्ट मनुष्यों की पहचान नहीं कर सकते हैं ऐसे वानर । यदि 'विशेष' का अर्थ विशेषगुण लें तो अर्थ होगा कि—वे मनुष्यों की विशेषताओं या गुणों को नहीं पहचानते ।

विशेषोऽवयवे व्यक्तौ द्रष्टव्यांतसमवस्तुनि । शब्दार्णव ।

४६—तिर्यग्योनयः०—पशु-पक्षियों को 'तिर्यग्योनि' (निम्नयोनि में उत्पन्न) कहते हैं; यहाँ पर 'वानर' । वे भी किए हुए उपकार को जानते हैं । भास ने सीता-हरण की चर्चा उपस्थित करने के लिए सुमन्त्र के द्वारा यह बात कहवाई है ।

४७—सुग्रीवो भ्रंशितो राज्यात्०—सुग्रीव सूर्य का पुत्र माना जाता है । वालि ने उसको राज्य-च्युत करके उसकी स्त्री को अपने अधिकार में कर लिया था । राम ने वालि का वध करके सुग्रीव को राज्य पर प्रतिष्ठापित किया और उसकी स्त्री प्राप्त कराई । सुग्रीव की स्त्री का नाम 'रुमा' था । भ्रंशितः—प्रच्यावितः । राज्यच्युत किया । भ्रंश्+णिच्+क्त । वालि और वालिन् दोनों प्रकार से यह लिखा जाता है । हृतदारः—हृता दारा यस्य सः । बहुव्रीहि । जिसकी स्त्री हर ली गई है । यहाँ पर शैल शब्द ऋष्यमूक पर्वत के लिए है । मोचितः—मोक्षं गमितः । छुड़ाया गया । इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ।

४८—भरतः—तात ! कथं तुल्यदुःखेन नाम ।

४९—सुमन्त्रः—(आत्मगतम् ।) हन्त ! सर्वमुक्तमेव मया । (प्रकाशम् ।) कुमार ! न खलु किञ्चित् । ऐश्वर्यभ्रंशतुल्यता ममाभिप्रेता ।

५०—भरतः—तात ! किं गूहसे । स्वर्गं गतेन महाराजपादमूलेन शापितः स्याः यदि सत्यं ना ब्रूयाः ।

५१—सुमन्त्रः—का गतिः । श्रूयताम् ,

वैरं मुनिजनस्यार्थे रक्षसा महता कृतम् ।
सीता मायामुपाश्रित्य रावणेन ततो हृता ॥११॥

५२—भरतः—कथं हृतेति । (मोहमुपगतः ।)

५३—सुमन्त्रः—समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

४८—भरत—तात, समान-दुःख युक्त (राम) यह आपने कैसे कहा ?

Bharata—Father, how similarly afflicted you mean ?

४९—सुमन्त्र—(स्वगत) ओह, मैंने सब कुछ कह ही दिया है । (प्रकट) कुमार, कोई बात नहीं है । राज्य-च्युतता में समानता से मेरा अभिप्राय था ।

Sumantra—(To himself.) Alas ! I have told the whole. (Aloud.) Prince, there was nothing, indeed. I meant similarity in the loss of sovereignty.

५०—भरत—तात, (सच्ची बात मुझसे) क्यों छिपाते हैं ? दिवंगत महाराज के चरण-तल की शपथ है, यदि आपने सत्य न बताया तो ।

Bharata—Father, why do you hide (facts from me) ? I conjure you by the root of the feet of my father that has gone to heaven, if you will not tell the truth.

५१—अन्वय—मुनिजनस्य अर्थे (रामेण) महता रक्षसा वैरं कृतम् । ततो रावणेन मायाम् उपाश्रित्य सीता हृता ।

सुमन्त्र—क्या करूँ, (अर्थात् बचाव का कोई मार्ग नहीं है, विवशता है)। अच्छा सुनिए—

मुनि जनों (की रक्षा) के लिए (राम ने बलवान् राक्षस (रावण) से शत्रुता कर ली थी। तदनन्तर रावण ने माया (छल) का आश्रय लेकर सीता का हरण किया है ॥११॥

Sumantra—What help ! Listen

For the sake of the hermits he roused the enmity of the mighty demon. Thereupon Sītā was carried away by Rāvaṇa, having recourse to a deceitful trick. (11)

५२—भरत—क्या, हर ली गई है। (मूर्छित होते हैं)

Bharata—How "carried away" he said ? (Falls into a swoon).

५३—सुमन्त्र—धैर्य रखिए, धैर्य रखिए।

Sumantra—Be consoled, be consoled

Notes

४८—कथं तुल्य०—'सुमन्त्र ने तुल्य-दुःख वाले राम के द्वारा' जो कहा उस पर भरत को सन्देह हुआ कि राम राज्यच्युत तो हुए हैं, क्या उनकी पत्नी का हरण भी हुआ है, अतः यह प्रश्न सुमन्त्र से पूछा है।

४९—ऐश्वर्यभ्रंश०—ऐश्वर्यभ्रंशेन तुल्यता। राज्य-नाश की समानता से मेरा भाव था।

५०—(१) किं गूहसे—क्यों छिपाते हो। 'अभिषेक' में भी आया है—(अङ्क ३)

'रावणः—विभीषण, किं गहसे। मम खलु प्राणैः शापितः स्याः यदि सत्यं न ब्रूयाः।'

(२) स्वर्गं गतेन—इसका सम्बन्ध महाराज (दशरथ) से है, 'पाद-मूल' से नहीं।

५१—(१) का गतिः—और क्या चारा है, अर्थात् लाचारी है, अतः सब बात बताता हूँ।

(२) मुनिजन०—मुनिजनरक्षणाहेतोः। मुनिजनों की रक्षा के लिये। अर्थे=लिए।

(३) रक्षसा महता०—महान् राक्षस। यहाँ पर एकवचन रावण का निर्देश करता है। रावण से शत्रुता हो गई और उसने माया (छल) करके सीता का हरण कर लिया है। खर और दूषण के वध के कारण यह शत्रुता प्रारम्भ हुई। सुमन्त्र को रावण के छल का ज्ञान जनस्थान के मुनियों आदि से हुआ होगा। विशेष व्याख्या के लिए देखें—अंक ५ वक्तव्य १० और ६३ का विवरण। यहाँ पर अनुष्टुप् छन्द है।

५४—भरतः—(पुनः समाश्वस्य।) भोः ! कष्टम्।

पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तो
दुःखं महत् समनुभूय वनप्रदेशे।
भार्यावियोगमुपलभ्य पुनर्ममार्यो
जीमूतचन्द्र इव खे प्रभया वियुक्तः ॥१२॥

भोः ! किमिदानीं करिष्ये। भवतु, दृष्टम्। अनुगच्छतु मां तातः।

५५—सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति कुमारः।

(उभौ परिक्रमतः।)

५६—सुमन्त्रः—कुमार ! न खलु न खलु गन्तव्यम्। देवीनां चतुश्शालमिदम्।

५७—भरतः—अत्रैव मे कार्यम्। भोः ! क इह प्रतिहारे !

५४—अन्वय—मम आर्यः पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तः, वनप्रदेशे महत् दुःखं समनुभूय, भार्यावियोगम् उपलभ्य, खे जीमूतचन्द्र इव प्रभया वियुक्तः (अस्ति)।

भरत—(फिर चेतनायुक्त होकर) हा, बड़े दुःख की बात है ! मेरे आर्य राम पिता और अपने संबन्धियों से वियुक्त होकर, वन-प्रदेश में महान्

दुःख को सहन कर और फिर अपनी भार्या (सीता) के वियोग को प्राप्त करके, आकाश में मेघों से घिरे हुए चन्द्रमा के तुल्य कान्ति-हीन हो गए हैं ॥१२॥

ओह, अब क्या करूँ ? अच्छा, सोच लिया। आप मेरे पीछे आइए।

Bharata—(Recovering consciousness again). Oh, alas !

Having suffered great hardships in the forest region, after being separated from his father and relatives, my elder brother, having again come to be separated from his wife, has been divested of his splendoudr like the moon overcast by a cloud. (12)

Oh, what shall I do ? Well, I have seen (what to do). Father should follow me.

५५—सुमन्त्र—जैसी राजकुमार की आज्ञा।

(दोनों घूमते हैं।)

Sumantra—As the prince commands.

(*Both walk forth.*)

५६—सुमन्त्र—कुमार, मत जाइए, मत जाइए। यह रानियों का चतुःशाल (चौकोन अन्तःपुर) है।

Sumantra—Prince, you should not, indeed, enter, you should not. This is the quadrangle of the queens.

५७—भरत—मुझे यहीं कार्य है। यहाँ द्वार पर कौन है ?

Bharata—It is here that my business lies. Who is here at the door ?

Notes

५४—(१) विप्रयुक्तः—वियुक्तः। वियुक्त, वियोग को प्राप्त। वि+प्र—यज्+क्त।

(२) समनुभूय—लब्ध्वा। प्राप्त करके। सम्+अनु+भू+क्त्वा (ल्यप्)।

(३) भार्यावियोगम्०—भार्यायाः सीतायाः वियोगं प्राप्य। सीता के विरह को प्राप्त करके। वियोग—वि+युज्+घञ्। उपलभ्य—उप+लभ+क्त्वा (ल्यप्)।

(४) जीमूतचन्द्रः०—जीमूतेन मेघेन आवृतः चन्द्रः। शाकपार्थिव आदि की तरह मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास। मेघ से घिरे हुए चन्द्रमा के तुल्य कान्तिहीन हो गए हैं। जीमूत—जीवन+मूत। जीवन अर्थात् जल के वर्धक। 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टानि' सूत्र से निपातन। वन में सीता राम के लिए प्रभा (कान्ति या आह्लादक) थी। वियुक्त—वि+युज्+क्त। वसन्ततिलका छन्द है।

(५) किमिदानीम्०—भरत सीता-हरण सुनते ही पहले तो किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गए, परन्तु शीघ्र ही उन्हें दो बातें समझ में आईं—(१) अपनी माता कैकेयी को घोर भर्त्सना देना, जिसके कारण सीता का भी वन-वास हुआ (२) रावण के विरुद्ध सेना के साथ प्रयाण। प्रथम कार्य यहाँ पहले करने का निश्चय किया।

५६—(१) चतुःशालम्—चतुःशाल चतुष्कोण भवन को कहते हैं, जिसमें चारों ओर आमने सामने मुँह वाले कमरे होते हैं और बीच में आँगन होता है। स्त्रियों का अन्तःपुर प्रायः प्राचीन समय में ऐसा ही होता था। इसका वर्णन भास के नाटकों में से स्वप्न०, अविमारक, चारुदत्त में और मृच्छकटिक (पृष्ठ २६,७०) मालती०, (पृ० ८६) में भी आया है।

(प्रविश्य)

५८—प्रतिहारी—जयतु भर्तृदारकः। विजया खल्वहम्। (जेदु भट्टिदारओ। विजआ खु अहं।)

५९—भरतः—विजये! ममागमनं निवेदयात्रभवत्यै।

६०—प्रतिहारी—कतमस्यै भट्टिन्यै निवेदयामि। (कदमए भट्टिणीए णिवेदेमि।)

६१—भरतः—या मां राजानमिच्छति।

६२—प्रतिहारी—(आत्मगतम् ।) हं किं नु खलु भवेत् । (प्रकाशम् ।) भर्तः ! तथा । (हं किं णु खु भवे ।) (भट्टा तह ।) (निष्क्रान्ता ।)

(ततः प्रविशति कैकेयी प्रतिहारी च ।)

६३—कैकेयी—विजये ! मां प्रेक्षितुं भरत आगतः । (विजये ! मं पेक्खिदुं भरतो आअदो ।)

६४—प्रतिहारी—भट्टिनि ! तथा । भर्तृदारकस्य रामस्य सकाशात् तातसुमन्त्र आगतः । तेन सह भर्तृदारको भरतो भट्टिनीं प्रेक्षितुमिच्छति किल । (भट्टिणि ! तह । भट्टिदारअस्स रामस्स सआसादो तादसुमन्तो आअदो । तेण सह भट्टिदारओ भरदो भट्टिणिं पेक्खिदुं इच्छदि किल ।)

(प्रविष्ट होकर)

५८—प्रतिहारी—राजकुमार की जय हो । मैं विजया हूँ ।

(*Entering.*)

Pratihāri—May the prince be victorious ! I am Vijayā.

५९—भरत—विजया, महारानी को मेरे आने की सूचना दे दो ।

Bharata—Vijayā, inform her ladyship of my arrival.

६०—प्रतिहारी—कौन सी महारानी को सूचना दूँ ?

Pratihāri—To which of the queens shall I communicate it ?

६१—भरत—उनको जो कि मुझे राजा देखना चाहती हैं ।

Bharata—To her who wishes me to be the king.

६२—प्रतिहारी—(स्वगत) ओह, क्या बात होगी ? (प्रकट) स्वामिन्, वैसा ही करूँगी ।

(प्रस्थान)

Prathārī—(To herself). What can the matter be ? (Aloud.) Master, so I will. (Exit).

तदनन्तर कैकेयी और प्रतिहारी का प्रवेश

६३—कैकेयी—विजया, क्या मुझसे मिलने के लिए भरत आये हैं ?

(*Then enter Kaikeyī and Pratihārī*)

Kaikeyī—Vijayā, has Bharata come to see me ?

६४—प्रतिहारी—भट्टिनी, हाँ राजकुमार राम के पास से तात सुमन्त्र आए हैं। उनके साथ राजकुमार भरत आप से मिलना चाहते हैं।

Pratihārī—Yes, Madam. Father Sumantra has come from his visit to prince Rama. And with him the prince Bharata wishes to see your ladyship.

Notes

६१—या मां राजानम्०—भरत ने सीधे रूप में यह न कह कर कि 'मम जनन्यै' मेरी माता को सूचना दे दो, जो घुमा कर बात कही है, उससे कैकेयी के ऊपर उपालम्भ दिया गया है और प्रतिहारी ने इससे समझा कि कुछ नई बात घटित हुई है। सीता-हरण आदि जो कुछ हुआ है उसका पूरा दोष भरत के विचार से कैकेयी के ऊपर ही है, क्योंकि यदि कैकेयी ने भरत के लिए राज्य न माँगा होता और राम को वनवास न दिया होता तो सीता-हरण आदि का समाचार सुनने को ही नहीं मिलता। इसीलिए क्रुद्ध होकर माता को धिक्कारने के लिए भरत गए हैं।

६५—कैकेयी—(स्वगतम् ।) केन खलूद्घातेन मामुपालप्स्यते भरतः। (केण खु उग्घादेण मं उवालम्भिस्सदि भरदो।)

६६—प्रतिहारी—भट्टिनि ! किं प्रविशतु भर्तृदारकः। (भट्टिणि ! किं पविसदु भट्टिदारओ।)

६७—कैकेयी—गच्छ प्रवेशयैनम् । (गच्छ । पवेसेहि णं ।)

६८—प्रतिहारी—भट्टिणि ! तथा। (परिक्रम्योपसृत्य ।) जयतु भर्तृदारकः। प्रविशतु किल। (भट्टिणि ! तह ।) (जेदु भट्टिदारओ। पविसदु किल।)

६९—भरतः—विजये ! किं निवेदितम् ?

७०—प्रतिहारी—आम्। (आम।)

७१—भरतः—तेन हि प्रविशावः।

(प्रविशतः)

७२—कैकेयी—जात ! विजया मन्त्रयते–रामस्य सकाशात् सुमन्त्र आगत इति। (जाद। विअआ मन्तेदि-रामस्स सआसादो सुमन्तो आअद त्ति।)

६५—कैकेयी—(स्वगत) आज भरत मुझे किस प्रसंग से उलाहना देगा ?

Kaikeyī—(To herself), In connection with what matter will Bharata taunt me now ?

६६—प्रतिहारी—भट्टिनी, क्या राजकुमार अन्दर आवें ?

Pratihārī—Mistress, may the prince enter ?

६७—कैकेयी—जा अन्दर बुला ला।

Kaikeyī—Go, usher him in.

६८—प्रतिहारी—भट्टिनी, अच्छा। (चल कर और पास जाकर) राजकुमार की जय हो। आप अन्दर चलिए।

Pratihārī—Mistress, so I will. (Having walked forth and approached.) Victory to the prince. You may enter.

६९—भरत—विजया, क्या सूचना दे दी ?

Bharata—Vijayā, did you inform her ?

७०—प्रतिहारी—जी हाँ।

Pratihārī—Yes.

७१—भरत—तो अन्दर चलें। (दोनों अर्थात् भरत और सुमन्त्र अन्दर जाते हैं।)

Bharata—Let us enter then. (Both enter.)

७२—कैकेयी—पुत्र, विजया कहती है कि—राम के पास से सुमन्त्र आए हैं !

Kaikeyī—Dear son, Vijaya says, Sumantra has come from Rāma's presence.

Notes

६५—उद्घातेन—'उद्घात' शब्द का अर्थ है किसी नवीन बात का या प्रसङ्ग का आरम्भ करना। अतएव नवीन विषय, नवीन प्रसङ्ग या नई बात।

(क) उपोद्घात उदाहार उपन्यासः पुरोवचः।

प्रस्तावः पुनरुद्घातः सोऽधिकार उपक्रमः ॥ इति वैजयन्ती।

(ख) स्यादभ्यादानमुद्घात आरम्भः। इत्यमरः।

कैकेयी के इस स्वगत कथन से ज्ञात होता है कि भरत उसे प्रायः किसी न किसी बात पर ताना देते रहते थे और उसे दोषी बताते थे। अतः भरत का नाम सुनने पर उसे सन्देह हुआ कि आज भी किसी बात पर मुझे ताना देंगे।

उद्घात शब्द पहले अङ्क १५४ पर भी आया है। वहाँ इस का अर्थ है 'विघ्न'। 'को नु खलूद्घातोऽभिषेकस्य'।

७१—प्रविशतः—यहाँ पर द्विवचन भरत और सुमन्त्र के लिए है। वे दोनों अन्दर जाते हैं।

७३—भरतः—अतः परं प्रियं निवेदयाम्यत्रभवत्यै।

७४—कैकेयी—जात ! अपि कौसल्या सुमित्रा च शब्दयितव्या। (जाद ! अवि कोसल्ला सुमित्ता अ सद्दावइदव्वा।)

७५—भरतः—न खलु ताभ्यां श्रोतव्यम्।

७६—कैकेयी—(आत्मगतम् ।) हं किं नु खलु भवेत् । (प्रकाशम् ।) भण जात ! (हं किं णु हु भवे ।) (भणाहि जाद !)

७७—भरतः—श्रूयताम् ,

यः स्वराज्यं परित्यज्य त्वन्नियोगाद् वनं गतः ।
तस्य भार्या हृता सीता पर्याप्तस्ते मनोरथः ॥१३॥

७८—कैकेयी—हं ।

७३—भरत—इससे भी अधिक प्रिय बात आपको बताता हूँ ।

Bharata—I will tell you something more agreeable still.

७४—कैकेयी—पुत्र, क्या कौसल्या और सुमित्रा को भी बुला लें ?

Kaikeyī—Child, should Kausalya and Sumitra be called ?

७५—भरत—यह उनके सुनने की बात नहीं है ।

Bharata—It ought not, indeed, be heard by them.

७६—कैकेयी—(स्वगत) ओह, क्या बात हो सकती है ? (प्रकट) पुत्र, सुनाओ ।

Kaikeyī—(To herself.) Oh, what can it possibly be ? (Aloud) Say it, child.

७७—अन्वय—यः त्वन्नियोगात् स्वराज्यं परित्यज्य वनं गतः, तस्य भार्या सीता (रावणेन) हृता, ते मनोरथः पर्याप्तः ॥

भरत—सुनो—

जो (राम) तुम्हारे आदेश से अपने राज्य को छोड़कर वन में चले गये थे, उनकी पत्नी सीता (रावण के द्वारा) हरण कर ली गई हैं । (अब) तुम्हारा मनोरथ सर्वथा पूर्ण हो गया ॥१३॥

Bharata—Listen—

Sīta, the wife of him (i. e. Rāma) who, having renounced his kingdom, went to the forest at your bidding, is carried away (by Rāvaṇa) ; (now) your object has been fully gained.

(13)

७८—कैकेयी—हूँ ।

Laikeyi – Hum !

Notes

७३—अतः परं प्रियम्०—सुमन्त्र के आगमन से भी अधिक शुभ समाचार । भरत ने 'अतः परं प्रियम्' में बहुत कठोर व्यंग का प्रयोग किया है । सीता-हरण कैकेयी के लिए बहुत शुभ समाचार है ।

७४—कौसल्या०—कैकेयी ने सीता-हरण की बात ज्ञात न होने के कारण सीधे रूप में पूछा कि कौसल्या और सुमित्रा को बुला लें । भरत ने उन्हें बुलाने से रोका, क्योंकि उनके लिए यह बहुत दुःखद समाचार होगा ।

७७—(१) स्वराज्यं०—स्वकीयं राज्यं त्यक्त्वा स्वदाज्ञया वनं गतः । राम तुम्हारी आज्ञा से अपने राज्य को छोड़कर वन में गए । नियोग का अर्थ यहाँ 'आज्ञा' है ।

(२) तस्य भार्या०—उनकी स्त्री (रावण के द्वारा) हरी गई है । कैकेयी के ऊपर यह कठोर प्रहार भरत ने किया है कि यह सब तुम्हारे ही कृत्य का फल है ।

(३) पर्याप्तस्ते०—ते अभिलाषः साकल्येन पूर्णः । तुम्हारी इच्छा सर्वथा पूर्ण हो गई । तुम जो कुछ चाहती थीं, वह पूरा हुआ । रामायण एवं रघुवंश में भी यह भाव आया है—

(क) हन्तेदानीं सकामा तु कैकेयी बान्धवैः सह । रामा० अरण्य० ४६. २६.

(ख) कैकेयि कामाः फलितास्तवेति । रघुवंश १३. ५९.

नियोग—नि + युज् + घञ् । पर्याप्त—परि + आप् + क्त ।

(४) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ।

७९—भरतः—

हन्त भोः ! सत्त्वयुक्तानामिक्ष्वाकूणां मनस्विनाम् ।
वधूप्रधर्षणं प्राप्तं प्राप्यात्रभवतीं वधूम् ॥१४॥

८०—कैकेयी—(आत्मगतम् ।) भवतु, इदानीं कालः कथयितुम् । (प्रकाशम् ।) जात ! त्वं न जानासि महाराजस्य शापम् । (भोदु, दाणि कालो कहेदुं ।) (जाद ! तुवं न जाणासि महाराअस्स स ं ।)

८१—भरतः—किं शप्तो महाराजः

८२—कैकेयी—समन्त्र ! आचक्ष्व विस्तरेण । (सुमन्त ! आअक्ख वित्थरेण ।)

८३—सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति भवती । कुमार ! श्रूयताम्-पुरा मृगयां गतेन महाराजेन कस्मिंश्चित् सरसि कलशं पूरयमाणो वनगजबृंहितानुकारिशब्दसमुत्पन्नवनगजशङ्कया शब्दवेधिना शरेण विपन्नचक्षुषो महर्षेश्चक्षुर्भूतो मुनितनयो हिंसितः ।

७६—अन्वय—हन्त भोः ! अत्रभवतीं वधूं प्राप्य, सत्त्वयुक्तानां मनस्विनाम् इक्ष्वाकूणां वधूप्रधर्षणं प्राप्तम् ।

भरत—ओह, बड़े दुःख की बात है कि आप जैसी बहू को प्राप्त करके महापराक्रमी और मनस्वी इक्ष्वाकुवंशियों को (आज) वधू-हरण (भी) देखना पड़ा ॥१४॥

Bharata—Alas ! Oh, that the high-soul Ikṣvākus, endowed with fortitude, should, on getting you for their daughter-in-law have their daughter-in-law outraged. (14)

८०—कैकेयी—(स्वगत) अच्छा, अब (सारा रहस्य) कहने का अवसर है । (प्रकट) पुत्र, महाराज को जो शाप (मिला हुआ) था, उसको तुम नहीं जानते ।

Kaikeyī—(To herself). Well, this is the time to tell (him the fact). (Aloud) Child, you do not know the curse (under-which labourod) the king.

८१—भरत—क्या महाराज को किसी ने शाप दिया था ?

Bharata—Was the great king cursed ?

८२—कैकेयी—सुमन्त्र, इनको विस्तारपूर्वक बताओ।

Kaikeyi—Sumantra, tell him in detail.

८३—सुमन्त्र—जैसी आपकी आज्ञा। कुमार, सुनिए—पहले एक बार शिकार खेलने के लिए गए हुए महाराज ने एक तालाब में घड़ा भरते हुए, अन्धे (अन्धनामक) महर्षि के नेत्ररूपी मुनि-पुत्र (श्रवणकुमार) को, (घड़ा भरने की आवाज को) वन-गज के शब्द (चिंघाड़ने) के समान होने के कारण जंगली हाथी ही समझ कर, शब्दवेधी बाण से मार डाला।

Sumantra—As your ladyship commands Prince, Listen—Formerly by the king, when he had gone on a hunting tour, a young ascetic (i. e. sravana) who was the eye of the great sage (i. e. Andha) that had lost his eyes was killed while filling a pot at some lake, through the mistake arising out of the sound (of the pot) resembling the grunting of an elephant with an arrow that could hit the mark by following the sound.

Notes

७९—(१) हन्त-हन्त इति खेदे। खेद-सूचक अव्यय।

(२) सत्त्वयुक्तानाम्—महापराक्रमशालिनाम्। महापराक्रमी। सत्त्व—सत्+त्व।

(३) मनस्विनाम्—मानवताम्। स्वाभिमानी। मनस्विन्—मनस्+विनि (विन्)। 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' से विन् प्रत्यय।

(४) वधूप्रधर्षणाम्—वध्वाः सीतायाः प्रधर्षणं बलादपहरणम्। बहू सीता का बलात् हरण। प्रधर्षण—प्र+धृष्+ल्युट्।

(५) प्राप्य०—आप जैसी बहू को पाकर। प्राप्य—प्र+आप्+क्त्वा (ल्यप्)। भरत के कथन का भाव यह है कि यदि आप इस पवित्र कुल में

न आतीं तो न राम वन में आते और न सीता अकेली अरक्षित होतीं और न उनका अपहरण होता। यह सब तुम जैसी बहू के इस वंश में आने की कृपा का फल है कि सब प्रकार का अपमान और अप्रतिष्ठा देखनी पड़ रही है।

(६) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

८०—इदानीं कालः०—कैकेयी ने मन में विचार किया कि अब सारा रहस्य प्रकट कर देना चाहिए। उसने (अंक ३. ११०. में) कहा था कि 'देशकाले निवेदयामि'—समुचित अवसर पर सारी बात बताऊँगी। कैकेयी के अनुसार यही समुचित अवसर था।

८३—(१) श्रूयताम्—सुमन्त्र ने यहाँ पर संक्षेप में विवरण सुनाया कि किस प्रकार महाराज को अन्ध नामक ऋषि से उनके पुत्र श्रवणकुमार के वध के कारण शाप प्राप्त हुआ था। इस कहानी का विस्तारपूर्वक वर्णन वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकांड सर्ग ६३ और ६४ में है।

(२) मृगयां गतेन—शिकार खेलने के लिए गए हुए।

(३) कलशं पूरयमाणः—घड़ा भरते हुए। पूरयमाणः—पॄ+णिच+लट् (शानच्)।

(४) वनगज०—वनगजस्य अरण्यचारिहस्तिनः बृंहितं गर्जनं तदनुकरोतीति अनुकारी शब्दः कलशपूरणोत्पन्नः तेन समुत्पन्ना संजाता वनगजस्य शंका तया। तत्पुरुष। जंगली हाथी के चिंघाड़ने के सदृश घड़े के भरने के शब्द से महाराज को जंगली हाथी का सन्देह उत्पन्न हुआ, उसीसे उन्होंने शब्दवेधी बाण द्वारा मुनिपुत्र श्रवण का वध किया। हाथी के चिंघाड़ने को 'बृंहित' कहते हैं।

बृंहितं करिगर्जितम्। इत्यमरः।

बृंहित—बृंह्+क्त। अनुकारिन्—अनु+कृ+णिनि। 'सुप्यजातौ०' से णिनि। समुत्पन्न—सम+उत्+पद्+क्त।

(५) शब्दवेधिना—शब्दानुसारेण लक्ष्यवेधिना। लक्ष्य को न देखे हुए ही शब्द के द्वारा लक्ष्य को मारना।

(६) विपन्नचक्षुषः—विपन्ने चक्षुषी यस्य सः । बहुव्रीहि । जिसकी आँखें नष्ट हो गई हैं, अर्थात् अन्धे । श्रवण के पिता का नाम 'अन्ध' था । वे वैश्यकुलोत्पन्न महर्षि थे । विपन्न—वि+पद्+क्त ।

(७) चक्षुर्भूतः—चक्षुःस्थानीयः । आँख के तुल्य । अन्धे माता-पिता की वह श्रवण आँख के तुल्य था ।

(८) हिंसितः—हतः । महाराज ने उसका वध कर दिया ।

(९) रामायण में इसका वर्णन आता है कि—

अथान्धकारे त्वश्रौषं जले कुम्भस्य पूर्यतः ।
अचक्षुर्विषये घोरं वारणस्येव नर्दतः ॥
ततोऽहं शरमुद्धृत्य दीप्तमाशीविषोपमम् ।
शब्दं प्रति गजप्रेप्सुरभिलक्ष्यमपातयम् ॥

अयोध्या० ६३.२२—२३.

कालिदास ने भी इसकी चर्चा की है—

तत्र स द्विरदबृंहितशङ्की शब्दपातिनमिषुं विससर्ज ।

रघुवंश० ९.७३.

श्रवण के विषय में रामायण में आया है कि—

त्वं गतिस्त्वगतीनां च चक्षुस्त्वं हीनचक्षुषाम् ।

अयोध्या० ६४. १०.

८४—भरतः—हिंसित इति । शान्तं पापम्, शान्तं पापम् । ततस्ततः ।

८५—सुमन्त्रः—तातस्तमेवं गतं दृष्ट्वा,

तेनोक्तं रुदितस्यान्ते मुनिना सत्यभाषिणा ।
यथाहं भोस्त्वमप्येवं पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे ॥१५॥

इति ।

८६—भरतः—नन्विदं कष्टं नाम ।

८७—कैकेयी—जात ! एतन्निमित्तमपराधे मां निक्षिप्य पुत्रको रामो वनं प्रेषितः। न खलु राज्यलोभेन। अपरिहरणीयो महर्षिशापः पुत्रविप्रवासं विना न भवति। (जाद ! एदण्णिमित्तं अवराहे मं णिक्खिविअ पुत्तओ रामो वणं पेसिदो। ण हु रज्जलोहेण। अपरिहरणीओ महरिसिसावो पुत्तविप्पवासं विणा ण होइ।)

८४—भरत—'मार डाला'। ईश्वर न करे कि ऐसा हो, ईश्वर न करे कि ऐसा हो ! हाँ, इसके बाद ?

Bharata—You say 'was killed'. Heaven forbid ; let this sin be averted ! What next ?

८५—अन्वय—सत्यभाषिणा तेन मुनिना रुदितस्य अन्ते उक्तम्, भोः ! यथा अहं (विपद्ये), एवं त्वम् अपि पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे।

सुमन्त्र—तब उस (पुत्र) को इस स्थिति में देखकर,

उस सत्य-वचन मुनि ने रो लेने के बाद कहा कि—हे राजन्, जैसे मैं (पुत्रशोक में मर रहा हूँ,) वैसे ही तुम भी पुत्रशोक में प्राण दोगे ॥१५॥

Sumantra—Then, seeing him (his son) in that state.

The sage, whose words were infallible, wept and said—O King, as I do now, so you will also die through grief for your son. (15)

८६—भरत—ओह, यह वस्तुतः बहुत दुःख की बात है।

Bharata—Oh, this is, indeed, painful.

८७—कैकेयी—पुत्र, अतएव मैंने अपने आप को दोषी बनाकर प्रियपुत्र राम को वन भेजा है, राज्य के लोभ से नहीं। महर्षि का शाप अवश्यंभावी था, वह पुत्र के वियोग के बिना संभव नहीं था।

Kaikeyī—Child, for this reason, having exposed myself to blame, I sent child Rama to the forest and not, indeed, through greed for kingdom. The inevitable curse of the great sage demanded the separation of a son.

Notes

८४—शान्तं पापम्—यह मुहावरा है, पाप शान्त हो अर्थात् परमात्मा ऐसा न करे।

८५—(१) सत्यभाषिणा—सत्यवचनेन। जिसका कहा हुआ कभी टल नहीं सकता था। उसने शाप दिया कि तुम भी मेरी ही तरह पुत्रशोक में मरोगे। शाप इस रूप में था—

पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम साम्प्रतम्।
एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन्कालं करिष्यसि ॥ रामायण अयोध्या० ६४.५४.

(२) अनुष्टुप् छन्द है।

८७—(१) पुत्रको राम—बेचारे पुत्र राम को अर्थात् प्रिय पुत्र राम को।

(२) वनं प्रेषितः—कैकेयी राम को वन में भेजने का दोष अपने ऊपर लेती है।

(३) अपरिहरणीयः०—मुनि का शाप अवश्यंभावी था, अतः मैंने अपने आप को दोषी बनाकर राम को वन भेजा। यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि मुनि का शाप अवश्यंभावी था तो वह स्वयं किसी प्रकार होता रहता, कैकेयी को क्या चिन्ता थी। उसने अपने आप को दोषी क्यों बनाया? यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो कैकेयी की बात स्पष्ट होती है। शाप में कहा गया है कि—'पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे' पुत्रशोक में मरोगे। पुत्रशोक दो ही प्रकार से हो सकता था—(१) पुत्र के वनवास आदि से, या (२) पुत्र की मृत्यु से। यदि प्रथम मार्ग न अपनाया जाता और राम का राज्याभिषेक हो जाता तो द्वितीय मार्ग ही शेष रहता अर्थात् पुत्र की मृत्यु के शोक में दशरथ का मरण होता। कैकेयी ने द्वितीय अनर्थ से कुल की रक्षा के लिए वनवास का ही होना अच्छा समझा। इस प्रकार भास ने कैकेयी को निर्दोष सिद्ध किया है। दोनों अनर्थों में से यही अनर्थ सह्य था, अतः इसे अपनाने की स्वीकृति वसिष्ठ वामदेव आदि मुनियों ने भी कैकेयी को दी थी। चारों पुत्रों में राम को ही वनवास क्यों दिया, इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि राम राजा को सबसे अधिक प्रिय थे, उनके शोक में ही राजा मर सकते थे।

८८—भरतः—अथ तुल्ये पुत्रविप्रवासे कथमहमरण्यं न प्रेषितः।

८९—कैकेयी—जात ! मातुलकुले वर्तमानस्य प्रकृतीभूतस्ते विप्रवासः। (जाद ! मादुलकुले वत्तमाणस्स पइदीहूदो दे विप्पवासो।)

९०—भरतः—अथ चतुर्दशवर्षाणि किं कारणमवेक्षितानि।

९१—कैकेयी—जात ! चतुर्दश दिवसा इति वक्तुकामया पर्याकुलहृदयया चतुर्दश वर्षाणीत्युक्तम्। (जाद ! चउद्दस दिअस त्ति वत्तुकामाए पय्याउलहिअआए चउद्दस वरिसाणि त्ति उत्तं।)

९२—भरतः—अस्ति पाण्डित्यं सम्यग् विचारयितुम्। अथ विदितमेतद् गुरुजनस्य।

९३—सुमन्त्रः—कुमार ! वसिष्ठवामदेवप्रभृतीनामनुमतं विदितं च।

८८—भरत—अच्छा पुत्र-वियोग तो बराबर ही होता, फिर मुझे तुमने वन में क्यों नहीं भेजा ?

Bharata—Now, when a son's separation was equal, why was I not sent to the forest ?

८९—कैकेयी—पुत्र, मामा के घर रहने के कारण तुम्हारा वियोग (महाराज को) सह्य हो चुका था।

Kaikeyī—Dear child, separation from you who were dwelling in your maternal uncle's house had been familiar (to the king).

९०—भरत—अच्छा तो चौदह वर्ष किस लिए सोचे थे ?

Bharata—Now, why were fourteen years desired ?

६१—कैकेयी—पुत्र, मैं चौदह दिन कहना चाहती थी, किन्तु मानसिक व्याकुलता के कारण मैं चौदह वर्ष कह गई।

Kaikeyi—Child, desirous of saying fourteen days, I, in my perplexity of heart, said fourteen years.

६२—भरत—आप बात बनाने में तो बहुत चतुर हैं। क्या यह गुरुजनों को भी विदित था ?

Bharata—You have the cleverness to explain things well. Now, was this known to the elderly persons ?

६३—सुमन्त्र—कुमार, वसिष्ठ और वामदेव आदि (मुनियों) को यह बात विदित थी और इसके लिये उनकी अनुमति भी थी।

Sumantra—Prince, it was known to, and approved by, Vasistha, Vamadeva and others.

Notes

८८—कथमहम्०—भरत की सज्जनता इस वाक्य से ज्ञात होती है। भरत का भाव यह है कि यदि पुत्र के वनवास से ही महाराज की मृत्यु होती तो मुझे ही वन में क्यों नहीं भेजा। भरत वनवास की आज्ञा अपने लिए अच्छा मानते हैं, राम के लिए नहीं।

८९—प्रकृतीभूतः—स्वाभाविकतां प्राप्तः। स्वाभाविक सा, अभ्यस्त सा। भरत लगभग १२ वर्ष से नाना के यहाँ थे, अतः महाराज भरत के वियोग के अभ्यस्त हो चुके थे। भरत के वनवास या वियोग से राजा को असह्य दुःख न होता।

९०—अवेक्षितानि—दृष्टानि। देखे या सोचे। चौदह वर्ष ही क्यों तुम्हारे मस्तिष्क में आया ? 'अपेक्षितानि' पाठ रखना अधिक अच्छा है। चौदह वर्ष ही क्यों चाहे ?

९१—चतुर्दश दिवसा०—१४ दिन के स्थान पर १४ वर्ष कह गई। कैकेयी का यह उत्तर सन्तोषजनक नहीं है। यदि भूल से कह भी गई थी तो उसका उसी समय संशोधन हो जाना चाहिए था। कैकेयी को उसी समय अपनी भूल ठीक करनी चाहिए थी।

९२—अस्ति पाण्डित्यम्०—इस वाक्य का मुहावरे के रूप में प्रयोग हुआ है। जैसे हिन्दी में कहा जाता है कि—तुम्हें बात बनाना तो खूब आता है। बात मिलाने में तो तुम बहुत चतुर हो। इससे ज्ञात होता है कि भरत को भी कैकेयी का उत्तर नहीं जँचा।

९३—वसिष्ठ०—भास की यह अपनी कल्पना और नवीनता है। रामायण में इस विषय में कुछ नहीं आया है। रामायण के अनुसार शाप की बात भी कैकेयी आदि को ज्ञात नहीं थी। रामायण (अयोध्या० सर्ग ६३-६४) के अनुसार मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व दशरथ ने शाप की बात स्वयं लोगों को बतायी। उससे पूर्व यह बात गुप्त ही थी। यहाँ पर कैकेयी का अभिषेक के समय से पूर्व जानना और तदर्थ राम को वन में भेजना, रामायण के अनुसार नहीं है।

९४—भरतः—हन्त ! त्रैलोक्यसाक्षिणः खल्वेते। दिष्ट्याऽनपराद्धाऽत्रभवती। अम्ब ! यद् भ्रातृस्नेहात् समुत्पन्नमन्युना मया दूषिताऽत्रभवती, तत् सर्वं मर्षयितव्यम्। अम्ब ! अभिवादये।

९५—कैकेयी—जात ! का नाम माता पुत्रकस्यापराधं न मर्षयति। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। कोऽत्र दोषः। (जाद ! का णाम मादा पुत्तअस्स अवराहं ण मरिसेदि। उट्ठेहि उट्ठेहि। को एत्थ दोसो।)

९६—भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। आपृच्छाम्यत्रभवतीम्। अद्यैवाहमार्यस्य साहाय्यार्थं कृत्स्नं राजमण्डलमुद्योजयामि। अयमिदानीं—

वेलामिमां मत्तगजान्धकारां
करोमि सैन्यौघनिवेशनद्धाम्।

बलैस्तरद्भिश्च नयामि तुल्यं
ग्लानिं समुद्रं सह रावणेन ॥ १६ ॥

अये ! शब्द इव । तूर्णं ज्ञायतां शब्दः ।

६४—भरत—बड़ी प्रसन्नता की बात है, ये (ऋषि) वस्तुतः तीनों लोकों के साक्षी (अर्थात् साक्षात् देखने वाले) हैं । भाग्य से आप निरपराध हैं । मातः, मैंने भ्रातृप्रेम के कारण क्रुद्ध होकर आप को जो दोष दिए हैं, उन सबको क्षमा करना । मातः, मैं आपको अभिवादन करता हूँ ।

Bharata– I am glad ; these (sages), indeed, are the witnesses (have knowledge) of the three worlds. Fortunately her ladyship is free from guilt. Mother, I blamed your ladyship through anger caused by my love for my brother ; all that should be forgiven by you. Mother, I salute you.

६५—कैकेयी—पुत्र, कौन ऐसी माता है जो अपने पुत्र के अपराध को क्षमा नहीं करेगी ? उठो, उठो । इसमें कौन सी बुराई की बात है ?

Kaikeyī—Child what mother, indeed, will not forgive the fault of her son ? Get up. And where is the fault in this ?

६६—अन्वय—इमां वेलां मत्तगजान्धकारां सैन्यौघनिवेशनद्धां करोमि । तरद्भिः बलैः च रावणेन सह समुद्रं तुल्यं ग्लानिं नयामि ।

भरत—मैं आपका अनुगृहीत हूँ । आप मुझे जाने की आज्ञा दीजिए । आज ही मैं आर्य की सहायता के लिए समस्त राज-समूह को उद्यत करता हूँ । अभी मैं—

इस समुद्र-तट को मतवाले हाथियों से अन्धकार-युक्त तथा सेना-समूहों के पड़ाव से व्याप्त कर दूँगा । (समुद्र को) पार करने वाली सेनाओं के द्वारा रावण के साथ ही साथ समुद्र को भी समान रूप से ग्लानि को प्राप्त कराऊँगा ॥ १६ ॥

ओह ! कुछ शब्द सा सुनाई पड़ रहा है । शीघ्र ही शब्द (का कारण) ज्ञात करो ।

Bharata—I am beholden to you I take leave of your ladyship. Even today I will get ready the whole circle of kings for the assistance of my noble brother. Here shall I now.

Make this shore of the sea closely covered with the camps of my numerous troops, dark with my powerful elephants ; and then will reduce the sea, equally with Ravaṇa, to a state of languidity by my forces crossing it. (16)

Oh, I hear something like a sound ; quickly let (the cause of) the sound be known.

Notes

९४—(१) त्रैलोक्यसाक्षिणः—त्रैलोक्यद्रष्टारः । तीनों लोकों को साक्षात् देखने वाले । त्रैलोक्यद्रष्टा वसिष्ठ आदि हैं, अतः उन्हें तुम्हारा अभिप्राय अवश्य ज्ञात होगा ।

(२) दिष्ट्याऽनपराद्धा—भाग्य से आप निपराध ही हैं । दिष्टि शब्द का अर्थ है भाग्य । अनपराद्ध—नञ् + अप + राध् + क्त + टाप् ।

९५—का नाम माता०—कौन ऐसी माता है जो अपने पुत्र के अपराध को क्षमा नहीं करती, अर्थात् सभी माताएँ पुत्र के अपराध क्षमा करती हैं ।

९६—(१) आपृच्छामि—आमन्त्रये । पूछता हूँ अर्थात् जाने की आज्ञा माँगता हूँ । यहाँ पर 'आङि नुप्रच्छयोः' इस वार्तिक के नियमानुसार आत्मनेपद अर्थात् 'आपृच्छे' होना चाहिए ।

(२) साहाय्यार्थम्—सहायतार्थम् । सहायता के लिए । सहायस्य भावः, साहाय्यम्, तदर्थम् । सहाय + ष्यञ् = साहाय्य ।

(३) कृत्स्नं राज०—समग्रं राजसमूहम् । सम्पूर्ण राजसमूह को । यहाँ पर समग्र से भाव है राज्य के सातों अंग । जैसा कि अमरकोश में बताया है कि—

स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च ।
राज्याङ्गानि प्रकृतयः । इत्यमरः ।

(४) उद्योजयामि—सन्नद्धतां नयामि । तैयार करता हूँ ।

(५) वेलामिमाम्—इमां बुद्धिस्थां समुद्रतटभूमिम् । इस सागर-तट की भूमि को। यहाँ पर भरत दक्षिण-समुद्र के तट के लिए निर्देश कर रहे हैं। यद्यपि वह आँखों के सम्मुख नहीं है, तथापि उसका बुद्धिगत प्रत्यक्ष करके वे ऐसा कह रहे हैं। 'वेला' शब्द के दो अर्थ हैं—समय और समुद्र का तट ।

(६) मत्तगजा०—मत्तगजा एवं कृष्णवर्णत्वाद् अन्धकारो यस्यां तथाभूताम् ताम्। बहुव्रीहि । मत्त हाथियों के कालेपन रूपी अन्धकार से युक्त।

(७) सैन्यौघ०—सैन्यौघस्य बलसमूहस्य निवेशैः शिविरैः नद्धां व्याप्ताम् । तत्पुरुष । सेनाओं के समूह के शिविरों से व्याप्त । नद्ध—नह्+क्त ।

(८) ग्लानिम्०—समुद्र को पार करती हुई सेना के द्वारा रावण और समुद्र दोनों को ही ग्लानि अर्थात् खेद, दुःख या शोषण को प्राप्त कराऊँगा ।

(९) इस श्लोक में सहोक्ति अलंकार है । उपजाति छन्द है ।

(*प्रविश्य*)

९७—प्रतिहारी—जयतु कुमारः । इमं वृत्तान्तं श्रुत्वा ज्येष्ठभट्टिनी मोहं गता । (जेदु कुमारो। इमं वुत्तन्त सुणिअ जेट्ठभट्टिणी मोहं गआ ।)

९८—कैकेयी—हं ।

९९—भरतः कथं मोहमुपगताऽम्बा ।

१००—कैकेयी—एहि जात ! आर्यामाश्वासयिष्यावः । (एहि जाद ! अय्यं अस्सासइस्सामो ।)

१०१—भरतः—यदाज्ञापयत्यम्बा ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

षष्ठोऽङ्कः ।

(प्रविष्ट होकर)

९७—प्रतिहारी—कुमार की जय हो ! इस वृत्तान्त को सुनकर बड़ी महारानी मूर्छित हो गई हैं।

(*Entering.*)

Pratihārī – Prosperity to the prince! On hearing this news the eldest queen has fallen into a swoon.

९८—कैकेयी—आह !

Kaikeyī – Ah !

९९—भरत—क्या माता मूर्छित हो गई हैं ?

Bharata—Has the mother fallen into a swoon ?

१००—कैकेयी—पुत्र, आओ। (चल कर) आर्या को धैर्य बँधावें (या होश में लावें)।

Kaikeyi—Come away, child ; let us console (or bring back to consciousness) the noble lady.

१०१—भरत—जैसी आपकी आज्ञा।

Bharata – As mother commands.

(सबका प्रस्थान।
षष्ठ अंक समाप्त

(*Exeunt omnes.*)

(*End of Act VI.*)

अथ सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति तापसः)

१—तापसः—नन्दिलक ! नन्दिलक !

(प्रविश्य)

२—नन्दिलकः—आर्य अयमस्मि। (अय्य ! अअं म्हि।)

३—तापसः—नन्दिलक ! कुलपतिर्विज्ञापयति—एष खलु

स्वदारापहारिणं त्रैलोक्यविद्रावणं रावणं नाशयित्वा राक्षसगण-विरुद्धवृत्तं गुणगणविभूषणं विभीषणमभिषिच्य देवदेवर्षिसिद्ध-विमलचारित्रां तत्रभवतीं सीतामादाय ऋक्षराक्षसवानरमुख्यैः परिवृतः सम्प्राप्तस्तत्रभवान् शरद्विमलगगनचन्द्राभिरामो रामः। तदद्यास्मिन्नाश्रमपदेऽस्मद्विभवेन यत् सङ्कल्पयितव्यं तत् सर्वं सज्जीक्रियताम् इति ।

सप्तम--अंक

(*तदनन्तर तपस्वी का प्रवेश*)

१—तपस्वी—नन्दिलक, नन्दिलक !

Act VII.

(*Then enters a hermit*)

Hermit—Nandilaka, Nandilaka.

(*प्रविष्ट होकर*)

२—नन्दिलक—आर्य, यह हूँ ।

(*Entering.*)

Nandilaka—Noble one, here I am.

३—तपस्वी—नन्दिलक, कुलपति का आदेश है कि—अपनी पत्नी (सीता) का अपहरण करने वाले एवं तीनों लोकों को भयाकुल करने वाले रावण को नष्ट करके, राक्षस-समूह के प्रतिकूल आचार वाले, तथा गुण-गणों से विभूषित विभीषण को (रावण के स्थान पर) अभिषिक्त करके, देवों और देवर्षियों के द्वारा जिसके निष्कलंक चरित्र की सिद्धि (संपुष्टि) की जा चुकी है, उस पूजनीया सीता को लेकर, ऋक्षराज राक्षसराज और वानराधीशों के साथ, शरत्कालीन स्वच्छ आकाश में विद्यमान चन्द्रमा के तुल्य मनोहर आदरणीय राम यहाँ आ गए हैं। अतः आज इस आश्रम-भूमि में अपने साधनों के अनुरूप जो कुछ भी (उनके स्वागतार्थ) अभीष्ट है, वह सब कुछ तैयार करके रक्खो ।

Hermit—Nandilaka, the patriarch says—Here indeed, having slain Ravaṇa, who had carried away his wife (Sita) and who was the terror of the three worlds, and installed on the throne Vibhiṣaṇa, of conduct opposed to that of the multitude of Rakṣasas and adorned with a number of virtues has arrived. His Honour Rama, charming like the moon of clear autumnal sky, bringing with him ladyship Sita, whose spotless character has been attested to by the gods, and the heavenly sages and accompanied by the chief bears, demons and monkeys So today in this hermitage let all that be kept ready which can be well desired (for his reception) according to our means.

Notes

३—(१) कुलपतिः—आश्रमस्वामी। आश्रम के अधिष्ठाता। कुल शब्द का अर्थ आश्रम भी होता है—

कुलमन्वयसंघातगृहोत्पत्त्याश्रमेषु च।

कुलपति की व्याख्या के लिए देखें अंक ५. वक्तव्य ५६ पर विवरण।

(२) विज्ञापयति—आज्ञापयति। यहाँ पर 'विज्ञापयति' का प्रार्थना करना अर्थ नहीं है, अपितु सूचित करते हैं, आदेश देते हैं, अर्थ है।

(३) स्वदारा०—स्वस्य दाराणां पत्न्याः अपहारिणम् अपहर्तारम्। तत्पुरुष। अपनी पत्नी सीता के अपहरण करने वाले। 'दारा' एवं 'दार' शब्द स्त्री के बोधक हैं, इनका पुंलिङ्ग में बहुवचन में ही रूप चलता है। अपहारिन्—अप+हृ+णिनि। 'सुप्यजातौ०' से णिनि।

(४) त्रैलोक्यविद्रावणम्—लोकत्रयभयकारकम्। तीनों लोकों को भयभीत करके भगा देने वाले। त्रैलोक्यम्—त्रयो लोका एव त्रैलोक्यम्। त्रिलोक+ष्यञ्, 'चतुर्वर्णादीनां स्वार्थे उपसंख्यानम्' वार्तिक से ष्यञ् प्रत्यय स्वार्थ में। विद्रावणम्—विद्रावयति भयात् पलायनपरं करोतीति विद्रावणः, तम्। वि+द्रु+णिच्+ल्युट् (अन)। विद्रव आदि शब्द भी पलायन अर्थ में आते हैं—

प्रद्रावोद्द्रावसंद्रावसंदावा विद्रवो द्रवः।
अपक्रमोऽपयानं च। (अष्टौ पलायनार्थकाः)। इत्यमरः।

रावण का 'रावण' नाम इसीलिए पड़ा था कि वह अपनी भयंकर आवाज से सबको भयभीत कर देता था। वाल्मीकि रामायण का कथन है कि—

यस्मात् लोकत्रयं चैतद् रावितं भयमागतम्।
तस्मात् त्वं रावणो नाम नाम्ना वीरो भविष्यसि॥

भास ने ऐसा प्रयोग 'अभिषेक' में भी किया है—

दिव्यास्त्रः सुरदैत्यदानवचमूविद्रावणं रावणम्। अभिषेक २. १०.

(५) नाशयित्वा—संहृत्य। मार कर। नश् + णिच् + क्त्वा।

(६) राक्षसगण०—राक्षसगणेन विरुद्धं सात्विकं वृत्तं यस्य तम्। बहुव्रीहि। राक्षसों के विपरीत सात्विक आचार वाले। वृत्त का अर्थ आचार या आचरण है। वृत् + क्त। विरुद्ध—वि + रुध् + क्त।

(७) गुणगण०—गुणानां दयादाक्षिण्यादीनां गणाः समूहा ते विभूषणानि यस्य तम्। बहुव्रीहि। दया चतुरता आदि गुणों के समूह जिसके आभूषण हैं, ऐसे विभीषण को।

(८) अभिषिच्य—लङ्काराज्याभिषिक्तं कृत्वा। लङ्का के राज्य पर अभिषिक्त करके। लङ्का का राज्य उसको देकर। अभि + सिच् + क्त्वा (ल्यप्)।

(९) देवदेवर्षि०—देवैः देवर्षिभिः सिद्धं निश्चित्य प्रत्यायितं विमलं निष्कलङ्कं चारित्रं यस्याः ताम्। बहुव्रीहि। देवताओं और देवर्षियों ने जिसके चरित्र की निष्कलङ्कता को प्रमाणित किया है। सिद्धि—सिध् + क्त।

(१०) ऋक्षराक्षस०—ऋक्षाणां राक्षसानां वानराणां मुख्यैः। तत्पुरुष। रीछ, राक्षस और वानरों के अधिपतियों से घिरा हुआ। ऋक्षराज जाम्बवान् आदि। राक्षसराज—विभीषण आदि। वानरराज—सुग्रीव आदि। परिवृतः—घिरा हुआ, उनसे युक्त। परि + वृ + क्त।

(११) शरद्विमल०—शरदि विमलं यद् गगनं तत्र चन्द्रः, तद्वद् अभिरामः रमणीयदर्शनः। तत्पुरुष। शरत्कालीन स्वच्छ आकाश में विद्यमान चन्द्रमा के तुल्य मनोहर राम।

(१२) अस्मद्विभवेन—अस्मद्विभवानुरूपम् । हम लोगों का जो ऐश्वर्य है· अर्थात् हमारे पास जो साधन हैं, उनके अनुरूप ।

(१३) संकल्पयितव्यम्—स्वागतार्थमुपकल्पनीयम् । स्वागत के लिए जो कुछ तैयार करना है ।

(१४) सज्जीक्रियताम्—तैयार कर लो ।

(१५) इस सन्दर्भ में अनुप्रास और यमक अलंकार की विशेषता विशेषरूप से दर्शनीय है । जैसे—०विद्रावणं रावणम् (यमक), गुणगणा (अनुप्रास), ०विभूषणं विभीषणम् (यमक), देवदेवर्षि० (यमक), ०चन्द्राभिरामो रामः (अनुप्रास) आदि ।

४—नन्दिलकः—आर्य ! सर्वं सज्जीकृतम् । किन्तु—(अय्य ! सव्वं सज्जीकिदं । किन्तु–)

५—तापसः—किमेतत् ।

६—नन्दिलकः–अत्र विभीषणसम्बन्धिनो राक्षसाः । तेषां भक्षणनिमित्तं कुलपतिः प्रमाणम् । (एत्थ विभीसणकेरआ रक्खसा । तेसं भक्खणणिमित्तं कुळवदी पमाणं ।)

७—तापसः–किमर्थम् ।

८—नन्दिलकः—ते खलु खादन्ति । (ते खु खज्जन्ति ।)

९—तापसः—अलमलं सम्भ्रमेण । विभीषणविधेयाः खलु राक्षसाः ।

१०—नन्दिलकः—नमो राक्षससज्जनाय । (निष्क्रान्तः ।) (णमो रक्खससज्जणाअ ।)

४—नन्दिलक—आर्य, सब कुछ तैयार कर लिया गया है । किन्तु—

Nndilaka—Revered sir, all is got ready ; but—

५—तपस्वी—वह क्या ?

Hermit—What is it ?

६—नन्दिलक—यहाँ पर विभीषण के साथ राक्षस भी आए हैं। उनके भोजन के विषय में कुलपति ही प्रमाण हैं (अर्थात् वे जैसा कहें, वैसा किया जाएगा)।

Nandilaka—Here are demons accompanying Vibhiṣaṇa. For their meals the Kulapati has to decide.

७—तपस्वी—किस लिए ?

Hermit—What for ?

८—नन्दिलक—वे वस्तुतः खाते हैं (नर-मांस)।

Nandilaka—They, indeed, devour (men).

९—तपस्वी—मत डरो, मत डरो। वे सब राक्षस विभीषण के वशवर्ती हैं।

Hermit—Enough. enough of this apprehension. These demons, are really under the control of Vibhiṣaṇa.

१०—नन्दिलक—इस सज्जन राक्षस को नमस्कार।

(*प्रस्थान*)

Nandilaka—A bow to the saint amongst the demons. (Exit)

Notes

५—किमेतत्—यहाँ पर 'किं तत्' के अर्थ में यह प्रयोग है। वह क्या है ? जो कि तुम तैयार नहीं कर सके।

६—(१) विभीषण०—विभीषणसहचराः। विभीषण के साथ आए हुए।

(२) तेषां भक्षण०—उनके भोजन के विषय में कुलपति प्रमाण हैं, अर्थात् जैसा वे कहें, वैसा किया जाय। यहाँ पर नन्दिलक के कथन का भाव यह है कि राक्षस मांस-भोजी होते हैं, उनके लिए चाहे मनुष्य का मांस मिले या अन्य किसी जीव का। आश्रम में जीवहत्या निषिद्ध है और आश्रमवासी

भी निरामिषभोजी हैं, अतः उनके लिए मांस का प्रबन्ध कैसे किया जाय। वे मनुष्य को भी खा जाते हैं, इसलिए समस्या और विचारणीय है। ऐसा न हो कि किसी आश्रमवासी की ही बलि हो जाय।

८—ते खलु खादन्ति—नरमांसमिति। वे मनुष्य का मांस खाते हैं, अतएव नंदिलक भयभीत है।

९—(१) अलमलं०—अर्थात् मत डरो। डरने की कोई बात नहीं है।

(२) विभीषणविधेयाः—विभीषणवशवर्तिनः। विभीषण के आज्ञाकारी हैं। विभीषण नरमांसभोजी नहीं है, अतः उसके साथी भी ऐसा ही व्यवहार करेंगे।

१०—राक्षससज्जनाय—राक्षसेषु सज्जनाय। राक्षसों में सज्जन अर्थात् भला, शिष्टाचारयुक्त।

११—तापसः—(विलोक्य।) अये! अयमत्रभवान् राघवः। य एषः—

जय नरवर! जेयः स्याद् द्वितीयस्तवारि-
स्तव भवतु विधेया भूमिरेकातपत्रा।
इति मुनिभिरनेकैः स्तूयमानः प्रसन्नैः
क्षितितलमवतीर्णो मानवेन्द्रो विमानात् ॥१॥

जयतु भवान् जयतु।

(*निष्क्रान्तः*)

मिश्रविष्कम्भकः

११—अन्वय—नरवर! जय, तव द्वितीयः अरिः (चेत्) जेयः स्यात्। भूमिः एकातपत्रा तव विधेया भवतु। इति अनेकैः प्रसन्नैः मुनिभिः स्तूयमानः मानवेन्द्रः विमानात् क्षितितलम् अवतीर्णः।

तपस्वी—(देखकर) अहा, ये हैं माननीय राम। जो ये—

नर-सम्राट् (राम) (पुष्पक) विमान से (अभी) भूतल पर उतरे हैं। "हे नरश्रेष्ठ, आपकी जय हो। आप दूसरे शत्रु पर भी (यदि कोई हो

तो) विजय प्राप्त करें । एकछत्र महीमण्डल आपके अधिकार में हो" । इस प्रकार अनेक प्रसन्नचित्त मुनि उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥१॥

आपकी जय हो, आपकी जय हो ।

(प्रस्थान)

मिश्र-विष्कम्भक—समाप्त

Hermit—(Looking on.) Oh, here is the noble Rama. He who,

The lord of men, has alighted on the surface of the earth from the heavenly car, praised by several delighted sages in the words—"Glory to you, oh best of men ; may you conquer another enemy (if there may arise one); and may the earth, marked with one royal umbrella, be subject to your power!"(1)

May you prosper, may you be victorious ! (Exit)

End of the Mixed Viskambhaka.

Notes

११—(१) जेयः—जेतुं योग्यः । जीतने योग्य हो । जेय—जि+यत् (य) ।

(२) द्वितीयः०—द्वितीयः अरिः उत्पद्यते चेत् । यदि तुम्हारा कोई दूसरा शत्रु उत्पन्न भी होवे तो तुम उसको भी जीत सको ।

(३) एकातपत्रा—एकम् आतपत्रं छत्रं यस्यां सा, अनन्यशासना । बहुव्रीहि । पृथ्वी पर एकच्छत्र तुम्हारा साम्राज्य हो । अर्थात् तुम्हारे समान कोई दूसरा राजा पृथ्वी पर न हो । इसी भाव की उक्तियाँ अन्यत्र भी मिलती हैं—रघुवंश २.४७, स्वप्नवासवदत्तम् ६.१६, अविमारक ११, बालचरित ५.२०,

(४) प्रसन्नैः—प्रसन्नचित्तैः । प्रसन्नचित्त अनेक मुनियों के द्वारा ।

(५) अवतीर्णः—उतरे । अव+तॄ+क्त ।

(६) मानवेन्द्रः०—नरेन्द्रः रामः । नरेन्द्र राम पुष्पक विमान से उतरे ।

(७) इस श्लोक में मालिनी छन्द है ।

(८) यहाँ पर तपस्वी मध्यम पात्र है और नन्दिलक नीच पात्र, इसलिए मिश्रविष्कम्भक है । तपस्वी की भाषा संस्कृत है और नन्दिलक की प्राकृत ।

मिश्र-विष्कम्भक—समाप्त

(*ततः प्रविशति रामः*)

१२—(क) रामः—भोः !

समुदितबलवीर्यं रावणं नाशयित्वा
जगति गुणसमग्रां प्राप्य सीतां विशुद्धाम् ।
वचनमपि गुरूणामन्तशः पूरयित्वा
मुनिजनवनवासं प्राप्तवानस्मि भूयः ॥२॥

१२—(क) अन्वय—समुदितबलवीर्यं रावणं नाशयित्वा, जगति गुणसमग्रां विशुद्धां सीतां प्राप्य, अन्तशः गुरूणां वचनम् अपि पूरयित्वा, मुनिजनवनवासं भूयः प्राप्तवान् अस्मि ।

(*तदनन्तर राम का प्रवेश ।*)

राम—अहा,

अत्युत्कृष्ट बल और पराक्रम से सम्पन्न रावण को नष्ट कर इस संसार में सर्वगुणसम्पन्न निष्कलंक सीता को प्राप्त कर और पिता की आज्ञा को भी अक्षरशः पूर्ण करके आज फिर अपने इस मुनि-तपोवन के आश्रम में आया हूँ ॥२॥

Rāma - Oh,

Having destroyed Ravaṇa, of mighty strength and valour, and recovered Sita, pure and possessed of all virtues in this world, and having carried out the order of my father to its last letter, I have once more returned to my forest residence among the hermits. (2)

Notes

१२—(क) १—समुदित०—समुदितम् उत्कृष्टं बलं वीर्यं च यस्य तम्। बहुव्रीहि। उत्कृष्ट बल और पराक्रम वाले। समुदित—सम्+उत्+इ+क्त (त)। समुदित का अर्थ है—उत्कृष्ट, उच्च, विशाल आदि। स्वप्नवासवदत्तम् में भी आया है—'रूपश्रिया समुदिताम्०' (अंक ५.२)

(२) जगति गुण०—संसारे गुणाढ्याम्। इस संसार में सर्वगुणों से सम्पन्न। 'जगति' का सम्बन्ध सीता के साथ है। संसार में विशिष्टगुणवती सीता।

(३) विशुद्धाम्—पूतचरित्राम्। निष्कलंक पवित्र चरित्र वाली। चरित्र का परीक्षण होने पर जो शुद्ध पवित्र सिद्ध हुई है। वि+शुध्+क्त+टाप्=विशुद्धा।

(४) गुरूणामन्तशः—पितुः वचनं साकल्येन परिपाल्य। गुरु शब्द से पिता का निर्देश है। 'अन्तशः का अर्थ है अक्षरशः, पूर्णतया। पिता की आज्ञा को पूर्णतया पालन करके।

(५) मुनिजन०—मुनिजनाधिष्ठिततपोवने स्वीयं निवासस्थानभूतम् आश्रमम्। मुनिजनों से अधिष्ठित तपोवन में अपने निवासस्थान अर्थात् आश्रम को आया हूँ। यहाँ पर राम अपने जनस्थान के आश्रम को लक्ष्य में रखकर यह कह रहे हैं। जनस्थान का दृश्य ही इस अंक में प्रस्तुत किया गया है। रामायण के वर्णन से यहाँ पर भेद है। रामायण के अनुसार राम अयोध्या पहुँचने से पूर्व भरद्वाज मुनि के आश्रम में प्रयाग में एक दिन के लिए रुके थे और उनसे अयोध्या का कुशल-समाचार आदि ज्ञात किया था। इस अंक में अयोध्या पहुँचने से पूर्व प्रयाग में रुकने की चर्चा नहीं है। रामायण का कथन है कि—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम्॥
सोऽपृच्छदभिवाद्यैनं भरद्वाजं तपोधनम्।
शृणोषि कच्चिद् भगवन् सुभिक्षानामयं पुरे॥ युद्ध० १२४.१-२॥

(६) इस श्लोक में मालिनी छन्द है।

(ख) तापसीनामभिवन्दनार्थमभ्यन्तरं प्रविष्टा । चिरायते खलु मैथिली । (विलोक्य ।) अये ! इयं वैदेही ।

सखीति सीतेति च जानकीति
यथावयः स्निग्धतरं स्नुषेति ।
तपस्विदारैर्जनकेन्द्रपुत्री
सम्भाष्यमाणा समुपैति मन्दम् ।।३।।

(*ततः प्रविशति सीता तापसी च*)

१३—तापसी—हला ! एष ते कुटुम्बिकः । उपसर्पैनम् । न शक्यं त्वामेकाकिनीं प्रेक्षितुम् । (हला ! एसो दे कुटुम्बिओ । उवसप्प णं । ण सक्कं तुमं एआइणिं पेक्खिदुं ।)

१४—सीता—हम् ! अद्याप्यविश्वसनीयमिव मे प्रतिभाति । (उपसृत्य ।) जयत्वार्यपुत्रः । (हं ! अज्ज वि अविस्ससणीअं विअ मे पडिभादि ।) (जेदु अय्यउत्तो ।)

१५—रामः—मैथिलि ! अपि जानासि पूर्वाधिष्ठानमस्माकं जनस्थानमासीत् । अप्यत्र ज्ञायन्ते पुत्रकृतका वृक्षाः ।

(ख) अन्वय—यथावयः तपस्विदारैः सखी इति सीता इति जानकी इति स्नुषा इति स्निग्धतरं संभाष्यमाणा जनकेन्द्रपुत्री मन्दं समुपैति ।

ऋषिपत्नियों को प्रणाम करने के लिये अन्दर गई हुई सीता बहुत विलम्ब कर रही है । (देखकर) आह, यह सीता—

तपस्विनी स्त्रियों के द्वारा अवस्था के अनुसार 'सखी', 'सीता', 'जानकी', 'बहू' आदि शब्दों से अतिप्रेमपूर्वक संबोधित की जाती हुई जनक राजा की पुत्री (जानकी) धीरे-धीरे (इधर) आ रही है ।। ३।।

Sītā, who had entered inside to pay her respects to the ascetic women is, indeed, tarrying. (Looking on.) Ah, here is

Vaidehi, daughter of King Janaka, slowly coming on, very affecitonately addressed, according to their age, by the hermit women, as a friend, as Sitā, as Jānaki and as daughter-inlaw. (3)

(तदनन्तर सीता और तापसी का प्रवेश ।)

१३—तापसी—सखी, ये हैं तुम्हारे पतिदेव। उनके पास जाओ। तुम्हें अकेली नहीं देखना चाहती हैं।

Tāpasi—Friend, here is your husband. Approach him. We do not like to see you alone.

१४—सीता—हाँ, आज भी मुझे अविश्वसनीय सा प्रतीत होता है (कि मैं सुरक्षित हूँ)। (समीप जाकर) आर्यपुत्र की जय हो !

Sitā—yes. Even today it seems as if I cannot trust (myself as safe). (Having approached) Victory to my husband !

१५—राम—मैथिली, क्या तुम्हें स्मरण है कि यह जनस्थान हम लोगों का निवासस्थान था ? क्या तुम पुत्रवत् माने हुए इन वृक्षों को पहचानती हो ?

Rāma—Maithili. do you remember that Janasthana was our former residence ? Do you recognize the trees here, that were considered as sons.

Notes

(ख)—(१) यथावयः०—वयः अनतिक्रम्य यथा स्यात्तथा। अपनी अपनी आयु के अनुसार तपस्विनी स्त्रियाँ सीता को चार प्रकार से संबोधित कर रही थीं।

(२) स्निग्धतरम्—बहुत अधिक प्रेम के साथ। स्निग्ध—स्निह् + क्त।

(३) उपजाति छन्द है।

१३—(१) कुटुम्बिकः—कुटुम्बम् अस्यास्तीति कुटुम्बिकः भर्ता पति।

(२) न शक्यम्०—तुम्हारा पति के साथ बहुत समय तक वियोग रहा है, अतः तुम्हें पति के साथ ही देखना चाहती हैं, अकेली को नहीं। यहाँ पर 'शक्यम्' 'अभिलषामः' के अर्थ में है।

१४—अविश्वसनीयमिव०—जनस्थान में सीता का हरण हुआ था, अतः उसे विश्वास नहीं हो रहा है कि वह आज भी सुरक्षित है। वह स्थान पति के बिना आज भी अविश्वास के योग्य ही प्रतीत हो रहा है।

१६—सीता—जानामि जानामि। अवलोकितपत्रका उल्लोकयितव्या इदानीं संवृत्ताः। (जाणामि जाणामि। ओलोइअपत्तआ उल्लोअइदव्वा दाणिं संवुत्ता।)

१७—रामः—एवमेतत्। निम्नस्थलोत्पादको हि कालः। मैथिलि ! अप्युपलभ्यतेऽस्य सप्तपर्णस्याधस्ताच्छुक्लवाससं भरतं दृष्ट्वा परित्रस्तं मृगयूथमासीत्।

१८—सीता—आर्यपुत्र ! दृढं खलु स्मरामि। (अय्यउत्त ! दिढं खु सुमरामि।)

१९—रामः—अयं तु नस्तपसः साक्षिभूतो महाकच्छः। अत्रास्माभिरासीनैस्तातस्य निवपनक्रियां चिन्तयद्भिः काञ्चनपार्श्वो नाम मृगो दृष्टः।

२०—सीता—हम् आर्यपुत्र ! मा खलु मा खल्वेवं भणितुम् (हं अय्यउत्त ! मा खु मा खु एवं भणिदुं। (भीता वेपते।)

१६—सीता—जानती हूँ, जानती हूँ। जिनके (प्रारम्भिक) कोमल पत्तों को देखा था, वे ही अब दृष्टि ऊपर उठा कर देखने योग्य (अर्थात् बहुत ऊँचे) हो गए हैं।

Sitā—I know, I know. Those, whose tender leaves were seen, have now become such as are to be seen with upturned eyes.

१७—राम—यह ऐसी ही बात है। समय ही उत्थान और पतन का कारण है। मैथिली, क्या तुम्हें स्मरण है कि इस सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे श्वेतवस्त्रधारी भरत को देखकर मृगों का झुण्ड भयभीत हो गया था ?

Rāma—It is just so. Time makes things small and great. Maithili, do you call to your mind how the herd of the deer, was frightened at the sight of Bharata, clad in white garments, underneath this Saptaparṇa tree ?

१८—सीता—आर्यपुत्र, बहुत अच्छी तरह स्मरण है ।

Sitā—Husband, I remember it very well indeed.

१९—राम—यह है हमारी तपस्या का साक्षी-स्वरूप (गोदावरी नदी का) विस्तृत किनारा । यहीं पर बैठे हुए पिता की श्राद्ध क्रिया (के लिए उपादेय वस्तुओं) का विचार करते हुए हम लोगों ने कांचनपार्श्व नाम का मृग देखा था ।

Rāma—Here is the extensive bank (of the Godāvari), the witness of our austerities. It was while sitting here and thinking of the things to be offered to father at the Srāddha ceremony that the deer called 'the gold-flanked' was seen by us.

२०—सीता—ऊँह, आर्यपुत्र, नहीं, ऐसी बात न कहिए । (भय से काँपती है ।)

Sitā—Ha, husband, do not, do not mention it. (Trembles with fear).

Notes

१६—(१) अवलोकित०—अवलोकितानि पत्रकाणि बालत्वादल्पपत्राणि येषां ते । बहुव्रीहि । नए पौधे होने के कारण जिनके नए-नए पत्रों को देखा था ।

(२) उल्लोकयितव्याः—ऊर्ध्वनिक्षिप्तचक्षुषा द्रष्टव्याः । ऊपर दृष्टि उठाकर देखना पड़ता है ।

१७—(१) निम्नस्थलो०—निम्नं च स्थलं च तयोरुत्पादकः । तत्पुरुष । निम्न अर्थात् नीचा और स्थल अर्थात् उच्चभूभाग को करने वाला । यह सूक्ति है—समय ही नीचे को ऊँचा और ऊँचे को नीचा कर देता है । किसी को उन्नत कर देता है और किसी को अवनत । समय के बल से ही

इव इतने ऊँचे हो गए हैं। माघ ने भी कहा है—'समय एव करोति बलाबलम्'। शिशुपालवध।

(२) अपि उपलभ्यते—अपि स्मर्यते। क्या स्मरण है !

(३) भरतं दृष्ट्वा—यहाँ पर रामायण से अन्तर है। रामायण के अनुसार राम जब चित्रकूट पर्वत पर थे, तब भरत मिलने आए थे। वे जनस्थान में नहीं थे। रामायण का कथन है—

असौ सुतनु शैलेन्द्रः चित्रकूटः प्रकाशते ॥
अत्र मां कैकयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः ॥ युद्ध० १२४. ४६-५०

१९—कच्छः—नदीतीरः। नदी का किनारा।

तीरं कूलं प्रपातश्च प्रान्ते कच्छस्तटी त्रयी। इति वैजयन्ती।

२१—रामः—अलमलं सम्भ्रमेण। अतिक्रान्तः खल्वेष कालः। (दिशो विलोक्य।) अये कुतो नु,

रेणुः समुत्पतति लोध्रसमानगौरः
सम्प्रावृणोति च दिशः पवनावधूतः।
शङ्खध्वनिश्च पटहस्वनधीरनादैः
सम्मूर्छितो वनमिदं नगरीकरोति ॥ ४ ॥

(*प्रविश्य*)

२२—लक्ष्मणः—जयत्वार्यः। आर्य !

अयं सैन्येन महता त्वद्दर्शनसमुत्सुकः।
मातृभिः सह सम्प्राप्तो भरतो भ्रातृवत्सलः ॥ ५ ॥

२१—अन्वय—लोध्रसमानगौरः रेणुः समुत्पतति, पवनावधूतः दिशः सम्प्रावृणोति च। पटहस्वनधीरनादैः सम्मूर्छितः शङ्खध्वनिश्च इदं वनं नगरीकरोति।

राम—मत डरो, मत डरो। वह समय बीत गया ; (दिशाओं की ओर देखकर) ओह, कहाँ से—

यह लोध के फूलों के समान श्वेतवर्ण धूल उठ रही है, और वायु के द्वारा प्रसारित समस्त दिशाओं में व्याप्त हो रही है और कहाँ से यह शंखों की ध्वनि, जो नगाड़ों के शब्द और वीरों के गर्जन से विशाल रूप को धारण करके, इस वन को नगर-तुल्य बना रही है ॥ ४ ॥

Rāma—Away, away with fear. That time has past (Looking in the quarters.) Oh ! whence, indeed,

Does this dust, white like the Lodhra flowers, rise up, and being shaken by the wind pervade the directions ? And whence too, does this blast of the conches, augmented by the sounds of the drums and the shouts of the people convert the forest into a town ? (4)

२२—अन्वय—अयं भ्रातृवत्सलः त्वद्दर्शनसमुत्सुकः महता सैन्येन (युक्तः) भरतः—मातृभिः सह संप्राप्तः ।

(प्रविष्ट होकर)

लक्ष्मण—आर्य की जय हो । आर्य,

यह भाइयों से प्रेम करने वाला, आपके दर्शन का इच्छुक, बहुत बड़ी सेना के साथ, भरत माताओं के साथ यहाँ आया है ॥ ५ ॥

(*Entering*)

Lakṣmaṇa—Prosperity to my noble brother ! Noble brother.

Here has arrived Bharata, affectionate towards his brothers, with a large army and accompanied by the mothers, eager to see you. (5)

Notes

२१—(१) लोध्रसमान०—लोध्रपुष्पतुल्यधवलः । लोध के फूल के तुल्य श्वेत वर्ण वाली धूल कहाँ से उठती हुई दीख रही है ?

(२) पवनावधूतः—पवनेन वायुना अवधूतः प्रसारितः । तत्पुरुष । वायु से फैलाई हुई । पवन—पू+ल्युट् । अवधूत—अव+धू+क्त ।

(३) संप्रावृणोति—आच्छादयति । दिशाओं को आच्छादित कर रही है ।

(४) पटहस्वन०—इसके दो अर्थ हो सकते हैं :—(क) पटहस्वनैः धीरनादैः वीरगर्जितैश्च संमूर्छितः संवर्धितः। द्वन्द्व। नगाड़ों की आवाज और वीरों के गर्जन से बढ़ी हुई शंखध्वनि। (ख) पटहस्वनस्य धीरैः गंभीरैः नादैः, नगाड़ों की आवाज के गंभीर शब्द से बढ़ी हुई शंखध्वनि। 'संमूर्छित' का अर्थ है बढ़ी हुई।

(५) नगरं करोति—नगर के तुल्य बना रही है। इसी प्रकार का भास का अन्य प्रयोग है—कोऽयं भो निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया। स्वप्नवासव० १. ३.

(६) वसन्ततिलका छन्द है।

२२—(१) त्वद्दर्शन०—त्वदवलोकनलालसः। आपके दर्शन का अभिलाषी।

(२) भ्रातृवत्सलः—भ्रातृषु वत्सलः। भाइयों पर प्रेम रखने वाला।

(३) अनुष्टुप् छन्द है।

२३—रामः—वत्स लक्ष्मण ! किमेवं भरतः प्राप्तः।

२४—लक्ष्मणः—आर्य ! अथ किम्।

२५—रामः—मैथिलि ! श्वश्रूजनपुरोगं भरतमवलोकयितुं विशालीक्रियतां ते चक्षुः।

२६—सीता—आर्यपुत्र ! एष्टव्ये काले भरत आगतः। (अय्यउत्त ! इच्छिदव्वे काले भरदो आअदो।)

(ततः प्रविशति भरतः समातृकः।)

२७—भरतः—

तैस्तैः प्रवृद्धविषयैर्विषमैर्विमुक्तं
मेघैर्विमुक्तममलं शरदीव सोमम्।
आर्यासहायमहमद्य गुरुं दिदृक्षुः
प्राप्तोऽस्मि तुष्टहृदयः स्वजनानुबद्धः॥ ६॥

२३—राम—वत्स लक्ष्मण, तो क्या इस प्रकार भरत आए हैं ?

Rāma—Dear Lakṣamaṇa, has Bharata thus come then ?

२४—लक्ष्मण—आर्य, हाँ।

Lakṣmaṇa—Yes, noble brother.

२५—राम—मैथिली, अपनी सासों के आगे आते हुए भरत को देखने के लिए अपनी आँखें विशाल कर लो।

Rāma—Maithilī, expand your eyes to see Bharata, leading your mothers-in-law.

२६—सीता—आर्यपुत्र, बहुत ही उचित समय पर भरत आए हैं।

Sitā—Husband, Bharata has come at the most desirable time.

२७—अन्वय—अद्य तुष्टहृदयः स्वजनानुबद्धः अहं तैः तैः प्रवृद्धविषयैः विषमैः विमुक्तं शरदि मेघैः विमुक्तम् अमलं सोमम् इव आर्यासहायं गुरुं दिदृक्षुः प्राप्तः अस्मि।

(तदनन्तर माताओं के साथ भरत का प्रवेश)

भरत—आज प्रसन्नचित्त मैं आत्मीय जनों के साथ नाना प्रकार की विषम विपत्तियों से मुक्त एवं मेघ-रहित शरत्कालीन निर्मल चन्द्रमा के सदृश (मनोहर), अपने बड़े भाई (राम) को आर्या (सीता) के सहित देखने की अभिलाषा से यहाँ आया हूँ ॥ ६ ॥

(Then enters Bharata with his mothers.)

Bharata—With a gladdened heart and followed by my Kinsmen here have I come today, desirous of seeing my elder brother, accompanied by the noble lady (Sitā), who is freed from calamities grown in magnitude, like the clear moon in the autumn, when freed from clouds (6).

Notes

२५—(१) श्वश्रूजन०—श्वश्रूजनपुरःसरम्। तुम्हारी सासों के आगे-आगे आने वाले। श्वश्रू अर्थात् सास। पुरोग—पुरः गच्छतीति, आगे चलने वाला। पुरस्+गम्+ड।

(२) विशालीक्रियताम्०—यह वाक्यांश अंक ४.४२ में भी आ चुका है।

२६—एष्टव्ये—अभिलषितव्ये काले। अभीष्ट समय पर। एष्टव्य —इष्+तव्य। इसी प्रकार के भास के अन्य प्रयोग हैं—'रोदितव्ये काले' (१.११४), 'श्लाघनीये काले' (१.१३४)

२७—(१) प्रवृद्धविषयैः ०—प्रवृद्धः विषयः प्रदेशः येषां तैः, नाना-प्रकारकैः। विषमैः—संकटैः। नाना विषयों में व्याप्त अर्थात् नाना प्रकार की विषम विपत्तियों से मुक्त। वनवास, सीता-हरण आदि कष्टों से मुक्त राम। प्रवृद्ध—प्र+वृध्+क्त। विमुक्त—वि+मुच्+क्त। विषम का अर्थ है जो सम न हो, अतः कष्ट, विपत्ति, संकट।

(२) मेघैर्विमुक्तम्—मेघरहितम्। बादलों से रहित।

(३) आर्यासहायम्—आर्या सीता सहायः यस्य तम्। सीता के सहित।

(४) दिदृक्षुः—द्रष्टुमिच्छुः। देखने का इच्छुक। दृश+सन् (स) +उ।

(५) तुष्टहृदयः—सन्तुष्टचित्तः। प्रसन्नचित्त। राम सकुशल लौट आए हैं, तथा अब अपना राज्य स्वीकार करेंगे, मैं राज्य-भार से मुक्त होऊँगा, इसकी प्रसन्नता है।

(६) स्वजना०—स्वजनेन अनुगतः। अपने परिवार वालों के साथ।

(७) यहाँ पर वसन्ततिलका छन्द है।

२८—रामः—अम्बाः! अभिवादये।

२९—सर्वाः—जात! चिरंजीव। दिष्ट्या वर्धामहे अवसितप्रतिज्ञं त्वां कुशलिनं सह वध्वा प्रेक्ष्य। (जाद! चिरंजीव। दिट्ठिआ वड्ढामो अवसिदपडिण्णं तुमं कुसलिणं सह बहूए पेक्खिअ।)

३०—रामः—अनुगृहीतोऽस्मि।

३१—लक्ष्मणः—अम्बाः! अभिवादये।

३२—सर्वाः—जात! चिरंजीव। (जाद! चिरंजीव।)

३३--लक्ष्मणः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

३४—सीता–आर्याः! वन्दे । (अय्या ! वन्दामि ।)

३५--सर्वाः--वत्से ! चिरमङ्गला भव । (वच्छे ! चिरमङ्गला होहि ।)

३६ --सीता--अनुगृहीतास्मि । (अणुग्गहिदह्मि ।)

३७--भरत —आर्य ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।

२८—राम—माताओ, आपको प्रणाम ।

Rāma—Mothers, I bow to you.

२९—सब—पुत्र, चिरंजीवी हो । हम पूर्णप्रतिज्ञ, सकुशल तुमको सीता के साथ देखकर सौभाग्यशाली हो गए हैं ।

All—Child, may you live long. We congratulate ourselves on seeing you with your wife, all safe and with your vow fulfilled.

३०—राम—मैं आप सबका अनुगृहीत हूँ ।

Rāma—I am favoured.

३१—लक्ष्मण—माताओ, आप सबको प्रणाम ।

Lakṣmaṇa—Mothers, I salute you.

३२—सब—पुत्र, चिरंजीवी रहो ।

All—Child, may you live long.

३३—लक्ष्मण—मैं आपका अनुगृहीत हूँ ।

Lakṣmaṇa—I am beholden to you.

३४—सीता—आर्याजनों को प्रणाम ।

Sītā—Noble ladies, I bow to you.

३५—सब—पुत्री, सदा सौभाग्यवती रहो ।

All—Dear one, may auspicious fortune long smile on you.

३६—सीता–मैं अनुगृहीत हूँ ।

Sītā—I am favoured.

३७—भरत—आर्य, आपको प्रणाम। मैं भरत हूँ।

Bharata—Noble brother, I bow to you. I am Bharata.

Notes

२९—(१) दिष्ट्या वर्धामहे—भाग्य से हम लोगों की वृद्धि हो रही है, अर्थात् हमारा सौभाग्य है।

(२) अवसितप्रतिज्ञम्—अवसिता पूर्णा प्रतिज्ञा यस्य तम्। बहुव्रीहि। जिसने प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली है।

३८—रामः—एह्येहि वत्स! इक्ष्वाकुकुमार! स्वस्ति। आयुष्मान् भव।

वक्षः प्रसारय कवाटपुटप्रमाण-
मालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं
प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम्॥७॥

३९—भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्य! अभिवादये भरतोऽहमस्मि।

४०—सीता—आर्यपुत्रेण चिरसंचारी भव। (अय्यउत्तेण चिरसंचारी होहि।)

४१—भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्य! अभिवादये।

४२—लक्ष्मणः—एह्येहि वत्स! दीर्घायुर्भव। परिष्वजस्व गाढम्। (आलिङ्गति।)

४३—भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्य! प्रतिगृह्यतां राज्यभारः।

४४—रामः—वत्स! कथमिव।

४५—कैकेयी—जात ! चिराभिलषितः खल्वेष मनोरथः ।
(जाद ! चिराहिलसिदो खु एसो मणोरहो ।)

३८—अन्वय—कवाटपुटप्रमाणं वक्षः प्रसारय । सुविपुलेन भुजद्वयेन माम् आलिङ्ग । शरदिन्दुकल्पम् इदम् आननम् उन्नामय । व्यसनदग्धम् इदं शरीरं प्रह्लादय ।

राम—आओ आओ, इक्ष्वाकुकुमार, तुम्हारा कल्याण हो । आयुष्मान् हो ।

किवाड़ों के बराबर चौड़ाई वाले अपने वक्षःस्थल को फैलाओ । अपनी सुविशाल दोनों भुजाओं से मिलो । शरत्कालीन चंद्रमा के तुल्य अपने मुख को उठाओ और विपत्तियों से जले हुए इस (मेरे) शरीर को प्रसन्न करो ॥७॥

Rāma—Come, come, dear child prince of the Ikṣvāku race. My blessing to you. Be of long life

Expand your bosom, of the expanse of the closed panels of a door. Clasp me with your very large pair of arms. Raise this face which resembles the autumnal moon and gladden this (my) body scorched by calamities (7)

३९—भरत - मैं आपका अनुगृहीत हूँ । आर्या, आपको प्रणाम । मैं भरत हूँ ।

Bharata—It is a favour upon me. Noble lady, my respect to you I am Bharata.

४०—सीता—आर्यपुत्र के चिरसङ्गी बनो ।

Sītā—May you belogn the companion of my husband.

४१—भरत—मैं आपका अनुगृहीत हूँ । आर्य, आपको प्रणाम ।

Bharata—I am obliged to you Noble brother, I salute you.

४२—लक्ष्मण—वत्स, आओ आओ । चिरंजीवी रहो । जी भर कर गले मिलो । (गले मिलता है ।)

Lakṣmaṇa—Come come, dear child. Be of long life. Embrace me firmly. (Embraces him).

४३—भरत—मैं आपका अनुगृहीत हूँ। आर्य, राज्यभार स्वीकार कीजिए।

Bharata—I am obliged to you. Noble brother, receive back the responsibility of the kingdom.

४४—राम—वत्स, क्यों ?

Rāma—Dear brother, why ?

४५—कैकेयी—पुत्र, चिरकांक्षित यह हमारा मनोरथ है।

Kaikeyi—Child, this is indeed a long-cherished desire.

Notes

३८—वत्स:०—इस श्लोक की व्याख्या अंक ४ वक्तव्य ५६ में हो चुकी है।

४०—चिरसंचारी०—बहुत ही उपयुक्त एवं सामयिक आशीर्वाद है कि दोनों चिरसंगी रहें। राम अब अयोध्या में रहेंगे। वहाँ दोनों का सदा साथ हो।

४४—कथमिव—राम कैकेयी की आज्ञा प्राप्त किए बिना राज्य स्वीकार नहीं करना चाहते थे, अतः उन्होंने कैकेयी का भाव जानने के लिये उसके सम्मुख ही ऐसा कहा। कैकेयी ने भाव समझ कर तुरन्त अपनी स्वीकृति दे दी कि मेरी भी यही लालसा थी।

(ततः प्रविशति शत्रुघ्नः)

४६—शत्रुघ्नः—

विविधैर्व्यसनैः क्लिष्टमक्लिष्टगुणतेजसम्।
द्रष्टुं मे त्वरते बुद्धी रावणान्तकरं गुरुम्॥८॥

(उपगम्य।) आर्य ! शत्रुघ्नोऽहमभिवादये।

४७—रामः—एह्येहि वत्स ! स्वस्ति। आयुष्मान् भव।

४८—शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि। आर्ये ! अभिवादये।

४९—सीता—वत्स ! चिरंजीव । (वच्छ ! चिरंजीव ।)

५०—शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! अभिवादये ।

५१—लक्ष्मणः—स्वस्ति । आयुष्मान् भव ।

४६—अन्वय—विविधैः व्यसनैः क्लिष्टम् अक्लिष्टगुणतेजसं रावणान्तकरं गुरुं द्रष्टुं मे बुद्धिः त्वरते ।

(*तदनन्तर शत्रुघ्न का प्रवेश*)

शत्रुघ्न—विविध प्रकार की विपत्तियों से पीड़ित होने पर भी जिनके गुण और जिनका तेज अक्षुण्ण (पूर्ववत् निर्बाध) है, ऐसे रावणसंहारक बड़े भाई को देखने के लिए मेरा मन व्याकुल हो रहा है ॥८॥

(समीप जाकर) आर्य, मैं शत्रुघ्न आपको प्रणाम करता हूँ ।

(*Then enters Satrughna.*)

Satrughna—My mind hastens to see my elder brother the destroyer of Rāvṇa, harassed by various calamities, but with merits and spirit unaffected (in tact). (8)

(Approaching) Noble brother, I, Satrughna, bow to you.

४७—राम—वत्स, आओ आओ । तुम्हारा कल्याण हो । आयुष्मान् हो ।

Rāma—Come, come, child. My blessing to you. Be of long life.

४८—शत्रुघ्न—मैं आपका अनुगृहीत हूँ । आर्ये, आपको प्रणाम ।

Satrughna—I am beholden to you. Noble lady, I salute you.

४९—सीता—वत्स, चिरंजीवी हो ।

Sītā—Dear child, long live.

५०—शत्रुघ्न—मैं अनुगृहीत हूँ । आर्य, आपको प्रणाम ।

Satrughna—I am favoured. Noble brother, I salute you.

५१—लक्ष्मण—तुम्हारा कल्याण हो । आयुष्मान् हो ।

Lakṣmaṇa—Hail to you. May you long live.

Notes

४६—(१) विविधैः०—विविधैः अनेकप्रकारकैः व्यसनैः संकटैः क्लिष्टं पीडितम् । अनेक प्रकार की विपत्तियों मे पीड़ित । क्लिष्ट—क्लिश्+क्त ।

(२) अक्लिष्ट०—अक्लिष्टाः अबाधाः गुणाः तेजश्च यस्य तम् । बहुव्रीहि । जिसके गुण और तेज निर्बाध रूप से विद्यमान हैं ।

(३) रावणान्तकरम्—रावणसंहारकम् । रावण के संहारक ।

(४) अनुष्टुप् छन्द है ।

५२—शत्रुघ्नः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! एतौ वसिष्ठवामदेवौ सह प्रकृतिभिरभिषेकं पुरस्कृत्य त्वद्दर्शनमभिलषतः ।

तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वयमाहृतेन
नानानदीनदगतेन तव प्रसादात् ।
इच्छन्ति ते मुनिगणाः प्रथमाभिषिक्तं
द्रष्टुं मुखं सलिलसिक्तमिवारविन्दम् ॥९॥

५३—कैकेयी—गच्छ जात ! अभिलषाभिषेकम् । (गच्छ जाद ! अभिलसेहि अभिसेअं ।)

५४—रामः—यदाज्ञापयत्यम्बा । (निष्क्रान्तः ।)

(नेपथ्ये ।)

५५—जयतु भवान् । जयतु स्वामी । जयतु महाराजः । जयतु देवः । जयतु भद्रमुखः । जयत्वार्यः । जयतु रावणान्तकः ।

५२—अन्वय—मुनिगणाः तव प्रसादात् मुनिभिः स्वयम् आहृतेन नानानदीनदगतेन तीर्थोदकेन प्रथमाभिषिक्तं ते मुखं सलिलसिक्तम् अरविन्दम् इव द्रष्टुम् इच्छन्ति ।

शत्रुघ्न—मैं आपका कृतज्ञ हूँ । आर्य, ये (दोनों ऋषि) वसिष्ठ और वामदेव प्रजा के साथ अभिषेक के निमित्त आपका दर्शन करना चाहते हैं ।

मुनियों का समूह आपके अनुग्रह से, मुनियों के द्वारा स्वयं लाए हुए अनेक नदियों और नदों के तीर्थ-जल से पहले से ही अभिषिक्त, आपके मुख को जल से सिक्त कमल के सदृश देखना चाहते हैं ॥६॥

Satrughna—I am beholden to you. Noble brother, these (two sages) Vasistha and Vāmadeva, along with the citizens, are desirous of seeing you in connection with your coronation.

Multitudes of sages wish to see your face, bathed beforehand, through your grace, with the holy water brought from various rivers, small and great, by the sages themselves, like a lotus sprinkled over with water. (9)

५३—कैकेयी—पुत्र जाओ। अभिषेक स्वीकार करो।

Kaikeyi— Go child. Enjoy the coronation.

५४—राम—जैसी माता की आज्ञा।

(प्रस्थान)

Rāma—As mother commands.

(*Exit*)

५५—(नेपथ्य में।)

आपकी जय हो। स्वामी की जय हो। महाराज की जय हो। राजा की जय हो। भद्रमुख (सुन्दर मुख वाले) की जय हो। आर्य की जय हो। रावण के विनाशक की जय हो।

(*Behind the curtain*).

May your Honour be victorious: glory to our master; victory to the great king; prosperity to the king, may the auspicious-faced one conquer; victory to the noble one; may the destroyer of Rāvaṇa be victorious.

Notes

५२—(१) एतौ वसिष्ठ०—पहले (३.११२) भी दोनों ऋषियों का वर्णन आ चुका है।

(२) प्रथमाभिषिक्तम्—प्राक्कृताभिषेकम्। पहले अभिषेक कर लेने के बाद।

(३) सलिलसिक्तम्—जलसिक्तम्। जल से धुले हुए कमल के तुल्य।

(४) वसन्ततिलका छन्द है।

५५—(१) भद्रमुखः—सुमुखः। सुन्दर मुँह वाला।

(२) रावणान्तकः—रावणहन्ता। रावण का नाशक। अन्तक का अर्थ है काल, यम।

५६—कैकेयी—एते पुरोहिताः कञ्चुकिनः पुत्रकस्य मे विजयघोषं वर्धयन्त आशीर्भिः पूजयन्ति। (एदे पुरोहिदा कञ्चुइणो पुत्तअस्स मे विजअघोसं वड्ढअन्तो आसीहि पूजअन्ति।)

५७—सुमित्रा—प्रकृतयः परिचारकाः सज्जनाश्च पुत्रकस्य मे विजयं वर्धयन्ति। (पइदीओ परिचारआ सज्जणा अ पुत्तअस्स मे विजअं वड्ढअन्ति।)

५८— (नेपथ्ये)

भो भो जनस्थाननिवासिनस्तपस्विनः! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः।

हत्वा रिपुप्रभवमप्रतिमं तमोघं
सूर्योऽन्धकारमिव शौर्यमयैर्मयूखैः।
सीतामवाप्य सकलाशुभवर्जनीयां
रामो महीं जयति सर्वजनाभिरामः॥१०॥

५६—कैकेयी—ये पुरोहित और कंचुकी-वर्ग मेरे पुत्र का विजयघोष करते हुए अपने शुभाशीर्वादों से उसका सन्मान कर रहे हैं।

Kaikeyi—These priests and chamberlains, adding to the loud exclamations of victory to my child, are honouring him with their blessings

५७—सुमित्रा—मन्त्रिवर्ग, भृत्य तथा सज्जनों के वृन्द मेरे पुत्र के विजय की कामना कर रहे हैं।

Sumitra—Ministers, servants and good men are proclaiming victory to my child.

५८—अन्वय—अप्रतिमं रिपुप्रभवं तमौघं सूर्यः अन्धकारम् इव शौर्यमयैः मयूखैः हत्वा, सकलाशुभवर्जनीयां सीताम् अवाप्य सर्वजनाभिरामः रामः महीं जयति।

(नेपथ्य में)

हे जनस्थान-निवासी तपस्वियो! आप लोग सुनिए, सुनिए।

सूर्य जिस प्रकार अन्धकार को अपनी प्रखर किरणों से (नष्ट कर देता है) उसी प्रकार शत्रु-जनित घोर अन्धकार (विपत्ति) के समूह को अपने पराक्रमरूपी किरणों से नष्ट करके, समस्त अमंगलों से रहित (मंगलमयी) सीता को प्राप्त करके, सर्व-जन-मनोहर राम आज पृथ्वी पर अपना अधिकार कर रहे हैं॥ १०॥

(Behind the curtain)

O sages dwelling in Janasthāna, you listen, listen.

Having dispelled the unprecedented thick gloom arising from the enemy, as the sun does darkness, by the rays in the form of his valour, and having recovered Sītā, not to be assailed by evils of any kind, Rāma, delightful to all the people, now has the earth under his sway. (10)

Notes

५७—प्रकृतयः०—प्रकृतयः अमात्याः, परिचारकाः भृत्याः। मन्त्रिगण और भृत्यवर्ग।

५८—(१) भो भो जनस्थान०—अंक (५. वक्तव्य ७६) में रावण ने राम को युद्धार्थ आह्वान किया था कि—मैं बलात् सीता को ले जा रहा हूँ,

यदि राम में शक्ति हो तो पराक्रम दिखावें और सीता की रक्षा करें। यहाँ पर फिर उन्हीं जनस्थान-निवासी तपस्वियों को संबोधन कर के राम के विजय की सूचना दी गई, जिससे सिद्ध होता है कि उसने रावण के आह्वान को स्वीकार किया और अपने क्षात्रधर्म को प्रकट करते हुए रावण को नष्ट करके सीता की रक्षा की।

(२) रिपुप्रभवम्—शत्रुजनितम्। शत्रु से उत्पन्न होने वाले। प्रभव—प्र+भू+अप्।

(३) अप्रतिमम्—अतुलम्। घोर, महान्।

(४) तमौघम्—विपत्तिसमूहम्। तमस् का अर्थ अन्धकार है। यहाँ पर विपत्ति या संकट के भाव को व्यक्त करने के लिए है। तमस्+ओघम्। व्याकरण के अनुसार यहाँ पर 'तम ओघम्' रूप बनेगा, सन्धि नहीं हो सकती है।

(५) शौर्यमयैः०—पराक्रममयैः मयूखैः किरणैः। पराक्रमरूपी किरणों से।

(६) सकलाशुभ०—सकलैः अशुभैः रहिताम्। सारे अमंगलों से रहित, मंगलमयी।

(७) वसन्ततिलका छन्द है।

५९—कैकेयी—अम्महे! पुत्रस्य मे विजयघोषणा वर्धते।
(अम्महे! पुत्तस्स मे विजअघोसणा वड्ढइ।)

(*ततः प्रविशति कृताभिषेको रामः सपरिवारः*)

६०—रामः—(विलोक्याकाशे।) भोस्तात!

स्वर्गेऽपि तुष्टिमुपगच्छ विमुञ्च दैन्यं
कर्म त्वयाभिलषितं मयि यत् तदेतत्।
राजा किलास्मि भुवि सत्कृतभारवाही
धर्मेण लोकपरिरक्षणमभ्युपेतम् ॥११॥

५९—कैकेयी—अहा, मेरे पुत्र की विजय-घोषणा हो रही है।

Kaikeyi—Oh! the acquisition of sovereignty by my son is being proclaimed.

६०—अन्वय—स्वर्गे अपि तुष्टिम् उपगच्छ, दैन्यं विमुञ्च, यत् कर्म त्वया मयि अभिलषितं तत् एतत् (निर्वृत्तम्), भुवि सत्कृतभारवाही राजा अस्मि किल, धर्मेण लोकपरिरक्षणम् अभ्युपेतम्।

(*तदनन्तर राज्याभिषिक्त राम का परिवार के साथ प्रवेश*)

राम—(आकाश में देख कर) हे पितृदेव,

स्वर्ग में विराजमान भी आप सन्तोष प्राप्त करें, शोक को भुला दें। मेरे लिए आप जो (राज्याभिषेक का) कार्य चाहते थे, वह आज पूर्ण हो गया है। आज मैं भूतल पर सम्मान योग्य (राज्य के) भार को वहन करने वाला राजा निश्चित रूप से हो गया हूँ। मैंने धर्मपूर्वक (न्यायपूर्वक) प्रजा की रक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया है ॥११॥

(Then enters Rāma, crowned King, with the detinue.)

Rāma—(Looking towards the sky.) O father.

Although in heaven now rejoice; cast aside your melancholy; here is performed the deed (the ceremony of coronation) desired by you with regard to me. I am now, indeed, the King on earth, bearing the honourable responsibility (of governmenet); I have undertaken the protection of the people in conformity with justice (or sacred law). (11)

Notes

५९—अम्महे—हर्षसूचक शब्द।

६०—(१) कृताभिषेकः—कृतः अभिषेको यस्य सः। बहुव्रीहि। जिसका अभिषेक किया जा चुका है।

(२) स्वर्गेऽपि०—स्वर्ग में भी आनन्द प्राप्त करो। यहाँ पर राम का भाव यह है कि दशरथ अपनी आँखों के सामने राम का राज्याभिषेक देखना चाहते थे, परन्तु न देख सके, अतः अपनी अपूर्ण इच्छा को आज स्वर्गवासी

होने पर भी पूर्ण देखकर हर्ष-समन्वित होइए। इसका दूसरा भाव यह भी हो सकता है कि यद्यपि स्वर्ग आनन्द से परिपूर्ण है, तथापि इस अपने अभीष्ट समारोह को देखकर प्रसन्न होइए। रामायण युद्धकाण्ड सर्ग ११९ में यह भी वर्णन है कि राम ने इस अवसर पर दशरथ का साक्षात् दर्शन भी आकाश में किया।

(३) दैन्यं मुञ्च—खेदं जहीहि। मेरे अभिषेक के न होने एवं वनवास आदि होने से जो दुःख आपको हुआ था, उसको भुला दीजियेगा।

(४) कर्म त्वया०—राज्याभिषेकरूपं कर्म मद्विषये काङ्क्षितम्। मेरे लिए आपने जो राज्याभिषेकरूपी कार्य चाहा था, वह आज पूर्ण हो गया है।

(५) सत्कृत०—सत्कृतं सत्कारास्पदं भारं राज्यभारं वहतीति। सत्कार के योग्य राज्य के भार को वहन करने वाला। इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि—सत्कृत अर्थात् सत्कार-प्राप्त, आदरणीय या सज्जनों की रक्षा का भार अपने ऊपर लेने वाला। प्रथम अर्थ अधिक प्रासंगिक है।

(६) धर्मेण लोक०—धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा का कार्य मैंने स्वीकार किया है। कहा भी है—

(क) क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानां परिपालनम्।

(ख) नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्, स एव धर्मो मनुना प्रणीतः।

रघुवंश १४.६७.

(७) वसन्ततिलका छन्द है।

६१—भरतः—

अधिगतनृपशब्दं धार्यमाणातपत्रं
विकसितकृतमौलिं तीर्थतोयाभिषिक्तम्।
गुरुमधिगतलीलं वन्द्यमानं जनौघै-
र्नवशशिनमिवार्यं पश्यतो मे न तृप्तिः ॥१२॥

६१—अन्वय—अधिगतनृपशब्दं धार्यमाणातपत्रं विकसितकृतमौलिं तीर्थतोयाभिषिक्तम् अधिगतलीलं जनौघैः वन्द्यमानं नवशशिनम् इव गुरुम् आर्यं पश्यतः मे न तृप्तिः।

भरत—नवीन (द्वितीया के) चन्द्रमा के सदृश, अपने पूज्य ज्येष्ठ भाई को देखकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। उन्होंने 'महाराज' की उपाधि प्राप्त कर ली है, उनके (सिर के) ऊपर राजच्छत्र धारण किया जा रहा है, शिर पर तेजोमय मुकुट पहना हुआ है, तीर्थों के जल से उनका अभिषेक किया गया है, शोभासम्पन्न हैं और जनसमूह उनकी वन्दना कर रहा है ॥१२॥

Bharata—I am not fully satisfied as I behold, like the new moon, my noble elder brother, who has acquired the title of 'sovereign', who has the royal umbrella held over him, who has put on a resolendent crown, who is bathed in water from the holy places, who has possessed dignity and who is being saluted by multitudes of people. (12)

Notes

६१—(१) अधिगत०—अधिगतः प्राप्तः नृपशब्दः 'महाराज' इत्युपाधिः येन तम्। बहुव्रीहि। जिन्होंने 'महाराज' की उपाधि प्राप्त कर ली है। अधिगत—अधि+गम्+क्त। नृप—नॄन् मनुष्यान् पाति रक्षतीति नृपः, राजा। नृ+पा+क (अ)।

(२) धार्यमाण०—धार्यमाणम् आतपत्रं राजच्छत्रं यस्मिन् तम्। बहुव्रीहि। जिसके ऊपर राजछत्र लगाया हुआ है।

(३) विकसित०—विकसितः तेजोमयः कृतः धारितः मौलिः मुकुटं येन तम्। बहुव्रीहि। तेजोमय मुकुट जिसने पहना हुआ है।

(४) तीर्थतोया०—तीर्थतोयैः अभिषिक्तम्। तत्पुरुष। तीर्थों के जल से जिसका अभिषेक हुआ है। अभिषिक्त—अभि+सिच्+क्त।

(५) अधिगतलीलम्—अधिगता लीला विलासो येन तम्। बहुव्रीहि। जिसने राजकीय-शोभा प्राप्त की है अर्थात् राजोचित शोभा-सम्पन्न।

(६) वन्द्यमानं०—जनसमूहैः प्रणम्यमानम्। जनसमूह जिसको प्रणाम कर रहा है। वन्द्यमान—वन्द्+यक्+शानच्।

(७) नवशशिनम् इव—प्रतिपच्चन्द्रमिव । नवीन चन्द्रमा के तुल्य । प्रतिपदा और द्वितीया का चन्द्रमा अभ्युदयशील होता है । पूर्णिमा तिथि तक वह परिपूर्ण होता है, अतएव उसको सन्मानपूर्वक एवं उत्सुकता के साथ देखा जाता है । अन्य कवियों ने भी इसका वर्णन किया है—

(क) नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिर्नवोदयं नाथमिवौषधीनाम् । रघुवंश० २.७३ ।

(ख) प्रतिपच्चन्द्रमिव प्रजा नृपम् । किरातार्जुनीय० २.११

(८) इस श्लोक में मालिनी छन्द है ।

६२—शत्रुघ्नः—

एतदार्याभिषेकेण कुलं मे नष्टकल्मषम् ।
पुनः प्रकाशतां याति सोमस्येवोदये जगत् ॥१३॥

६३—रामः—वत्स लक्ष्मण ! अधिगतराज्योऽहमस्मि ।

६४—लक्ष्मणः—दिष्ट्या भवान् वर्धते ।

(*प्रविश्य*)

६५—काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः । एष खलु तत्र-भवान् विभीषणो विज्ञापयति, सुग्रीवनीलमैन्दजाम्बवद्धनूमत्प्र-मुखाश्चानुगच्छन्तो विज्ञापयन्ति—"दिष्ट्या भवान वर्धते" इति ।

६२—अन्वय—आर्याभिषेकेण नष्टकल्मषम् एतत् मे कुलं सोमस्य उदये जगत् इव पुनः प्रकाशतां याति ।

शत्रुघ्न—आर्य के राज्याभिषेक से निष्कलंक हमारा यह कुल, चन्द्रमा के उदय होने पर संसार के तुल्य, पुनः प्रकाशित (अर्थात् गौरवान्वित) हो रहा है ॥ १३ ॥

Satrughna—By this coronation of our noble brother our race has got its stain washed off ; and it again recovers its splendour, just as the world does by the rising of the moon. (13)

६३—राम—वत्स लक्ष्मण, अब मुझे राज्य मिल गया है।

Rāma—Dear Lakṣmaṇa, I have obtained the kingdom.

६४—लक्ष्मण—आपको इसके लिए बधाई।

Lakṣmaṇa—I congratulate you upon this.

(प्रविष्ट होकर)

६५—कंचुकी—महाराज की जय हो। ये आदरणीय विभीषण तथा सुग्रीव, नील, मैन्द, जाम्बवान्, हनुमान् आदि आपके अनुचर निवेदन करते हैं कि—'आपको बधाई है।'

(*Entering.*)

A Chamberlain—Victory to the great King. Here His Honour Bibhiṣaṇa, respectfully says, and so do your followers, Sugriva, Nila, Maiads, Jnmbavat, Hanumat and others—"We offer our congratulations to you".

Notes

६२—(१) नष्टकल्मषम्—नष्टं कल्मषं कलङ्को यस्य तत्। बहुव्रीहि। हमारे वंश का कलंक दूर हो गया है। बड़े भाई राम के रहते हुए छोटे भाई भरत का राज्य करना प्रजा की दृष्टि में हमारे कुल के लिए बहुत बड़ा कलंक था। अब राम ने राजा होना स्वीकार करके अपना राज्याभिषेक करा लिया है, अतः वह कलंक धुल गया है। रामायण एवं रघुवंश में इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि भरत ऐसे राज्य ग्रहण के द्वारा अपने आपको 'परिवेत्ता' (अर्थात् बड़े भाई के रहते हुए छोटे भाई का उससे पूर्व विवाह कर लेना) के सदृश मानता था।

स हि प्रथमजे तस्मिन्नकृतश्रीपरिग्रहे।
परिवेत्तारमात्मानं मेने स्वीकरणाद् भुवः ॥

रघुवंश १२.१८। (देखें रामायण अयोध्या० ७२.२२)

(२) प्रकाशतां याति—चन्द्रोदय से जिस प्रकार संसार का अन्धकार दूर हो कर प्रकाश हो जाता है, उसी प्रकार राम के राज्याभिषेक से कुल का कलंक नष्ट हो कर फिर वही गौरव प्राप्त हो रहा है।

६३—दिष्ट्या भवान्०—सौभाग्य से आपकी वृद्धि हो रही है। यह बधाई देने के लिए कहा गया है। इसका अर्थ है—आपको बधाई है या हम सब आपको बधाई देते हैं।

६५—सुग्रीवनील०—ये सुग्रीव की सेना के विशिष्ट नायकों के नाम हैं।

६६—रामः—"सहायानां प्रसादाद् वर्धते" इति कथ्यताम्।

६७—काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः।

६८—कैकेयी—धन्या खल्वस्मि। इममभ्युदयमयोध्यायां प्रेक्षितुमिच्छामि। (धण्णा खु ह्मि। इदं अब्भुदअं अओज्झाअं पेक्खिदुं इच्छामि।)

६९—रामः—द्रक्ष्यति भवती। (विलोक्य।) अये! प्रभाभिर्वनमिदमखिलं सूर्यवत् प्रतिभाति। (विभाव्य।) आः! ज्ञातम्। सम्प्राप्तं पुष्पकं दिवि रावणस्य विमानम्। कृतसमयमिदं स्मृतमात्रमुपगच्छतीति। तत् सर्वैरारुह्यताम्।

(सर्वे आरोहन्ति)

६६—राम—सहायकों की कृपा का ही यह फल है, ऐसा उनसे कह देना।

Rāma—Tell them that Rāma owes this good fortune to the favour of his allies.

६७—कंचुकी—जैसी महाराज की आज्ञा।

Chamberlain—As the great King commands.

६८—कैकेयी—मैं धन्य हूँ। (अब) मैं इस अभ्युदय (समारोह) को अयोध्या में देखना चाहती हूँ।

Kaiykeyī—am fortunate indeed. (Now) I wish to see this grand function performed in Ayodhyā.

६९—राम—आप ऐसा देखेंगी। (देख कर) ओह, यह सारा वन प्रकाश से सूर्य की तरह चमक रहा है। (विचार कर) अच्छा, मैं समझ गया। रावण का पुष्पक विमान आकाश में आ गया है। इसके साथ समय (निर्णय या शर्त) किया हुआ है, तदनुसार यह स्मरण करते ही स्वयं उपस्थित हो जाता है। अतः आप सब इस पर चढ़िये।

(सब चढ़ते हैं।)

Rāma—You will see it. (Seeing.) Oh, all this forest is shining with lustre, like the sun. (Reflecting) Oh, I see, Puṣpaka, Rāvaṇa's aerial car, has appeared in the sky. For it presents itself, the moment it is thought of, according to the condition made with it. So all should ascend.

(All ascend)

६६—वर्धते—इसके साथ 'रामः' का अध्याहार करना चाहिए। 'रामः वर्धते'। सब सहायकों की कृपा से मेरा अभ्युदय हो रहा है।

६९—(१) पुष्पकम्—पुष्पक विमान का विस्तृत वर्णन वाल्मीकीय रामायण में युद्धकांड (अ० १२१ श्लोक २३-२८) में आया है।

(२) रावणस्य०—रावण का विमान। यह विमान वस्तुतः कुबेर का था, रावण ने उससे छीन लिया था।

पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसंनिभम्।
मम भ्रातुः कुबेरस्य रावणेन बलीयसा॥
हृतं निर्जित्य संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम्॥ युद्ध० १२१·९·१०

(३) कृतसमयम्—पुष्पक विमान के साथ यह निर्णय किया हुआ था कि जब उसे स्मरण करेंगे, उसी समय वह आ पहुँचेगा। अतएव रामायण में उसे 'कामगम्०' कहा है। वह चलाने वाले की इच्छा के अनुसार चलता था।

७०—रामः—

अद्यैव यास्यामि पुरीमयोध्यां
संबन्धिमित्रैरनुगम्यमानः।

७१—लक्ष्मणः—

अद्यैव पश्यन्तु च नागरास्त्वां
चन्द्रं सनक्षत्रमिवोदयस्थम् ॥१४॥

७२—(भरतवाक्यम् ।)

यथा रामश्च जानक्या बन्धुभिश्च समागतः ।
तथा लक्ष्म्या समायुक्तो राजा भूमिं प्रशास्तु नः ॥१५॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

सप्तमोऽङ्कः ।

प्रतिमानाटकं समाप्तम् ।

७०—**अन्वय**—अद्य एव सम्बन्धिमित्रैः अनुगम्यमानः अयोध्यां पुरीं यास्यामि ।

राम—आज ही सम्बन्धियों और मित्रों के साथ मैं अयोध्यापुरी को जाऊँगा ।

Rāma—Today I will go to the city of Ayodhyā, followed by my Kinsmen and friends.

७१—**अन्वय**—अद्य एव च नागराः उदयस्थं सनक्षत्रं चन्द्रम् इव त्वां पश्यन्तु ।

लक्ष्मण—आज ही नगरनिवासी उदयाचल पर विद्यमान तारागण-सहित चन्द्रमा के तुल्य, राज्याधिष्ठित आपको देखें ॥१४॥

Lakṣmaṇa—This very day may the citizens see you placed on the throne, just as they see the moon accompanied by the constallations, appearing on the rising mountiain. (14)

७२—**अन्वय**—यथा रामः जानक्या च बन्धुभिः च समागतः, तथा लक्ष्म्या समायुक्तः नः राजा भूमिं प्रशास्तु ।

(भरत-वाक्य)

जिस प्रकार राम सीता और अपने बन्धुओं से युक्त हो गये, उसी प्रकार राजलक्ष्मी से समन्वित हमारे राजा पृथ्वी पर शासन करें ॥१५॥

(सब का प्रस्थान)

सप्तम अंक समाप्त

प्रतिमा नाटक समाप्त

Bharata Vākya

As Rāma was united with Sitā and his relatives, so may our King, endowed with glory, rule over the earth. (15)

(Exeunt Omnes)

End of Act VII

End of the 'Pratima-nataka.'

Notes

७१—(१) चन्द्रं सनक्षत्रम्—नक्षत्र संबन्धियों और मित्रों के स्थानापन्न हैं। राम चन्द्र-स्थानीय हैं।

(२) उदयस्थम्—(क) उदय अर्थात् राज्यप्राप्ति द्वारा सिंहासनस्थ। (ख) चन्द्रमा उदय अर्थात् उदयाचल पर विराजमान। इस श्लोक में इन्द्रवज्रा छन्द है।

७२—भरतवाक्यम्—'भरत' नटों या अभिनेताओं को कहते हैं। नाटक के अन्त में वे अभिनेता के पद से मंगल-कामना या स्तुति करते हैं। यहाँ पर अपने राजा की स्तुति है। इस श्लोक में राजा का नामोल्लेख नहीं है। स्वप्नवासव० आदि में 'राजसिंहः प्रशास्तु नः', 'भूमिमेकः प्रशास्तु नः' आदि पाठ है। यहाँ पर राजा शब्द से बहुत संभव है कि भास ने राजा उदयन का निर्देश किया है। अन्य नाटकों में भी 'राजसिंह' शब्द से उसी का निर्देश ज्ञात होता है। भास राजा उदयन का राजाश्रित कवि ज्ञात होता है, अतः उसने नाटकों के अन्त में 'नः राजा' (हमारे राजा) इस रूप में उदयन को श्री-वृद्धि की कामना की है।

सप्तम अंक समाप्त

प्रतिमा-नाटक समाप्त

परिशिष्ट (१)

श्लोकानुक्रमणी

परिशिष्ट (२)

पारिभाषिक शब्दों के लक्षण

(१) **नाटक**—(क) वीरशृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते।
प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम् ॥

जिसमें वीर और शृङ्गार में से एक रस प्रधान हो, अन्य रस गौण हों, और प्रसिद्ध नायक हो, उसे 'नाटक' कहते हैं।

(ख) नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः॥
एक एव भवेदङ्गी शृंगारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः॥

सा० दर्पण ६. ७—१०

नाटक उसे कहते हैं जिसका कथानक प्रसिद्ध हो, जिसमें मुख, प्रतिमुख आदि पाँचों संधियाँ हों। इसमें कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अंक होते हैं। इसका नायक प्रसिद्ध वंश का, धीरोदात्त, प्रतापी, राजर्षि होता है, वह दिव्य हो या दिव्य और अदिव्य दोनों प्रकार के गुणों से मिश्रित हो तथा गुणवान् हो। शृंगार या वीर में से एक रस मुख्य होता है, अन्य रस उसके सहायक तथा गौण होते हैं। नाटक में निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस का प्रयोग करना चाहिए।

(२) **नायक**—त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान् नेता॥

त्यागी, विद्वान्, कुलीन, समृद्ध, सुरूप, युवा, उत्साही, चतुर, लोकप्रिय, तेजस्वी, पटु, एवं सुशील पुरुष नेता होता है, अर्थात् नायक में ये गुण होने चाहिएँ।

(३) धीरोदात्त नायक—महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः॥
(दशरूपक)

महापराक्रमी, अतिगम्भीर, क्षमाशील, स्वयं स्वप्रशंसा न करने वाला, स्थिर-प्रकृति, अहंकार-हीन एवं दृढ़निश्चय वाले व्यक्ति को धीरोदात्त नायक कहते हैं।

(४) नायिका—नायकसामान्यगुणैर्युक्ता नायिका।
नायक में अपेक्षित गुणों से युक्त नायिका होती है॥

(५) पूर्वरङ्ग—यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते॥
सा० दर्पण ६. २२।

नाटकीय कथा के प्रारम्भ से पूर्व रंगमंच के विघ्नों को दूर करने के लिए अभिनेता जो मंगलाचरण आदि करते हैं, उसे 'पूर्वरङ्ग' कहते हैं।

(६) नान्दी—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥
सा० दर्पण ६. २४

'नान्दी' उसको कहते हैं, जो देवता, ब्राह्मण या राजाओं आदि की आशीर्वाद से युक्त स्तुति नाटक के प्रारम्भ में करता है।

(७) सूत्रधार—नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम्।
रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरितः॥

बीज सहित नाटक के अनुष्ठान को 'सूत्र' कहते हैं, जो उसको धारण करने वाला अर्थात् संचालन करने वाला होता है तथा रंगमंच के अधिष्ठातृ-देव की पूजा करता है, उसे सूत्रधार कहते हैं।

(८) नेपथ्य—कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।

अभिनेता-गण जहाँ पर नाटक के उपयुक्त वेष-भूषा धारण करते हैं, उसे नेपथ्य कहते हैं।

(९) प्रस्तावना या स्थापना—सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम्।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्॥

जहाँ सूत्रधार विचित्र ढंग से नटी, मारिष या विदूषक से इस प्रकार की बात करता है, जिससे प्रस्तुत नाटकीय कथा का निर्देश हो जाए, उसे 'आमुख' कहते हैं। इसी का दूसरा नाम 'प्रस्तावना' है। भास ने इसके स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया है।

(१०) **कांचुकीय**—(क) अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥

अन्तःपुर में जाने वाले, वृद्ध, गुणवान् ब्राह्मण को, जो सब कार्यों के करने में कुशल होता है, कंचुकी कहते हैं।

(ख) ये नित्यं सत्त्वसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः कांचुकीयास्तु ते स्मृताः ॥ (मातृगुप्ताचार्य)

सर्वदा सात्विक प्रकृति वाले, शुद्ध आचारयुक्त तथा ज्ञान और विज्ञान में निपुण व्यक्तियों को कंचुकी कहते हैं।

(११) **अङ्क**—अङ्क इति रूढिशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान्।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः।
किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवगन्तव्यः ॥
नाट्यशास्त्र अ० २०.१४-१६

जो भावों और रसों के द्वारा अर्थों को प्रस्फुरित करता है, जहाँ पर अनेक प्रकार के विधान होते हैं, जहाँ पर एक अर्थ की समाप्ति होती है और बीज का उपसंहार होता है तथा अंशतः विन्दु का सम्बन्ध बना रहता है, उसे 'अंक' कहते हैं। (१—बीज—उसे कहते हैं जो प्रारम्भ में संक्षेप में कहा जाता है और आगे चलकर विस्तृत हो जाता है। २—विन्दु—मध्यगत कथा के विच्छेद होने पर भी प्रधान कथा को आगे अविच्छिन्न रखने के कारण को विन्दु कहते हैं।)

(१२) **स्वगत**—अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।
सा० दर्पण ६.१३७

जो बात सुनने योग्य नहीं होती है, उसे 'स्वगत' (मन में) कहते हैं। इसको 'आत्मगत' भी कहते हैं। इसका उद्देश्य यह होता है कि साथ के अभिनेता उस बात को न सुन सकें, केवल श्रोता ही उसे सुन पावें।

(१३) **प्रकाश**—सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्। सा० दर्पण ६.१३८

जो बात सबको सुनाने के लिए कही जाय, उसे 'प्रकाश' (स्पष्ट) कहते हैं।

(१४) **अपवारित**—रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्याऽपवारितम्।

जो बात कुछ पात्रों से छिपाकर कुछ विशिष्टों से ही कही जाती है, उसे 'अपवारित' कहते हैं।

(१५) **विष्कम्भक**—वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।

संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥५५॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः।
शुद्धः स्यात्, स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥५६॥
सा० दर्पण ६.

विष्कम्भक भूत और भावी घटनाओं की सूचना के लिए होता है। इसका प्रयोग नाटक में संक्षेप के उद्देश्य से किया जाता है। यह अंक के आदि में रक्खा जाता है। जहाँ पर विष्कम्भक में एक या दो मध्यम कोटि के पात्र आते हैं, उसे 'शुद्धविष्कम्भक' कहते हैं। यदि उसमें नीच और मध्यम दोनों कोटि के पात्र हैं तो उसे 'मिश्रविष्कम्भक' कहते हैं।

(१६) **प्रवेशक**—प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।

अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा।
सा० दर्पण ६.५७

प्रवेशक की भाषा प्राकृत होती है। इसमें नीच पात्र ही रहते हैं। यह दो अङ्कों के बीच में आता है। इसकी अन्य विशेषताएँ विष्कम्भक के तुल्य हैं। यह नाटक के प्रारम्भ में नहीं आ सकता है।

शुद्धविष्कम्भक, मिश्रविष्कम्भक और प्रवेशक

इन तीनों का अन्तर इस प्रकार समझा जा सकता है—

नाम	पात्र	भाषा
(१) शुद्ध विष्कम्भक—	मध्यम (१ या २)	संस्कृत
(२) मिश्रविष्कम्भक—	मध्यम और नीच	संस्कृत और प्राकृत
(३) प्रवेशक—	नीच	प्राकृत

प्रतिमानाटक में इनका प्रयोग निम्नलिखित अङ्कों में हुआ है :—

अंक	पात्र		भाषा	नाम
	मध्यम	नीच		
२	कांचुकीय	प्रतिहारी	संस्कृत और प्राकृत	मिश्रविष्कम्भक
३	—	(१) सुधाकार	प्राकृत	प्रवेशक
		(२) भट	प्राकृत	
४	—	(१) विजया	प्राकृत	प्रवेशक
		(२) नन्दिनिका	प्राकृत	
६	वृद्धतापसौ	—	संस्कृत	विष्कम्भक
७	तापस	नन्दिलक	संस्कृत और प्राकृत	मिश्रविष्कम्भक

परिशिष्ट (३)

छन्द-परिचय

(प्रतिमानाटकस्थ छन्दों के लक्षणादि)

(१) संस्कृत में प्रत्येक पद्य में ४ पाद या चरण होते हैं। छन्द दो प्रकार के होते हैं (क) वर्णवृत्त (ख) मात्रिक। (क) वर्णवृत्तों में प्रत्येक पाद के वर्णों की गणना की जाती है, (ख) मात्रिक में मात्राओं की संख्या गिनी जाती है। जब चारों पदों में बराबर वर्ण या मात्रा होती हैं, तो उन्हें 'समवृत्त' कहते हैं। अधिक छन्द प्रायः इसी कोटि में आते हैं। 'अर्धसम-वृत्त' उनको कहते हैं, जहाँ पर प्रथम और तृतीय चरण में तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में ही समता होती है।

(२) दोनों प्रकार के छन्दों में स्वरों पर ध्यान दिया जाता है। अ, इ, उ, ऋ और ऌ ये 'लघु' (ह्रस्व) हैं। आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ ये 'गुरु' (दीर्घ) कहे जाते हैं। अनुस्वार, विसर्ग तथा संयुक्त अक्षर से पूर्व यदि लघु स्वर भी होता है तो वह गुरु माना जाता है। पाद का अन्तिम लघु अक्षर भी कभी गुरु माना जाता है।

सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा॥

(३) संस्कृत में वर्णवृत्तों की गणना के लिए 'गण' का उपयोग किया जाता है। एक 'गण' में तीन अक्षर होते हैं। छन्दों के लक्षण में गणों का ही प्रयोग होता है, अतः इनको स्मरण करना अनिवार्य है। लघु वर्ण के लिए सीधी लकीर चिह्न है और गुरुवर्ण के लिए ऽ चिह्न है। इंग्लिश के अनुसार क्रमशः ˘—चिह्न हैं। गणों की संख्या ८ है। इनके लक्षण के लिए निम्नलिखित श्लोक स्मरण कर लेना चाहिए :—

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो, भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः, सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः॥

मगण SSS नगण ||| भगण S|| यगण |SS
जगण |S| रगण S|S सगण ||S तगण SS|
दूसरा लक्षण निम्नलिखित है :—

आदिमध्यावसानेषु य—र—ता यान्ति लाघवम् ।
भ—ज—सा गौरवं यान्ति, म—नौ तु गुरुलाघवम् ॥

जैसे—म या मगण कहने का अर्थ होगा तीन गुरु अक्षर, न अर्थात् तीनों लघु अक्षर, भ अर्थात् प्रथम अक्षर गुरु शेष दो अक्षर लघु ।

(४) (क) लक्षणों में जहाँ भी 'ल' आता है उसका अर्थ होगा 'लघु' और 'ग' का अर्थ 'गुरु' अक्षर । यदि 'लौ' या 'गौ' हो तो दो लघु या दो गुरु अर्थ होगा ।

(ख) 'यति' का अर्थ है विराम या विश्राम, जहाँ पर एक पाद के बीच में उच्चारण करते समय थोड़ा रुकना होता है । लक्षणों में इसका निर्देश है कि कितने वर्ण के बाद यति आती है । इसका नीचे कोष्टों में निर्देश किया गया है ।

(ग) 'गति' का अर्थ है प्रवाह । पद्य का अस्खलित गति से धारा-प्रवाह पढ़ा जाना ।

प्रतिमानाटक में १६ छन्दों का प्रयोग हुआ है । उनके लक्षण निम्न-लिखित हैं :—

(१) **अनुष्टुप् या श्लोक**—पञ्चमं लघु सर्वत्र, सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
षष्ठं गुरु विजानीयादेतत् पद्यस्य लक्षणम् ॥

अनुष्टुप् में ८ अक्षर होते हैं । उनमें से सभी चरणों में पंचम अक्षर लघु होता है । द्वितीय और चतुर्थ चरण में सातवाँ अक्षर लघु होता है और षष्ठ अक्षर सर्वत्र गुरु होता है ।

(२) **इन्द्रवज्रा**—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।

इन्द्रवज्रा में २ तगण, १ जगण और २ गुरु अक्षर होते हैं । कुल ११ वर्ण होते हैं ।

(३) **उपजाति**—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः, उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥

उपजाति छन्द इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छन्दों के मिश्रण से बनता है। किसी चरण में इन्द्रवज्रा छन्द होता है और किसी में उपेन्द्रवज्रा। इन्द्रवज्रा में ११ वर्ण होते हैं :—२ तगण, १ जगण और २ गुरु अक्षर। उपेन्द्रवज्रा में भी ११ वर्ण होते हैं :—१ जगण, १ तगण, १ जगण और २ गुरु अक्षर।

(४) **शालिनी**—(४,७) मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेद लोकैः।

शालिनी छन्द में ११ वर्ण होते हैं :—१ मगण, २ तगण और २ गुरु वर्ण। ४—७ पर यति होती है अर्थात् ११ वर्णों में से चतुर्थ वर्ण पर कुछ विराम होता है और तत्पश्चात् ७वें वर्ण पर अर्थात् ११वें अक्षर पर विराम होता है।

(५) **वंशस्थ**—जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।

वंशस्थ में १२ वर्ण होते हैं :—१ जगण, १ तगण, १ जगण और १ रगण।

(६) **पुष्पिताग्रा**—अयुजि नयुगरेफतो यकारो,
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥

पुष्पिताग्रा छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में १२ वर्ण होते हैं :—२ नगण, १ रगण और १ यगण। द्वितीय और चतुर्थ चरण में १३ वर्ण होते हैं :—१ नगण, २ जगण, १ रगण और १ गुरु वर्ण।

(७) **प्रहर्षिणी**—(३,१०) म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्।

प्रहर्षिणी छन्द में १३ वर्ण होते हैं :—१ मगण, १ नगण, १ जगण, १ रगण और १ गुरु वर्ण। इसमें ३—१० पर यति होती है।

(८) **वसन्ततिलका**—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

वसन्ततिलका छन्द में १४ वर्ण होते हैं :—१ तगण, १ भगण, २ जगण और २ गुरु वर्ण।

(९) **मालिनी**—(८,७) ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

मालिनी छन्द में १५ वर्ण होते हैं :—२ नगण, १ मगण और २ यगण। इसमें ८—७ पर यति होती है।

(१०) **शिखरिणी**—(६,११)

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी।

शिखरिणी छन्द में १७ वर्ण होते हैं :—१ यगण, १ मगण, १ नगण, १ सगण, १ भगण, १ लघु और १ गुरु वर्ण। इसमें ६—११ पर यति होती है।

(११) **हरिणी**—(६,४,७) नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।

हरिणी छन्द में १७ वर्ण होते हैं :—१ नगण, १ सगण, १ मगण, १ रगण, १ सगण, १ लघु और १ गुरु वर्ण। इसमें ६—४—७ पर यति होती है।

(१२) **शार्दूलविक्रीडित**—(१२,७)

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।

शार्दूलविक्रीडित छन्द में १९ वर्ण होते हैं :—१ मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, २ तगण और १ गुरु वर्ण। इसमें १२—७ पर यति होती है।

(१३) **सुवदना**—(७,७,६)

ज्ञेया सप्ताश्वषड्भिर्मरभनययुता भ्लौ गः सुवदना।

सुवदना छन्द में २० वर्ण होते हैं :—१ मगण, १ रगण, १ भगण, १ नगण, १ यगण, १ भगण, १ लघु और १ गुरु वर्ण। इसमें ७—७—६ पर यति होती है।

(१४) **स्रग्धरा**—(७,७,७)

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।

स्रग्धरा छन्द में २१ वर्ण होते हैं :—१ मगण, १ रगण, १ भगण, १ नगण और ३ यगण। इसमें ७—७—७ पर यति होती है।

(१५) **प्रभा**—स्वरशरविरतिर्ननौ रौ प्रभा।

प्रभा छन्द में १२ वर्ण होते हैं :—२ नगण, २ रगण। ७—५ पर यति होती है।

(१६) **स्रग्विणी**—रैश्चतुर्भिर्युता स्रग्विणी संमता।

स्रग्विणी छन्द में १२ वर्ण होते हैं :—४ रगण।

परिशिष्ट (४)

प्रतिमानाटकान्तर्गतानि सुभाषितानि

(सूचना—कोष्ठ में अंक संख्या तथा वक्तव्य संख्या दी गई है।)

१—अज्ञातपुरुषविशेषाः खलु वानराः। (६—५४)

२—अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा। (१—१३४)

३—अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम्। (४—७१)

४—अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते। (१—७१)

५—अस्ति पाण्डित्यं सम्यग् विचारयितुम्। (६—१२)

६—का नाम माता पुत्रकस्यापराधं न मर्षयति। (६—६५)

७—किं ब्रह्मघ्नानामपि परेण निवेदनं क्रियते। (४—२४)

८—कीदृशस्तनयस्नेहो भ्रातृस्नेहोऽयमीदृशः (४—४४)

९—कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम्। (६—४१)

१०—कुलं च नः सत्यधनं ब्रवीमि ते। (४—७२)

११—गङ्गायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता। (३—६७)

१२—गुणा इव बहुपराद्धमायुषा मे। (४—६३)

१३—गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः॥ (३—११२)

१४—छायां परिहृत्य शरीरं न लङ्घयामि। (५—२७)

१५—तिर्यग्योनयोऽपि उपकृतमवगच्छन्ति। (६—४५)

१६—न न्याय्यं परदोषमभिधातुम् ।	(४—२२)
१७—न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ।	(५—७३)
१८—नारीणां पुरुषाणां च निर्मर्यादो यदा ध्वनिः । सुव्यक्तं प्रभवामीति मूले दैवेन ताडितम् ॥	(१—६०)
१९—निम्नस्थलोत्पादको हि कालः ।	(७—१७)
२०—निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ।	(१—१४६)
२१—पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च ।	(१—१३४)
२२—पारयत्यार्यपुत्रोऽलीकमपि सत्यमिव मन्त्रयितुम् ।	(१—८०)
२३—पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ।	(३—७२)
२४—पुरुषाणां मातृदोषो न दोषः ।	(४—७५)
२५—बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम ।	(१—५४)
२६—भर्तृनाथा हि नार्यः ।	(१—१३४)
२७—राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम्	(४—६६)
२८—राम इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत् ।	(५—६१)
२९—लोकेऽपूर्वं स्थापयाम्येष धर्मं भर्तृद्रोहादस्तु माताऽप्यमाता ।	(३—१०३)
३०—वाचाऽनुवृत्तिः खल्वतिथिसत्कारः ।	(५—२७)
३१—वार्धलस्तु प्रणामः स्यादमन्त्रार्चित दैवतः ।	(३—३८)
३२—विधिरनतिक्रमणीयः ।	(२—२४)
३३—शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा ।	(१—६६)
३४—सर्वं श्रद्धया दत्तं श्राद्धम् ।	(५—३५)
३५—सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम ।	(१—३३)
३६—सर्वोऽपि मृदुः परिभूयते ।	(१—११३)
३७—सुलभापराधः परिजनो नाम ।	(१—१६)
३८—स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भोः ! विस्मयः ।	(१—५७)
३९—हस्तस्पर्शो हि मातृणामजलस्य जलाञ्जलिः ।	(३—७६)

परिशिष्ट (५)

व्याकरणसम्बन्धी असिद्ध प्रयोग

(सूचना—संख्याएँ वक्तव्य-संख्या-सूचक हैं। व्याकरणसंबन्धी नियमों के लिए टिप्पणी देखिए।)

अंक १

१६—नाटकीयानां विज्ञापय।

८७—मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य।

१०१—अलमुपहतासु सर्वाबुद्धिषु स्वमार्जवमुपनिक्षेप्तुम्।

११६—नियतीव।

१२१—धनुर्नमयि।

१३२—देवतानां प्रणामः।

अंक २

६—अलमिदानीं महाराजोऽतिमात्रं सन्तप्य परवशमात्मानं कर्तुम्।

अंक ३

३४—विश्रमिष्ये।

६३—पृच्छसे।

७८—परशङ्कामलं कर्तुम्।

८७—अभिवादनक्रममुपदेष्टुमिच्छामि।

१११—वदतु भवति सत्यम्।

अंक ४

२१—अलं गुरुजनापवादमभिधातुम्।

४६—इदमपि तावदात्माभिप्रायमनुवर्तयितुमिच्छसि।

६२—रमयति।

६७—क्रमेण शुश्रूषयिष्ये।

७०—लक्ष्मणः शुश्रूषयतु। भरतः शुश्रूषयतु।

७५—अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम् ।

८२—मम हस्ते निक्षिप्तं तव राज्यं चतुर्दशवर्षान्ते प्रतिग्रहीतुमिच्छामि ।

अंक ५

११—पूजां सानुरूपाम् ।

४४—आपृच्छ पुत्रकृतकान् ।

५१—शुश्रूषयस्व भगवन्तम् ।

५५—अर्हत्येष हि पूजायाम् ।

अंक ६

१६—आपृच्छाम्यत्रभवतीम् ।

अंक ७

२०—आर्यपुत्र, मा खलु एवं भणितुम् ।

५८—रिपुप्रभवं तमौघम् ।

परिशिष्ट (६)

प्रतिमानाटक के विषय में प्रश्न-पत्र

आगरा विश्वविद्यालय (बी० ए० संस्कृत)

अनुवाद करो—(कोष्ठ में अंक तथा श्लोक संख्या है)

सन् १६४१—(१) राज्ये त्वामभिषिच्य० (२.१६) । (२) भ्रमति सलिलं० (५.२)

सन् १६४२—(१) घनः स्पष्टो धीरः० (४.७) । (२) आरब्धे पटहे० (१.५)

सन् १६४३—(१) गत्वा पूर्वं स्व० (१.१७) । (२) सूर्य इव गतो० (२.७)

काशी विश्वविद्यालय (एम० ए० हिन्दी, वैकल्पिक पत्र)

सन् १९३७ (नीचे कोष्ठों में अङ्क तथा वक्तव्य संख्या हैं)

(१) विशद व्याख्या कीजिए :—

(क) हिमवतः सप्तमे शृङ्गे.....श्राद्धान्यभिवर्धयन्ति । (५.४३) । (ख) पतितमिव शिरः० (३.२५)

(२) अनुवाद कीजिये :—(क) न तदभिषेकोदकं मुखोदकं नाम। (१.५६) । (ख) अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते। (१.७१)। (ग) तिर्यग्योनयोऽप्युपकृतमवगच्छन्ति । (६.४५)

(३) (क) 'प्रतिमा' के नाटकीय गुणों का निर्देश कर भास की उस स्वतन्त्रता पर अपने विचार लिखिए जो उन्होंने वृत्तकल्पना में प्रदर्शित की है।

(ख) 'भास भारतीय भावों के कवि थे और कालिदास भारतीय संस्कृति के'। इस कथन पर विचार कीजिए।

(ग) भास और कालिदास की शैलियों की ऐसी तुलना कीजिए, जिसमें शैली के मुख्य गुणों का वर्णन आ जाए।

सन् १९३८

(१) विशद व्याख्या कीजिए :—असुरसमरदक्षैः० (४.३५)

(२) भावार्थ स्पष्ट लिखिए :—निर्दोषदृश्या हि ... ... वने च। (१.१४९)

(३) (क) 'भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः' जयदेव के इस वाक्य का समर्थन, दोनों कवियों के गुणों का तुलनात्मक आलोचन कर, कीजिए।

(ख) प्रतिमानाटक के नाटकीय गुणों पर ध्यान रखते हुए उसकी उन विशेषताओं का उल्लेख कीजिए, जिनके कारण 'भासनाटकचक्र' में यह एक अनूठा रत्न समझा जाता है।

सन् १९४९

(१) व्याख्या कीजिए :—(क) विलपसि किमिदं (५.७५)। (ख) नागेन्द्रा यवसाभि० (२.७)

(२) अनुवाद कीजिए:—(क) सुलभापराधः परिजनो नाम (१.१६)। (ख) न तदभिषेकोदकं मुखोदकं नाम (१.५६)। (ग) उदर्केण गुणेनात्र भवितव्यम् (१.६८)। (घ) अप्यरण्यानि स्वाधीनानि विचरन्ती वैदेही न परिखिद्यते ? (२.३३)। (ङ) अङ्घो दास्याःपुत्रः ! किमिदानीं कर्म न करोषि ? (३.२)। (च) अधन्यस्य मम कार्तवीर्यस्येव बाहुसहस्रं नास्ति (३.५)। (छ) स्फुरति हृदयं वाहय रथम् (३.११)। (ज) किन्तु खलु पार्थिवोऽयं विशेषः, अथवा आह्निकमाहितक्यम् ? (३.३८)। (झ) अहो क्रियामाधुर्यं पाषाणानाम् (३.३८)। (ञ) विस्तरश्रवणं मे मनसः स्थैर्यमुत्पादयति। तत् सर्वमनवशेषमभिधीयताम् (३.७२)। (ट) जात ! सर्वसमुद्राचारमध्यस्थः किं न वन्दसे मातरम् ? (३.१००)।

(३) (क) 'प्रतिमा' के नाटकीय गुणों का प्रदर्शन करके वृत्तकल्पना में भास की स्वतन्त्रता पर विचार कीजिए।

(ख) भास और कालिदास के कवित्व की तुलना कीजिए।

सन् १९५१

(१) सप्रसंग व्याख्या कीजिए :—इदं गृहं तत् प्रतिमानृपस्य० (३.७७)।

(२) अनुवाद कीजिए :—यदाज्ञापयति भवती। कुमार, श्रूयताम्, मृगयां गतेन......मुनितनयो हिंसितः। (६.८३)

(३) भाषा की दृष्टि से शिवराजविजय और प्रतिमानाटक की तुलनात्मक आलोचना कीजिए।

मुद्रक—नरोत्तमदास अग्रवाल, नेशनल प्रेस प्रयाग।
१ म ३५८

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
Lal Bahadur Shastri National Academy of Administration Library

मसूरी
MUSSOORIE

अवाप्ति सं०
Acc. No.............................

कृपया इस पुस्तक को निम्न लिखित दिनांक या उससे पहले वापस कर दें।

Please return this book on or before the date last stamped below.

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.

Sans
891.22

अवाप्ति सं० 14661
ACC. No.................

वर्ग सं. पुस्तक सं.
Class No............... Book No..............
लेखक
Author...
शीर्षक
Title...
....

निर्गम दिनांक Date of Issue	उधारकर्ता की सं. Borrower's No.	हस्ताक्षर Signature

Sans
891.22 LIBRARY 14661
LAL BAHADUR SHASTRI
National Academy of Administration
भारत MUSSOORIE

Accession No. 125617

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving